सहकारिता एवं सामुदायिक विकास

[Co-operation and Community Development]

दो शब्द

सहकारिता आर्थिक संगठन का एक रूप है। हमारे समाजवादी नमूने के समाज के निर्माण मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारिता के आधार पर विकास करने के प्रयत्न किये गये हैं। इस पुस्तक मे भारत मे सहकारिता आन्दोलन की वर्तमान स्थिति, विशेषताओ तथा समस्याओ का विस्तृत विवेचन किया गया है। आन्दोलन का ध्यान से अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह विशेष प्रगति नही कर सका है। देश मे सहकारी शिक्षा का अभाव है। अधिकाश व्यक्ति सहकारिता के सिद्धान्तो से भिज्ञ नही हैं। इसके अतिरिक्त इस आन्दोलन के समक्ष अनेक बाधाये हैं जिन्हे दूर करने के उपाय भी पुस्तक मे दिये गये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान विश्वविद्यालय के द्वितीय वर्ष वाणिज्य के विद्यार्थियो के लिए प्रस्तुत की जा रही है। 'सहकारिता एव सामुदायिक विकास' इस वर्ष द्वितीय वर्ष वाणिज्य मे अनिवार्य विषय रखा गया है। पुस्तक तीन खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड भारत मे सहकारिता आन्दोलन से सम्बन्धित है। द्वितीय खण्ड मे राजस्थान मे सहकारिता आन्दोलन का विवरण है तथा तृतीय खण्ड सामुदायिक विकास का है। पुस्तक मे भाषा अत्यन्त सरल है तथा आधुनिकतम आंकडो का प्रयोग किया गया है। विषय सामग्री मौलिक ग्रन्थो, पत्र पत्रिकाओ, सन्दर्भ ग्रन्थो तथा प्रतिवेदनो के आधार पर तैयार की गयी है। आशा है विद्यार्थियो के लिये यह अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

अन्त मे लेखकगण प्रकाशक महोदय तथा श्री एस० के० गुप्ता व्यवस्थापक जयपुर शाखा (रतन प्रकाशन मन्दिर) के सहयोग के लिये आभारी हैं जिन्होने पुस्तक को शीघ्र छपाने मे सहायता प्रदान की है। पाठको से उपयुक्त सुझाव आमन्त्रित हैं ताकि भविष्य मे पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

—लेखक द्वय

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

भारत में सहकारिता आन्दोलन

द्वितीय खण्ड

राजस्थान में सहकारिता आन्दोलन

तृतीय खण्ड
सामुदायिक विकास

प्रथम खण्ड

भारत में सहकारिता आन्दोलन

सहकारिता का अर्थ एवं सिद्धान्त

(Principles and Meaning of Cooperation)

वर्तमान जीवन की समस्याओ को देखते हुए सहकारिता की अत्यन्त आवश्यकता है। सहकारिता की भावना इस सिद्धान्त पर स्थित है कि समाज के व्यक्ति परस्पर मिल जुल कर स्वेच्छा से कार्य करें। हर व्यक्ति के पास इतना धन नहीं होता कि वह अपना निजी व्यवसाय प्रारम्भ कर सके लेकिन सहकारिता के आधार पर कुछ व्यक्ति मिलकर अपना उद्योग धन्धा चला सकते हैं और उससे होने वाले लाभ के आधार पर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। इस दृष्टि से सहकारिता की भावना आर्थिक सगठन का एक महत्वपूर्ण रूप है जो समाजवादी समाज की स्थापना में भी सहयोग दे सकता है तथा इससे व्यक्ति के आर्थिक एव समाजिक हितो की रक्षा भी हो सकती है। सहकारिता व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा प्रेरणा मे किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाते हुए, सम्पूर्ण आर्थिक ढाचे का सामाजीकरण कर देती है। इसमें साधन, शक्ति और निर्देशन का केन्द्रीयकरण नहीं होना है अत आर्थिक विकास के लिए सहकारिता सामाजिक न्याय को प्रमुखता देती है। यह समाज को आत्म निर्भर साहसी, स्वातन्त्र्य-प्रेमी और विधि पालक नागरिक बनने का प्रशिक्षण देती है। इसका मूल उद्देश्य समाज मे शोषण, अन्याय, आर्थिक सकट आदि को समाप्त करके आत्म-निर्भरता, स्वावलम्बन, एकता एव सहयोग की भावना को प्रश्रय देना है। व्यक्ति अपने सयुक्त प्रयास, विचार एव योग्यताओं द्वारा आगे बढ़ सकते हैं और सामान्य समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। इस प्रकार के कुशल प्रबन्ध एव उत्पादन मे मितव्ययिता के कारण उत्पादकता (Productivity) में वृद्धि होती है। एक आर्थिक सगठन के रूप मे सहकारी समितियो का लक्ष्य अधिकतम लाभ कमाना नहीं है बल्कि उत्तम सेवायें प्रदान करना है। अत सहकारी विचारधारा उदारतावाद एव समाजवाद के सर्वोतम तत्वों का समन्वय करती है और ये दोनो महत्वपूर्ण आधुनिक दर्शन हैं।

सहकारिता की परिभाषा

(Definition of Cooperation)

सहकारिता शब्द के दो अर्थ हैं, एक अर्थ के अन्तर्गत तो सहकारिता मिलजुल कर कार्य करने की विधि है। दूसरे सहकारिता व्यवसाय सगठन का एक रूप है।

किन्तु यह अन्य प्रकार के व्यवसाय सगठनो से भिन्न है। सहकारिता आर्थिक सगठन का एक ऐसा रूप है। जिसमे व्यक्ति स्वेच्छा से, समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितो की रक्षा के लिये सगठित होते हैं। अन्य शब्दो मे किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिलकर ईमानदारी से कार्य करने को सहकारिता कहा जाता है। सहकारिता के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विभिन्न विद्वानो की परिभाषाओ पर विचार करना आवश्यक है।

डा० सी० आर० फे ने सहकारी समिति को पारिभाषित करते हुए लिखा है, "यह एक ऐसी सस्था है जो मिल कर व्यापार करने के लिए निर्धन व्यक्तियो (धन हीनो) के द्वारा स्थापित की जाती है और जिसका सचालन सदैव नि स्वार्थ भावना से, ऐसी शर्तो पर होता है कि जो इसके सदस्य बनने का भार लेते हैं, वे उसी अनुपात मे लाभ के हकदार होते हैं जिस अनुपात मे वे सस्था का उपभोग करते हैं।"[1] यह कथन डा० फे ने इ गलैण्ड के उपभोक्ता भण्डारा के स्वरूप के आधार पर दिया है। आलोचको का मत है कि इसमे स्वच्छा तत्व को बिलकुल छोड दिया है। दूसरे, इस परिभाषा मे व्यापार (Trading) शब्द ने इसे सकुचित बना दिया है जो कि सहकारिता के प्रत्येक कार्यो को सम्मिलित करने मे असमर्थ है। तीसरे डा० फे ने सहकारिता को निर्धन व्यक्तियो (The weak) का ही सगठन बताया है जबकि यह उचित नही है।

सर होरस प्लकेट (Sir Horace Plunkett) के अनुसार सगठन द्वारा प्रभावशाली बनायी गयी आत्म सहायता ही सहकारिता कहलाती है।[2] दूसरे शब्दो मे सहकारिता आत्म सहायता को अधिक, प्रभावशाली बनाती है। यद्यपि परिभाषा बहुत सरल है किन्तु इसमे सहकारिता के कई अन्य लक्षणो की जानकारी नही हो पाती है।

श्री हेरिक के अनुसार, "सहकारिता स्वेच्छापूवक सगठित व्यक्तियो का कार्य है जो आपसी प्रबन्ध के अन्तर्गत, अपनी शक्ति और ससाधनो का अथवा दोनो का सामूहिक लाभ अथवा हानि के लिए उपयोग करते हैं।" इस परिभाषा मे निस्वार्थ भावना को अधिक महत्व नही दिया गया है।

डा० जी० म्लाडेनाट्स (Mladenatz) ने सभी सहकारी समितियो मे सामान्य गुण के आधार पर सहकारिता की परिभाषा दी है। उनके अनुसार "ये छोटे उत्पादक अथवा उपभोक्ताओं के एच्छिक सगठन हैं जिसमे, एक सामूहिक आर्थिक उपक्रम द्वारा, जो कि सदस्यो द्वारा जुटाये गये ससाधना से और उनकी जोखिम पर कार्य करता है, सेवाओ का आदान-प्रदान किया जाता है।"[3]

श्री एच० कलवर्ट के अनुसार, "सहकारिता एक प्रकार का सगठन है जिसमे व्यक्ति स्वेच्छा से, मानव रूप मे समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितो की उन्नति के लिए एकत्र होते हैं।"

---

1 Cooperation At Home and Abroad—C R Fay, Vol I 1948, page 5
2 "Self help made effective by organisation" Sir Horace Plunkett
3 The World Cooperative Movement Margaret Digby, page 8

श्री वी० एल० मेहता के अनुसार, "सहकारिता समान आवश्यकता व आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये संगठित होने वाले व्यक्तियों की एच्छिक संस्थाओं का प्रवर्तन करती है।"[1]

सहकारी योजना समिति के अनुसार, "सहकारिता, स्वेच्छापूर्वक, समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितों की उन्नति के लिये एकत्रित व्यक्तियों का संगठन है जिसमे लोग व्यक्तिगत कमजोरी को, अपने द्वारा संकलित साधनों से, परस्पर सहायता द्वारा आत्म सहायता को प्रभावशाली बनाकर और अपने नैतिक स्तर को मजबूत बनाकर, दूर करने के लिये संगठित होते है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट है कि सहकारिता आर्थिक संगठन का एक रूप है। यह नियन्त्रण एवं अवसर की समानता तथा आय के वितरण की न्याय संगति पर आधारित अपने हितों के प्रवर्तन हेतु मानव समुदाय का स्वेच्छिक एवं प्रजातान्त्रिक संगठन है।

सहकारिता का अर्थ स्पष्ट करने के लिये इसके सिद्धान्तों के विषय मे जानना आवश्यक है। किसी भी संगठन के विषय मे यह जानने के लिये कि यह सहकारिता के अन्तर्गत है या नही, सहकारी सिद्धान्तों को देखना पड़ता है। सहकारिता की विशेषतायें इन्ही पर आधारित होती है।

सहकारिता के सिद्धान्त
(Principles of Cooperation)

सहकारिता का अर्थ जानने के लिये इसके लक्षणों पर विचार करना आवश्यक है। विभिन्न परिभाषाओं मे भिन्न-भिन्न बातों पर अधिक बल दिया गया है। उनके आधार पर कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा सकता है। सहकारिता के विभिन्न लक्षण इन्ही सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

प्रो० हैंगलर (Prof Hengler Rheinhold) ने सहकारिता के सिद्धान्तों को संगठनात्मक (Structural) और कार्यात्मक (Functional) आदि दो भागों मे विभक्त किया है।[2] संगठनात्मक सिद्धान्तों मे उन्होंने 'प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण' सिद्धान्त को महत्वपूर्ण बतलाया है। दूसरे प्रकार के सिद्धान्तों मे उन सिद्धान्तों को सम्मिलित किया गया है जो कि सहकारी कार्य-विधि का प्रमाप अथवा ढंग तय करते हैं। संगठनात्मक सिद्धान्त सभी प्रकार की सहकारी समितियों मे सामान्य होते है जबकि कार्यात्मक सिद्धान्त विभिन्न समितियों मे भिन्न-भिन्न प्रकार से अपनाये जाते है। निम्नलिखित रूप मे हम सहकारिता के सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकते हैं —

(१) खुली एवं एच्छिक सदस्यता (Open and Voluntary Membership)

सहकारिता एक ऐसा संगठन है जिसकी सदस्यता खुली एवं एच्छिक है।[3] कुछ अपवादों को छोड़कर, किसी भी सहकारी समिति मे सदस्यता का द्वार बन्द

1. V. L. Mehta, Cooperative Finance (Bombay, 1930) p 2.
2. Prof Hengler Rheinbold—"Cooperative Principles in the Modern World."
3. The Indian Cooperative Review Apirl 1968 – Principles of Cooperative p. 301. "Membership in a cooperative is both open and voluntary.

(On next page)

नही होता । खुली-सदस्यता का अभिप्राय यह है कि कोई भी व्यक्ति जो कि सहकारी समिति से लाभ उठा सकता है वह इसका सदस्य बन सकता है। सदस्यता के लिये जाति, धर्म, लिंग आदि पर ध्यान नही दिया जाता है। साधारणतया खुली सदस्यता उसी स्थिति मे सम्भव हो सकती है जबकि सदस्यता एच्छिक हो। किन्तु *एक सहकारी समिति मे सदस्य होने के लिये कुछ निर्धारित योग्यतायें होना* आवश्यक है जैसे स्वस्थ मस्तिष्क, वयस्क, दिवालिया न होना आदि । सहकारी समितियों मे अच्छे चरित्र वाले सभी सदस्यो को सम्मिलित किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी सघ (ICA) ने खुली एव एच्छिक सदस्यता पर विशेष जोर *दिया है। इस सस्था की १९३७ की समिति*[1] *के अनुसार समितियों की सदस्यता* इतनी खुली होनी चाहिये कि वे सभी व्यक्ति, जिनका चरित्र अच्छा है और वे सहकारिता का लाभ उठाना चाहते हो सदस्य बन सके। इस समिति ने एच्छिक सदस्यता की आवश्यकता को भी महत्वपूर्ण बताया है।

सहकारिता एक इस प्रकार का एच्छिक सगठन है जिसमे किसी भी सदस्य के सम्मिलित होने तथा सदस्यता छोडने के लिये किसी भी प्रकार का दबाव नहीं डाला जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति समिति की सदस्यता ग्रहण करने अथवा छोडने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र है। डा० जी० म्लाडेनाट्स (Mladenatz) ने सहकारिता मे एच्छिक *सदस्यता को महत्वपूर्ण बताया है। किन्तु सहकारिता के रोकडेल सिद्धान्तो (Rochdale* Principles) का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि रोकडेल अग्रगामियों मे एच्छिक सदस्यता के सिद्धान्त पर बल नही दिया था।[2] किन्तु बाद मे इस सिद्धान्त को और जोड दिया गया।

(२) जनतान्त्रिक नियन्त्रण (Democratic Control)

सहकारी समितिया प्रजातान्त्रिक सगठन है।[3] सहकारी समिति की साधारण

Open membership means that anyone who could be benefited by a cooperative is at liberty to join it 'It must be open to all whom it can be of service' Voluntary membership means joining without being coerced in any way Open membership is possible only when membership is voluntary

1 1937 Committee (I C A) report, "The Present Application of the Rochdale Principles of Cooperation"

2 ग्रेट ब्रिटेन के सहकारिता आन्दोलन मे रोकडेल अग्रगामियो का महत्वपूर्ण हाथ है। इन अग्रगामियो ने २४ अक्टूबर १९४४ मे "The Rochdale Society of Equitable Pioneers" की स्थापना की थी। इस समिति के निम्न सिद्धान्त थे—(१) प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण (२) खुली सदस्यता (३) पूंजी पर *निश्चित ब्याज (४) क्रमानुसार लाभांश वितरण (५) नकद बिक्री (६) शुद्ध* वस्तुओ का विक्रय (७) सदस्यो के लिए शिक्षा की व्यवस्था (८) धार्मिक एव राजनैतिक निष्पक्षता ।

3 The I C A Commission of 1966 reaffirmed, "Cooperative societies are democratic organizations and, "members of primary societies should enjoy equal right of voting (one member, one vote) and participation in decisions, affecting their societies."

सभा मे अनेक प्रकार के निर्णय लिये जाते हैं जिनमे सभी सदस्य भाग लेते हैं। सभी सदस्यों को मत देने का समान अधिकार प्राप्त होता है। सहकारी समिति की साधारण सभा मे प्रत्येक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होता है। इसका अर्थ यह है कि इस प्रकार के संगठन मे पूंजी की बजाय मनुष्य को अधिक महत्व दिया जाता है। क्योंकि मत देने का अधिकार अंशो के अनुपात मे नही होता है। इस प्रकार के संगठन मे मनुष्य, मनुष्य का शोषण नही करता है बल्कि सहयोग करता है।

'जनतान्त्रिक नियन्त्रण' सिद्धान्त रोकडेल अग्रगामियो ने भी अपनी समिति के सिद्धान्तो मे सम्मिलित किया था। इस सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार प्रदान किया गया था चाहे उसने कितना ही धन जमा क्यों न कराया हो। विश्व के अनेक देशो के सहकारी आन्दोलनो मे इसी सिद्धान्त को प्रधानता दी गई है। जनतान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) मे सहकारिता का यह सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है।

पाल लैम्बर्ट (Paul Lambert) के अनुसार सहकारिता का जनतान्त्रिक नियन्त्रण का सिद्धान्त इसे अन्य पूंजीवादी संगठनों से अलग करता है। संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलों (Joint Stock Companies) की साधारण सभा मे मत देने का अधिकार अंशो के आधार पर होता है। अत सहकारिता इस संगठन से भिन्न है।

(३) आश्रय प्रत्यर्पण (Patronage Refund) ·

आश्रय प्रत्यर्पण सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि समिति को सदस्यो के प्रति और सदस्यों को समिति के प्रति निष्ठा रखनी चाहिए।[1] इसके अनुसार जब सदस्य समिति से उपभोक्ता वस्तुयें खरीदते हैं तब वे समिति द्वारा कमाये गये लाभ से आश्रय के आधार पर लाभांश के अधिकारी हैं। कृषि क्षेत्र मे विपणन समिति मे इसके सदस्य अपनी कृषि उपज समिति को प्रदान करते है तो समिति को जो कुल कारोबार म लाभ होता है वह आश्रय प्रत्यर्पण के रूप मे वितरित किया जाता है।

यह सिद्धान्त १८४४ मे ग्रेट ब्रिटेन के सहकारिता आन्दोलन मे रोस्डेल अग्रगामियों द्वारा सदस्यों को समिति से सेवा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहन रूप मे मिला था। अत यह सिद्धान्त विश्व के अनेक देशो के सहकारी आन्दोलनो मे अपनाया गया। वास्तव मे देखा जाये तो यह सिद्धान्त न्यायिक वितरण की विचारधारा पर आधारित है। "यह लाभांश के भुगतान की एक ऐसी विधि है जिसमें प्रत्येक सदस्य को उसके क्रय के अनुसार हिस्सा प्राप्त होता है।"[2]

प्रो० पाल लैम्बर्ट (Paul Lambert) ने इस सिद्धान्त को नकारात्मक कहा है अर्थात् यह सिद्धान्त शुद्ध लाभ को पूंजी के अनुपात मे बाँटने से रोकता है।[3] इस प्रकार आश्रय प्रत्यर्पण सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक सदस्य को उसके द्वारा समिति के साथ किये गये व्यापार (transactions) के आधार पर लाभांश प्राप्त होता है।

1 Mirdha Committee Report on Cooperation
2. Abbotts Fred, "Cooperative Efficiency and the Principles," Cooperative Principles in the Modern World, p 13.
3 Studies in the Social Philosophy of Cooperation, p 75

(४) पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता (Self Help Through Mutual Help)

भारतीय सहकारी सघ के अनुसार पारस्परिक सहायता सदस्यो के मध्य निजी सम्बन्धो का आधार है। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि "एक सब के लिए, सब एक के लिये है।" इसका तात्पर्य है कि सभी सदस्य सहकारी समिति के लिए होते हैं और समिति उन सबकी सहायता करने के लिये। यदि किसी सदस्य को किसी समय सहायता की आवश्यकता होती है तो अन्य सभी सदस्य उसकी समय पर मदद करते हैं। सहकारी समितियो मे सदस्य अपने आर्थिक समाधनो को एकत्र करते है और अपनी व्यक्तिगत कमजोरी को पारस्परिक सहयोग से दूर करते हैं। सहकारिता मे आत्म सहायता निजी व्यवसाय की आत्म सहायता से पर्याप्त भिन्न है। सहकारिता मे आत्म सहायता पारस्परिक सहायता से सम्बद्ध है। अकेला निधन व्यक्ति आर्थिक कठिनाइयो को सहन करने मे असमर्थ होता है। अत अपने समाधनो को अन्य व्यक्तियो के साथ मिलाकर अपनी स्थिति का मुकाबला कर सकता है।

(५) सामान्य कार्य द्वारा सामान्य हित (Common Welfare Through Common Action)

सहकारी समितियो का मुख्य उद्देश्य सामूहिक कार्य के द्वारा सामूहिक कल्याण की वृद्धि करना है। इससे प्रतिस्पर्धा की भावना समाप्त होती है और सहयोग की भावना जागृत होती है। यह सिद्धान्त भी अन्य पूंजीवादी सगठनो से सहकारिता को भिन्न करता है। पूँजीवादी स गठनो मे 'प्रत्येक अपने लिये' की भावना पाई जाती है जिसमे प्रतिस्पर्धा का उदय होता है। किन्तु सहकारिता मे सामूहिक हित महत्त्वपूर्ण होने के कारण सहयोग की भावना की अभिवृद्धि होती है।

(६) अविभेदात्मकता का सिद्धान्त (Principle of Non-discrimination)

इस सिद्धान्त के अनुसार सदस्यता के लिये सामाजिक, राजनैतिक अथवा धार्मिक भेदभाव नही होना चाहिए। यह स्वाभाविक है कि जिस सस्था मे सदस्यता का द्वार खुला होता है वहाँ जाति, धम, लिंग आदि का ध्यान नही रखा जाता है। सहकारी समितियो मे किसी भी प्रकार का भेदभाव नही रखा जाता है। कोई भी सामान्य योग्यता तथा अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति इनका सदस्य बन सकता है।

यह सिद्धान्त राजनैतिक एव धार्मिक निष्पक्षता की विचारधारा का व्यावहारिक पक्ष है। कुछ विद्वानों ने राजनैतिक एव धार्मिक निष्पक्षता को सहकारिता का अलग से सिद्धान्त माना है। किन्तु अविभेदात्मकता के सिद्धान्त और इसमें कोई विशेष अन्तर नजर नही आता है।

(७) सेवा भावना (Spirit of Service) :

सहकारी समिति के सदस्य निस्वार्थ भावना तथा ईमानदारी से कार्य करते है। सहकारिता केवल व्यवसाय ही नही वल्कि व्यवसाय और सेवा भावना दोनो का मिश्रण है। सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलो की भाँति इनका सचालन लाभ कमाने के उद्देश्य से नही वरन् निर्लाभ की भावना से किया जाता है। इसका तात्पर्य यह नही है कि सहकारी समितियो मे लाभ कमाना वर्जित है। इनमें लाभ भी कमाया जाता है

किन्तु अधिकतम लाभ कमाने की अपेक्षा अधिकतम सेवा प्रदान करने पर अधिक बल दिया जाता है। श्री एम० डार्लिंग तथा एमोरी एस बोगार्ड्स ने सहकारिता में धार्मिक तथा सेवा के लक्षण को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

(८) पूँजी पर सीमित ब्याज का सिद्धान्त (Limited Interest on Capital) -

"पूँजी पर सीमित ब्याज का सिद्धान्त सहकारी विचारधारा का मूल तत्व प्रदर्शित करता है अर्थात् सहकारी आन्दोलन में पूँजी के स्वामित्व से उत्पन्न विषमताओं को निष्प्रभाव करने और आर्थिक कारोबार के सर्वाधिक प्रेरक उद्देश्य लाभ की वृत्ति को नष्ट करने का यत्न करता है।" ग्रेट ब्रिटेन के रोकडेल अग्रगामियों ने भी अपनी समिति में इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी संघ (ICA) द्वारा नियुक्त १९६६ के कमीशन ने इस बात पर जोर दिया है कि यदि सहकारी समितियों में पूँजी पर ब्याज दिया जाता है तो सीमित दर से देना चाहिए। कमीशन ने इस पर भी जोर दिया है कि इस प्रकार संगठन में पूँजी पर ब्याज अनिवार्य (Compulsory) नहीं होता है।[1]

(९) नकद विक्रय, शुद्ध वस्तुयें तथा ठीक नाप तौल का सिद्धान्त (Cash Trading, Purity of Goods and Correct Weightment) :

नकद विक्रय सहकारिता के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सहकारी समितियों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न होने के कारण उधार विक्रय नहीं किया जाना चाहिए। उधार विक्रय से डूबत ऋण (Bad-debts) की अधिक सम्भावना रहती है जिसमें सहकारी समितियों को बहुत नुकसान हो सकता है। अतः यह सिद्धान्त अनिवार्य रूप से अपनाना चाहिए। यह प्रायः निश्चित है कि उधार वस्तुयें न मिलने के कारण सदस्य मितव्ययी बनते हैं और अपनी आवश्यकताओं को भी सीमित रखते हैं। इसके अतिरिक्त जिन वस्तुओं का विक्रय किया जा रहा है वे शुद्ध तथा नाप-तौल में पूर्ण होनी चाहिए। विशुद्ध वस्तुओं के विक्रय के कारण लम्बी अवधि में अधिक सफलता मिलने की सम्भावना होती है।

(१०) शिक्षा की अभिवृद्धि (Promotion of Education) -

सहकारी आन्दोलन को स्वस्थ एवं आत्म निर्भर बनाने के लिए सहकारी शिक्षा पर अधिक बल दिया जाये। इसकी आवश्यकता विकासशील राष्ट्रों में और भी अधिक है क्योंकि इनमें सदस्यों की सामान्य शिक्षा का स्तर निम्न है। अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी संघ (ICA) में सहकारी शिक्षा के विकास को सहकारिता का आधारभूत सिद्धान्त माना है। सभी सहकारी समितियों को अपने सदस्यों, कर्मचारियों तथा कार्यालय अधिकारियों के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था करनी चाहिये। 'वास्तव में शिक्षा के प्रसार के बिना सदस्यों की सामान्य सभा जो समिति के लिये सर्वोच्च सत्ता है, एक प्रबल शक्ति नहीं बन सकती एवं सहकारी संस्थाओं में स्वशासन यथार्थ नहीं रह सकता।[2]

सहकारी शिक्षा का विकास सहकारी संगठन तथा सरकार दोनों द्वारा किया जा सकता है। अतः ये सहकारी शिक्षा को विकास गतिविधियों का अभिन्न अंग मान

1. The 1966 Commission (ICA) report.
2. Mirdha Committee Report on Cooperation, page 13.

कर चलें सभी विकास सम्भव है।[1] साधारणत सहकारी आन्दोलन अशिक्षित तथा निर्धन जनता के लिये है अत सहकारिता के सिद्धान्तो की उन्हे जानकारी देना नितांत वाछनीय है।

(११) सहकारी समितियों में सहकारिता (Cooperation among Cooperatives):

अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी सघ के १९६६ के कमीशन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।[2] इस सिद्धान्त के अनुसार सभी सहकारी समितिया (स्थानीय, राज्यस्तरीय तथा अन्तराष्ट्रीय स्तर) को एक दूसरे को सहयोग देना चाहिये। यह सिद्धान्त सगठनात्मक समस्या से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिये सभी राज्य सहकारी बैंक एक राष्ट्रीय सहकारी बैंक की स्थापना कर सकते है। इसी प्रकार अनेक देशों की राष्ट्रीय सहकारी बैंक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सहकारी बैंक स्थापित कर सकते है। अत आपसी सहयोग से सहकारिता का क्षेत्र अधिक व्यापक हो जाता है। आपसी सहयोग कई प्रकार से हो सकता है जैसे सहकारी समितियो मे आपस मे विनियोजन, व्यवसाय, सहकारी शिक्षा तथा सयुक्त सहकारी इकाइयो की स्थापना आदि। हावर्ड ए० कॉडेन (Haward A. Cowden) ने कहा है कि विभिन्न देशो के सहकारिता आन्दोलनो मे इस सिद्धान्त का अभाव पाया जाता है।

(१२) पूँजी की अपेक्षा मानव को अधिक महत्व (Importance to the Human being rather than Capital)

सहकारिता मे पूंजी की उपेक्षा मानव को अधिक महत्व दिया जाता है। अन्य पूंजीवादी सगठनो मे (जैसे सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल) मे पूंजी के आधार पर मत देने का अधिकार होता है किन्तु सहकारिता मे पूंजी को महत्व न देकर 'मानव' को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। 'एक व्यक्ति एक मत' के सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सहकारिता सगठन मे पूंजी की अपेक्षा 'व्यक्ति' का अधिक महत्व है।

सहकारिता की उत्पत्ति
(Origin of Cooperation)

आपसी सहयोग कोई नयी विचारधारा नही है। प्राचीन काल से ही व्यापार मे पारस्परिक सहयोग से कार्य चलता आ रहा है। प्राचीन काल मे ग्रामीण जीवन इसी विचारधारा पर आधारित था। मुख्यत कृषि क्षेत्र मे इसका बहुत महत्व था। किन्तु आधुनिक अर्थ मे सहकारिता की उत्पत्ति अधिक प्राचीन नही है। अठारहवी शताब्दी के मध्य इगलैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। इस क्रान्ति से वहाँ की जनता के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। फलत वहाँ पूंजीपति तथा श्रमिक के दो वर्गों का जन्म हुआ। औद्योगिक क्रान्ति ने निर्धन वर्ग को अधिक बुरी तरह प्रभावित किया। रोबर्ट ओवेन ने सामान्य सहयोग (Equitable Association) का विचार

1 Indian Cooperative Review, January 1969, page 212.

2 The Commission of 1966 (ICA) added New Principle, "Principle of growth by mutual cooperation among cooperatives"

धारा का प्रतिपादन किया ।[1] यद्यपि रोबर्ट अविन से पूर्व भी सहकारिता को व्यवहार मे लाने का प्रयत्न किया गया था किन्तु सफलता नहीं मिल सकी । इसके लिए सन् १७९५ मे प्रथम प्रयास किया गया था । हल (Hull) के निवासियो ने हल मिल विरोधक समिति (Hull Anti-Mill Society) की स्थापना की । किन्तु यह अधिक नहीं चल पायी । दूसरी तरफ रोबर्ट अविन के निरन्तर प्रयत्नो से १८२१ मे The Cooperative and *Economical Society* की स्थापना हुई ।

सहकारिता आन्दोलन के अनेक प्रयत्न १८३० से १८३९ तक किये गये किन्तु सबसे महत्वपूर्ण कदम २१ दि० १८४४ का है जबकि रोकडेल अग्रगामियो (Rochdale Pioneers) ने "The Rochdale Society of Equitable Pioneers" की स्थापना की । वास्तव मे आधुनिक साहकारिता आन्दोलन का प्रारम्भ यही से होता है । रोकडेल अग्रगामियो ने अपने विचारो को सहकारी सिद्धान्तो के रूप मे व्यक्त किया जो कि विश्व के अनेक देशो मे फैल गये । अत इगलैण्ड उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन का जन्म स्थान माना जाता है ।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे जर्मनी के किसानो तथा श्रमिको की दशा भी बहुत खराब थी । ऐसी स्थिति मे यहाँ सहकारी विचारधारा बढने लगी । फलत समितियो की स्थापना सबसे पहले हुई ।[2] जर्मनी मे ग्रामीण व कृषि क्षेत्रो मे रेफिसिन समितियाँ स्थापित की गयी और नगरो तथा औद्योगिक क्षत्रो के लिये शुल्जे डेलिश समितियाँ बनायी गयी । धीरे-धीरे सहकारी साख की विचारधारा इटली, स्विटजरलैण्ड, बेल्जियम, फ्रांस तथा आयरलैण्ड मे भी फैलने लगी । जर्मनी की भांति शुल्जे डेलिश आधार पर इटली, स्विटजरलैण्ड, बेल्जियम, फ्रास आदि मे शहरी बैंक स्थापित किये गये और इन देशो मे ग्रामीण साख के लिये रेफिसिन बैंक के नमूने के बैंक स्थापित हुए ।

सहकारी उत्पादन आन्दोलन का प्रारम्भ फ्रांस मे हुआ । यह विचारधारा Fourier (1772-1837) और Buchez (1796-1865) के द्वारा प्रतिपादित की गयी । डेनमार्क मे सबसे पहले Cooperative Animal Husbandry का विकास हुआ और विश्व के अन्य देशो ने इसका अनुकरण किया । इटली सहकारी खेती (Cooperative *Farming*) तथा श्रम समितियो मे अग्रगामी है ।

उपरोक्त यूरोप के देशों मे सहकारी आन्दोलन का पर्याप्त विकास हुआ जिसका भारतवर्ष ने भी अनुकरण किया । यहाँ विभिन्न देशो के विभिन्न प्रकार के सहकारी आन्दोलनो के आधार पर आन्दोलन चालू किया गया ।

---

1. Robert Owen (1771-1858) is generally regarded as the founder of the modern cooperative movement.

2 Germany is the parent-country of cooperative banking, and the pioneers there of the town and country banks respectively were Herr Schulze, Mayor of Delitzsch, and Herr F W Raiffeisen burgomaster of a group of villages round Neuwied "

—"Cooperation at Home and Abroad" by C. R. Fay.

भारत में सहकारिता आन्दोलन की उत्पत्ति
(Origin of Cooperative Movement in India)

भारत में सहकारिता की उत्पत्ति बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में देश में निर्धनता, अशान्ति तथा अराजकता बहुत बढ़ चुकी थी। यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव भारत पर बहुत बुरा पड़ा। विदेशी प्रतिस्पर्धा के कारण भारतीय कुटीर उद्योग का पतन हुआ तथा बेरोजगारी बढ़ने लगी। किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी। फलतः तत्कालीन भारत सरकार ने १९०१ में सर एडवर्ड ला (Sir Edward Law) की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसने जर्मनी के रेफिसिन समितियों की भाँति भारत में सहकारी समितियाँ बनाने का सुझाव दिया। सन् १९०४ में भारत में सहकारी साख समिति अधिनियम पारित किया गया। यह अधिनियम सहकारी साख समितियों से सम्बन्धित था। सन् १९१२ में दूसरा अधिनियम पारित किया गया। जिसमें गैर सहकारी समितियों की स्थापना की व्यवस्था भी की गयी। भारतीय सहकारी आन्दोलन का विकास यूरोप के सहकारी आन्दोलन के आधार पर हुआ।

✓सहकारिता एवं अन्य पद्धतियों में भिन्नता

सहकारिता तथा पूँजीवाद (Cooperation and Capitalism).

पूँजीवाद तथा सहकारिता दोनों आर्थिक संगठन हैं। पूँजीवाद में व्यवसाय का संगठन निजी क्षेत्र के अन्तर्गत अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसमें उत्पादन के विभिन्न साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है। उत्पादक गण पूँजी के संचय पर अधिक ध्यान देते हैं। अतः पूँजीवाद में पूँजी को अधिक महत्त्व दिया जाता है। सहकारिता तथा पूँजीवाद दोनों में निम्नलिखित अन्तर है :—

(१) सहकारिता में सदस्यों की अधिकतम सेवा की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता है किन्तु पूँजीवाद में लाभ को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यद्यपि सहकारिता में लाभ कमाया जा सकता है किन्तु किसी भी व्यक्ति या वर्ग का अहित करके नहीं। सहकारिता में चरित्र निर्माण को प्रधानता दी जाती है।

(२) सहकारिता में मानव को अधिक महत्त्व दिया जाता है जबकि पूँजीवाद में 'पूँजी' सर्वोपरि है। पूँजीवाद में पूँजी व्यक्तियों पर शासन करती है। सहकारिता में मनुष्य पूँजी पर शासन करता है। इस प्रकार के संगठन में धन को मानव कल्याण का साधन माना जाता है।

(३) सहकारिता निर्बल व्यक्तियों को शक्ति प्रदान करती है किन्तु पूँजीवाद निर्बल को अधिक निर्बल बनाता है। अतः पूँजीवाद में व्यक्तियों का अधिक शोषण होता है। सहकारिता में 'परस्पर सहायता द्वारा आत्म सहायता' का सिद्धान्त महत्वपूर्ण है।

(४) सहकारिता में धन का वितरण न्यायिक होता है। पूँजीवाद में धन का असमान वितरण होता है। पूँजीपति अधिक शक्तिशाली होते जाते हैं और निर्बल अधिक निर्बल। इससे समाज में वर्ग संघर्ष का उदय होता है। पूँजीपतियों के शोषण के कारण निर्बल व्यक्तियों की स्थिति अत्यन्त खराब हो जाती है।

(५) सहकारिता तथा पूँजीवाद दोनो मे प्रतिस्पर्धा का तत्व होता है। किन्तु सहकारिता मे स्वस्थ प्रतिस्पर्धा (Fair Competition) होती है और पूँजीवाद मे गलाकाट प्रतिस्पर्धा। पूँजीवाद मे स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा होती है जिसमे कमजोर प्रतिद्वन्दी को मार्ग से हटा दिया जाता है।

उक्त विवरण से सहकारिता तथा पूँजीवाद का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में देखा जाय तो पूँजीवाद के दोषों का दूर करने के लिये ही सहकारिता का जन्म हुआ।

सहकारिता और समाजवाद मे अन्तर
(Difference between Cooperation and Socialism)

यद्यपि सहकारिता तथा समाजवाद दोनों का उद्देश्य व्यक्तियो मे समानता लाना है तथापि दोनो मे पर्याप्त भिन्नता है। इन दोनो मे अन्तर स्पष्ट करने से पूर्व समाजवाद के विषय मे जानना आवश्यक है। समाजवाद मे सामाजिक कल्याण को सर्वोपरी रख कर सभी व्यक्तियो को समान अवसर प्रदान किया जाता है। इसमे उत्पादन तथा वितरण पर केन्द्रीय नियन्त्रण होता है। समाजवाद तथा सहकारिता दोनो का प्रमुख उद्देश्य पूँजीवाद की बुराइयों को दूर करना है। इन दोनो मे निम्नलिखित अन्तर है।

(१) सहकारिता मे वैयक्तिक स्वतन्त्रता का गुण पाया जाता है। किन्तु समाजवाद मे इसका अभाव पाया जाता है। समाजवाद में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया जाता है। सहकारी समिति के सदस्यो को सभी कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है किन्तु उन कार्यों से किसी भी व्यक्ति का नुकसान नहीं होना चाहिये।

(२) सहकारिता मे पूँजीवाद की बुराइयो समाप्त करने के लिये सम्पत्ति और पूँजी को हटाने की प्रवृत्ति होती है। सहकारिता निजी पूँजी को सचय करने के विरुद्ध नही है। सहकारी समिति की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये सदस्यो से अधिक पूँजी एकत्र कर सकती है किन्तु पूँजी पर नियन्त्रण व्यक्तियों का होता है न कि पूँजी का व्यक्तियों पर।

(३) सहकारिता एक एच्छिक सगठन होने के नाते समाजवाद से भिन्न है। सहकारिता मे पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता की जाती है। सहकारिता राज्य की तथा अन्य किसी प्रकार की बाहरी सहायता पर आधारित होती है। समाजवाद में व्यक्ति सरकार पर अधिक आधारित होते है। सहकारिता मे आत्म निर्भरता के लक्ष्य की तरफ आगे बढा जाता है।

(४) सहकारिता मे व्यक्तिगत सम्पर्क तथा सहकारिता के आधार पर धीरे-धीरे परिवर्तन होता है बल्कि समाजवाद मे तेज गति से परिवर्तन होते हैं।

सहकारिता ऐसा सगठन है जो कि पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनो मे अपनायी जाती है। जिस पूँजीवाद को यह बदलना चाहती है उसमे भी इसे स्थान प्राप्त है। अत सहकारिता अत्यन्त महत्वपूर्ण आर्थिक सगठन है।

सहकारिता तथा श्रमिक सघ
(Cooperation and Trade Union)

सहकारिता तथा श्रमिक सघ दोनो ही एच्छिक सगठन हैं। किन्तु सहकारिता मे कुछ न कुछ व्यवसाय किया जाता है। श्रमिक सघ कोई भी व्यवसाय नही करते है। इनकी स्थापना पूँजीपतियो अथवा मिल मालिको के विरुद्ध अपने हितो की रक्षा के लिये की जाती है। सहकारिता मे मालिको को हटा देने का उद्देश्य होता है। सहकारिता शान्तिपूर्वक धीरे-धीरे पूँजीवाद के दोषो को दूर करती है जबकि श्रमिक सघ पूँजीपतियो के विरुद्ध सघर्ष करते है। अत सहकारिता तथा श्रमिक सघो मे पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है।

सहकारिता तथा सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल
(Cooperation and Joint Stock Companies)

सहकारिता तथा सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल दोनो व्यापार करने के सगठन हैं। किन्तु दोनो मे बहुत अन्तर है। *सहकारिता मे व्यक्ति को पूँजी से अधिक महत्त्व प्रदान किया* जाता है जबकि इन प्रमण्डलो मे इसके विपरीत होता है। सहकारिता का 'एक व्यक्ति एक मत' सिद्धान्त इसे सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल से भिन्न करता है। इन प्रमण्डलो मे मताधिकार अश पूँजी के आधार पर होते है।

सहकारिता मे अपने सदस्यो को अधिकतम सेवा प्रदान करने का प्रयत्न किया जाता है जबकि सयुक्त स्कध प्रमण्डल मे पूँजीवाद की भाति अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सहकारिता अन्य सगठनो से भिन्न है। सहकारिता और दान सस्थाओ मे भी पर्याप्त भिन्नता है साथ ही अन्य अनेक सस्थाओ से भी सहकारिता भिन्न है।

समाजवादी समाज मे सहकारिता का स्थान
(Role of Cooperation in a *Socialist Society*)

समाजवादी समाज मे सामाजिक कल्याण को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। सामाजिक कल्याण की वृद्धि मे जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठता है। समाजवादी समाज मे इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये धन, आय तथा अवसरो का समान वितरण किया जाता है। समाजवादी समाज का उद्देश्य धन के केन्द्रीयकरण को रोकना है। इसके लिये सहकारिता का प्रमुख स्थान हो सकता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सहकारिता मे समानता का सिद्धान्त बहुत महत्वपूण है। इसमे पूँजी को महत्त्व न देकर 'मानव' को अधिक महत्त्व दिया जाता है। अत समाजवादी समाज के इस उद्देश्य की पूर्ति मे सहकारिता का स्थान बहुत ऊँचा है।

समाजवादी समाज के निर्माण के लिये आर्थिक नियोजन का आश्रय लिया जाता है। नियोजित अर्थ व्यवस्था मे सहकारिता एक प्रभावशाली यन्त्र हो सकती है। यदि योजनाओ के माध्यम से धन के केन्द्रीयकरण की प्रवृति को नष्ट करना

है तो सहकारिता का सहयोग बहुत आवश्यक है ।[1] "समाजवादी ढग के समाज की हमारी परिकल्पना मे कृषि और उद्योग दोनों में बहुत बडी सख्या मे विकेन्द्रीकृत इकाइयों की स्थापना निहित है। इन छोटी इकाइया के विस्तार और सगठन के लाभ मुख्यत एकत्र होकर प्राप्त हो सकते है। भारत मे आर्थिक विकास के साथ साथ सामाजिक परिवर्तन पर भी जोर दिया जा रहा है और इसमे सहकारिता के सगठन के लिये बडा भारी क्षेत्र है। इसलिये नियोजित विकास के रूप मे एक सहकारिता क्षेत्र की रचना हमारी राष्ट्रीय नीति का एक प्रमुख उद्देश्य है।"[2] भारत की तृतीय पचवर्षीय योजना मे सहकारिता का सामाजिक स्थायित्व और आर्थिक विकास का प्रमुख आधार माना है।

समाजवादी समाज मे एक व्यक्ति द्वारा दूसरे का शोषण नही होना है इस उद्देश्य की पूर्ति भी सहकारिता मे की जा सकती है इसमे 'शोषण' की प्रवृत्ति को समाप्त किया जाता है। पारस्परिक सहायता से आपसी सहायता होने के कारण शोषणहीन समाज की स्थापना होती है। हमारी नियोजित अर्थ व्यवस्था मे सहकारिता को उत्तरोत्तर आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो म भाग लेना चाहिये। कृषि, सिंचाई, लघु उद्योग, विपणन, माल गोदाम, गृह निर्माण आदि अनेक कार्यों मे सहकारी विकास आवश्यक है। विभिन्न क्षेत्रो मे सहकारी विकास से पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था के दोष दूर हो सकेंगे।

समाजवाद मे उत्पत्ति के विभिन्न साधनो पर सामूहिक अधिकार होता है। पूँजीवाद मे इसके विपरीत कुछ ही व्यक्तियो का अधिकार होता है। सहकारिता एक ऐसा सगठन है जिसमे उत्पत्ति के विभिन्न साधनो पर कुछ ही व्यक्तियों का अधिकार नही होता है। उत्पादित वस्तुओ पर सामूहिक अधिकार होता है। उत्पादन से प्राप्त लाभ कुछ ही व्यक्तियो के हाथो मे नही एकत्र होता है अत धन का केन्द्रीयकरण नही हो पाता है। इस प्रकार सहकारिता समाजवाद लाने मे उल्लेखनीय योगदान दे सकती है।

समाजवाद मे राष्ट्रीय आय को समानता के आधार पर बाँटने के प्रयत्न किये जाते है। सहकारिता बहुत अश तक यह व्यवस्था करने मे योगदान देती है। निर्धन व्यक्तियों को इसमे अधिक लाभ होता है अत कमजोर वर्ग मे राष्ट्रीय आय के वितरण मे सहकारिता महत्त्वपूर्ण है। कृषि, उद्योग एव वाणिज्य के क्षेत्र मे सहकारी आधार पर विकास करने मे जो आय प्राप्त होती है उसका समानता के आधार पर वितरण किया जाता है। अत सहकारिता समाजवादी नमूने के समाज की स्थापना मे अत्यन्त उपयुक्त है।

प्रश्न

१. 'सहकारिता' से आपका क्या तात्पर्य है ? इसके मुख्य मुख्य सिद्धान्तो की व्याख्या कीजिये।

२. सहकारिता की परिभाषा देते हुये इसके लक्षणो की विवेचना कीजिये।

---

1 Planning Commission—The First Five Year Plan, Govt of India 1952.

2 The Second Five Year Plan, Govt of India

३. समाजवादी समाज की स्थापना मे सहकारिता का क्या स्थान है ? सक्षेप मे लिखिये ।

४. निम्नलिखित मे अन्तर स्पष्ट कीजिये

(i) सहकारिता एव समाजवाद
(ii) सहकारिता एव पूँजीवाद
(iii) सहकारिता एव सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल

२

भारत में सहकारी आन्दोलन की उत्पत्ति तथा विकास
(Origin and Development of Cooperative Movement in India)

भारतवर्ष मे प्राचीन काल से ही सहकारिता के सिद्धान्त ग्रामीण जीवन मे काम लिये जाते रहे हैं। व्यक्ति मिल जुल कर परस्पर सहयोग से कार्य करते थे किन्तु आधुनिक अर्थ मे बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे सहकारिता का जन्म हुआ। इससे पूर्व यूरोपीय देशो मे सहकारी आन्दोलन विकसित हो चुका था। इगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप समाज धनवान और निर्धन दो वर्गों मे विभिक्त हो गया। श्रमिको का शोषण होने लगा। निर्धन वर्ग अधिक निर्धन और धनवान अधिक धनवान होते चले गये। ऐसी स्थिति मे सहकारिता का जन्म हुआ। सन् १८४३ मे इगलैण्ड मे रौकडेल मे २८ बुनकरो ने अग्रगामी समिति का निर्माण किया। यद्यपि यहाँ इससे पूर्व भी प्रयत्न किये गये थे किन्तु यह सफल प्रयत्न था। जर्मनी मे सन् १८५० मे रेफिसिन (Raiffeisen) एव शुल्जे डेलिस (Schulze Delitzch) नामक दो व्यक्तियों ने सहकारी समितियो की स्थापना की थी। रेफिसिन प्रकार की समितियाँ ग्रामो तथा शुल्जे डेलिस समितियाँ शहरी भागो मे सगठित की गयी। भारत वर्ष में इन्ही दो प्रकार की समितियो को आधार मानकर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया।

इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव विश्व के अन्य देशो पर पडा। भारत भी प्रभावित हुआ। यहाँ उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे निर्धनता, अराजकता, अशान्ति तथा बेरोजगारी फैल चुकी थी। यूरोप की अपेक्षा हमारे देश मे औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव अधिक गम्भीर थे। यहाँ कुटीर एव लघु उद्योग धन्धे नष्ट होने लगे। विदेशो मे बनी सस्ती वस्तुयें अधिक बिकने लगी। देश की राष्ट्रीय आय बहुत कम हो गयी। लाखो व्यक्ति बेरोजगार हो गये। अत व्यक्तियो ने खेती की तरफ बढना प्रारम्भ कर दिया। देश मे जनसख्या निरन्तर बढती जा रही थी। जिसका भार भूमि (कृषि भूमि) पर बढने लगा। खेतो का आकार छोटा हो गया। फलत कृषि फार्म अलाभकारी सिद्ध होने लगे। दूसरी तरफ पूँजीवादी विचार के व्यापक हो जाने से मध्यस्थ वर्ग भी पनपने लगा। ये व्यापारी या मध्यस्थ निर्धन जनता

का और अधिक शोषण करने लगे। इन कारणो से ग्रामीण जनता परेशान हो गयी तथा किसान ऋणग्रस्त हो गये थे। महाजनो का आधिपत्य बढने लगा। सरकार ने इनके बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिये तथा किसानो को सुविधायें प्रदान करने के लिये कुछ अधिनियम जैसे Deccan Agricultural Relief Act (1879), Land Improvement Loans Act (1883) तथा Agriculturists Act (1884) पारित किये। अन्तिम दोनो अधिनियम आज भी लागू है जिनको तकावी नियम कहा जाता है। सन् १८८३ के अधिनियम के अन्तर्गत किसान को उत्पादक कार्यों के लिए निजी ब्याज दर पर ऋण मिलता है। सन् १८८४ के अधिनियम ने अकाल पीडितो को साख प्रदान करने की व्यवस्था की। सर्व प्रथम १८९२ मे सहकारी समितियाँ गठित करने का विचार किया गया। इसी वर्ष मद्रास सरकार ने फ्रेडरिक निकल्सन (Frederick Nicholson) को जर्मन ग्रामीण बैंको के अध्ययन के लिए भेजा। निकल्सन ने अपना प्रतिवेदन दो भागों मे सन् १८९५ और १८९७ मे प्रस्तुत किया। इन्होने अपने प्रतिवेदन मे असीमित दायित्व वाली सहकारी साख समितियाँ स्थापित करने की सिफारिश की। भारत सरकार ने सर एडवर्ड ला (Sir Edward law) की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्ति की। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन मे भारत मे रेफिसिन नमूने की सहकारी साख समितियाँ स्थापित करने का सुझाव दिया। सन १९०१ मे आकाल आयोग ने पारस्परिक साख सगठन स्थापित करने की सिफारिश की।

उपरोक्त प्रयत्नो के फलस्वरूप सन् १९०४ मे सहकारी साख अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के पश्चात् भारत मे आधुनिक सहकारिता का जन्म हुआ। यद्यपि इस वर्ष से पूर्व भी कुछ पारस्परिक साख समितियाँ कार्य कर रही थी किन्तु उनका कोई भी कानूनी आधार नही था। इस अधिनियम ने सहकारी साख के विकास के लिये उचित एव अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा की। अध्ययन की सुविधा के लिए भारत मे सहकारी आन्दोलन के विकास को विभिन्न चरणो मे विभक्त किया गया है।

प्रथम चरण (१९०४ से १९११)

प्रथम चरण प्रथम सहकारी अधिनियम से प्रारम्भ होता है। वास्तव मे देखा जाये तो यह काल एक प्रयोग मात्र था। आन्दोलन की प्रेरक इस समय सरकार थी। सरकार समितियो के विकास के लिये ऋण की व्यवस्था करती थी। सन् १९०९ मे सहकारी समितियो की कार्यशील पूंजी मे सहकारी ऋण का भाग २२ प्रतिशत था। आन्दोलन के विकास मे सबसे बडी कठिनाई थी जनता की अशिक्षा। समितियो के सदस्य भी सहकारी सिद्धान्तो से अनभिज्ञ थे। आन्दोलन की सफलता से पूर्व सन १९०४ के अधिनियम के विषय मे जानना आवश्यक है जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।[1]

सन् १९०४ के सहकारी अधिनियम की विशेषतायें

(१) समितियाँ ग्रामीण एव शहरी वर्गों मे विभक्त की गयी। जिन समितियो की कुल सदस्यता के ८० प्रतिशत किसान है तो वह समिति ग्रामीण समिति होगी

1 The Law passed in 1904 modelled largely on the 'English Friendly Societies Act'

और जिन समितियो मे ८० अतिशत किसान नही हैं वे समितियां शहरी कहलायेंगी ।

(२) कोई भी १० व्यक्ति मिलकर सहकारी समिति निर्मित कर सकते हैं ।

(३) ग्रामीण समितियो का दायित्व असीमित होगा । किन्तु शहरी समितियां सीमित अथवा असीमित किसी भी प्रकार की हो सकती हैं ।

(४) प्रान्तो मे पजीयन अधिकारी द्वारा सहकारी समितियो के पजीयन की व्यवस्था की गयी ।

(५) समितियो का कार्य क्षेत्र सीमित था और कही कही पर तो विशेष जाति या वश तक ही सीमित क्षेत्र था ।

(६) समितियां सदस्यो को ऋण व्यक्तिगत जमानत अथवा वास्तविक सम्पत्ति जमानत पर दिया जाता था ।

(७) समिति के प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार होगा और सदस्य द्वारा खरीदे जाने वाले अशो की सीमा भी निश्चित होगी ।

(८) ग्रामीण समितियां लाभ का विभाजन नही करेंगी किन्तु कोष की जमा राशि की वैधानिक सीमा के पश्चात् कुछ लाभ सदस्यो मे वितरित किया जा सकेगा । शहरी समितियां लाभ का एक चौथाई सचित कोष मे रखकर शेष को लाभांश के रूप मे बांट सकेंगी ।

(९) प्रत्येक समिति का वार्षिक अकेक्षण पजीयन अधिकारी का वैधानिक कर्तव्य होगा ।

(१०) पजीयन अधिकारी की अनुमति से एक समिति दूसरी समिति को ऋण प्रदान कर सकेगी ।

(११) समितियां आयकर स्टाम्प फीस और पजीयन फीस से मुक्त होगी ।

(१२) पजीयन अधिकारी को समितियो के नियन्त्रण और पर्यवेक्षण के व्यापक अधिकार दिये जायगे ।

इस अधिनियम के पारित हो जाने से देश के अनेक भागो मे सहकारी साख समितियां स्थापित होने लगी । सन् १९०४ के अधिनियम मे गैर साख (Non Credit) समितियों के लिए कोई व्यवस्था नही थी । इसके अतिरिक्त सघीय ढांचे अथवा केन्द्रीय बैंको की स्थापना की भी कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी । सन् १९११ मे सहकारी साख समितियों की सख्या ८ हजार से भी अधिक थी ।

द्वितीय चरण (१९१२ से १९१९)

सन् १९०४ के अधिनियम की कमियो को दूर करने के लिये १९१२ मे दूसरा अधिनियम पारित किया गया । इस अधिनियम के साथ ही भारत मे सहकारी आन्दोलन का द्वितीय चरण प्रारम्भ हुआ । पिछले ८ वर्षो के अनुभव के आधार पर नवीन अधिनियम तैयार किया गया । इस अधिनियम की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं ।

सन् १६१२ के अधिनियम की विशेषतायें

(१) इस अधिनियम के अन्तर्गत साख समितियो के अतिरिक्त गैर साख समितियो की स्थापना भी की जा सकती थी। समितियों का उद्देश्य सहकारी आधार पर अपने सदस्यो के आर्थिक हितो की रक्षा करना होना चाहिये।

(२) जब तक स्थानीय सरकार (Local Government) ने कोई निर्देश नही दे दिया हो

(अ) केन्द्रीय समितियो का दायित्व सीमित होगा।

(ब) ग्रामीण साख समितियो का दायित्व असीमित होगा।

(३) समिति के सगठन के लिये कम से कम १० व्यक्तियो का होना आवश्यक है जो कि व्यस्क हो।

(४) समितियो को गैर सदस्यो से जमा तथा ऋण प्राप्त करने का अधिकार दिया गया।

(५) समितियों की निधियो के विनियोजन पर कुछ नियन्त्रण लगा दिये गये।

(६) समितियो के लिये लाभ का एक चौथाई सचित कोष मे रखना अनिवार्य किया गया। इसके पश्चात् समितियाँ शेष लाभ का १० प्रतिशत दान स्वरूप दे सकती हैं। शेष लाभ सदस्यो मे वितरित किया जा सकेगा।

(७) राज्य सरकारो को सहकारी समितियो के लिये नियम बनाने के पर्याप्त अधिकार प्रदान किये गये।

(८) ऋणो की वसूली मे समितियो के ऋण को प्राथमिकता प्रदान की जायेगी।

(९) जो समितियाँ सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत पजीकृत नहीं थी उनको सहकारी शब्द लिखने का अधिकार नही होगा।

(१०) पजीयन अधिकारी को समिति की जांच करने का पर्याप्त अधिकार दिया गया।

इस अधिनियम ने सहकारी आन्दोलन को नया मोड दिया। सहकारी साख समितियो के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यो की पूर्ति के लिये भी समितियाँ गठित की जाने लगी। समितियाँ अब ग्रामीण तथा शहरी आधार पर वर्गीकृत न की जाकर दायित्व के आधार पर की जाने लगी। प्राथमिक एव केन्द्रीय स्तर पर समितियो की सख्या बढने लगी। सन् १९१४-१५ तक समितियो की सख्या १२ हजार से भी अधिक हो गयी और उनकी सदस्य सख्या भी बढ कर ५ लाख हो गयी। आन्दोलन की प्रगति का मूल्याकन करने लिये सरकार ने १९१४ मे एक समिति की नियुक्ति की जिसके अध्यक्ष सर एडवर्ड मेक्लेगन थे और समिति ने अपना प्रतिवेदन सन् १९१५ मे प्रस्तुत किया। इसमें निम्नलिखित सुझाव पेश किये गये—

(१) समितियाँ ऋण केवल सदस्यो को ही प्रदान करें।

(२) ऋण उत्पादन कार्यों के लिये प्रदान किये जायें और इस सम्बन्ध मे अधिकारी गण यह देखें की प्रदान किया गया ऋण अच्छी तरह काम मे लाया गया है या नही।

(३) ईमानदारी पर अधिक जोर दिया गया।

(४) सदस्यो को उचित जमानत पर ऋण प्रदान किया जाये।

(५) ऋणो की अदायगी नियमित रूप से होती रहनी चाहिए।

(६) सदस्यो मे मितव्ययिता को अधिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। उनमे बचत की आदत डालनी चाहिए और समिति के आन्तरिक साधनो को अधिक मजबूत बना लेना चाहिए।

(७) गैर-साख समितियाँ जैसे क्रय-विक्रय तथा अन्य समितियो को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिये।

(८) लेखा पुस्तको की उचित जाँच करनी चाहिये।

(९) समिति के सदस्यो को उचित सहकारी सिद्धान्तो की जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।

(१०) राज्य स्तर पर प्रान्तीय बैंक स्थापित करने चाहियें।

सन् १९१९ मे सहकारी समितियो की सख्या और सदस्यता बढकर क्रमश २८ हजार एव ११ लाख हो गयी। कार्यशील पूंजी मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। इन समितियो की कार्यशील पूँजी १५ करोड रुपये हो गयी। केन्द्रीय सहकारी बैंको की स्थापना हुई जिनसे प्राथमिक समितियो को ऋण उपलब्ध होते थे।

तृतीय चरण (१९१९ से १९२९)

इस काल मे प्रान्तो मे सहकारी विकास के राज्य सरकारो ने पर्याप्त प्रयत्न किये। सन् १९१९ मे मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारो के अन्तर्गत सहकारिता प्रान्तीय विषय बना दिया गया। विभिन्न राज्यो मे अलग-अलग अधिनियम पारित किये जाने लगे। बम्बई मे सन् १९२५ मे, मद्रास मे १९३२, बिहार और उडीसा मे १९३५, कुर्ग मे १९३७ और बगाल मे १९४० मे अधिनियम पारित किये गये।[1] सन् १९१९ के पश्चात् कई अखिल भारतीय प्रान्तीय समितियाँ नियुक्त की गयी जिनमे से मुख्य Oaken Committee of U P , King Committee of C. P , Town end Committee of Madras, Royal Commission on Agriculture , Central Banking Inquiry Commission (1931) हैं।

सन् १९१९ से १९२९ के मध्य अवधि मे आन्दोलन तेज गति से विकसित हुआ इस काल से गैर साख और औद्योगिक क्षेत्र में अधिक समितियाँ सगठित हुई। सन् १९२६-२७ मे शाही आयोग (Royal Commission) के आन्दोलन की सफलता के लिये कुछ सुझाव दिये। आयोग के प्रतिवेदन में कहा गया कि यदि सहकारिता असफल होती है तो ग्रामीण भारत की सर्वोत्तम आशाये असफल हो जायेंगी।[2] सन् १९२० मे समितियो की सख्या २८ ४ हजार सदस्य सख्या ११ ३ लाख तथा कार्यशील पूंजी १५ १८ करोड थी जो कि सन् १९२९ मे बढकर क्रमश ९४ हजार, ३७ लाख एव ७५ करोड हो गयी। इस प्रकार सभी क्षेत्रो मे अच्छी प्रगति हुई।

---

1 Reserve Bank Review of Cooperative movement in India, 1939 46 (Bombay), p 80

2 "If Cooperation fails , there will fail the best hope of rural India " Royal Commission

चतुर्थ चरण (१९२९ से १९३८)

यह काल विश्वव्यापी मन्दी मे प्रारम्भ हुआ। सन् १९२९ मे अमेरिका मे आर्थिक मन्दी प्रारम्भ हुई जो कि विश्व के अनेक देशो मे फैलने लगी। भारतवर्ष मे भी इसका प्रभाव पडा। आन्दोलन को धक्का पहुँचा। मूल्य नीचे गिरने से किसानो पर ऋण बढता चला गया। समितियाँ ऋण की वसूली नही कर पायीं। अत बकाया राशि बहुत बढ गयी जिसमे कई समितियो का विघटन प्रारम्भ हो गया। उत्तर-प्रदेश तथा पजाब मे स्थिति अधिक खराब हुई। ऐसी स्थिति मे भारत सरकार ने सन् १९३१ मे केन्द्रीय बैंकिग जाँच समिति नियुक्त की जिसका कार्य आन्दोलन की स्थिति का अध्ययन करके सुझाव देना था। इस मन्दी काल मे किसान भूमि को बन्धक रखकर ऋण लेने मे अधिक उत्सुक थे। फलत भूमि बन्धक बैंको की स्थापना होने लगी। १९२९ मे मद्रास मे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक स्थापित हुई। सन् १९३५ मे बम्बई मे एक प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक तथा कुछ प्राथमिक समितियाँ स्थापित की गयी।

सन् १९३५ मे रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया की स्थापना हुई। वास्तव मे यह सहकारी आन्दोलन मे महत्त्वपूर्ण घटना थी। बैंक मे भूमि विभाग स्थापित किया गया। इस काल मे समितियो की सख्या सहायता तथा कार्यशील पूंजी मे कोई विशेष वृद्धि नही हुई।

पचम चरण (१९३९ से १९४१)

सन् १९३८ के पश्चात् वस्तुओ के मूल्य बढ़ने लगे जिससे आन्दोलन को कुछ सहायता मिली। बकाया ऋण की वसूली होने लगी। समितियो की आर्थिक स्थित सुधरने लगी। युद्ध काल मे वस्तुओं के मूल और बढे जिससे समितियो को अधिक सुविधायें मिली। सन् १९४४ मे सरकार ने प्रो० डी० आर० गाडगिल की अध्यक्षता मे कृषि वित्त समिति (Agricultural Finance Committee) नियुक्त की। समिति ने दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन ऋणों को उचित प्रकार से नियन्त्रित करने पर जोर दिया। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि केवल सहकारी साख समितियाँ ही कृषि साख की पूर्ति नही कर सकती है अत प्रत्येक राज्यो मे सरकार की सहायता से कृषि साख निगम (Agricultural Credit Corporations) की स्थापना की जाये। सन् १९४५ मे श्री आर० जी० सरैया की अध्यक्षता मे एक अन्य समिति की नियुक्ति की गयी जिसे सहकारी योजना समिति (Cooperative Planning Committee) कहा जाता है। समिति ने सुझाव दिया कि किसानो की सम्पूर्ण आर्थिक गतिविधियाँ जो कि उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये हैं सहकारिता के क्षत्र के अन्तर्गत लायी जायें। अगले १० वर्षो मे कम से कम ५० प्रतिशत गाँव और ३० प्रतिशत ग्रामीण जनता सहकारी क्षत्र मे लायी जायें। ग्रामीण समितियो की निम्नतम सीमा ३० निर्धारित कर दी जाये। विपणन समितियो का पर्याप्त विकास किया जाये और सभी सुझाव मान लिये गये।

भारतवर्ष मे सन् १९४० से सन् १९४७ तक की प्रगति का विवरण आगे दिया जा रहा है।

सहकारी आन्दोलन की प्रगति

वर्ष	समितियाँ (संस्या) (हजारो मे)	सदस्यता (लाखों मे)	कार्यशील पूंजी (करोड रुपये)
१९४०	११६·८	६० ००	१०४ ६८
१९४७	१३९ ०	९१·००	१५६·००

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि समितियो की सन्या सदस्यता तथा कार्यशील पूंजी सभी मे धीरे-धीरे वृद्धि हुई है। सदस्यता और कार्यशील पूंजी मे वृद्धि तेज गति से हुई। नियन्त्रण काल मे विपणन समितियाँ अधिक गठित हुई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्

भारत १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हुआ किन्तु विभाजन हो गया। विभाजन के फलस्वरूप देश के सामने नयी समस्यायें उत्पन्न हो गयी। इन समस्याओ मे से कुछ समस्याओ को सहकारी आधार पर सुलझाने का निर्णय लिया गया। शरणार्थी समस्या के समाधान के लिये गृह निर्माण समितियाँ स्थापित होने लगी। सेवा मुक्त सैनिकों को बसाने के लिये भी सहकारिता का सहारा लिया गया। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे सहकारिता को उचित स्थान मिला। पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारी विकास का विवरण नीचे दिया गया है।

प्रथम पञ्चवर्षीय योजना

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सहकारिता के आधार पर विकास करने के महत्त्व को पर्याप्त स्थान दिया गया। इस योजना म देश के आर्थिक विकास के लिए योजना आयोग (Planning Commission) ने ग्राम पचायतो तथा सहकारी संस्थाओं की स्थापना पर ज़ोर दिया। रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया ने सन् १९५१ मे अखिल भारतीय ग्रामीण साख जाँच समिति नियुक्ति की। समिति ने ग्रामीण ऋण को एकीकृत योजना का सुभाव दिया' जिसमे विभिन्न स्तरा पर राज्य की भागीदारी हो सके। ऋण के साथ विपणन समितियो के उचित समन्वय की व्यवस्था पर बल दिया गया। समिति ने सुझाव दिया कि राज्य सरकारे सहायता देने और मार्ग दर्शन के कार्यों के अतिरिक्त ऋण माल सवारने, विपणन गतिविधियो मे भागीदार हो। समिति की अधिकाश सिफारिशे मान ली गयी जिन्हे द्वितीय पचवर्षीय योजना मे काम मे लाया गया। योजना मे प्रगति का विवरण आगे की तालिका से स्पष्ट हो जाता है —

सभी किस्मों की सरकारी समितियाँ (प्रगति का दख)

[सम्पूण भारत]

मद	१९५०—५१	१९५५—५६
१. समितियो की सख्या (लाखो मे)	१·८	२·४
२. प्राथमिक समितियो की सदस्य सख्या (लाखो मे)	१३७	१७६
३. अश पूँजी (करोड रुपये)	४५	७७
४. कार्य कर पूँजी (करोड रुपये)	२७६	४६९

[स्रोत—रिपोर्ट १९६८-६९, भारत सरकार (सहकारिता विभाग) पृष्ठ ७५]

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम योजना काल मे सभी मदो मे पर्याप्त *वृद्धि हुई है। समितियों की सख्या मे वृद्धि होने से सदस्यता तथा कार्यशील पूजी मे* वृद्धि हुई।

द्वितीय पचवर्षीय योजना

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सहकारी विचार धारा अधिक व्यापक हुई। इस योजना मे समाजवादी ढग से समाज की स्थापना का सकल्प लिया गया। कृषि तथा उद्योग दोना ही क्षत्रो मे विकेन्द्रीकृत इकाइयो की स्थापना पर बल दिया गया। लोकतान्त्रिक पद्धति पर आर्थिक विकास करने मे सहकारिता को विविध रूपो मे प्रयोग *मे लाने पर बल दिया गया नियोजित विकास मे सहकारिता क्षेत्र को राष्ट्रीय* नीति का प्रमुख उद्देश्य माना गया। द्वितीय योजना मे सहकारी विकास योजना मे निम्नलिखित व्यापक उद्देश्य रखे गये :—

(१) सहकारी क्षेत्र मे ऋण नीति का नवीनीकरण करना चाहिए ताकि कमजोर वर्ग लाभ प्राप्त कर सकें।

(२) राज्य सरकार द्वारा सहकारी ढाँचे के सभी स्तरो पर अश पूँजी मे भाग लेना चाहिए जिससे यह सुदृढ़ हो सके।

(३) सहकारी ऋण को विपणन के साथ सम्बन्धित किया जाये।

(४) विपणन एव माल सवार के कार्य सहकारिता के क्षेत्र म अधिक विकसित किए जायें।

(५) समितियो के पास भण्डारण की उचित व्यवस्था करना।

(६) पर्यवेक्षण एव प्रशासनिक ढाँचे को सुदृढ बनाना और प्रशिक्षण सुविधाओ का विस्तार करना।

राष्ट्रीय विकास परिषद ने १९५८ म इस क्षत्र के लियें एक नवीन विचारधारा रखी। इसके अनुसार सहकारी नीति का प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था का पुनरद्धार करना है।—सन् १९५९ मे मेहता समिति नियुक्त की गई जिसका मुख्य कार्य साख

के विस्तार के लिये सक्रिय सुझाव देना था। समिति ने अपना प्रतिवेदन १९६० मे प्रस्तुत किया। दिसम्बर १९५९ मे श्री निजलिंगप्पा की अध्यक्षता में एक कार्य कर दल (Working Group) नियुक्त किया गया। इस योजना का नागपुर कांग्रेस प्रस्ताव भी महत्त्वपूर्ण है। द्वितीय योजना मे निम्न प्रकार उन्नति हुई —

सभी किस्मो की सहकारी समितियाँ (प्रगति रूख)

(सम्पूर्ण भारत)

मद	१९६०-६१
१. समितियो की सख्या (लाखो मे)	३·३
२. प्राथमिक समितियो की सख्या (लाखो मे)	३४२
३. अश पूंजी (करोड रुपये)	२२२
४. कार्य कर पूंजी (करोड रुपये)	१३१२

[स्रोत—रिपोर्ट १९६८-६९, भारत सरकार (सहकारिता विभाग) पृ० ७५]

प्रथम पचवर्षीय योजना के अतिम वर्ष की तुलना मे द्वितीय योजना के अतिम वर्ष मे समितियो की सख्या मे ९० हजार की वृद्धि हुई। प्राथमिक समितियो की सदस्य सख्या वर्ष १९५५-५६ की तुलना मे वर्ष १९६० ६१ मे लगभग दुगनी हो गयी। अश पूंजी लगभग तीन गुनी हो गई। कार्यशील पूंजी वर्ष १९५५-५६ मे ४६९ करोड रुपये थी जो कि वर्ष १९६०-६१ मे बढ कर १३१२ करोड रुपये हो गयी। इस प्रकार समितियो की सख्या मे अधिक वृद्धि न होकर सदस्यता एव कार्यशील पूंजी मे वृद्धि हुई। वास्तव मे समितियो के दृढीकरण के लिये सहायता एवं कार्यशील पूंजी मे पर्याप्त वृद्धि होना आवश्यक है।

तृतीय पचवर्षीय योजना

तृतीय योजना मे सहकारिता को सामाजिक स्थायित्व और आर्थिक विकास का आधार माना गया। इस योजना में आन्दोलन को पुर्नसगठन का प्रमुख उद्देश्य रखा गया। इस योजना मे निम्न लक्ष्य रखे गये —

(१) तीसरी योजना अवधि मे ५२००० समितियो को सुदृढ करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

(२) इस काल मे मण्डी केन्द्रो पर ९९० और ग्रामीण क्षेत्रो मे ९२०० नये गोदाम बनाये जायेंगे। नय ३० चीनी कारखाने खोलने का लक्ष्य रखा गया। लगभग ७८३ बहुक्रिया सम्बन्धी कारखाने सगठित किये जायेंगे।

(३) अग्रगामी योजनाओ के रूप मे ३२०० सहकारी कृषि समितियाँ स्थापित की जायेंगी।

(४) योजना मे २२०० फुटकर तथा ५० थोक स्टोरो को सहयता देने का निश्चय किया गया ।

योजना काल मे कई समितियो तथा अध्ययन दलो ने अपने प्रतिवेदन पेश किये । श्री एस० डी० मिश्रा की अध्यक्षता मे सहकारी प्रशिक्षण से सम्बन्धित अध्ययन दल गठित किया गया । सन् १९६२ मे श्री वी० पी० पटेल की अध्यक्षता मे तकावी ऋण तथा सहकारी साख समिति नियुक्त की गयी । रेलवे तथा डाकतार विभागो मे सहकारियो के अध्ययन के लिये विशेष दल नियुक्त किया गया था जिसका प्रतिवेदन १९६३ मे प्राप्त हुआ । सन् १९६२ मे औद्योगिक सहकारी समितियो पर विशेष दल नियुक्त किया गया । इसके अतिरिक्त सन् १९६३ मे श्री मेहता की अध्यक्षता मे सहकारी शासन प्रबन्ध सम्बन्धी समिति नियुक्त की गयी । तृतीय योजना काल मे अन्य कई समितियाँ भी नियुक्त की गयी थी । जिन्होने अपने-अपने क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये । समय-समय पर प्राप्त हुये सुझावो के आधार पर विकास किया गया जिसका विवरण नीचे दिया गया है ।

सहकारी आन्दोलन की प्रगति

मद	१९६०-६१	१९६५-६६
१. प्राथमिक कृषि साख समितियो की सदस्यता (मिलियन)	१७	२६'१
२. कृषि परिवार (सहकारी क्षेत्रो मे)—प्रतिशत	३०	४२
३ अल्प एव मध्य कालीन ऋण प्रदान किये गये (करोड रुपये)	२०२	३४२
४. दीर्घकालीन ऋण (प्रदान किये गये) करोड रुपये)	११·६	५८
५. समितियो द्वारा वेची गयी कृषि उपज (करोड रुपये	१७५	३६०
६. सहकारी कृषि विधियन (Processing) समितियाँ	१००४	१५००
७. भण्डारण ....(मिलियत टन)	२ ३	२ ४

(Source—Fourth Five Year Plan 1969-74, Draft p 169)

सभी प्रकार की समितियो की सख्या वर्ष १९६५-६६ के अन्त मे ३·५ लाख थी । प्राथमिक समितियो की सदस्य सख्या ५०३ लाख हो गयी । इन सतितियो की अश पूँजी व कार्यशील पूँजी क्रमश ४५१ एव २००० करोड रुपये हो गयी । इस योजना मे समितियो के दृढीकरण पर विशेष जोर दिया गया ।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे विकास

तृतीय पचवर्षीय योजना और चतुर्थ पचवर्षीय योजनाओ के मध्य एक वर्षीय योजनाओ मे कृषि साख, विपणन विधियन तथा उपभोक्ता व्यापार मे पर्याप्त उन्नति की गयी । केन्द्रीय सहकारी विभाग राष्ट्रीय तथा शीर्ष स्तरो पर महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे सहकारी ढाँचे का विकास करने और प्राथमिक स्तर पर इस ढाँचे को वैज्ञानिक व्यवस्था करने और सहायता देने मे उचित प्रयत्न किये । भारत सरकार ने नवीन कृषि नीति अपनायी जिसके कारण सहकारी ऋण नीति पर प्रभाव पडा । देश के अनेक भागो मे

सघन कृषि कार्यक्रम अपनाये गये। प्राथमिक ऋण समितियो ने अधिक ऋण प्रदान किये। भूमि विकास बैंको ने दीर्घ कालीन ऋणो मे वृद्धि की। वर्ष १९६६-६७ के अन्त मे प्राथमिक ऋण समितियों ने ३६६ करोड रुपए के अल्पकालीन एव मध्य-कालीन ऋण प्रदान किये जो बढकर वर्ष १९६७ ६८ के अन्त तक ४०५ करोड रुपये हो गये। वर्ष १९६८-६९ के अन्त तक इन मागो की राशि ४५० करोड रुपये हो जाने की सम्भावना है। भूमि बन्धक बैंको ने वर्ष १९६६-६७, १९६७-६८ एव १९६८-६९ मे क्रमश ५८ करोड, ८३ करोड एव १०० करोड रुपये के ऋण प्रदान किये। वर्ष १९६६-६७ मे कृषि महकारी विपणन समितियो ने ३३८ करोड रुपये का व्यापार किया जो कि वर्ष १९६७-६८ एव १९६८-६९ मे बढकर क्रमश ४६२ करोड एव ४७५ करोड रुपये का हुआ।[1]

शहरी भागो मे उपभोक्ता सहकारी समितियाँ आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्यो पर प्रदान करती रही। वर्ष १९६७-६८ मे थोक महकारी भण्डारो द्वारा किये गये कुल विक्रय का मूल्य १७१ करोड रुपये था। इन वर्षों मे सहकारी खेती, मछली पालन डेरी, श्रमिक निर्माण सहकारी समितियो ने भी प्रगति की। सहकारी शिक्षण तथा प्रशिक्षण के कार्यक्रम भी बढते गये। इस प्रकार चतुर्थ योजना के प्रारम्भ होने तक आन्दोलन को दृढ करने के अनेक प्रयत्न किये गये।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सहकारिता का विकास इस आन्दोलन को सुदृढ़ करने के साथ-साथ किया जायेगा। इस काल मे सहकारी समितियो के उचित ढाँचे को सुदृढ करने की नीति अपनायी जायेगी। विभिन्न क्षेत्रो मे अधिक समितियो की स्थापना पर जोर न देकर वर्तमान समितियो की स्थिति मे पर्याप्त सुधार किया जायेगा। चतुर्थ योजना मे सहाकारी विकास कार्यक्रमो पर कुल १५१ ४१ करोड रुपये व्यय करने का प्रावधान रखा गया है। जिसका विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट है —

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में महकारी कार्यक्रमों के लिये प्रावधान

विवरण	प्रावधान (करोड रुपये)
१ राज्य	९६ ६८
२. केन्द्र शासित प्रदेश	३ ९८
३ केन्द्रीय योजनायें	२२ ००
४ केन्द्रीय क्षेत्र	२८·७५
५. कुल	१५१·४१

(Source—Fourth Five Year Plan 1969-74 Draft p 167)

1. रिपोर्ट १९६८-६९, भारत सरकार (सहकारिता विभाग) पृष्ठ १

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सहकारी समितियो की सदस्यता मे पर्याप्त वृद्धि की जायेगी जिससे अश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी की राशि मे वृद्धि हो सकेगी। सहकारिता के क्षेत्र मे अधिक परिवार लाये जायेंगे। सहकारी विकास के लक्ष्य निम्न तालिका से स्पष्ट हो सकते हैं :—

चतुर्थ पचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्य

कार्यक्रम	इकाई	वर्ष १९६८-६९ सम्भावित	लक्ष्य (१९७३-७४)
१. सदस्यता (प्राथमिक कृषि साख समितियाँ	मिलियन	३०	४२
२. कृषि परिवार (कार्य क्षेत्र मे)	प्रतिशत	४५	६०
३. अल्प एव मध्यकालीन ऋण	करोड रुपये	४५०	७५०
४. दीर्घकालीन ऋण	"	१००	७००
५. समितियो द्वारा बेची गयी कृषि उपज	"	४७५	९००
६. भण्डारण	मिलियन टन	२·६	४ ६
७ उपभोक्ता वस्तुओ का ग्रामीण क्षेत्रो मे विपणन····	करोड रुपये	२७५	५००
८ शहरी उपभोक्ता समितियो का फुटकर विक्रय	"	२७५	४००

(Source—Fourth Five Year Plan 1969-74, Draft, p 167)

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सहकारी प्रशिक्षण एव शिक्षा की तरफ भी उचित कदम उठायें जायेंगे। विभिन्न प्रकार की समितियो की सदस्यता में भी पर्याप्त वृद्धि की जायेगी इस योजना के अन्त तक लगभग ६० प्रतिशत परिवार सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत लाये जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। चतुर्थ योजना काल मे अल्प एव मध्यकालीन ऋणो मे पूर्व की तुलना मे अधिक बल दिया जायेगा। वर्ष १९६८-६९ की तुलना में वर्ष १९७३-७४ मे दीर्घकालीन ऋण सात गुने हो जायेंगे जब कि अल्प एव मध्य कालीन ऋण इस काल मे लगभग दुगने भी नही हो पायेंगे। इस काल मे सर्वाधिक बल समितियो के दृढीकरण पर दिया जायेगा।

आन्दोलन की मन्द प्रगति के कारण

भारत मे सहकारी आन्दोलन एक लम्बे समय तक बहुत धीमी प्रगति से विकास करता रहा। पचवर्षीय योजनाओ मे आन्दोलन को गति प्रदान करने के अनेक प्रयत्न किये गये किन्तु फिर भी आशातीत सफलता नही मिल सकी। इसके प्रमुख कारण अग्रलिखित हैं—

(१) निरक्षरता :

भारतवर्ष मे निरक्षरता सहकारी आन्दोलन के मार्ग मे सबसे बडी बाधा रही है। अधिकाश किसान अशिक्षित है जो कि न तो सहकारी सिद्धान्तो को जानते है और न ही समितियों के नियमो व उपनियमों से परिचित होते हैं। अशिक्षा के कारण जिस वर्ग को सहकारिता से अधिक लाभ पहुँचना चाहिये था नही पहुँच सका। अशिक्षित जनता किसी भी प्रकार के सस्थागत परिवर्तन मे विश्वास नही कर सकी। वस्तुत समितियो मे अधिक सदस्य नही हो सके। लम्बी अवधि के पश्चात् तक भी किसान कृषि साख एव विपणन के महत्व को नही समझ पाये।

(२) वित्तीय कठिनाइयाँ :

हमार देश मे समितियो के पास सदस्य के द्वारा लायी गयी पूंजी का अभाव रहता है। अत पूंजी की कम राशि होने के कारण अन्य निधियाँ भी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नही हो पाती। वित्त के अभाव मे कृषि साख समितियाँ अपने सदस्य किसानो की साख सम्बन्धी आवश्यकतायें पूर्ण करने मे असफल रहती हैं। इससे जनता मे अविश्वास व्याप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति मे किसानों को बाध्य होकर महाजनो की शरण में जाना पडता है। अन्य प्रकार की समितियो के पास भी अपनी निजी निधियाँ पर्याप्त मात्रा मे नही होती हैं जिनसे उनके कार्य सचालन मे बाधा आती है। यद्यपि पचवर्षीय योजनाओं मे वित्तीय सहायता के अनेक प्रयत्न किये हैं, किन्तु फिर भी यह समस्या जटिल है। देश मे अनेक समितियाँ ऐसी स्थिति मे है जो अच्छी तरह से कार्य नही कर पा रही है।

(३) अकुशल प्रबन्ध

भारतवर्ष मे सहकारी समितियो का प्रबन्ध अकुशल व्यक्तियो के हाथो मे है। अधिकाश समितियो मे अवैज्ञानिक प्रबन्ध है। वर्तमान समय मे उचित प्रबन्ध व्यवस्था का महत्त्व बहुत बढ गया है। समितियो के कर्मचारी बैंकिग विधियो एव कार्यो से भी भिज्ञ नही हैं। विपणन समितियो के कर्मचारी व्यापार कुशल नहीं हैं। सहकारी समितियो मे कुशल प्रबन्धक न आने का कारण है कि ये सस्थायें पर्याप्त वेतन देने मे असमर्थ है। अत कुशल व्यक्ति आकर्षित नही हो पाते हैं।

(४) असन्तुलित विकास :

भारतवर्ष मे सहकारी आन्दोलन प्रारम्भ मे साख के क्षेत्र मे अधिक विकसित हुआ। गैर साख समितियो के विकास की तरफ विशेष ध्यान न देने के कारण आन्दोलन का तेज गति से विकास नही हो पाया। साख के साथ-साथ अन्य आर्थिक क्रियाये जैसे विपणन आदि की तरफ भी पर्याप्त ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे कृषको का सर्वांगीण विकास हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बहुउद्देशीय सहकारी समितियो का निर्माण किया जाने लगा। सरकार ने पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की समितियो के गठन पर बल दिया है।

(५) कठिन प्रतियोगिता :

सहकारी आन्दोलन को निजी क्षेत्र से कठिन प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड रहा है। ग्रामीण क्षेत्रो मे आज भी महाजनो का अधिक प्रभाव है। ये व्यक्ति

अपने हितो की रक्षा के लिये समितियो के विभिन्न सदस्यो मे फूट डालते हैं जिससे दलबन्दी पैदा हो जाती है। समितियो को कमजोर बनाकर फिर इनसे प्रतियोगिता की जाती है। कृषि विपणन समितियो से निजी व्यापारी प्रतिस्पर्धा करते हैं। समितियो के पास कुशल व्यक्तियो का अभाव पाया जाता है। जिससे प्रतिस्पर्धा का सामना करना कठिन हो जाता है।

(६) ब्याज की ऊँची दर ·

किसानो को प्रदान किया जाने वाला सहकारी ऋण मँहगा होता है। हमारे देश मे सहकारी साख समितियाँ ६ $\frac{1}{4}$ प्रतिशत से १२ प्रतिशत तक ब्याज लेती हैं। रिजर्व बैंक समितियो को बहुत कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान करती है किन्तु समितियों के प्रबन्ध व्यय के अधिक हो जाने के कारण ब्याज की दर ऊँची करनी पडती है। अत सहकारिता के विकास के लिये सामान्यत ६ प्रतिशत ब्याज दर उचित हो सकती है।

(७) अनुचित सरकारी हस्तक्षेप :

सहकारी आन्दोलन मे किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नही होना चाहिये क्योंकि यह तो एक एच्छिक आन्दोलन है। हमारे देश मे सरकारी अधिकारियो ने आदोलन मे अनुचित हस्तक्षप करना प्रारम्भ कर दिया है जिससे जनता इसे सरकारी आन्दोलन मानने लगी है जबकि आन्दोलन जनता का है। अनेक समितियो के प्रबन्ध मण्डल मे भी सरकारी प्रतिनिधि भी होते हैं जिनका हस्तक्षेप अनुचित रहता है।

(८) अन्य

भारतवर्ष मे अधिकाश सहकारी समितियाँ कमजोर हैं। प्राय स्वार्थी लोग अपना समितियो मे अनुचित विधियो से प्रभाव बढ़ा लेते हैं। जिससे दलबन्दी एव पक्षपात को बढावा मिलता है। समितियो के अधिकारी एव कार्यकर्त्ता अपने सम्बन्धियो अथवा दल के लोगो का अधिकतर ऋण स्वीकार करते हैं। समितियो के सदस्यो के पास पयाप्त जमानत का भी अभाव पाया जाता है। जिससे ऋण प्राप्त करने मे कठिनाई होती है। समितियों के हिसाब-किताब की उचित व्यवस्था भी नहीं होती है। इन सब कमियो के कारण आन्दोलन तेज गति से विकास नहीं कर सका।

आन्दोलन की सफलता के सुझाव

भारत मे सहकारी आन्दोलन की सफलता के निम्नलिखित सुझाव महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं—

(१) सहकारी शिक्षा का विस्तार

सहकारी विकास के लिये सरैया समिति ने शिक्षा के पुर्नगठन एव विकास का सुझाव दिया। सहकारिता की सफलता के लिये सहकारी सिद्धान्तो को समझना और उनको कार्य रूप मे परिणित करना बहुत आवश्यक है। सहकारी शिक्षा के प्रसार मे जनता आन्दोलन के महत्त्व को समझ सकेगी। यह कार्यक्रम छोट बच्चो

से ही प्रारम्भ करना चाहिये । इसको मातृ भाषा मे सहकारिता की शिक्षा प्रदान करनी चाहिये । सहकारी योजना समिति ने सुझाव दिया कि हमारे देश मे विश्व विद्यालय स्तर पर 'सहकारिता' विषय सम्मिलित किया जाना चाहिये । इससे युवक वर्ग सहकारिता को अच्छी तरह से समझ सकेगा जिससे भविष्य में आन्दोलन अधिक प्रगति कर सकेगा । सहकारी शिक्षा के विस्तार से विभिन्न समितियो के सदस्य भी सहकारी सिद्धान्तों से परिचित हो सकेंगे । अत भविष्य मे आन्दोलन को विकास को गति प्रदान करने के लिये सहकारी शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है ।

(२) सहकारी प्रशिक्षण व्यवस्था :

सहकारी प्रशिक्षण से आशय उस कार्यक्रम से है जिसके अन्तर्गत सहकारी संस्थाओ व सहकारी विभाग के वेतन प्राप्त कर्मचारियो को प्रशिक्षण दिया जाये । प्रशिक्षण के महत्त्व को ध्यान मे रखकर योजना आयोग ने प्रथम पचवर्षीय योजना मे सहकारी समितियो व सहकारी विभागो के प्रशासनिक, व्यवस्थापकीय तथा क्षेत्रीय कर्मचारियो के प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिये १० लाख रुपये का प्रावधान किया । भारत सरकार ने नवम्बर १९५३ मे सहकारी प्रशिक्षण की एक केन्द्रीय समिति नियुक्त की । इसके अतिरिक्त सरकार ने पचवर्षीय योजनाओं मे अनेक प्रयत्न इस क्षेत्र मे किये हैं किन्तु फिर भी इस तरफ अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । सरैया समिति ने भी सहकारी प्रशिक्षण की सिफारिश की थी । सहकारी प्रशिक्षण से कर्मचारियो प्रशासकों तथा श्रमिको की कार्य कुशलता मे वृद्धि होती है जिससे समितियो को नुकसान नही होगा और वे प्रतिस्पर्धा मे अच्छी तरह से टिक सकेंगी । अक्तूबर १९६१ मे राज्यो मे सहकारिता मन्त्रियों के सम्मेलन में सहकारी प्रशिक्षण पर अधिक जोर दिया गया । इसके पश्चात् निरन्तर इस आवश्यकता को ध्यान मे रखा गया है और प्रशिक्षण व्यवस्था के अनेक कदम भी उठाये गये हैं । भविष्य मे प्रशिक्षण कार्यक्रम को अधिक व्यापक रूप प्रदान करना चाहिये ।

(३) उचित वित्त व्यवस्था .

सहकारी समितियो के समुचित विकास के लिये पर्याप्त मात्रा मे धन होना आवश्यक है । हमारे देश मे ऋण प्रदान करने वाली समितियाँ धनाभाव मे अपने सदस्यो की मांग पूरी नही कर पा रही है । अत उनके लिये पर्याप्त मात्रा मे वित्त व्यवस्था करनी चाहिए । इसके लिये केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा राज्य सरकारें अधिक सहयोग दे सकती हैं । अन्य प्रकार की समितियो को भी पर्याप्त मात्रा मे निधियाँ प्राप्त करने मे सरकार को अधिक प्रयत्न करना चाहिये । यद्यपि पचवर्षीय योजनाओं मे सरकार ने इस तरफ प्रयत्न किये हैं किन्तु वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान मे रखते हुये भविष्य मे अधिक सहयोग की आवश्यकता है । भारत वर्ष मे नवीन कृषि नीति अपनायी है जिसमे सघन कृषि कार्यक्रम चालू किये गये हैं । इनकी सफलता मे सहकारी समितियाँ अधिक उपयोगी हो सकती है । सरकार पर्याप्त मात्रा मे धन प्रदान करके इस आन्दोलन के माध्यम से नवीन कृषि कार्यक्रमो को सफल बना सकती हैं ।

(४) अच्छा नेतृत्व .

वास्तव मे देखा जाये तो वर्तमान समय मे हमारे देश के प्रत्येक क्षेत्र मे अच्छे नेतृत्व का अभाव है । सहकारी आन्दोलन मे भी अभी तक उचित नेतृत्व नही मिल

पाया है । हमारी सहकारिता को परिश्रमी, ईमानदार, उत्साही, दूरदर्शी, प्रशिक्षित एव योग्य नेताओ की आवश्यकता है । यह समस्या अत्यन्त जटिल है । योजना आयोग ने भी इस समस्या पर विचार किया और इस बात पर बल दिया कि उचित नेतृत्व सहकारी विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण अग है । आज देश मे अधिकाश समितियों को अच्छा नेतृत्व नही मिला हुआ है जिसके कारण ये प्रगति नही कर पा रही हैं । समितियों की असफलता से समाज का विश्वास सहकारिता आन्दोलन के प्रति कम होता जा रहा है । अत सरकार को ऐसे सभी प्रयत्न करने चाहिएँ जिसमे सहकारिता के क्षेत्र में उचित नेतृत्व प्राप्त हो सके ।

(५) आन्दोलन की व्यापकता :

सहकारी आन्दोलन को इतना व्यापक बनाया जाये कि अनेक आर्थिक क्रियायें इसके द्वारा सम्पादित की जा सकें । अब तक आन्दोलन केवल कुछ विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ही विकास कर पाया है । भारतवर्ष मे आरम्भ मे सहकारी साख के क्षेत्र में अधिक उन्नति हुई किन्तु धीरे-धीरे अन्य क्षेत्रो मे भी सहकारिता का प्रयोग प्रारम्भ हुआ । अभी तक अन्य क्षेत्रों मे सतोषजनक प्रगित नही हो सकी है । अत आन्दोलन का क्षेत्र अधिक विस्तृत किया जाना चाहिये ।

(६) कमजोर समितियो का दृढीकरण :

भारतवर्ष मे अनेको सहकारी समितिया इतनी कमजोर हो चुकी है कि उनका कार्य अच्छी तरह से नही चल पा रहा है । कुछ समितियाँ कार्य बन्द कर चुकी हैं । समितियो के कमजोरी के मुख्य कारण उचित नेतृत्व का अभाव एव आर्थिक स्थिति का क्षीण होना है यद्यपि तृतीय पचवर्षीय योजना मे समितियो को सुदृढ करने के प्रयत्न किये गये हैं । किन्तु अधिक सफलता नही मिल सकी । चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे भी समितियों को सुदृढ बनाने पर अधिक बल देने का कार्यक्रम बनाया गया है । इसके लिये अधिक समितियों का गठन न करके वर्तमान समितियों को मजबूत बनाने की योजना है । वास्तव मे जब तक देश को सभी समितियो को सुदृढ नही बना दिया जाता है आन्दोलन प्रगति नही कर सकेगा ।

(७) उचित समन्वय ·

सहकारी आन्दोलन की विभिन्न गति विधियो मे उचित समन्वय का अभाव है । इसके कारण विभिन्न अग आपस मे सहयोग नही कर पाते है । सहकारी आन्दोलन मे समन्वय स्थापित करने के लिये सघीय सस्थाओ का स्थान बहुत उल्लेखनीय है। भारतवर्ष मे सघीय सस्थायें स्थापित हुई हैं किन्तु अच्छी तरह से समन्वय कार्य सम्पन्न नही हो पाया है । उदाहरणत॰ सहकारी साख मे प्राथमिक स्तर पर ग्रामीण साख समितियाँ हैं, जिला स्तर पर केन्द्रीय बैंक तथा राज्य स्तर पर शीर्ष बैंक स्थापित किये गये हैं । विभिन्न प्राथमिक सहकारी साख समितियो का समन्वय केन्द्रीय बैंक करते हैं और केन्द्रीय बैंको का समन्वय शीर्ष बैंक करते हैं । किन्तु अनेको कारणो से हमारे देश मे उचित समन्वय नही हो पाया है । इसके अतिरिक्त विभिन्न गतिविधियों जैसे ऋण विपणन, गृह निर्माण, औद्योगिक तथा उपभोक्ता समितियो मे भी समन्वय का अभाव है । ऐसी कोई विशेष व्यवस्था नही है जिससे उक्त विभिन्न गतिविधियो में समन्वय स्थापित किया जा सके ।

(८) भण्डारण सुविधा का विस्तार :

सहकारी विपणन समितियों के विकास के लिये उचित भण्डारण व्यवस्था होनी आवश्यक है। सहकारी समितियों के पास इतना धन नहीं होता कि वे गोदाम बना सके। ऐसी स्थिति में ये समितियाँ पर्याप्त मात्रा में माल को उचित रूप में भण्डारण करने में असमर्थ रहती है फलत माल नष्ट हो जाता है। सरकार ने पचवर्षीय योजनाओं में भण्डारण व्यवस्था के लिये समितियों को धन प्रदान करने के प्रयत्न किये है किन्तु फिर भी अनेकों समितियों के पास पर्याप्त भण्डारण सुविधायें नहीं है। सरकार को अधिक गोदामों के निर्माण में सहयोग प्रदान करना चाहिये।

(९) अकेक्षण पर्यवेक्षण एव निरीक्षण व्यवस्था :

अकेक्षण की आवश्यकता दो कारणों से है प्रथम अकेक्षण किसी भी समिति की वित्तीय स्थिति का सूचक है और दूसरे भारत जैसे देश में जहाँ सरकारी सरक्षण है अकेक्षण सहकारिता के सार्वजनिक रूप को बनाये रखने के लिये आवश्यक है। हमारे देश में अकेक्षण व्यवस्था सुदृढ नहीं है अत इस तरफ पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है। वृहत आकार एव कारोबार वाली बडी सस्थाओ में समवर्ती (Concurrent) अकेक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये समितियों के अकेक्षण के लिये लेखे तैयार करने की तिथि निर्धारित कर देना चाहिये जिसके उत्तरदायी प्रबन्धकारिणी के सदस्य होंगे। समितियो के लिये पर्यवेक्षण एव निरीक्षण की व्यवस्था भी होनी चाहिये। उचित समय पर निरीक्षण होते रहने से विभिन्न प्रकार की अनियमितताओं को रोका जा सकता है।

(१०) अन्य

सहकारी आन्दोलन की सफलता के लिये सदस्य समिति के प्रति भक्ति भाव रखे तथा उनका उच्च चरित्र होना आवश्यक है। आन्दोलन में स्त्रियों का योगदान अभी तक पर्याप्त नहीं है अत स्त्रियों का अधिक सहयोग प्राप्त करना चाहिये। इसके अतिरिक्त इस बात पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाये कि समितियाँ सहकारी सिद्धान्तो पर कार्य करे भारतवर्ष के सहकारी आन्दोलन में अभी तक सघीय ढाचा उचित नहीं हो पाया है। अत इस तरफ भी ध्यान देना चाहिये।

उक्त सुझावों को ध्यान में रख कर प्रगति के प्रयत्न करने पर निश्चय ही सफलता मिल सकेगी। सहकारी आन्दोलन को एक नयी दिशा मिलेगी और कृषि, उद्योग एव वाणिज्य के क्षेत्रों में सहकारिता का पर्याप्त विकास हो सकेगा। आशा है चतुर्थ योजना में पर्याप्त उन्नति हो सकेगी।

प्रश्न

१ भारत में सहकारी आन्दोलन के आरम्भ एव विकास का वर्णन कीजिये। हमारे देश में इस आन्दोलन की धीमी प्रगति के क्या कारण है?

२ भारत में सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति के क्या कारण है? इसके विकास के सुझाव दीजिये।

३ भारत में पचवर्षीय योजनाओं में सहकारी विकास के क्या-क्या प्रयत्न किये गये है? सहकारी आन्दोलन में क्या-क्या नवीन प्रवृतियाँ है?

३

सहकारी साख
(Co-operative Credit)

सहकारी साख सहकारी आन्दोलन का एक प्रमुख अग है। भविष्य मे भुगतान की प्रतिज्ञा के आधार पर वर्तमान मे कोई भी मूल्यवान वस्तु जैसे मुद्रा, वस्तु अथवा सेवाएँ प्राप्त करना ही साख है। जो धन उधार लिया जाता है वह ऋण होता है। अत साख उधार देने की प्रक्रिया है। यह कार्य सामान्य तथा बैंको अथवा धन उधार देने वाले महाजनो द्वारा किया जाता है। सहकारी साख समिति एक विशेष प्रकार की बैंक है जो कि साख सुविधाएँ प्रदान करती है। अत जो साख सहकारी बैंको के द्वारा प्रदान की जाती है उसे सहकारी साख कहा जाता है। सहकारी बैंक को निम्न प्रकार से *परिभाषित किया जा सकता है, "यह सामूहिक स्वामित्व ससाधनो* और असीमित सदस्यता के व्यक्तियो का एक स्वेच्छिक सगठन है जिसकी स्थापना प्रजातन्त्रीय आधार पर, लघु उत्पादको अथवा श्रमिको द्वारा की जाती है, जिसमे सदस्यो की बचत को सचित किया जाता है। तथा उनको ब्याज और भुगतान की आसान शर्तो पर साख प्रदान की जाती है। अधिक्य (Surplus) को सचित कोष मे रख लिया जाता है या जमाकर्ताओ, ऋणियो तथा अशदाताओ मे विपरीत कर दिया जाता है। यह सगठन बाहरी श्रोतो से सदस्यो के लिये ऋण प्राप्त करते समय सदस्यो के सामूहिक उत्तरदायित्व का प्रयोग करता है।"[1]

सहकारी बैंको का जन्म स्थान जर्मनी है। सबसे पूर्व सहकारिता मे साख और ऋण का प्रयोग यही हुआ। जर्मनी मे सहकारी साख के विकास के लिए रैफिसिन तथा शुल्जे डेलिटा दो प्रकार की समितियाँ स्थापित की गई थी।[2] रैफिसिन

1 Cooperative Banking, N Barou

2 The pioneers of the town and country banks respectively were *Herr* Schulze, Mayour of Delitzsch and Herr F W Raiffeisen, burgomaster of a group of villages round New wied

समितियाँ ग्रामीण तथा कृषि साख के लिए थी और शुल्जे डेलिश, नगरो तथा औद्योगिक क्षेत्रो के लिए स्थापित की गई थी। ये दोनो प्रकार की सहकारी समितियाँ विश्व के अनेक देशो के लिए आदर्श हो गयी। जर्मनी से धीरे-धीरे सहकारी साख दूसरे देशो मे फैली।

भारतवर्ष मे भी सहकारी साख ग्रामीण तथा शहरी ऋण व्यवस्था आदि दो भागो मे विभक्त है। जहाँ तक ग्रामीण सहकारी ऋण-व्यवस्था का प्रश्न है, इसे पुन दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग मे अल्प व मध्यकालीन ऋण आते हैं और दूसरे मे दीर्घकालीन ऋण। अल्प व मध्यकालीन साख का ढाँचा तीन सीढियो की तरह है ग्राम स्तर की प्राथमिक कृषि ऋण दात्री समिति (सेवा समिति) प्रकार की साख का आधार है। दूसरी सीढी केन्द्रीय सहकारी बैंको की है जिनके सदस्य प्राथमिक कृषि ऋणदात्री समितियाँ होती हैं। तीसरी सीढी राज्य स्तर के शीर्ष बैंक की है जिसके सदस्य केन्द्रीय सहकारी बैंक है।

दीर्घकालीन ऋण भूमि बधक बैंको द्वारा प्रदान किया जाता है। "दीर्घकालीन ऋण के लिए प्रत्येक राज्य मे शीर्ष स्तर की एक केन्द्रीय भूमि बधक बैंक होती है। कुछ स्थानो पर शीर्ष भूमि बधक बैंक अपनी प्राथमिक बैंको की सहायता से, जो कि तालुका या जिला स्तर पर होती हैं अपना कारोबार चलाती हैं और कुछ अन्य स्थानो पर इसकी शाखाएँ कार्य करती हैं।"[1]

शहरो मे साख के लिए कर्मचारी ऋणदायी सहकारी समितियाँ व अरबन कॉआपरेटिव बैंक होते हैं। इन समितियो द्वारा शहरी कर्मचारियो, मजदूरो अथवा छोटे उद्योगो को साख प्रदान की जाती है।

ग्रामीण साख समितियाँ
(Rural Co-operative Credit Societies)

प्राय कहा जाता है कि भारतीय ग्रामीण किसान ऋण मे ही जन्म लेता है जीवन विताता है, और मरते समय भी अपने उत्तराधिकारियो पर ऋण छोड जाता है सन् १९५४ मे ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति और सन् १९६२ मे ग्रामीण ऋण और विनियोग सर्वेक्षण समिति के प्रतिवेदनो मे इस बात पर विशेष बल दिया गया कि भारतीय किसान ऋण ग्रस्त है। भारत मे ग्रामीण क्षेत्रो मे साख सस्थाओ का पर्याप्त विकास नही हो पाया। किसान अपनी ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति महाजनो अथवा साहूकारो से करते रहे है। किन्तु महाजन तथा साहूकार इन परिस्थितियो का अनुचित लाभ उठाते है और किसानो का शोषण करते हैं। ऐसी स्थिति मे सहकारी ऋण समितियाँ उत्तम साधन सिद्ध हो सकती हैं। वास्तव मे देखा जाए तो भारतीय सहकारी आन्दोलन का सूत्रपात भी ग्रामीण ऋण समितियो से हुआ है।

उद्देश्य

ग्रामीण साख समितियो की स्थापना के निम्नलिखित उद्देश्य है —

---

1. सहकारी समाज, फरवरी १९६८ पृष्ठ—७

(१) ग्रामीण क्षेत्रो मे साख की सुविधाये प्रदान करके कृषि का सुधार करना प्रमुख उद्देश्य है।

(२) जसा कि पूव कहा जा चुका है भारत म ग्रामीण साख मे साहूकारो और महाजनो का प्रमुख हाथ रहा है। किन्तु इनके द्वारा किसानों की महाजना आदि पर निभरता कम की जाती हैं।

(३) कम ब्याज की दर पर ऋण प्रदान करना भी उद्देश्य है ताकि किसाना को अधिक लाभ हो सके।

(४) ग्रामीण सहकारी साख समितियो का प्रमुख उद्देश्य बचत तथा विनियोग की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन देना है। ग्रामीण क्षत्रो की बचत अनेक कारणो से उत्पादन कार्यो म नही लग पाती है अत उनके विनियोजन के प्रात्साहन के लिए य समितियाँ बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

(५) इन समितियों के विकास का यह भी उद्देश्य है कि जनता मे सहयोग तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो।

(६) सदस्यो मे स्वसेवा (Selfhelp) तथा मितव्ययिता (Thrift) की भावना भी इन समितिया द्वारा उत्पन्न की जाती है।

सदस्यता
(Membership)

सहकारी साख समितियो मे सदस्यता खुली एव एच्छिक होती है। किन्तु फिर भी अच्छा चरित्र, स्वस्थ मस्तिष्क, दिवालिया न होना आदि गुणो का होना आवश्यक है। सहकारिता के अविभेदात्मकता के सिद्धान्त के अनुसार सदस्यता के के लिये किसी भी प्रकार का राजनैतिक, धार्मिक एव जातीय भेदभाव भी नहीं होता है।

प्रबन्ध

सहकारिता मे प्रजातान्त्रिक प्रबध होता है। सर्वोच्च सत्ता साधारण सभा मे होती है। साधारण सभा म समिति के सभी सदस्य सम्मिलित होते हैं। नीति सम्बन्धी निणय इसी सभा मे लिए जाते है। वर्ष मे कम से कम एक बार आम सभा जो कि सामान्यत वार्षिक अंकेक्षण के बाद बुलाई जाती है। निणय बहुमत पर लिए जाते है। प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार होता है। और प्रतिनिधित्व (Proxy) बिल्कुल वर्जित होती है। साधारण सभा मे प्रबधक समिति के सदस्यों का चुनाव किया जाता है। यह समिति, समिति के सभी कार्यों की देख भाल करती है। कर्मचारियों की नियुक्ति, निवृत्ति, नियन्त्रण, हिसाब किताब रखना, निधियों की व्यवस्था ऋण व वसूली की व्यवस्था तथा अन्य कई कार्यो का दायित्व इसी समिति पर ही है।

साधारण सभा म पक्की तल पर (Balance Sheet) हिसाब किताब, विवरण आदि पर विचार किया जाता है। इनके अतिरिक्त नए सदस्यो को सम्मिलित करन उपनियमावली म सशोधन करने तथा अन्य कई प्रकार के निणय भी लिए जाते हैं।

कार्यक्षेत्र

सामान्यत: ग्रामीण ऋण समितियाँ एक समिति 'एक गाँव' सिद्धान्त पर आधारित होती है किन्तु यदि गाँव का आकार छोटा हो तो एक से अधिक गाँव भी सम्मिलित किये जा सकते हैं। 'एक गाँव में एक समिति' की विचार धारा इस तथ्य पर आधारित है कि एक दूसरे की जानकारी के कारण सदस्य परस्पर नियंत्रण रख सकते हैं। इनका क्षेत्र सीमित रखने से कई लाभ हो सकते हैं। प्रथम समिति के चुनाव में उत्तम चरित्र के व्यक्तियों को प्रधानता दी जा सकती है। दूसरे समिति से प्राप्त ऋण के उपयोग की जानकारी आसानी से हो जाती है क्योंकि सभी सदस्य एक दूसरे को अच्छी तरह जानते हैं। तीसरे सदस्य को ऋण की आवश्यकता वास्तव में बताए गए कारण से है या नहीं अत: 'एक समिति एक गाँव' का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्राथमिक कृषि ऋणदात्री सहकारी समितियों का कार्य क्षेत्र बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए और न ही उसके सदस्यों की संख्या अधिक हो। प्राथमिक समिति का कार्यक्षेत्र ३-४ मील से अधिक का नहीं होना चाहिए और उसके अन्तर्गत ३,००० से अधिक आबादी नहीं होनी चाहिए। अर्थात् ५०० कृषक परिवार या ७०० ग्रामीण परिवारों से अधिक इनका कार्य क्षेत्र नहीं होना चाहिए।[1]

दायित्व

दायित्व की दृष्टि से सहकारी ग्राम साख समितियाँ सीमित अथवा असीमित दायित्व वाली दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं। भारत में सन् १९१२ के सहकारी अधिनियम के अनुसार समितियाँ सीमित और असीमित दायित्व के आधार पर बाँटी गई। सहकारी ऋण समितियों के दायित्व का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि समितियाँ अन्य लोगों तथा सरकार से भी सम्बन्ध रखती है। इनसे ऋण प्राप्त करती हैं जिनका भुगतान करना होता है। ऐसी स्थिति में यह पहले निश्चित करना आवश्यक है कि दायित्व किस प्रकार का होगा। समिति बन्द होने पर ऋण भार का दायित्व पूर्ण निश्चित करना पड़ता है।

असीमित दायित्व

असीमित दायित्व के अंतर्गत आवश्यकता पड़ने पर निजी धन से भी समिति के ऋण को पूरा करना पड़ता है। समिति जो ऋण प्रदान करती है उसमें यदि हानि हो जाती है तो लेनदारियों के भुगतान के लिए सदस्यों का दायित्व केवल उनके हिस्से तक ही सीमित नहीं होता है बल्कि उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति से भी अनुपात के अनुसार भुगतान करना पड़ता है।

असीमित दायित्व के पक्ष में तर्क

(१) असीमित दायित्व में ऋण प्राप्त करने में आसानी रहती है क्योंकि ऋण देने वाले को इससे अधिक सुरक्षा होती है। असीमित दायित्व के कारण समितियों का सभी तरफ विश्वास किया जाता है। मेक्लेगन समिति के अनुसार असीमित

1 सहकारी समाज, जयपुर, १९६८, सहकारी ऋण, पृष्ठ—२

दायित्व के कारण केन्द्रीय सहकारी सस्थाओ तथा अन्य बैंको का विश्वास वढ जाता है जिससे अनेक लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

(२) असीमित दायित्व आपसी जिम्मेदारी को वढावा देता है। सभी सदस्य सतर्क रहते हैं। और देख रेख की भावना जागृत होती है। यदि कोई सदस्य लापरवाही से काम कर रहा है तो उसे तुरन्त ही रोका जा सकता है।

(३) दायित्व असीमित होने के कारण सदस्य अधिक सावधान रहते है और प्रवन्ध समिति के लिए ऐसे व्यक्तियो का चुनाव करते हैं जो कि बहुत योग्य एव कुशल होते है। उचित प्रवन्ध हो जाने से समिति को हानि नही उठानी पडती है।

असीमित दायित्व वाली समितियो के विरुद्ध मे भी कुछ कहा जा सकता है। ऐसी समितियों मे सदस्यो को भय रहता है कि यदि नुकसान हो गया तो उसको व्यक्तिगत सम्पत्ति से भी भुगतान किया जायेगा अत कई लोग इसके सदस्य नही बनते। दूसरे, ये समितियाँ बहुत छोटे क्षेत्र तक फैली हो सकती है क्योकि सभी सदस्यो की आपसी, व्यक्तिगत जानकारी होनी आवश्यक है।

सीमित दायित्व

सीमित दायित्व का आशय है कि आवश्यकता पडने पर सदस्यो को निजी सम्पत्ति से समिति के ऋणो का भुगतान नही करना पडता वल्कि जितनी हिस्सा पूँजी उनके लिए है केवल उतने तक ही दायित्व सीमित है। जहाँ पर सहकारी समितियो का कार्य क्षेत्र विस्तृत होता है और सदस्यो मे पारस्परिक जानकारी नही होती वहाँ सामान्यतया दायित्व सीमित रखा जाता है।

सीमित दायित्व के पक्ष मे तर्क

(१) सीमित दायित्व मे सदस्यो को अधिक नुकसान नही उठाना पडता है। यदि किसी कारण से समितियो को निरन्तर हानि होती जा रही है तो सदस्यो को इसे निजी सम्पत्ति से पूरा करना वहुत बुरा लगता है। सीमित दायित्व होने के कारण दूसरो के द्वारा की गई गडबडी से अधिक नुकसान नहीं होता है बल्कि केवल अपने द्वारा लिये गये अश तक ही सीमित दायित्व होता है। अत सदस्य सख्या अधिक हो सकती है।

(२) असीमित दायित्व के कारण समितियाँ अपने सदस्यों को अधिक मात्रा मे ऋण दे देती हैं जबकि सीमित दायित्व मे ऐसा नही होता है। ऋण की मात्रा कम होने के कारण ये समितियाँ असफल नही होती हैं।

(३) जव व्यापार, व्यापार चक्रो (विशेषकर मन्दी) से प्रभावित होता है तो असीमित दायित्व मे कठिनाइयाँ वढ जाती है। व्यापारिक मदी से नुकसान अधिक होता है जिसे व्यक्तिगत सम्पत्ति से पूरा किया जाता है अत वहुत से व्यक्ति सदस्यता के लिए हिचकिचाते है। किन्तु यह कठिनाई सीमित दायित्व वाली समितियो मे नही पाई जाती है।

(४) असीमित दायित्व वाली समितियाँ असाधारणतया छोटे क्षेत्रो के लिए ही उपयुक्त रहती हैं। किन्तु कभी कभी छोटे क्षेत्र होने के कारण समितियो का

आकार अनार्थिक हो जाता है जिससे अनेक नुकसान हो सकते है ऐसी स्थिति म सीमित दायित्व महत्वपूण हो जाता है। सीमित दायित्व के कारण समितिया का आकार बड़ा किया जा सकता है।

यद्यपि असीमित व सीमित दायित्व वाली समितिया दोनो ही म गुण व दोष पाये जाते हैं। किन्तु ग्रामीण सहकारी साख समितियो का क्षत्र छोटा होता है अत य असीमित दायित्व वाली उपयुक्त रहती है। इस सम्बन्ध मे गाडगिल कृषि वित्त उप-समिति ने भी इन ग्रामीण सहकारी साख समितियो के असीमित दायित्व पर जोर दिया है।

निधियाँ (Funds)

सहकारी साख समितियो म धन का लेन देन होता है अत निधि की आवश्यकता पड़ती है। समिति के कोषो को कई भागो मे विभक्त किया जा सकता है। समिति के निजी कोष पर्याप्त न होने के कारण बाहरी स्रोतों पर आधारित रहना पड़ता है। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

(क) निजी निधियाँ (Owned Funds)

(i) अंश (Shares)

अंश सहकारी साख समितियो मे निधि प्राप्त करने के महत्वपूण स्रोत होते हैं। असीमित तथा सीमित दोनो ही दायित्वो वाली समितियो म अंश पूजी होती है। सामान्यता अंशों का मूल्य कम होता है और इसका भुगतान भी छोटी २ किश्तो मे किया जाता है अत सदस्यो को अधिक कठिनाई नहीं होती है। अंश पूजी कोई भी व्यक्ति जब तक सदस्य होता है वापस नही की जा सकती है।

(ii) संचित एव अन्य कोष (Reserve and other Funds)

निजी निधियो मे समिति के संचित कोष भी सम्मिलित हैं। सहकारी समिति अपने लाभ का कुछ प्रतिशत प्रतिवर्ष संचित कोष में जमा कर लेती है। इस संचित कोष में समिति म सदस्यता के लिए प्रवेश शुल्क भी सम्मिलित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त ब्याज तथा जब्त किय गये अंशो की राशि भी इसमे रखा जाता है। सहकारी साख समितियो म अन्य भी कई प्रकार के कोष रखे जाते हैं जैसे समाज कल्याण कोष विकास कोष आदि।

(ख) उधार ली हुई निधियाँ (Borrowed Funds)

ग्रामीण सहकारी साख समितियो म प्रारम्भ म निजी धन का अभाव पाया जाता है अत सदस्यो की आवश्यकता की पूर्ति नही हो पाती है। इसके लिए धन उधार लिया जाता है। सहकारी समिति की उधार लेने की क्षमता उसकी निजी निधि एव दायित्व पर निभर है। निजी निधि अधिक होती है तथा दायित्व असीमित होता है तो अधिक उधार मिल सकता है।

(ग) निक्षेप (Deposits)

निक्षेप गैर सदस्यो तथा सदस्यो दोनो से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। यदि

यदि इन समितियो मे पैसा लगाना अधिक सुरक्षित रहता है तो निक्षेप भी अधिक हो सकते है। कभी-कभी सदस्यो से अनिवार्य रूप से भी निक्षेप लिये जाते है।

(घ) अन्य (Others)

उपरोक्त स्रोतो के अतिरिक्त उपहार, भेंट तथा चंदे द्वारा भी निधियाँ प्राप्त की जा सकती है। इन स्रोतो से बहुत थोडी मात्रा मे धन प्राप्त होता है अत इन पर निर्भर रहना उचित नही है।

सहकारी साख समितियो के ऊपर लिखित स्रोतो मे सर्वश्रेष्ठ कौन सा है, इस विषय पर भी विचार करना आवश्यक है। सहकारी समितियो की निजी निधियाँ, ऋण निधियो से सर्वथा श्रेष्ठ है। निजी निधियो पर समिति का अधिकार होता है और इनसे *समिति की स्थिति सुन्दर होती है।* परन्तु सहकारी समिति के पास यदि निजी निधियो का अभाव है तो निक्षेप एव ऋण मे से किसी को अन्यथा दोनो को चुनना पडता है। निक्षेप कई कारणो से ऋण से उत्तम होते है। निक्षेप पर ब्याज की दर ऋण की अपेक्षा कम हुआ करती है। निक्षेप की मात्रा अधिक होने पर समिति मे विश्वास भी बढ जाता है। इसके अतिरिक्त निक्षेप की अवधि *समिति स्वय निर्धारित करती है जबकि ऋण की अवधि ऋण देने वाले निर्धारित* करते है। अत ऋण की तुलना मे निक्षेप उत्तम होते है। किन्तु कभी-कभी अधिक धन की आवश्यकता पडती है जिसके लिए ऋण लेना पडता है।

ऋण (Loans)

ग्रामीण सहकारी साख समितियो का मुख्य कार्य अपने सदस्यो को ऋण प्रदान करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन समितियो को अपनी ऋण नीति निर्धारित करनी पडती है। यह नीति इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए कि सदस्यो को आवश्यकता पडने पर आसानी से कम ब्याज की दर पर ऋण उपलब्ध हो सके। किन्तु प्रत्येक सहकारी समिति को उधार दिये जाने वाले धन की सुरक्षा का ध्यान रखना आवश्यक होता है। उधार देने की नीति मे कुछ सिद्धान्त लागू करने चाहिए। प्रथम, ऋण जहा तक हो सके उत्पादक कार्यों के लिए ही दिया जाना चाहिए। द्वितीय ऋण की अदायगी उचित एव नियमित होनी चाहिए। तृतीय उधार लेने वाले ऋण उसी काम मे ले जिसके लिए उधार लिया गया है। *मेकलगन समिति ने भी इन बातो पर विशेष बल दिया था।*[1]

ऋण स्वीकार करने मे पूर्व सदस्य की सम्पत्ति के विवरण को देखा जाता है जिसके आधार पर ऋण सीमा निर्धारित की जाती है। इसी सीमा के अन्दर ऋण प्रदान किये जाते है। वैसे विभिन्न राज्यो मे ऋण सीमा निर्धारित करने की भिन्न भिन्न व्यवस्थाये है। सम्पत्ति के अतिरिक्त सदस्य के चरित्र, ईमानदारी आदि गुणो पर भी ध्यान दिया जाता है।

---

1. एडवर्ड मेकलेगन समिति 1914 मे गठित हुई जिसने अपनी रिपोर्ट 1915 मे दी थी।

सुरक्षा (Security)

सहकारी समितियाँ जो ऋण प्रदान करती है उसकी सुरक्षा की तरफ ध्यान देना आवश्यक है। सहकारिता में व्यक्तिगत सुरक्षा बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है क्योंकि इमानदारी इसका महत्वपूर्ण लक्षण है। किन्तु सहकारी समितियों को व्यवहार में बंधक सुरक्षा का सहारा लेना पड़ता है। भारत में कृषि वित्त उप-समिति तथा सहकारी आयोजन समितियों ने भी ऋण देने में व्यक्तिगत सुरक्षा, साख योग्यता और धन वापस लौटाने की क्षमता पर विचार करने पर जोर दिया है। व्यक्तिगत सुरक्षा के अतिरिक्त अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को बंधक रखकर भी ऋण प्रदान किये जाते हैं। ग्रामीण सहकारी साख समितियाँ फसलों को बंधक रख कर भी ऋण प्रदान करती है। ऋण की सुरक्षा के लिये फसल पर समिति का अधिकार होता है। अतः ऋण सुरक्षित हो जाते हैं।

पहले सहकारी ऋण के लिये अचल सम्पत्ति को अमानत के रूप में रखा जाता था। व्यक्तिगत जमानत में एक-दो सदस्यों की जमानत आवश्यक थी। किन्तु आजकल सदस्यों की उत्पादन कार्यों के आधार पर और उनके ऋण चुका देने की क्षमता के अनुसार प्रदान किये जाते हैं।

ब्याज दर (Interest rate)

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की दृष्टि से किसानों को उचित ब्याज की दर पर ऋण दिया जाना चाहिये। ब्याज की दर न तो अधिक ऊँची होनी चाहिए और न अधिक नीची। ऊँची ब्याज दर होने से किसानों को अधिक नुकसान होगा अर्थात् सहकारी साख का लक्ष्य भी पूरा नहीं होगा। दूसरी तरफ यदि ब्याज दर बहुत नीची रखी जाती है तो इससे समिति को अधिक नुकसान होने की सम्भावना रहती है। अतः उचित ब्याज दर होनी चाहिए। ब्याज दर निर्धारण में केन्द्रीय सहकारी बैंक की ब्याज दर पर भी विचार किया जाता है और इसके अतिरिक्त समिति के प्रबन्ध व्यय आदि का ध्यान में रखकर ब्याज का निर्धारण किया जाता है। ब्याज की दर निश्चय ही अनेक कारणों से निर्धारित होती है जिसमें कोष निर्माण करने की दर व विभिन्न स्तरों पर रखे जाने वाले लाभांश व व्यवस्थापकीय व्यय आदि होते हैं। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा कृषि उत्पादन वृद्धि के लिये राज्य सहकारी बैंकों को वित्तीय साधनों की उपलब्धि कराकर महत्वपूर्ण योग दिया गया है। रिजर्व बैंक द्वारा फसली ऋण आवश्यकताओं और उपज की बिक्री के लिये राज्य सहकारी बैंकों को ऋण, बैंक ब्याज दर से दो प्रतिशत कम पर दिया जाता है। रिजर्व बैंक द्वारा उठाये गये इस कदम से अन्तिम ऋण प्राप्तकर्त्ता से कम ब्याज दर लेने में बहुत सहायता मिलती है।"[1]

ऋण की वापसी
(Repayment of the loans)

ग्रामीण सहकारी साख समितियों के सामने सदस्यों द्वारा ऋण की वापसी की बहुत बड़ी समस्या है। इस समस्या का हल अदायगी में नियमितता है। ऋण की

1. सहकारी समाज, जयपुर, १९६८ सहकारी ऋण पृष्ठ—४

वापसी मे देरी या तो जानबूझ कर की जा सकती है या किन्ही कारणों से। जो ऋण फसलो के ऊपर लिया जाता है वह फसलो के तैयार होने पर वापिस हो जाना चाहिए। कभी-कभी लिया गया ऋण अन्य कार्यों के प्रयोग मे ले लिया जाता है जिससे समय पर वापसी नही हो पाती।

भारतवर्ष मे ग्रामीण सहकारी साख समितियो के बकाया मे बहुत बढोत्तरी होती जा रही है। भारत मे सन् १९५०-५१ मे कृषि ऋण समिति का सदस्यो पर देय तिथि के बाद (Overdues) बकाया ऋण कुल बकाया ऋण (Out Standues) का २२% था जो कि १९५५-५६ मे बढकर २५% हो गया। सन् १९६१-६२ मे इसका भाग २४.५% हो गया। इस बढोत्तरी को रोकने के लिये कई बातो पर विचार करना होगा। प्रथम, ऋण उत्पादन कार्यों के लिये ही दिये जाए। द्वितीय, जो ऋण प्रदान किये गये है उनका उसी कार्य मे प्रयोग हुआ है या नही जिसके लिये ऋण दिया गया था। तीसरे, सहकारी ऋण को क्रय-विक्रय के साथ जोडना अधिक अच्छा रहता है। इनके अतिरिक्त, कुशल प्रबंध व सदस्यों की ईमानदारी आदि पर भी विचार करना उचित होता है।

अकेक्षण एवं देखरेख (*Audit and supervision*)

सहकारी समितियो के रजिस्ट्रार के प्रमुख कार्यों मे अकेक्षण भी एक है। यद्यपि रजिस्ट्रार यह कार्य अपने से नीचे के अधिकारियो को दे सकता है अथवा किसी बाहरी संस्था को भी दे सकता है। मद्रास समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि अकेक्षक कार्य को विभागीय अधिकारी ही सम्पन्न करे। इस समिति ने विभाग के प्रशासनिक एवं अकेक्षण अलग-अलग उप-विभाग बनाने पर बल दिया है।[1]

ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति तथा सहकारी कानून समिति (१९५७) ने भी अकेक्षण की जिम्मेदारी रजिस्ट्रार पर ही रखी है। सहकारी कानून समिति (Committee on cooperative law) ने सुझाव दिया है कि यदि आवश्यकता पडती है तो विभाग मे अलग-अलग अकेक्षण की इकाई स्थापित की जानी चाहिए जिनका अधिकारी मुख्य अकेक्षक (Chief-Auditor) होगा और ये इकाई रजिस्ट्रार के नियन्त्रण मे कार्य करेगी। रजिस्ट्रारो की पन्द्रहवी कॉन्फ्रेन्स मे भी इस नतीजे पर पहुँच गया कि प्रधान अकेक्षक और रजिस्ट्रार के नीचे एक विशेष कार्यालय होना चाहिए जो कि अकेक्षण कार्य करे।[2]

सहकारी समितियो के अकेक्षण के लिये कुछ विद्वानो ने स्वतन्त्र अकेक्षण पर भी बल दिया है। रॉयल कमीशन ने इस विचार धारा को गलत बताया है। और कहा है कि सरकार को शिक्षा पर अधिक व्यय करना चाहिए न कि अकेक्षण पर।[3] सहकारी आयोजन समिति (*The Cooperative Planning Committee*) ने सुझाव दिया है कि एक अकेक्षक के पास ५० समितियाँ होनी चाहिये। किन्तु व्यवहार मे यह संख्या अधिक होती है भारत मे भिन्न-भिन्न राज्यो मे अलग-अलग

---

1 Madras, report of the committee on co-operation, *1939 40 page 315*
2 India, Proceedings of the fifteenth conference of registrars page 199.
3 Royal Commission on Agriculture, Report page 53

सस्थाएँ है। इस सम्बन्ध मे अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने कहा है कि अकेक्षक एक तरफ तो बहुत कम है और दूसरी तरफ वे प्रशिक्षित भी नहीं है। इसके कारण प्रतिवर्ष अनेकों समितियाँ बिना अकेक्षण के ही रह जाती है। उदाहरण स्वरूप वर्ष १९६०-६१ मे लगभग २७,८०० कृषि साख समितियाँ बिना अकेक्षण के रह गयी।

मिर्धा समिति (१९६४) के अनुसार अकेक्षको का कर्तव्य है कि वे ऐसी घटनाओ की सूचनाएँ दे जिससे कानून, नियम अथवा उपविधियों के प्रावधानो का उल्लघन हुआ हो, रोकड की बाकी की जाँच तथा लेखो की शुद्धता का प्रामाणीकरण करे, देखें कि ऋण उचित रूप के उचित अवधि एव उद्देश्यो के लिये आवश्यक एव पूर्ण जमानत के दिये जाते है, भुगतानो की जाँच किताबी जमा खर्च अथवा अनुचित अवधि वृद्धि की रोक हेतु प्रयत्न करें और साधारणतया यह देखे कि समिति सुदृढ नीतियों पर कार्य कर रही है एव कमेटी अधिकारी तथा साधारण सदस्य अपने कर्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो को समझते है।[1]

अकेक्षण के अतिरिक्त इन ग्रामीण सहकारी साख समितियो की देख रेख भी आवश्यक है। सरैया समिति के सुझाव के अनुसार २५ सहकारी समितियों के लिये एक देख रेख वाला व्यक्ति (Supervisor) होना चाहिये जबकि मद्रास समिति ने १५ समितियो के लिये एक व्यक्ति का सुझाव दिया है।[2] किन्तु सहकारी विकास योजनाओ के अनुसार प्रत्येक १५ बडे आकार की समितियो के लिये एक व्यक्ति देख-रेख करे तथा प्रत्येक २५ छोट आकार की समितियो व अन्य समितियों के लिये एक व्यक्ति कार्य करे। देख-रेख का कार्य सघीय समितियो द्वारा किया जाता है। प्राथमिक समितियों की देख-रेख का कार्य अधिकाश राज्यो मे केन्द्रीय सहकारी बैंको द्वारा किया जाता है।

लाभ वितरण (*Distribution of Profit*)

सहकारी समितियो के सन् १९१२ के अधिनियम के अन्तर्गत इस सम्बन्ध मे कुछ नियम हैं। इस अधिनियम के आधार पर शुद्ध लाभ का एक चौथाई सचित कोष (Reserve fund) मे रखने के पश्चात् शेष लाभ को समिति के पूर्व निर्धारित नियमों के आधार पर सदस्यो को बांटा जा सकता है। इस अधिनियम मे असीमित दायित्व वाली समितिया के लिये लाभ वितरण पर रोक है। अधिनियम मे यह बताया गया है कि इन समितियो मे लाभ वितरण करने से पूर्व स्थानीय सरकार (Local Government) की स्वीकृति आवश्यक है। इस अधिनियम मे जन हित के लिये भी धन लगाने की सीमा निर्धारित है। कोई पजीकृत समिति पूर्व पजीयन अधिकारी की सहमति से लाभ का एक चौथाई भाग सचित कोष मे रखने के पश्चात् १०% लाभ का भाग जनहित कार्यो मे लगा सकती है।

भारत मे ग्रामीण सहकारी साख समितियो की प्रगति
(Progress of Rural Cooperative Credit Societies in India)

ग्रामीण सहकारी साख समितियो मे कृषि साख समितियाँ प्रमुख हैं। वैसे

1 Mirdha Committee Report, page 63
2 Report of the Cooperative planning Committee page 20.

ग्रामीण साख समितियो मे अकृषीय साख समितिया भी आती हैं। किन्तु उनके बारे मे अलग से आँकडे उपलब्ध नही हैं। व्यापार की मात्रा तथा सख्या की दृष्टि से इनका महत्त्वपूर्ण स्थान नही है। श्री एफ० बी० वेस (Shri F B Wace) न कहा है कि ये समितियाँ सामायतया असफल रही हैं। क्योकि इनके सदस्यो के पास कम सम्पत्ति व अनिश्चित आय रही है और सदस्यों का शैक्षणिक स्तर भी नीचा रहा है।[1] कृषि साख समितियो की प्रगति का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

प्राथमिक कृषि साख समितिया भारत मे सहकारी आदोलन महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ से इन समितिया की सख्या और सदस्य सख्या म पर्याप्त वृद्धि हुई है। जून १९६६ के अ त तक भारत मे इस प्रकार की लगभग १ १२ लाख समितिया थी जिनकी सदस्य सख्या लगभग २७ मिलियन थी। इन समितियो ने सहकारी वष १९६५ ६६ मे लगभग ३३८ करोड रुपये का ऋण अपने सदस्यो को प्रदान किया। नीचे तालिका म प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ की प्रगति दी गई है।

प्राथमिक कृषि साख समितिया (अखिल भारत)

वष	समितियो की सख्या (लाखो मे)	सदस्यता (लाखो मे)	हिस्सा पजी (करोड रुपये)	ऋण प्रदान किये (करोड रुपय)
१९५० ५१	१ ०५	४४ ०८	७ ६१	२२ ९०
१९५५ ५६	१ ६०	७७ ९१	१६ ८०	४९ ६२
	(५२ ४)	(७६ ७)	(१२० ८१)	(११६ ७)
१९६० ६१	२ १२	१७० ४१	५७ ७५	२०२ ७५
	(३२ ५)	(११८ ७)	(२४३ ८)	(३०८ ६)
१९६५ ६६	१ ९२	२६१ ३५	११५ ३२	३३७ ९४
	(९ ४)	(५३ ७)	(९७ ७)	(६६ ६)

(कोष्ठक म दी गयी सख्या पाच वर्षो म वृद्धि की प्रतिशत है।) Source—Indian Co operative Review Jan 1969 page 285

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि वष १९५० ५१ की तुलना म वष १९५५ ५६ म समितियो की सख्या तथा सदस्यता म क्रमश ५२ ४% और ७६ ७% की वृद्धि हुई है। १९६० ६१ म पुन इन दोनो मे पर्याप्त वृद्धि हुई। किन्तु वष १९६५ ६६ म समितियो की सख्या मे कुछ कमी हुई जबकि सदस्य सख्या म वृद्धि हुई है। अश पूजी तथा प्रदान किये गये ऋण म भी पर्याप्त वृद्धि हुई है।

वष १९६८ ६९ मे इस प्रकार की सहकारी समितियो की सदस्य सख्या ३० मिलियन होने का अनुमान लगाया गया है जबकि चतुथ पचवर्षीय योजना के अतिम वष (१९७३ ७४) मे यह सख्या ४२ मिलियन हो जायेगी।[2] वतमान समय

1 Punjab Report on Co-operative Movement 1939 page 124
2 Fourth five year plan 1969—74 Draft page 167

में इन समितियों में प्रभावित ४५% किसान परिवार हैं जो कि वर्ष १९७३-७४ में ६०% हो जायेंगे। वर्तमान समय में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है कि इन सहकारी समितियों को पुनर्संगठित किया जाये। मरैया समिति तथा अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति प्रतिवेदन में इन सहकारी समितियों के पुनर्संगठन पर विशेष ध्यान दिया गया है। आजकल बड़े आकार की समितियाँ बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। यही कारण था कि सन १९६५-६६ में इन समितियों की संख्या में ९.४% की कमी हुई जब कि सदस्य संख्या, हिस्सा पूंजी तथा ऋण की मात्रा में क्रमशः ५३.७%, ९७.७% और ६६.६% की वृद्धि हुई।

ग्रामीण सहकारी साख समितियों की मंद प्रगति के कारण

भारत में यद्यपि ग्रामीण कृषि साख समितियों ने उन्नति की है किन्तु फिर भी यह सन्तोषजनक नहीं है। तेजगति से विकास न होने के अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु उनमें से मुख्य कुछ निम्नलिखित हैं—

(१) किसानों का अशिक्षित होना :

भारत में ग्रामीण साख समितियों के विकास में सबसे बड़ी बाधा कृषकों की अशिक्षा है। समितियों के सदस्य इनके नियमों आदि के विषय में भिज्ञ नहीं होते हैं। बहुत से लोग सहकारिता की विचारधारा से भी परिचित नहीं होते हैं। इसके लिये सरकार को शिक्षा का विस्तार करना चाहिये जिसमें सहकारिता की शिक्षा भी दी जाये। किसान इस प्रकार के आन्दोलन से अधिक से अधिक लाभ तभी उठा सकते हैं जबकि उनको सहकारिता की पूर्ण जानकारी हो।

(२) धन की कमी :

सहकारी साख समितियों की सफलता के लिये धन की मात्रा सन्तोषजनक होनी चाहिये। भारत में अनेकों कारणों से ग्रामीण साख समितियों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। ऐसी स्थिति में वे ग्रामीणों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती हैं। समितियों के सदस्य पर्याप्त मात्रा में धन जमा करा सकने में असमर्थ होते हैं अतः इन समितियों को केन्द्रीय सहकारी बैंकों पर निर्भर रहना पड़ता है। किन्तु केन्द्रीय बैंकों से भी पर्याप्त मात्रा में धन समय पर नहीं मिल पाता है अतः अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं।

(३) कुशल कार्यकर्ताओं की अपर्याप्तता :

कुशल, अनुभवी एवं योग्य व्यक्तियों से ही प्रबन्ध कुशलपूर्वक चलाया जा सकता है। भारत में सहकारी समितियों के प्रबन्ध कार्य में लगे कर्मचारी प्रशिक्षित नहीं हैं अतः उनमें कुशलता का अभाव है। समितियों की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण वैतनिक कर्मचारियों की भी कमी रहती है। ऐसी स्थिति में उचित हिसाब-किताब तथा पत्र व्यवहार भी नहीं हो सकता है। अतः सहकारी समितियाँ इन कमी के कारण हानि उठा रही हैं और अविकसित अवस्था में हैं।

(४) महाजनों से प्रतियोगिता :

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महाजनों का प्रभाव है। महाजन अनेक गलत कार्यों से समितियों के सदस्यों में फूट डालते हैं और स्वयं लाभ उठाते हैं। इधर

समितियाँ धनाभाव में इनकी प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाती हैं। यदि सहकारी समितियों की प्रबन्ध व्यवस्था में सुधार हो जाये और वित्तीय साधनों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो जाये तो इस कठिनाई का मुकाबला किया जा सकता है।

(५) ब्याज की ऊँची दर

ग्रामीण सहकारी समितियों द्वारा जो ब्याज दर ली जाती है वह बहुत ऊँची है। हमारे देश में ७½% से ९½% ब्याज दर वसूल की जाती है। सदस्यों को यह ब्याज दर-लाभकारी नहीं होती है। रिजर्व बैंक इन समितियों को सस्ती ब्याज दर पर पैसा देती है अत इन्हें भी नीची ब्याज दर पर पैसा देना चाहिये। ब्याज की उपयुक्त दर ६% हो सकती है।

(६) जमानत की कठिनाई .

समितियों से ऋण प्राप्त करने के लिये निजी सम्पत्ति अथवा दो सदस्यों की जमानत आवश्यक होती है। कुछ किसान जो छोटे होते हैं और जिनके पास भूमि भी नहीं है वे इस आन्दोलन का लाभ नहीं उठा सकते हैं। सम्पत्ति के अभाव में वे जमानत नहीं रख सकते और फलत उन्हें ऋण भी नहीं मिल सकता। ऐसी स्थिति में केवल बड़े किसानों को ही ऋण उपलब्ध हो सकता है।

(७) असीमित दायित्व :

ग्रामीण साख समितियों में सदस्यों के दायित्व असीमित होने के कारण हानि से लोग डरते हैं अत अधिक सदस्य नहीं बन पाते।

उक्त कारणों से भारतीय ग्रामीण सहकारी साख समितियाँ अधिक विकास नहीं कर पायी। ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति के सुझावों के पश्चात् हमारे देश में इन समितियों ने कुछ प्रगति की है द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में इन सुझावों के आधार पर आगे बढा गया। वर्तमान समय में इन पर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा राज्य सरकारों से सहकारी समितियों को ऋण प्रदान किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में रिजर्व बैंक का कार्य बहुत सराहनीय है। इसने राष्ट्रीय कृषि साख कोषों की स्थापना की है जिनसे राज्य सरकारी बैंकों और केन्द्रीय सहकारी बैंकों को अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण प्राप्त होता है। इन बैंकों से ग्रामीण सहकारी बैंकों को ऋण प्राप्त होता है। आशा है भविष्य में ग्रामीण सहकारी साख समितियों की अधिक तेजगति से प्रगति होगी।

आल इण्डिया रूरल क्रेडिट रिव्यू कमेटी रिपोर्ट १९६९ के सुझाव —

(१) प्राथमिक स्तर पर सहकारी साख समितियों को सुदृढ तथा सक्षम बनाना आवश्यक है। यह कार्य चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रथम दो वर्षों में पूर्ण हो जाना चाहिए।

(२) कृषि साख-समिति के अन्तर्गत ३००० जनसंख्या की सीमा नहीं होनी चाहिए। इस समिति के कार्यक्षेत्र में ३००० से अधिक जनसंख्या भी हो सकती है और इस सम्बन्ध में सीमा निर्धारित नहीं होनी चाहिये।

(३) एक सक्षम प्राथमिक कृषि साख समिति के व्यापार की मात्रा इतनी

होनी चाहिए कि वह समिति अपने कार्यों को अच्छी तरह से कर सके। इस सम्बन्ध मे यह भी आवश्यक है कि समिति का क्षेत्र इतना बड़ा भी होना चाहिए जिससे किसानों को इनकी सुवधायें प्राप्त करने मे कठिनाई हो।

(४) समितियाँ केवल अधिक साख सुविधायें एवं वितरण सुविधायें ही प्रदान न करें बल्कि निपेक्षों का उचित उपयोग करें और सेवाओं को व्यापक रूप प्रदान करें।

(५) सभी राज्यो ने कृषि साख समितियों को सीमित दायित्व वाली समितियो में परिवर्तन किया जाए।

(६) प्राथमिक समितियाँ पूर्वापेक्षा ग्रामीण संस्थानों के उपयोग के लिये अधिक प्रयत्न करें। ये समितियाँ इस स्थिति में आ जायें कि अपने कार्य क्षेत्र से विभिन्न प्रकार के निक्षेपों को स्वीकार कर सकें और सभी प्रकार की बैंकिंग सुविधाएँ प्रदान कर सकें।

(७) कृषि साख समितियों को केन्द्रीय समितियाँ विशेष प्रकार की साख प्रदान कर सकती हैं जिससे उवरक आय कृषि के लिए आवश्यक वस्तुएँ, उपभोक्ता वस्तुएँ आदि के लिए वित्त, प्रदान किया जा सके।

प्रश्न

१. ग्रामीण सहकारी साख समितियों के विषय मे आप क्या जानते हैं ? ग्रामीण क्षेत्रों मे साख प्रदान करने मे ये कहाँ तक सफल रही हैं ?

२. ग्रामीण सहकारी साख समितियों की निधियों के कौन कौन से स्रोत हैं ? निधियों के विभिन्न स्रोतों में कौन सा सर्वश्रेष्ठ है ?

३. ग्रामीण सहकारी साख आन्दोलन की धीमी प्रगति के क्या कारण हैं ? सुधार के सुझाव दीजिए।

४. सन् १९५० से ग्रामीण सहकारी साख समितियों ने क्या प्रगति की है ? क्या इनका कार्य संतोषजनक है ? इनमें आप क्या सुधार करना चाहते हैं ?

५. भारत मे कृषि साख सहकारी समितियों के क्या कार्य हैं ? इनकी धीमी प्रगति के क्या कारण हैं ?

६. भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे ग्रामीण सहकारी साख समितियों का क्या महत्व है ? इनके विकास के मार्ग मे क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं ? इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए अपने सुझाव दीजिये।

8

केन्द्रीय सहकारी बैंक
(Central Co-operative Banks)

केन्द्रीय सहकारी बैंक मध्यस्तरीय सहकारी समितियाँ हैं। ये प्रारम्भिक सहकारी समितियों और शीर्ष सहकारी बैंकों के मध्य एक कड़ी का काम करती हैं। सामान्यतया व जिलास्तर पर कार्य करती है। अतः इन्हें जिला सहकारी बैंक (District Co operative Bank) भी कहा जाता है। केन्द्रीय बैंक जिला स्तर पर ऋण नीति का समन्वय व ऋण प्राप्ति के लिए कार्यक्रम बनाती हैं। भारत में सन् १९०४ के सहकारी अधिनियम में इस प्रकार की सहकारी समितियों को कोई वैधानिक मान्यता नहीं थी। किन्तु जब द्वितीय सहकारी अधिनियम पारित हुआ तब केन्द्रीय सहकारी बैंकों की व्यवस्था की गयी। इनकी स्थापना के पूर्व यह विचारधारा व्याप्त थी कि ग्रामीण सहकारी साख समितियों की वित्तीय आवश्यकताएँ स्थानीय जमा से ही पूर्ण हो जायेंगी। किन्तु स्थानीय जमा पर्याप्त मात्रा में न उपलब्ध होने के कारण अन्य व्यक्तियों से ऋण प्राप्त किया गया। इस कठिनाई के दूर करने के लिये केन्द्रीय वित्त संस्था बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है। सन् १९१२ के अधिनियम में ऐसी व्यवस्था के लिये केन्द्रीय बैंक स्थापित करने की भी व्यवस्था की गयी। फलतः देश के अनेक भागों में केन्द्रीय सहकारी बैंक स्थापित हो गये। इस नये अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गयी कि इन संस्थाओं का दायित्व सीमित होगा।

आधुनिक विचारधारा में मध्य स्तरीय संस्थाओं और व्यक्तियों को उपयुक्त नहीं माना जाता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि केन्द्रीय सहकारी बैंक भी मध्यस्तरीय होने के कारण इनकी आवश्यकता नहीं है। उनका मत है कि इन संस्थाओं के कारण ग्रामीण साख समितियों को ऋण उपलब्ध होने में अनुचित समय लगता है। इसके अलावा, इन संस्थाओं के कारण ब्याज दर भी ऊँची हो जाती है। अतः माध्यमिक स्रोत को समाप्त कर देना चाहिए किन्तु केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अनेक महत्वपूर्ण कार्यों के कारण उनको समाप्त करना उचित नहीं है। सहकारी आन्दोलन की अच्छी प्रगति के लिये जनता और संघ में अधिक दूरी नहीं होनी

चाहिये। यह दूरी इन्ही बैंको के माध्यम से दूर की जा सकती है। ये समितियाँ अपने से नीचे की समितियो मे उचित समन्वय रखती हैं। व्यवहार मे प्राथमिक सहकारी साख समितियों को शीर्ष बैंको तक सीधे पहुँचने मे अनेक कठिनाइयाँ आ सकती है जिनके कारण समितियो को देख रेख तथा ऋण प्राप्ति मे कठिनाइयाँ आ सकती है।

वर्गीकरण

केन्द्रीय सहकारी साख समितियो का वर्गीकरण सर एडवर्ड मेकलेगन समिति (Maclagan Committee) के प्रतिवेदन के आधार पर किया गया है। इस समिति मे निम्नलिखित वर्गीकरण किया है —

(१) प्रथम प्रकार की केन्द्रीय सहकारी बैंको मे केवल व्यक्ति सदस्य हो सकते है।

(२) दूसरे प्रकार की केन्द्रीय बैंको मे केवल समितियाँ ही सदस्य हो सकती हैं।

(३) तीसरे, जिनमे समितियाँ और दोनो ही सदस्य बन सकते हैं।

इन तीनो प्रकार की समितियो मे सर्वप्रथम १९१५ मे प्रथम प्रकार की केन्द्रीय बैंक स्थापित हुई जिनम कि सदस्य केवल व्यक्ति थे। ये समितियाँ अधिक सफल नहीं हो सकीं और सन् १९३० तक समाप्त हो गयी। दूसरे प्रकार की सहकारी साख समितियो मे सदस्य केवल सहकारी साख समितियाँ ही है जिनका समन्वय ये बैंक करते है। प्राथमिक ग्रामीण साख समितियो के ये सघ के रूप मे हैं। तृतीय केन्द्रीय बैंको मे सदस्य व्यक्ति और समितियाँ दोनो होते हैं। भारत मे सर्वाधिक इसी प्रकार के केन्द्रीय सहकारी बैंक हैं। सहकारी साख समितियो को पर्याप्त मात्रा मे प्रतिनिधित्व करने का अवसर प्रदान किया जाता है। सहकारी सिद्धान्तो को ध्यान मे रखते हुये सघीय आकार की सहकारी समिति उपयुक्त है। मेकलेगन समिति ने व्यक्तिगत सदस्यता को अनुचित ठहराया।[1] मद्रास समिति (Madras Committee) ने भी व्यक्तिगत हिस्सेदारी की समाप्ति पर जोर दिया।[2]

केन्द्रीय सहकारी बैंको का आधार

(Size of Central Cooperative Society)

केन्द्रीय सहकारी बैंको का आकार ऐसा होना चाहिए कि वे जनता मे विश्वास पैदा कर सकें तथा ये बैंक व्यापारिक बैंको से प्रतिस्पर्धा कर सकें। ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति तथा अन्य समितियों ने सुझाव दिया है कि आकार को ध्यान मे रख कर एक जिले मे एक केन्द्रीय सहकारी बैंक होनी चाहिये। रिजर्व बैंक की वर्तमान परामर्श दात्री समिति (Reserve Banks Standing Advisory Committee an Agricultural Credit) ने सुझाव दिया था कि इन समितियो की कार्यशील पूँजी २० से २५ लाख रुपये तक होनी चाहिये और चुकता पूँजी, हिस्सा पूँजी और संचित कोष लगभग ३ लाख रुपये होने चाहिये।

---

1. Report of the Committee an Cooperation in India Page 32
2. Madras, Report of Committee on Cooperation, 1939-4-p 1920.

उद्देश्य

केन्द्रीय सहकारी बैंक निम्नलिखित उद्देश्यो की पूर्ति के लिये स्थापित किये जाते हैं —

(१) प्राथमिक सहकारी साख समितियो को आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्दश्य से इन समितियो का निर्माण किया जाता है। जैसा कि पूव कहा जा चुका है। प्राथमिक सहकारी समितियो के वित्तीय साधन सतोषजनक नही होते अत बाहरी साधनो पर आधारित रहना पडता है। बाहरी साधनो मे इस प्रकार के बैंक महत्व-पूण हो सकते हैं।

(२) सदस्यो को उचित व सुविधाजनक शर्तों पर ऋण देने की आवश्यकता होती है अत निधियाँ एकत्र करने के उद्देश्य से इन समितियो का निर्माण किया जाता है।

(३) तृतीय महत्वपूर्ण उद्देश्य है समन्वय का प्राथमिक सहकारी साख समितियो के लिये यह आवश्यक था कि नजदीक से देख रेख के लिये उनके सम्बन्धित कोई सघीय इकाई हो। इन समितियों के समन्वय (Coordination) के लिये केन्द्रीय सहकारी बैंको का निर्माण किया गया।

(४) सम्बन्धित सभी सहकारी समितियो के निरीक्षण एव पर्यवेक्षण (Inspection and Supervision) की व्यवस्था करना भी प्रमुख उद्दश्य है।

(५) केन्द्रीय सहकारी बैंक मितव्ययिता को प्रोत्साहन देते हैं। सदस्य समितियो तथा अन्य लोगो की बचत के लिये प्रोत्साहन भी इनसे प्राप्त होता है।

(६) सहकारी आन्दोलन के विकास मे सहयोग प्राप्त करने के उद्दश्य से भी इन समितियो की स्थापना की गई है।

कार्य क्षेत्र

केन्द्रीय सहकारी बैंको का काय क्षेत्र निश्चित करने से पूव इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वह कुशल आर्थिक इकाई बन सके। बैंक का व्यवसाय इतना होना चाहिये कि वह पर्याप्त मात्रा मे कमचारी रख सके और व्यय को वहन कर सके। इन बैंको का कार्य क्षत्र इतना बडा भी नही होना चाहिए कि ये प्राथमिक समितियो की आवश्यकताओ की पूर्ति न कर सकें और जिन उद्दयों की पूर्ति के लिए स्थापना की गयी है, पूण न कर सकें।

मेकलेगन समिति (Meclagan committee) के अनुसार इन बैंको का कार्य-क्षेत्र इतना होना चाहिये कि वे सुविधापूवतक तथा कुशलतापूवक काय कर सकें। भारतवष मे गुजरात, महाराष्ट्र म समितियो का कायक्षत्र बडा है जबकि पजाब, बिहार, उत्तर प्रदेश और उडीसा मे इनका कायक्षेत्र अपेक्षाकृत कम है। मद्रास म सामान्यतया क्षेत्र एक राजस्व जिला (Revenue district) है।[1] पजाब मध्य प्रदेश, बिहार, उडीसा और पश्चिमी बगाल मे आजकल केन्द्रीय बैंको का कायक्षेत्र अधिक

1 Madras, Report of Committee an cooperation 1939-40 p 216

किया जा रहा है क्योंकि इन राज्यो मे एक जिले से भी कम कार्य क्षेत्र पड़ता है। रिजर्व बैंक के सुझाव के आधार पर इन राज्यो मे एक जिले में एक केन्द्रीय सहकारी बैंक स्थापित की जा रही है।[2]

केन्द्रीय सहकारी बैंक के कार्य

(Functions of central cooperative banks)

केन्द्रीय सहकारी बैंक के निम्नलिखित कार्य हैं—

(१) केन्द्रीय सहकारी बैंक अपनी सदस्य सहकारी समितियों को उचित व नीची ब्याज दर पर ऋण प्रदान करते है। भारत मे प्रारम्भिक सहकारी साख समितियो की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उचित ब्याज दर पर उनको बाहरी निधियो की आवश्यकता पडती है। जिसकी पूर्ति इन बैंको द्वारा की जाती है।

(२) ये बैंक सहकारी समितिया मे सन्तुलन केन्द्र के रूप मे कार्य करती है। जिन समितियों के पास अधिक मात्रा में धन होता है उसे जमा करती है और जिनको आवश्यकता होती है उन्हें प्रदान करती है। इस प्रकार दोनों प्रकार की समितियो के मध्य सन्तुलन कर्ता का कार्य करते हैं।

(३) ये गैर सदस्यो से भी जमा स्वीकार करते है और उसे आवश्यकता वाली सदस्य समितियो को प्रदान कर देती है। इससे बचत को प्रोत्साहन मिलता है।

(४) केन्द्रीय सहकारी समितियो का प्रमुख कार्य पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण भी है। सदस्य समितियों का समय-समय पर निरीक्षण एव देख रेख इन्ही के द्वारा की जाती है। इस कार्य की पूर्ति होने से समन्वय सम्भव हो सकता है जो कि सहकारी आन्दोलन की सफलता का महत्वपूर्ण अग है।

(५) केन्द्रीय सहकारी बैंक सामान्य बैंकिग कार्य भी सम्पन्न करती है। सामान्य बैंकिग कार्यो मे धनादेश, हुण्डी एवं रेलवे रसीद आदि का एकत्र करना तथा हुण्डी ड्राफ्ट आदि जारी करना है। ये बैंक फसल तथा जेवर को बन्धक रख कर व्यक्ति सदस्यो को ऋण भी प्रदान कर सकती हैं।

(६) यदि किसी स्थान पर शीर्ष बैंक नही है तो वहाँ रजिस्ट्रार की आज्ञा से पारस्परिक लेन देन करना भी इन बैंको का कार्य है।

(७) ये बैंक आवश्यकता पडने पर अपनी सदस्य समितियो को आवश्यक परामर्श भी देती हैं।

उपरोक्त विवरण के स्पष्ट है कि केन्द्रीय सहकारी बैंक सम्बद्ध समितियों को वित्तीय साधन उपलब्ध कराने हेतु बैंको द्वारा अश पूँजी एकत्र करके, जनता से

---

1 In 1961 62, *Punjab, Madhya Pradesh Bihar, Orissa and W Bengal* had 25, 54, 35, 17 and 29 central banks respectively. The number of districts in these statese was 19, 43, 17, 13 and 15 and plans are now being carried out in these states to reduce the number of central banks so as to have one strong viable central bank generally for one district " The cooperative Movement in India, E. M. Hough p 257

धरोहर प्राप्त करके तथा राज्य सहकारी बैंको से ऋण लेकर कोष का निर्माण करती है। और उसे बढाती हैं। ये बैंक कृषि समितियो को उत्पादन कार्य के लिए क्रय-विक्रय समितियो को क्रय-विक्रय व वितरण कार्यों के लिये तथा औद्योगिक व अन्य समितियो की कार्यशील पूंजी के साधन प्रदान करती है "केन्द्रीय सहकारी बैंको से यह अपेक्षा की जाती है कि वे प्राथमिक सहकारियो से निकट का व निरन्तर सम्पर्क रखें उनकी आवश्यकताओ और कठिनाइयों के प्रति सहानुभूति व सहयोग प्रदान करें और नीति विषय मामलों पर उनका मार्ग दर्शन करें। कुछ राज्यों ने केन्द्रीय सहकारी बैंको के पास प्राथमिक सहकारियो के निरीक्षण व देख रेख के अधिकार है जबकि कुछ राज्यो मे देख रेख का कार्य सहकारी विभाग करते है। अब उत्तरोत्तर यह समझा जाने लगा है कि केवल केन्द्रीय सहकारी बैंक ही वित्तीय साधना एवं वसूली की देख रेख के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।"[1]

प्रबन्ध (Management)

केन्द्रीय बैंको का सामान्य प्रबन्ध सचालक मण्डल के हाथो मे होता है जो कि वार्षिक आधार पर अथवा किसी अन्य आधार पर सचालक चुन कर बनाया जाता है। इन बैंको मे भी अन्य सहकारी बैंको की भांति 'एक सदस्य एक मत' सिद्धान्त को अपनाया जाता है। सामान्य सभा जो कि सर्वोच्च सत्ता होती है। सदस्यो द्वारा अथवा सदस्य समितियों के प्रतिनिधियों की बनी होती है। आम सभा मे सचालक मण्डल के सचालको का चुनाव होता है। मेकलेगन समिति की मान्यता थी कि कोई भी सामान्य ज्ञान वाला, उचित खाते रख लेने वाला तथा पूर्वानुमान कर सकने वाला व्यक्ति सचालक चुना जा सकता है जो कि यह देख सके कि कार्यशील पूंजी नियमित रूप से कार्य कर रही है या नही और पर्याप्त मात्रा मे तरल धन हमेशा रखा जाता है या नही।

सचालक मण्डल मे सचालकों की सख्या विभिन्न स्थानो पर अलग-अलग है। किन्तु सामान्यत इनकी सख्या १० से २० के मध्य ही रखनी चाहिए। यह मण्डल कार्यकारिणी इकाइयो की नियुक्ति भी कर सकता है जो कि कार्य शीघ्रता मे कर सकें। सचालक मण्डल की बैठक माह मे लगभग एक बार होनी आवश्यक है। साधारण सभा की बैठक वर्ष मे एक बार होती है और नीति सम्बन्धी निर्णय यहाँ पर लिये जाते हैं वे कार्य रूप मे परिणित करने के लिए सचालक मण्डल को दे दिए जाते हैं।

कार्यशील पूंजी (Working Capital)

केन्द्रीय सहकारी बैंको की कार्यशील पूंजी के निम्नलिखित स्रोत है।

(१) अश पूंजी (Share Capital) .

केन्द्रीय सहकारी बैंक मे सहकारी समितियो तथा व्यक्ति अश पूजी मे योगदान देते हैं। कई केन्द्रीय सहकारी बैंको मे केवल सहकारी समितियाँ ही अश खरीदती है। अशो का मूल्य १० रु० से ५०० रु० तक हो सकता है किन्तु व्यवहार म अधिकाश बैंको मे इनका मूल्य ५० अथवा १०० रु० होता है।

---

1 सहकारी समाज, प्रचार शाखा, राजस्थान पृष्ठ ७

(२) संचित कोष (Reserve Funds) ,

संचित कोष के निर्माण के लिये तथा प्रतिवर्ष इस कोष में लाभ का प्रतिशत संचित करने के सम्बन्ध में सन् १९१२ के अधिनियम में व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक सहकारी साख संस्था को जोकि पंजीकृत है, अपने लाभ का एक चौथाई संचित कोष में जमा करना आवश्यक है। केन्द्रीय सहकारी बैंक अपने कुछ विशेष कार्यों के लिए अन्य प्रकार के सुरक्षित कोषों का भी निर्माण करती है।

भारतवर्ष में केन्द्रीय सहकारी बैंकों की पूंजी वर्ष १९५१-५२ में ९.८० करोड़ रुपये थी जब कि वर्ष १९६५-६६ में बढ़ कर १०१.९४ करोड़ हो गयी। अंश पूंजी वर्ष १९५१-५२ में कार्यशील पूंजी की ६.३% थी। वर्ष १९६५-६६ में अंश पूंजी कार्यशील पूंजी की १७.५% थी।[1]

मेकलेगन समिति ने (The Maclagan Committee) के अनुसार केन्द्रीय सहकारी बैंकों की अंश पूंजी तथा संचित कोष दोनों मिलाकर कुल दायित्वों के कम से कम १२.५% तक होने चाहिए।

(३) जमा (Deposits) :

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की निधियों में जमा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये बैंक सदस्यों तथा गैर सदस्यों दोनों ही से जमा स्वीकार करती है। बचत जमा तथा निश्चित जमा का जमा में प्रमुख स्थान होता है। किन्तु कुछ बैंक चालू जमा भी प्राप्त करते है। जमा का राशि १९५०-५१ में भारत में केन्द्रीय सहकारी बैंकों में ३८.२३ करोड़ थी जोकि वर्ष १९६५-६६ में बढ़कर २३६.५९ करोड़ रुपये हो गई। कार्यशील पूंजी में जमा का भाग सन् १९५१-५२ तथा १९६५-६६ में क्रमशः ६३.६% और ४०.५% था।

(४) ऋण (Loans)

केन्द्रीय सहकारी बैंक बाहर से ऋण भी प्राप्त करती है। यह ऋण व्यापारिक बैंकों, सरकार व राज्य सहकारी बैंकों तथा अन्य स्रोतों से भी प्राप्त कर सकता है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण स्रोत राज्य सहकारी बैंक होती है जो कि पंजीयन अधिकारी की अनुमति पर ऋण प्रदान करती है। वर्ष १९५१-५२ तथा वर्ष १९६५-६६ में भारत में केन्द्रीय सहकारी बैंकों द्वारा प्राप्त ऋण की राशि क्रमशः १२.०८ करोड़ रु० तथा २४४.९९ करोड़ रुपये है। कार्यशील पूंजी का वर्ष १९५१-५२ तथा १९६५-६६ में क्रमशः २०.१% तथा ४२% ऋण था। वर्ष १९५५-६६ तक केन्द्रीय बैंकों में ऋण का प्रतिशत (कार्यशील पूंजी में) बहुत कम था किन्तु इसके पश्चात् स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है।

---

1 India 1968.

भारत में केन्द्रीय सहकारी बैंकों की कार्यशील पूंजी की रचना

(करोड रुपयो मे)

विवरण	वर्ष १९५१-५२	वर्ष १९६५-६६
१. कार्यशील पूंजी	६०·११	५८३ ५२
२ निजी निधियाँ (owned)	९·८०	१०१ ९४
३. जमा	३८·२३	२३६ ५९
४. ऋण	१२·०८	२४४ ९९

(Source India 1968)

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि हमारे देश मे केन्द्रीय सहकारी बैंकों की कार्यशील पूंजी मे प्रथम तीनो पचवर्षीय योजनाओं मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९५१-५२ म जहाँ कार्यशील पूंजी की राशि ६०·११ करोड रुपये थी वहाँ तृतीय पचवर्षीय योजना के अतिम वर्ष म ५८३ ५२ करोड रुपये हो गयी।

ऋण प्रदान करने की विधि तथा प्रदान किये गये ऋण

केन्द्रीय सहकारी बैंक सहकारी समितियो तथा व्यक्तियो को ऋण प्रदान करती हैं। ऋण केवल सहकारी साख समितियो को ही नहीं बल्कि अन्य सहकारी समितियो को भी प्रदान किया जाता है जो कि इनकी सदस्य होती है। किन्तु साख समितियों के अतिरिक्त अन्य समितियो को ऋण प्रदान करने मे पूर्व आड के रूप म बहुमूल्य वस्तुओं बौण्ड, सरकारी प्रपत्र कृषि वस्तुओं आदि को रखा जाता है। ऋण प्रदान करने से पूर्व ऋण की राशि निश्चित की जाती है।

ऋण प्राप्त करने के लिए सदस्य केन्द्रीय बैंक के पास प्रार्थना पत्र भेजते हैं। इनकी पर्याप्त छान-बीन की जाती है और सब तरफ से सतोष मिल जाने पर ऋण प्रदान किया जाता है। ऋण की राशि प्रार्थी के खाते म जमा कर दी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने खाते से धन निकालता रहता है। जब ये बैंक व्यक्तियों को ऋण प्रदान करती हैं तब व्यक्तिगत जमानत दो व्यक्तियो की ली जाती है। जो दो व्यक्ति जमानत लेते हैं। उनकी सम्पत्ति का लेखा बैंक अपने पास रखता है।

भारत वर्ष मे केन्द्रीय सहकारी बैंकों द्वारा वर्ष १९५१-५२ तथा १९६५-६६ मे क्रमश १०५ ६४ करोड तथा ७७१ ६६ करोड रुपये का ऋण प्रदान किया गया। ऋण अल्पकालीन तथा मध्यकालीन दिये जाते हैं। अल्पकालीन ऋण कृषि कार्यों के लिये मौसमी, उपज वितरण, उपभोग औद्योगिक तथा अन्य उद्देश्यों के लिये प्रदान किये जाते हैं और मध्यकालीन ऋण,कुओं की मरम्मत, पशु खरीदन, पम्प सेट्स भूमि सुधारने तथा अन्य कई उद्देश्यों के लिये होते हैं।

जून सन १९६५ के अन्त मे इन बैंको के बकाया ऋण व्यक्तिगत तथा समितियो के क्रमश ३·३७ करोड और ४३४ ३७ करोड रुपये थे। इस वर्ष कुल

मिति बाद (Overdues) राशि ८७·०५ करोड रुपये थी जो कुल बकाया धन राशि १९·८ प्रतिशत थी।

ब्याज दरें (Interest rates)

ग्रामीण सर्वेक्षण साख समिति के अनुसार अनेक राज्यो मे समितियो को प्रदान किये गये ऋण की ब्याज दरें बहुत ऊँची है। इसका प्रमुख कारण है उनकी आर्थिक स्थिति का खराब होना। इन समितियो का व्यापार भी छोटा होता है जिसके कारण प्रबन्ध के खर्चे अधिक पड़ते है। ऐसी स्थिति मे ब्याज दर नीची रखना कठिन है। विभिन्न राज्यों मे ब्याज दरें भिन्न-भिन्न है। मद्रास तथा महाराष्ट्र मे समितियो को दिये गये ऋण पर ब्याज दर ४½% है। आसाम तथा बिहार में यह दर ५% है। पंजाब मे ५½% ब्याज दर है और पश्चिमी बगाल तथा उत्तर प्रदेश मे ६½% है। समय-समय पर दरो मे परिवर्तन होता रहता है।

लाभ विभाजन

सामान्यत. प्रबन्ध सम्बन्धी सभी खर्चो और सचित कोषो मे धन रखने के पश्चात् शेष लाभ को हिस्सेदारो मे वितरित कर दिया जाता है। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि इन बैंको का व्यापार छोटे आकार का होता है। जबकि प्रबन्ध व्यय अधिक हो जाता है अत लाभ की मात्रा कम रहती है।

भारत मे केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रगति

सर्वप्रथम सन् १९१२ के सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सहकारी बैंको को वैधानिक अधिकार प्रदान किये गये। इसके पश्चात् सन् १९१४ मे मेकलेगन समिति का गठन किया गया जिसने अपना प्रतिवेदन १९१५ मे पेश किया। इस समिति ने भी केन्द्रीय बैंको को सहकारी समितियों के वर्गीकरण मे रखा था। केन्द्रीय बैंको का भी इस समिति ने वर्गीकरण किया जिसका विवरण अध्याय के आरम्भ मे दिया गया है। प्रथम प्रकार की केन्द्रीय बैंको मे केवल व्यक्ति ही सदस्य होते थे। ऐसी समितियाँ १९३० तक समाप्त हो गयी। जिन समितियो मे समितियाँ सदस्य है और समितियाँ तथा व्यक्ति दोनो सदस्य हैं ऐसी समितियाँ भारत मे वर्तमान समय मे है। किन्तु ऐसी केन्द्रीय बैंको की सख्या अधिक है जिनमे सहकारी समितियाँ और व्यक्ति दोनो सदस्य हैं।

भारत मे पचवर्षीय योजनाओं मे केन्द्रीय सहकारी बैंक का पर्याप्त विकास हुआ है। यद्यपि वर्तमान समय मे इनकी सख्या पहले से कम हो रही है किन्तु सदस्यता तथा पूंजी मे वृद्धि हो रही है। प्रथम पचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष से तुलना की जाये तो इन बैंको की सख्या मे बहुत कमी हुई है। कमी होने का कारण सरकारी नीति है। सरकार चाहती है कि इन बैंको का क्षेत्र अधिक विस्तृत किया जाये और इनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो। अधिक सख्या की बजाय बडे आकार की बैंको के विकास की तरफ विशेष ध्यान दिया जा रहा है। केन्द्रीय बैंको की सदस्यता, कार्यशील पूंजी, प्रदान किये गये ऋणो की मात्रा मे पर्याप्त वृद्धि हुई है।

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की सख्या वर्ष १९५०-५१ मे ५०१ थी जब कि वर्ष १९६१-६२ मे घट कर ३८७ हो रह गयी। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष

तक इस संख्या में पुन ४१ की कमी हुई। केन्द्रीय सहकारी बैंकों की स्थिति प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओं में निम्न प्रकार रही है :—

केन्द्रीय सहकारी बैंक

विवरण	वर्ष		
	१९५१-५२	१९६१-६२	१९६५-६६
१. सख्या	५०९	३८७	३४६
२. सदस्यता	२,३१,३१९	३,९५,६००	३,६२,१५६
३. दिये गये ऋण (लाख रु० मे)	२०,५६४	३८,४४०	७७,१६६
४. कार्यशील पूंजी (लाख रु० मे)	६,०११	३५,२६५	५८,३५२

(Source India 1968)

उक्त तालिका मे स्पष्ट है कि वर्ष १९५१-५२ की तुलना मे वर्ष १९६१-६२ मे बैंको की सख्या मे बहुत कमी हुई किन्तु सदस्यता, दिये गये ऋण तथा कार्यशील पूंजी मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९६१-६२ की तुलना मे १९६५-१९६६ मे सख्या तथा सदस्यता दोनो म कमी हुई है किन्तु प्रदान किये गये ऋण तथा कार्यशील पूंजी मे सतोषजनक वृद्धि हुई है।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इस बात पर ध्यान दिया जायेगा कि केन्द्रीय सहकारी बैंको की आर्थिक स्थिति ठीक हो। साथ ही इन बैंको के ऋण की समय पर अदायगी नहीं होती है। अत स्थिति बिगड़ती जा रही है। मितिवाद (overdues) की राशि बढती जा रही है। वर्ष १९६७-६८ मे मितिवाद की राशि कुल बकाया का २५% थी जबकि १९६१-६२ मे १२४% थी। भारत वर्ष मे कुल ३४७ केन्द्रीय सहकारी मे ६३ ऐसी हैं जिनका सचित मितिवाद (overdues) बकाया था ५०%, मे भी अधिक है। इससे केन्द्रीय सहकारी बैंको को पुन सगठन मे बडी कठिनाई आ रही है।[1]

केन्द्रीय सहकारी बैंको की समस्याएँ

(Problems of Central Banks)

भारतवर्ष मे केन्द्रीय सहकारी बैंको के सामने अनेक समस्यायें हैं। कुछ समस्यायें तो इन बैंको के दोष के कारण उत्पन्न हो गयी है और कुछ अन्य कारणो मे। इन समस्याओ के कारण इनका पर्याप्त विकास भी नहीं हो रहा है। प्रमुख समस्यायें निम्न प्रकार हैं —

(१) वित्त का अभाव

केन्द्रीय सहकारी बैंको की सबसे महत्वपूर्ण समस्या वित्त के अभाव की है। इन बैंको से सदस्यो को समय पर पर्याप्त मात्रा मे ऋण नहीं उपलब्ध हो पाता है

1 Fourth Five Year Plan 1969-74 Draft Govt of India

क्योंकि एक तरफ तो इन बैंकों को जमा कम मिल पाते हैं और दूसरी तरफ सदस्यों पर मितिवाद (Overdues) अधिक होते है जिनके कारण पैसों का अभाव हो जाता है। जैसाकि पूर्व कहा जा चुका है, हमारे देश मे इन बैंको का सदस्यों पर वर्ष १९६७-६८ मे बकाया ऋण का २५% मितिवाद (Overdues) के रूप था। मितिवाद निरन्तर बढ रहे है। वर्ष १९६० ६१ की तुलना मे इस प्रतिशत में बहुत वृद्धि हुई है। इस समस्या के कारण इन बैंकों की कार्य विधि मे कई कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयी हैं।

(२) राज्य सहकारी बैंको अथवा शीर्ष सहकारी बैंको पर निर्भरता :

केन्द्रीय सहकारी बैंक राज्य सहकारी बैंक अथवा शीर्ष सहकारी बैंको अथवा धन प्राप्त करती हैं। यदि इन बैंको से धन मिलने मे विलम्ब हो जाय अथवा नही मिले तो आर्थिक सकट बढ जाता है। इन बैंकों की निजी पूंजी (Owned Capital) बहुत कम है अत ऊपर की बैंकों पर निर्भर रहना पडता है। शीर्ष सहकारी बैंको पर अधिक निर्भर रहने के कारण भी अनेको बार कार्य मे बाधायें आती है। कभी-कभी तो शीर्ष बैंको से पैसे मिलने के अभाव मे ये बैंक सदस्यों को ऋण नही दे पाती है फलत इनकी साख गिरने लगती है।

(३) निजी पूँजी की न्यूनता .

भारत वर्ष मे केन्द्रीय सहकारी बैंको के पास निजी पूंजी की न्यूनता पाई जाती है। अश पूंजी तथा सचित कोषों का कुल कार्य शील पूंजी मे कम प्रतिशत है। वर्ष १९६५-६६ मे निजी पूंजी (owned Capital) कार्यशील पूंजी का १७ ५% थी। निधियों के अभाव में इनको जमा तथा ऋण पर निर्भर रहना पडता है। इससे भी कभी स्थिति बहुत खराब हो जाती है। भारतवर्ष मे अनेको केन्द्रीय सहकारी बैंक इस प्रकार के है जिनकी निजी पूंजी की मात्रा बहुत कम है। सचित कोषो मे भी धन राशि बहुत कम है।

(४) मितिवाद (overdues) की बढती हुई प्रवृत्ति :

जैसा कि कहा जा चुका है कि हमारे देश मे केन्द्रीय बैंकों का सदस्य समितियो पर ऋण बकाया बढ रहा है जिसकी वापसी की तिथी भी निकल चुकी है। मितिवाद ऋण की मात्रा बढने के कारण धन का निरन्तर अभाव होने लगता है। वर्ष १९६७ ६८ मे ३४७ म से ६३ केन्द्रीय बैंक इस प्रकार के थे जिनका मितिवाद ऋण कुल बकाया ऋण का ५०% था ऐसी स्थिति मे बैंको का विकास बहुत कठिन हो जाता है। मितिवाद ऋण की प्रवृद्धि निरन्तर बढ रही है।

(५) कुछ बैंको में व्यक्तिगत सदस्यता :

कुछ केन्द्रीय बैंको मे समितियो के साथ-साथ व्यक्तिगत सदस्य भी है। इन व्यक्तिगत सदस्यो के कारण भी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी है। कुछ लोगो का आरोप है कि ये व्यक्ति अधिक मात्रा मे स्वय ऋण ले लेते हैं अथवा अपने सम्बन्धियो को दिलवा देते है। यह भी कहा जाता है कि ये व्यक्तिगत सदस्य प्रबन्ध समिति मे भी आ जाते हैं जिससे कई प्रकार की अनियमिततायें होती हैं।

(६) व्यापार की कम मात्रा और प्रबन्ध व्यय अधिक :

केन्द्रीय सहकारी बैंको के पास व्यापार की मात्रा कम होती है किन्तु उनकी तुलना मे प्रबन्ध व्यय अधिक पड जाता है। यह स्वाभाविक है जिस सस्था मे व्यापार कम होता है तो प्रबन्ध व्यय अधिक पडता है। अन्य बैंकिग कार्यो मे ये बैंक दक्ष भी नही होती है। क्योकि इनमे प्रशिक्षित कर्मचारियो का भी अभाव पाया जाता है।

(७) प्रशिक्षित व कुशल कर्मचारियो का अभाव :

केन्द्रीय सहकारी बैंको मे प्रशिक्षित एव कुशल कर्मचारियों की नियुक्ति नही हो पाती क्योकि ये सस्थायें अधिक वेतन वाले कर्मचारियो को नही रख सकती हैं। कर्मचारी अधिकाश बैंकिग विधियो और ज्ञान से अनभिज्ञ होते हैं। कार्य कुशलता का भी उनमे अभाव पाया जाता है। अत केन्द्रीय सहकारी बैंको का विकास अधिक तेज गति से नही हो रहा है।

(८) अवैज्ञानिक प्रबन्ध :

केन्द्रीय सहकारी बैंको का प्रबन्ध भी वैज्ञानिक ढग से नही हो पाता है। प्रबन्धक समिति के सदस्य भी प्रबन्ध कार्य मे अधिक कुशल नही होते है। कुशल प्रबन्धकों को अलग से नियुक्त करने मे अधिक व्यय पडता है। अत ऐसी सस्थाओ मे कुशल प्रबन्ध की समस्या बहुत जटिल है। आजकल वैज्ञानिक प्रबन्ध का महत्व बहुत बढ गया है इसके अभाव में अनेको सस्थायें समाप्त हो जाती हैं।

(९) सरकारी मनोनीत अधिकारी

केन्द्रीय सहकारी बैंको मे सहकारी मनोनीत सदस्य की प्रबन्ध समिति म होते है। कुछ बैंको मे तो अध्यक्ष भी सरकारी अधिकारी होते हैं। अत कई कठिनाइयाँ सामने आने लगती है। यह निश्चित है कि जहाँ सरकार धन लगाती है तो उसके प्रतिनिधित्व के लिये भी प्रबन्ध मे कुछ मनोनीत व्यक्ति आयें किन्तु उनके आने से कभी कभी निणय लेने मे तथा कार्य मे शिथिलता आ जाती है। सरकारी मनोनीत अधिकारियो के विषय मे यह भी शिकायत है कि ये प्रत्येक बैठक मे भाग भी नही लेते है।

(१०) प्राथमिक साख समितियो का बहुमत :

प्राय यह देखा जाता है कि केन्द्रीय बैंको की सदस्यता मे बहुमत सहकारी साख सस्थाओ का होता है अत प्रतिनिधित्व भी उन्ही का अधिक होता है। इसके कारण केवल सहकारी साख समितियो के हितो की अधिक रक्षा हो पाती है। दूसरे प्रकार की समितियो को समुचित लाभ नही हो पाता है।

उपरोक्त समस्याओ के कारण भारत मे केन्द्रीय सहकारी बैंको का अधिक विकास नही हो पाया। हमारे देश मे कमजोर बैंको की सख्या अधिक है। यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ मे इनके आकार बढाने तथा उचित सरचना के प्रयत्न किये गये हैं। किन्तु अनेक कारणो से सफलता नही मिल पाती है।

निराकरण के उपाय

मिर्धा कमेटी रिपोर्ट मे केन्द्रीय सहकारी बैंकों की समस्याओ के निराकरण के कुछ उपाय बताये गये हैं। इस समिति की रिपोर्ट के अनुसार तथा कुछ अन्य उपयुक्त निम्न उपाय हो सकते है।

(१) हमारे देश मे सघीय सस्थायें अनेको कारणो से बहुत बडी सख्या मे व्यक्तिगत सदस्यो को प्रवेश दे रही रही हैं। किन्तु शुद्ध संघीय सस्थाओ में व्यक्तिगत सदस्यों को स्थान नही देना चाहिये।[1] ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमुख दो कारण थे जिनके कारण सदस्यता अच्छी मानी गयी। प्रथम, नेतृत्व प्रदान करने के लिये और द्वितीय अश पूंजी बढाने के लिये। मिर्धा समिति की रिपोट के अनुसार भविष्य मे व्यक्तिगत सदस्यो को इन सघीय सस्थाओं मे सदस्य नही बनाया जाये। रिपोर्ट मे यह भी कहा गया है कि जिनमे व्यक्तिगत सदस्य है वहाँ यह प्रावधान किया जाना चाहिये कि इनको सभापति, उपसभापति, मन्त्री और कोषाध्यक्ष न चुना जाये।[2]

(२) कुछ विद्वानो का मत है कि केन्द्रीय सहकारी बैंकों को राज्य सहकारी बैंको अथवा शीर्ष बैंको की ब्रान्च बना देनी चाहिये ताकि मध्यस्थता का अन्त हो जाये। किन्तु कुछ अन्य कारणो से यह बहुत कठिन कार्य है।

(३) रिजर्व बैंक ने अखिल भारतीय साख सर्वेक्षण समिति के सुझाव के अनुसार जोर दिया है कि केन्द्रीय सहकारी बैंको को सर्वप्रथम कृषि साख समितियों की आवश्यकताओ की तरफ ध्यान देना चाहिये। व्यक्तिगत सदस्यो को निश्चित सीमा से बाहर ऋण प्रदान करने पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये।

(४) केन्द्रीय सहकारी बैंक मे सामान्यतया साख समितियाँ, कृषि समितियाँ, श्रम, सहकारी समितियाँ, औद्योगिक समितियाँ तथा अन्य कई प्रकार की समितियाँ सदस्य होती है। इनमे कृषि साख समितियो का बहुमत होना आवश्यक है। इसके लिये आवश्यक है कि सभी प्रकार की सहकारी समितियो के हितो की रक्षा की जाये। प्रबन्धकारी समिति मे सभी प्रकार की समितियो को यथोचित प्रतिनिधित्व देने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।

(५) मिर्धा समिति के अनुसार किसी समिति की प्रबन्ध कारिणी समिति मे सरकार द्वारा मनोनयन न्यूनतम होना चाहिये और किसी भी दशा मे कमेटी के सदस्यों की सख्या के एक तिहाई अथवा तीन जो भी कम हो से अधिक सदस्यो का मनोनयन नही होना चाहिये। यह सुनिश्चित करने के लिये कि मनोनीत सचालक अपने दायित्वों का पालन करते हैं, उनके लिए एक आचरण सहिता विकसित करनी चाहिये। ऐसी आचरण सहिता बनाते समय निम्न बातों का ध्यान देना चाहिये। (i) समिति की बैठक मे नियमित उपस्थिति (ii) यदि मनोनीत सचालन बहुमत के निर्णय को दोषपूर्ण और हानिकारक समझें तो असहमति सूचक टिप्पणी अंकित करना (iii) मनोनीत सचालको को अधिकार तथा अन्य दण्डो से सम्बन्धित उसी अनुशासन मे लाना जो निर्वाचित सचालकों पर लागू होता है।

---

1 Madrass, Report of Committee our Cooperation *1939-40* p *219-20*
2. Mirdha Committee Report our Cooperation, 1964 p 57-58.

(६) केन्द्रीय सहकारी ,बैंकों के द्वारा प्रदान किये गये ऋण की वापसी की समस्या निरन्तर बढ़ रही है। इस समस्या के निराकरण के लिये जिन सदस्य समिति अथवा व्यक्तिगत सदस्यों का समय पर ऋण वापस नहीं हुआ है कारणों की जाँच करनी चाहिये। यदि बकाया वापसी बिना किसी ठोस के है तो उन्हें दण्ड होना चाहिये।

(७) इन बैंकों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कुशल व्यक्तियों की भविष्य में नियुक्ति करनी चाहिये ताकि इन बैंकों का अधिक विकास हो सके।

(८) बैंकों के सम्मुख धन की कमी को दूर करने के लिये जमा (Deposits) पर अधिक ब्याज देना चाहिये ताकि अधिक जमा हों।

(९) शीर्ष बैंकों को ऋण प्रदान करने में अधिक समय नहीं लगाना चाहिये।

(१०) कमजोर इकाईयों को मजबूत बनाना चाहिये।

आल इण्डिया रूरल क्रेडिट रिव्यू कमेटी (१९६९) के निम्न सुझाव महत्वपूर्ण हैं।

(१) जिन जिलों में एक से अधिक केन्द्रीय सहकारी बैंक कार्यशील हैं उनकी जांच करके यह ज्ञात किया जाय कि क्या इन बैंकों का विलय आवश्यक है जिससे एक जिले में एक बैंक हो जाय।

(२) केन्द्रीय बैंकों की ऋण स्वीकार करने की शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिये। इन बैंकों की शाखाओं में सनाह समितियाँ स्थापित की जानी चाहिये जिनको निर्धारित सीमा तक ऋण स्वीकार करने की शक्ति प्रदान की जाये।

(३) अधिक अवधि पार बकाया ऋणों के कारण जो केन्द्रीय बैंक कार्य करने में असमर्थ हैं उनके पुनर्वासन (Rehabilitation) का कार्यक्रम तैयार करना चाहिये। प्रत्येक केन्द्रीय बैंक के प्राप्य और अप्राप्य बकाया ऋणों का सर्वेक्षण करना चाहिये और प्राप्त करने के प्रयत्न करने चाहिये। अप्राप्य बकाया धनराशि की पूर्ती करने के लिये राज्य सरकार को सहायता देनी चाहिये।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में केन्द्रीय बैंकों की स्थिति अधिक अच्छी नहीं है। इसे सुधारने के लिए भविष्य में ऊपर दिये गये सुझावों को काम में लाना अधिक उपयुक्त होगा। छोटे आकार की केन्द्रीय बैंकों को बड़े आकार में परिवर्तित करना चाहिये। इन बैंकों की सुदृढ़ संरचना करना परमावश्यक है। आशा है भविष्य में इस तरफ पर्याप्त ध्यान दिया जायगा।

प्रश्न

१. केन्द्रीय सहकारी बैंकों से आपका क्या अभिप्राय है। इसके कार्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिये।

२. भारत में केन्द्रीय बैंकों की क्या समस्यायें हैं। इनके समाधान के सुझाव दीजिये।
३ आपकी राय में भारत में केन्द्रीय सहकारी बैंकों का कार्य संतोषजनक है? यदि नहीं तो सुझाव दीजिये।
४ केन्द्रीय बैंकों की कार्यशील पूंजी के कौन-कौन से स्रोत हैं? इन स्रोतों का किस प्रकार का भाग है?
५ सन् १९५० में केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रगति का संक्षिप्त विवरण दीजिये। भविष्य में विकास के उचित सुझाव दीजिये।

५

शीर्ष बैंक
(Apex Banks)

इन बैंको को राज्य सहकारी बैंक अथवा प्रादेशिक सहकारी बैंक भी कहा जाता है। राज्य के सहकारी संगठन में इनकी सत्ता सर्वोपरि होती है। हमारे देश में लगभग प्रत्येक राज्य में एक ऐसा बैंक है। राज्य से प्राथमिक समितियाँ सबसे नीचे को कडी होती है। उनकी संघीय इकाइयाँ केन्द्रीय सहकारी बैंक होती है और केन्द्रीय बैंकों के ऊपर संघीय इकाई शीर्ष बैंक होते हैं। ये राज्यो के सहकारी साधनो के समन्वय केन्द्र के रूप मे कार्य करते हैं। शीर्ष बैंक सहकारी आन्दोलन का महत्वपूर्ण भाग होता है। यह बैंक छोटी तथा बिखरी हुई प्राथमिक समितियो और मुद्रा बाजार के मध्य एक कडी का काम करती है। भारतीय रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया के द्वारा प्राप्त अल्पकालीन तथा मध्य-कालीन ऋणो को प्राथमिक सहकारी साख समितियों तक पहुँचाने मे इन सस्थाओं का प्रमुख स्थान है। अत सहकारी संगठन के ढाँचे मे ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक समितियाँ होती हैं, जिले के स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक होते हैं जिन्हे शीर्ष बैंक कहा जाता है। शीर्ष सहकारी बैंकों का प्राथमिक सहकारी साख समितियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी हो सकता है किन्तु साधारणतया केन्द्रीय बैंको के माध्यम से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

शीर्ष बैंक राज्य स्तर पर शीर्ष पर एक पर्यवेक्षक निकाय की भाँति कार्य करती है। राज्य मे सहकारी आन्दोलन के प्रचार की व्यवस्था भी यही पर होती है। भारतवर्ष मे सर्वप्रथम मद्रास में सन् १९०७ मे राज्य भर मे ऋण देने के लिये एक केन्द्रीय बैंक बनायी गयी जिसमें सरकारी सहायता नहीं ली गयी।[1] किन्तु यह १९१७ तक बन्द हो गयी और इस समय मद्रास केन्द्रीय संघीय बैंक (Madras Central Union Bank) की स्थापना की गयी जो कि शीर्ष बैंक के रूप में थी।[2]

---

1 Reserve Bank, Review of Cooperative Movement, 1939-46 p 68

2. Madras Report of Committee on Cooperation, 1927-28 p 21

मैक्लेगन समिति ने १९१५ में अपनी रिपोर्ट पेश की थी जिसमें प्रान्तीय सहकारी बैंकों को साख समितियों के वर्गीकरण में सम्मिलित किया। शीर्ष सहकारी साख समितियों का निर्माण कई राज्यों जैसे बगाल, बिहार, उड़ीसा तथा प्राचीन केन्द्रीय प्रदेशों में केन्द्रीय सहकारी बैंकों द्वारा किया गया। भारतवर्ष में वर्तमान समय में २२ शीर्ष बैंक हैं जिनकी सदस्यता २१,०१० है।[1]

सदस्यता (Membership)

शीर्ष सहकारी समितियाँ दो प्रकार की होती हैं—प्रथम केन्द्रीय बैंकों द्वारा स्थापित और दूसरी मिश्रित। मिश्रित सदस्यता में व्यक्तिगत, केन्द्रीय बैंक तथा अन्य सीधे सम्बन्ध रखने वाली समितियाँ आती हैं। हमारे देश में मिश्रित सदस्यता वाली शीर्ष बैंकों की संख्या बहुत अधिक है। पहले शीर्ष बैंकों में व्यक्तिगत सदस्यता अधिक थी जबकि आजकल घटती जा रही है। वर्तमान में राज्य सरकारें इन बैंकों में साझीदार बन गयी है।

भारतवर्ष में शीर्ष बैंकों की वर्ष १९५०-५१ में कुल सदस्यता २३,२७२ थी जो कि वर्ष १९६१-६२ में बढ़कर ३०,४६८ हो गयी। किन्तु तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में इसमें पर्याप्त कमी हुई और सदस्य संख्या २१,०१० ही रह गयी।

प्रबन्ध (Management)

अन्य सहकारी बैंकों की भाँति इसमें भी सर्वोच्च सत्ता साधारण सभा में निहित होती है। नीति सम्बन्धी निर्णय इसी में लिये जाते हैं जिन्हें कार्य रूप में परिणित करने के लिए संचालक मंडल की नियुक्ति की जाती है। आजकल राज्य सरकारें भी भागीदार हो गयी हैं अतः उनके मनोनीत सदस्य भी संचालक मण्डल में होते हैं। भारत में व्यक्तिगत सदस्य अधिकतर बैंकों के संचालक मण्डलों में अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक रहे हैं। नानावटी समिति (Nanawati Committee 1947) ने बम्बई की शीर्ष बैंक में देखा कि संचालक मण्डल में ७ संचालक व्यक्तिगत सदस्यों में से थे, तीन-तीन प्रतिनिधि केन्द्रीय बैंकों और कृषि समितियों तथा दो प्रतिनिधि शहरी बैंकों (Urban banks) में से थे।[2]

आजकल व्यक्तिगत सदस्यों की संख्या घटती जा रही है अतः प्रबन्ध में भी इनका हाथ कम हो रहा है। मिर्धा समिति ने अपने प्रतिवेदन में संघीय समितियों में व्यक्तिगत प्रतिनिधियों को महत्वपूर्ण पद देने पर प्रतिबन्ध लगाने पर बल दिया है।[3]

कार्यक्षेत्र

शीर्ष सहकारी बैंकों का कार्य क्षेत्र राज्य स्तर तक होता है। प्रत्येक राज्य में एक शीर्ष बैंक होता है जो सम्पूर्ण राज्य के सहकारी आन्दोलन के लिए उत्तरदायी

---

1. India, 1968 p. 265
2. Bombay Report of Agricultural cred't Organisation Committee, p 29-30
3. Mirdha Committee, 1964, Report p 58

है। राज्य के सहकारी आन्दोलन का पर्यवेक्षण, समन्वय तथा प्रचार कार्य इन्हीं बैंकों के हाथ में है। राज्य की सभी केन्द्रीय सहकारी बैंक सदस्य होती हैं। इनके माध्यम से प्राथमिक समितियों को ये बैंक सहायता प्रदान करती हैं।

उद्देश्य

शीर्ष बैंकों के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) शीर्ष बैंकों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य है कि राज्य स्तर पर एक संघीय संस्था स्थापित करना।

(२) शीर्ष बैंक केन्द्रीय बैंकों के कार्यो पर नियन्त्रण करने के उद्देश्य से स्थापित किये गये है।

(३) आजकल प्रबन्ध के सिद्धान्तों में समन्वय (Coordination) का बहुत महत्व है। सरकारी आन्दोलन में केन्द्रीय बैंकों में समन्वय स्थापित करने का उद्देश्य इन्ही बैंकों से पूर्ण किया जाता है।

(४) राज्य के सहकारी आन्दोलन के लिये वित्त व्यवस्था में इन बैंकों का महत्वपूर्ण स्थान है।

उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये राज्य स्तर पर संघीय संस्थाओं का निर्माण आवश्यक हो गया।

शीर्ष बैंकों के कार्य

मेकलेगन समिति के अनुसार शीर्ष बैंकों का प्रमुख कार्य राज्य स्तर पर वित्तीय साधन उपलब्ध कराना है। ये बैंक केन्द्रीय बैंकों के कार्य संचालन पर नियन्त्रण रखकर प्रबन्ध के समन्वय कार्य को सम्पादित करती हैं। शीर्ष बैंकों को इनके कार्यों के आधार पर केन्द्रीय बैंकों के लिये सन्तुलन केन्द्र भी कहा जाता है। इन बैंकों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं

(१) शीर्ष बैंकों का प्राथमिक कार्य इनके कार्यक्षेत्र में इस आन्दोलन के वित्त को सन्तुलित करना है। यह कार्य जमा (Deposits) आकर्षित करके अथवा केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अतिरिक्त धन को प्रयोग में लाकर तथा अन्य साधनों से धन प्राप्त करके किया जाता है।

(२) शीर्ष बैंक एक राज्य स्तर की संघीय इकाई है जिसके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत राज्य की सभी केन्द्रीय बैंक आती हैं। इन बैंकों के कार्यों पर नियन्त्रण रखना भी शीर्ष बैंकों का प्रमुख कार्य है। विभिन्न केन्द्रीय बैंकों में समन्वय स्थापित करने से शीर्ष बैंकों का महत्वपूर्ण हाथ है।

(३) शीर्ष बैंक केन्द्रीय सहकारी बैंकों अथवा अपने सदस्यों को अल्प अथवा मध्यकालीन ऋण प्रदान करते हैं। केन्द्रीय सहकारी बैंक प्राथमिक समितियों को ऋण प्रदान करते हैं। उनके पास पर्याप्त धन का अभाव पाया जाता है। अतः शीर्ष बैंक इनकी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति ऋण प्रदान करके करते हैं। ये बैंक रिजर्व बैंक से धन प्राप्त करते हैं और उसे केन्द्रीय बैंकों के माध्यम से प्राथमिक ऋण दाता समितियों तथा अन्य समितियों तक पहुँचाते हैं।

(४) कुछ राज्यो मे शीर्ष बैंक कुछ व्यापारिक बैंकिंग कार्य भी करते रहे हैं। ये बैंक व्यापारियो तथा अन्य व्यक्तियो को भी ऋण प्रदान करते रहे हैं। यद्यपि रिजर्व बैंक ने इस प्रकार की विचारधारा रखी है कि शीर्ष बैंक व्यापारिक बैंकिंग कार्यों मे अधिक भाग न लेकर अन्य सहकारी कार्यों की खोज करके उनमें भाग लें ताकि सहकारिता का अधिक विकास हो सके। कुछ राज्यो विशेषकर बम्बई और मद्रास मे इन बैंको मे सहकारी उपभोक्ता भण्डारो को भी ऋण प्रदान किया है।

(५) शीर्ष बैंक, केन्द्रीय बैंको तथा अन्य सदस्य समितियो के पर्यवेक्षण का कार्य करती हैं। समय-समय पर इन संस्थाओ को उचित राय भी इन बैंको से मिलती रहती है।

(६) शीर्ष बैंको का एक प्रमुख कार्य अपने नीचे की सभी समितियो के लिये एक सन्तुलन बिन्दु का कार्य करता है।

शीर्ष बैंको की कार्यशील पूंजी

शीर्ष सहकारी बैंको की कार्यशील पूंजी के निम्नलिखित स्रोत हैं—

(१) अंश पूंजी (Share Capital)

कार्यशील पूंजी का प्रारम्भिक साधन अंश पूंजी है। इसी पूंजी के आधार पर इन बैंको को जमा तथा ऋण मिलते हैं। बैंकों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिये अंश पूंजी की मात्रा पर्याप्त करना बहुत आवश्यक है। भारत में अंश पूंजी में वृद्धि करने के कई प्रयत्न किये गये हैं। केन्द्रीय बैंको की ऋण सीमा उनकी अंश पूंजी से जोड़ दी गयी है जिसके कारण ये बैंक अधिक अंश खरीदते हैं।

भारतवर्ष मे वर्ष १९५१-५२ मे शीर्ष बैंको की कुल कार्यशील पूंजी ३६·७२ करोड रुपये थी जिसमे अंश पूंजी १·९० करोड रुपये थी। वर्ष १९६०-६१ मे कार्यशील पूंजी और उसमे अंश पूंजी की मात्रा क्रमश २२६ ०९ करोड तथा २१ २६ करोड रुपये हो गयी। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष मे कार्यशील पूंजी तथा उसमे अंश पूंजी की मात्रा क्रमश ३७९·९८ करोड रुपये तथा २८·८३ करोड रुपये हो गयी। अतः स्पष्ट है कि शीर्ष बैंको की अंश पूंजी मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।[1]

(२) संचित व अन्य कोष (Reserve and Other Funds)

कार्यशील पूंजी का द्वितीय महत्वपूर्ण भाग संचिति तथा अन्य कोष हैं। लाभ का एक निश्चित प्रतिशत इन कोषो मे संचित करना पड़ता है। यह निजी पूंजी का ही एक भाग होता है। हमारे देश मे सभी शीर्ष बैंकों के इन कोषो मे वर्ष १९५१-५२, १९६१-६२ तथा वर्ष १९६५ ६६ मे क्रमश २·३६ करोड, ७·५९ करोड तथा १६·१३ करोड रुपये की राशि थी।

(३) जमा (Deposits)

शीर्ष बैंक अपने पास निक्षेप सदस्यो तथा असदस्यो दोनो ही से स्वीकार

---

1. India, 1968 p 265

करते हैं। केन्द्रीय सहकारी बैंक अधिकतर अपने तरल धन के कुछ अंश को तथा अपने अतिरिक्त धन को इन बैंकों के पास जमा करा देते हैं। ये बैंक जमा कर्ताओं को उनके अचल जमाओं पर ऋण भी प्रदान करते है। जमाओं का कार्यशील पूंजी मे महत्वपूर्ण भाग रहता है। पहले तो सभी स्रोतो मे जमाओं से अधिक धन मिलता था किन्तु आजकल ऋण की मात्रा बढ रही है। वर्ष १९५१-५२ मे निक्षेपों की धनराशि सभी शीर्ष बैंकों की २१·१८ करोड रुपये थी जो कि अन्य सभी स्रोतों से कही अधिक थी। इस वर्ष कार्यशील पूंजी का अधिकाश भाग निक्षेप के द्वारा प्रदान किया गया था। किन्तु वर्ष १९६१-६२ मे ऋणों की मात्रा निक्षेपों से अधिक हो गयी। यद्यपि निक्षेपों की धनराशि वर्ष १९५१-५२ की तुलना मे बढकर ८१ ६४ करोड रुपये हो गयी। वर्ष १९६५-६६ मे शीर्ष बैंकों मे जमा धनराशि १४६ ५१ करोड रुपये हो गयी।

(४) ऋण (Loans)

कार्यशील पूंजी का प्रमुख स्रोत आजकल ऋण ही है ऋण अधिकांश सरकार तथा रिजर्व बैंक आव इण्डिया से उपलब्ध होते है। रिजर्व बैंक से ऋणों की मात्रा निरन्तर बढ रही है। शीर्ष बैंकों को कम ब्याज दर पर ऋण प्राप्त होता है जिसे ये बैंक केन्द्रीय बैंकों के माध्यम से प्राथमिक स्तर तक पहुँचाता है। भारत मे वर्ष १९५१-५२ मे शीर्ष बैंकों की कार्यशील पूंजी मे निक्षेपों के पश्चात् ऋण का स्थान था किन्तु वर्ष १९६१-६२ मे ऋण निक्षेपों से अधिक थे। इसके पश्चात् निरन्तर ऋणों का स्थान सर्वोपरि है। वर्ष १९५१-५२, १९६१-६२ तथा १९६५-६६ मे समस्त ऋणों की राशि ११ ०७ करोड, १४५·७९ करोड एव १९८ ५२ करोड रुपए थी।[1] शीर्ष बैंकों की ऋण की राशि वर्ष १९६६-६७ मे १९९ १२ करोड रुपये के लगभग थी जो कि रिजर्व बैंक से १७२ ९९ करोड रुपए, सरकार से २२ ६८ करोड रुपये एव अन्य साधनों से ४·२५ करोड रुपए थी।[2]

रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया से उधार लिये गये ऋणों की मात्रा निरन्तर बढ रही है वर्ष १९६७ ६८ तथा १९६८ ६९ मे शीर्ष बैंकों ने इस बैंक से क्रमश १९७·६० करोड तथा २४५·१३ करोड रुपये ऋण लिया।[3] इस बैंक के अतिरिक्त शीर्ष बैंक भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, कृषि पुनर्वित्त निगम, स्टेट बैंक, अन्य बैंक तथा सरकार से भी ऋण लेती है।

शीर्ष बैंक का केन्द्रीय बैंकों से सम्बन्ध

शीर्ष बैंक राज्य स्तर की सर्वोच्च सघीय संस्था है। सघीय संस्था होने के नाते ये बैंक केन्द्रीय बैंकों को समय समय निर्देशन देते है तथा इनकी क्रियाओं म समन्वय स्थापित करते हैं। इस दृष्टि से केन्द्रीय बैंकों की कार्यविधि की देख-रेख भी शीर्ष बैंक करते हैं। शीर्ष बैंक केन्द्रीय बैंकों को ऋण प्रदान करते हैं। केन्द्रीय बैंक, शीर्ष बैंकों के सदस्य होने के नाते इनके प्रतिनिधि शीर्ष बैंकों की साधारण

1 India, 1969 p 269.
2 The Times of India Directory and Year Book, 1969 page 89
3 Reserve Bank of India Bulletin Dec 1969 P 1941.

सभा में होते हैं और प्रबन्धक समिति में चुने जाते है। इस प्रकार शीर्ष बैंको के प्रबन्ध में भी केन्द्रीय बैंक भाग लेती है।

शीर्ष बैंको का रिजर्व बैंक से सम्बन्ध

शीर्ष बैंक राज्यो के सहकारी आन्दोलनो को रिजर्व बैंक के साथ जोडते हैं। ये सभी बैंक रिजर्व बैंक के सदस्य होने है जिनको रिजर्व बैंक मे वित्तीय सहायता इसके अतिरिक्त निरन्तर रिजर्व बैंक इन बैंको को विभिन्न विषयो पर सलाह भी प्रदान करती है शीर्ष बैंक राज्य सहकारी आन्दोलन तथा रिजर्व बैंक के मध्य एक कडी है। रिजर्व बैंक राज्यो के सहकारी आन्दोलनो को इन्ही बैंको के माध्यम से सहायता प्रदान करती है। शीर्ष बैंक रिजर्व बैंक मे अपने खाते भी भी रखती है। वे शीर्ष बैंक जो रिजर्व बैंक मे अपने खाते रखते है उनकी संख्या तथा रिजर्व बैंक से उधार ली गयी धन राशि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

शीर्ष बैंक जो कि रिजर्व बैंक मे खाते रखे हुए हैं

वर्ष	संख्या	रिजर्व बैंक से उधार (Borrowings) (करोड रु० मे)	रिजर्व बैंक के पास शेष (करोड रु० मे)
१९६०-६१	२०	८८ २९	१ ५९
१९६५-६६	१८	१६६ ७८	३ ८२
१९६६-६७	१९	१६९ ३१	४ ११
१९६७-६८	२०	१९७ ६०	५ ६८
१९६८-६९	२४	२४५ १३	६ ७९

(Source Reserve Bank of India Bulletin, Dec 1969 P 1941)

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि रिजर्व बैंक से शीर्ष बैंको को निरन्तर ऋण बढता जा रहा है। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक के पास शेष (balance) भी बढता जा रहा है। अत स्पष्ट है कि शीर्ष बैंको का रिजर्व बैंक से बहुत महत्वपूर्ण सम्बन्ध रिजर्व बैंक के १९५१ के अधिनियम के पश्चात् शीर्ष बैंको को अधिक वित्तीय सहायता मिलने लगी है।

पचवर्षीय योजनाओ मे प्रगति

सन् १९५१ के रिजर्व बैंक अधिनियम बन जाने के पश्चात् अल्पकाल मे ही कई शीर्ष बैंक स्थापित हुए। इस अधिनियम से इन बैंको को साख सम्बन्धी अधिक सुविधायें प्रदान की गयी। वर्ष १९५१-५२ मे भारत मे कुल शीर्ष बैंको की संख्या केवल १६ थी जो कि १९६६-६७ मे बढकर २५ हो गयी। सदस्य संख्या १९५१-५२ मे २३२३२ थी जो कि १९६१-६२ तक बढकर ३०,४६८ हो गयी। किन्तु अनेक कारणो से इसमें तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष तक कमी हुई और कुल सदस्य संख्या २१०१० हो गयी। जून १९६७ के अन्त मे देश में कुल २५ शीर्ष बैंक

थे जिनकी सदस्य संख्या ८२९० व्यक्तिगत तथा १३१६७ बैंक तथा समितियाँ थी।[1] शीर्ष बैंको की सदस्यता मे व्यक्तिगत सदस्यता कम होती जा रही है। आजकल राज्य सरकारें इनमे भागीदार बनकर आ रही हैं।

शीर्ष बैंको की अश पूंजी, रिजर्व फन्ड, जमा, ऋणो मे पचवर्षीय योजनाओ मे निरन्तर वृद्धि हुई है। इन बैंको की कुल कार्यशील पूंजी वर्ष १९५१-५२, १९६१-६२ तथा १९६५-६६ मे क्रमश ३६·७२ करोड रुपये, २५६·०९ करोड रुपये तथा ८९·९८ करोड रुपये थी। वर्ष १९६६-६७ मे ४०२·९५ करोड रुपये कार्यशील पूंजी थी जो कि पिछले वर्षों की तुलना मे अधिक है। कार्यशील पूंजी मे वृद्धि होने के अनेक कारण थे। इन बैंको की निजी पूंजी, जमा तथा रिजर्व बैंक से ऋण की मात्रा मे बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। नीचे दी गई तालिका से शीर्ष बैंको के विकास की स्थिति स्पष्ट हो सकती है।

भारत मे शीर्ष बैंक

विवरण	१९५१-५२	१९६१-६२	१९६५-६६	१९६६-६७
१ सख्या	१६	२१	२२	२५
२ सदस्यता	२३२७२	३०४६८	२१०१०	२१४५७
(करोड रुपये)				
३ अश पूंजी	१·९०	२१ २६	२८८३	३१ १६
४ सचित एव अन्य कोष	२ ३६	७·५९	१६·१३	२४·४८
५ जमा	२१·१८	८१ ४४	१४६·५१	१४७ २८
६ अन्य ऋण	११ २७	१४५ ७९	१९८·५२	१९९·९३
७ कार्यशील पूंजी	३६ ७२	२५६ ०९	३८९·९८	४०२ ९५
८ दिये गये ऋण	५५ २७	२५६ २९	४७४·२२	४५०·७५
९. ऋण बकाया	२० ०१	१ ६ ५१	३०७ ९३	३२५·१६
१० ऋण मितिवाद (Over dues)	३·२२	८ १०	९ ३४	१६·१२

(Source India 1969 P. 269)

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि केवल सदस्यता को छोडकर अन्य सभी मदो मे निरन्तर वृद्धि हुई है। शीर्ष बैंको द्वारा प्रदान किये गये ऋणो की मात्रा, बकाया धन की राशि तथा ऋणो की मिति बाद (Over dues) की समस्या बडी भयकर है। इसमे बहुत तेज गति से वृद्धि होती जा रही है। इसकी मात्रा वर्ष १९५१-५२ की तुलना मे वर्ष १९६६-६७ मे ५ गुनी हो गयी है। वर्ष १९६७-६८ मे शीर्ष सहकारी

---

1. The Times of India Directory & year Book 1969 p 83

बैंको की अश पूंजी तथा डिपाजिट्स क्रमश ३४·६७ तथा १८०·६७ करोड रुपये हो गये ।[1]

शीर्ष बैंकों की समस्यायें व निराकरण के उपाय

भारत मे शीर्ष बैंको के विकास मे निम्नलिखित बाधायें हैं—

(१) वित्तीय समस्या

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है ये बैंक राज्य के सहकारी आन्दोलन मे सर्वोपरि है । सहकारी आन्दोलन को वित्तीय सहायता देना भी इन्ही का दायित्व है । ये बैंक केन्द्रीय बैंको के माध्यम के प्राथमिक सहकारी समितियो को ऋण प्रदान करते हैं । किन्तु इनकी आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ नही है कि नीचे की समितियो की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति कर सकें ।

इस समस्या के समाधान के लिए निजी पूंजी मे वृद्धि करना आवश्यक है ताकि उसके आधार पर जमा तथा ऋण अधिक उपलब्ध हो सकती है । देश के शीर्ष बैंको ने अश पूंजी बढाने के लिए केन्द्रीय बैंको को दिये जाने वाली ऋण की सीमा उनके द्वारा खरीदे गये अशो के अनुसार तय कर दी है । फलत केन्द्रीय बैंको न अधिक ऋण प्राप्त करने के लिये अधिक अश खरीदने प्रारम्भ किये हैं । रिजर्व बैंक ने भी इन बैंको को अधिक ऋण दिया है ।

(२) बकाया ऋण व मितिवाद (Over dues) में वृद्धि

शीर्ष बैंको द्वारा प्रदान किये गये ऋण की बकाया राशि तथा मितिवाद मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है । जब शीर्ष बैंको को केन्द्रीय बैंको तथा अपने अन्य सदस्यो से, जिनको ऋण प्रदान किये गये हैं, समय पर बकाया राशि वापिस नही होती है तो ये बैंक रिजर्व को तथा अन्य बैंको को जिनके ऋण लिया है समय पर लौटाने मे असमर्थ होती हैं ।

इस समस्या के समाधान के लिए मितिवाद के किसी सदस्य ने बिना उचित कारण के बकाया धन नही लौटाया है उसे आधिक दण्ड दिया जाना चाहिये ।

(३) कुशल प्रबन्ध का अभाव

शीर्ष बैंको मे प्रबन्धक मण्डल मे कुशल सचालको का अभाव पाया जाता है । इसके अतिरिक्त कुशल कर्मचारियों का भी अभाव पाया जाता है । कुछ शीर्ष बैंक हैं जिनमे कार्य करने वालो तथा सचालको को बैंकिंग अनुभव का अभाव है । ऐसी स्थिति मे न तो कोई उचित निर्णय प्रबन्धक मण्डल मे लिया जा सकता है और न उसको उचित रूप से कार्य रूप मे परिणित भी किया जा सकता है ।

इस समस्या के समाधान के लिए यह आवश्यक है प्रथम, सचालक मण्डल के सदस्य बैंकिंग अनुभव वाले हो तथा स्टाफ भी बैंकिंग अनुभव का हो ताकि इसके नियमो के आधार पर कार्य किया जा सके ।

---

1 *Report 1968-69, Cooperative Deptt Govt of India p 13*

(४) व्यक्तिगत सदस्यता :

भारत में अधिकांश शीर्ष बैंकों में व्यक्तिगत सदस्यता है। इसके कारण सहकारी संगठन के ढाँचे में रुकावट आती है। साधारणतया व्यक्तिगत सदस्य प्रबन्धक मण्डल में भी सचालक नियुक्त हो जाते हैं। व्यक्तिगत सदस्य अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिये धन का दुरुपयोग करते हैं। पिछले वर्षों में व्यक्तिगत ऋण (जो कि विनिवाद है) की मात्रा बढ़ती जा रही है।

इस सम्बन्ध में मिर्धा समिति ने सुझाव दिया है कि शीर्ष बैंकों से व्यक्तिगत सदस्यता समाप्त करने के प्रयत्न करने चाहिए। शीर्ष बैंक सहकारी संगठन के ढाँचे में एक राज्य स्तर की शुद्ध संघीय इकाई होनी चाहिए अर्थात् उसमें केन्द्रीय बैंक ही सदस्य हों ताकि आन्दोलन की उचित प्रगति हो सके।

अन्य सुझाव

शीर्ष बैंकों के विकास के लिए कुछ अन्य सुझाव भी हैं जो निम्न प्रकार हैं—

(१) शीर्ष बैंक व्यापारिक बैंकिंग कार्य भी करते हैं। इस सम्बन्ध में सुझाव यह है कि शीर्ष बैंक अपनी गतिविधियों को सहकारी क्षेत्र में नयी खोज करके बढ़ावें तो सहकारी आन्दोलन को गति प्रदान हो सकती है। विभिन्न क्षेत्रों के सर्वेक्षण तथा अनुसन्धान करके नवीन कार्य क्षेत्र ढूँढना चाहिए जो कि सहकारिता के क्षेत्र में आ सकें। इनमें कार्य करने से व्यापारिक बैंकिंग कार्य करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। दूसरा सुझाव इस सम्बन्ध में यह हो सकता है कि यदि व्यापारिक बैंकिंग कार्य करते भी हैं तो इन बैंकों द्वारा व्यापारिक कार्यों में ऋण नहीं देना चाहिए।

(२) शीर्ष बैंकों के विकास के लिए तथा उनको वित्तीय सहायता देने में सरकार को अधिक भाग लेना चाहिए। यद्यपि आजकल सरकार इनमें भागीदार होने लगी है किन्तु इनको इन बैंकों में अधिक धन लगाना चाहिए।

(३) मिर्धा समिति ने सुझाव दिया है "संघीय समिति की प्रबन्धकारिणी सभा में, सदस्य समितियों द्वारा प्रतिबिम्बित समस्त महत्त्वपूर्ण हितों को प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन होना चाहिए तथा प्रादेशिक या कार्यात्मक आधार पर स्थानों का आवंटन करना चाहिए।"

(४) सहकारी समिति के संरचना के स्पष्ट प्रतिरूप (Clear Structural Pattern) का ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। इसका आशय है कि प्रार्थमिक समिति केवल व्यक्तिगत सदस्यों से बनी होनी चाहिए, केन्द्रीय समिति केवल प्राथमिक समितियों से तथा शीर्ष सहकारी समितियाँ केवल केन्द्रीय सहकारी साख समितियों द्वारा निर्मित होनी चाहिए। मिश्रित सदस्यता में अनेक अनियमिततायें उत्पन्न हो गयी हैं।

आल इण्डिया रूरल क्रेडिट रिव्यू कमेटी रिपोर्ट १९६९ में शीर्ष बैंकों के निम्नलिखित सुझाव दिये गये हैं —

(१) जिन भागों में राज्य सरकारें, शीर्ष को बैंकों अंश पूँजी में योगदान, दीर्घकालीन निक्षेप, व्यवस्थापकीय अनुदान अथवा अन्य प्रकार की सुविधायें सुदृढ़

बना रही है, वहाँ राज्य सरकारों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए रिजर्व बैंक की सलाह से, बैंकों के प्रबन्धक मण्डलों को अच्छी तरह से पुनर्संगठन किया जाना चाहिए।

(२) इस प्रकार की शीर्ष बैंकों में रिजर्व बैंक को प्रत्येक बैंक में एक अधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए जो प्रबन्धक मण्डल की बैठक में भाग ले सके और सहकारी साख के पुनर्संगठन तथा विस्तार के लिए आवश्यक सलाह प्रदान कर सके।

(३) जिन भागों में सहकारी साख के क्षेत्र में अच्छी प्रगति हुई है वहाँ राज्य सरकारें शीर्ष बैंकों की अंश पूंजी के योगदान में वृद्धि करें ताकि पर्याप्त साख प्रदान की जा सके।

(४) पुनर्सठित शीर्ष बैंकों में कुशल कर्मचारियों की व्यवस्था, उपयुक्त एवं प्रशिक्षण के माध्यम से करना चाहिए।

(५) जिन भागों में केन्द्रीय बैंक अच्छी स्थिति में नहीं है और वे अपने अन्तर्गत प्राथमिक कृषि साख समितियों को पर्याप्त साख समितियों को पर्याप्त साख व्यवस्था नहीं कर पाती हैं वहाँ शीर्ष बैंक अपनी शाखा स्थापित कर सकती है। यह शाखा उस समय तक कार्य करे जब तक केन्द्रीय बैंक पुनः संगठित न हो जाये और अच्छी तरह कार्य करने न लग जाये।

प्रश्न

१. शीर्ष बैंकों अथवा राज्य सहकारी बैंकों से आपका क्या अभिप्राय है ? इनके कार्यों का वर्णन कीजिए।

२. भारतवर्ष में वर्तमान समय में शीर्ष बैंकों की क्या स्थिति है ? पंचवर्षीय योजनाओं में इनकी प्रगति का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

३. शीर्ष बैंकों की कौन-कौन सी मुख्य समस्यायें हैं ? उनके समाधान के उनके समाधान के सुझाव दीजिए।

४. शीर्ष बैंकों का सहकारी आन्दोलन में क्या स्थान है ? ये किस प्रकार से आन्दोलन की प्रगति में सहायक होते हैं ?

५. भारत में शीर्ष बैंकों की कार्यशील पूंजी के कौन-कौन से स्रोत हैं ? पंचवर्षीय योजनाओं में इन स्रोतों की स्थिति का वर्णन कीजिए।

७

दीर्घकालीन सहकारी साख
(Long Term Cooperative Credit)

किसानो की साख सम्बन्धी आवश्यकताएं अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन होती है। दीघकालीन ऋण की अवधि ५ वर्ष से लेकर २० से ३० वर्ष तक होती है। इस प्रकार के ऋण भूमि खरीदने, कुंआ बनवाने, बजर भूमि के खेती योग्य बनाने, पुराने ऋण को चुकाने तथा भूमि के स्थायी विकास के लिये होते हैं। इन ऋणो की पूर्ति भारत मे प्राचीनकाल से ही साहूकार तथा महाजन करते चले आये हैं। वर्तमान काल मे सहकारी क्षेत्र मे भूमि बन्धक बैंक दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते है। ग्रामीण सहकारी समितियाँ केवल अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण ही *प्रदान कर सकती हैं किन्तु दीर्घकालीन ऋण नही प्रदान करती हैं* क्योकि इनके पास लम्बी अवधि तक देने के लिये धन का अभाव होता है। भारतवर्ष मे सन् १८८३ के भूमि सुधार ऋण कानून *(Land Improvement Loans Act)* के अन्तर्गत दीर्घकालीन तकाबी ऋण की सुविधा प्रदान की गई थी। किन्तु अनेक बाधाओ के कारण यह विधि अधिक उत्तम सिद्ध न हो सकी। अत भूमि बन्धक बैंकों का विकास इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया।

भूमि बन्धक बैंक
(Land Mortgage Banks)

भूमि बन्धक बैको से तात्पर्य इस प्रकार के बैंको से है जो कि किसानो को उनकी भूमि की जमानत पर दीघकालीन ऋण प्रदान करते है। ये बैंक *सहकारिता के क्षेत्र मे सीमित दायित्व वाली होती है जो किसानो को १८वर्ष से* २० वर्ष तक की अवधि के ऋण प्रदान करती है। कुछ देशो मे अधिकतम अवधि २० वर्ष से भी अधिक है। हमारे देश मे सभी भूमि बन्धक बैंक सहकारी *समिति अधिनियम* के अन्तर्गत पजीकृत हैं।

भूमि बन्धक बैंकों को सहकारी, अर्द्ध सहकारी तथा असहकारी (व्यापारिक) आदि तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है। भारत मे यह अर्द्ध सहकारी (Quasi cooperative) सगठन है। यहाँ भूमि बन्धक बैंको का आधार सघात्मक है अर्थात् प्राथमिक समितियो मे प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक होती हैं जिनके सदस्य व्यक्ति होते है और ये समितियाँ केन्द्रीय सरकारी भूमि बन्धक बैंको की सदस्य होती हैं। भारत मे सन १९६७ के अन्त तक १९ केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक थे और प्राथमिक भूमि बन्धक बैंकों की सख्या ७०७ थी।[1]

आवश्यकता

भारत मे किसानो की आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। अत उनको अपनी कृषि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकता पडती है। किसानो को कुछ कार्यों मे अधिक धन खर्च करना पडता है अत अल्पकालीन मे ऋण लेकर वापिस नही किया जा सकता है। इस परिस्थिति मे दीर्घकालीन ऋणो की आवश्यकता पडती है। वे कार्य जिनमे अधिक व्यय करना पडता है, नयी जमीन खरीदने पपिंग सैंट लगाने, पुराने ऋणो को चुकाने, कुँआ खोदने तथा भूमि सुधारने आदि है।

ग्रामीण सहकारी साख समितियाँ कृषको को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने की स्थिति मे नही हैं। लम्बी अवधि के ऋण प्रदान करने मे व्यापारिक बैंक भी रुचि नही लेते। किसानो की इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ऐसी सस्थाओ की आवश्यकता है जो कि दीर्घकालीन साख सुविधाएँ प्रदान कर सकें। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है सन् १८८३ मे भूमि सुधार कानून के अन्तर्गत तकावी ऋण प्रदान किये जाते रहे हैं जो कि दीर्घकालीन होते हैं। यह व्यवस्था भी अनेक कठिनाइयो के कारण अधिक लोकप्रिय न हो सकी। ऐसी स्थिति मे भूमि बन्धक बैंको की स्थापना अत्यन्त आवश्यक हो गयी।

भूमि बन्धक बैंकों के कार्य
(Functions of land Mortgage Banks)

भूमि बन्धक बैंको का प्रमुख कार्य किसानो को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना है। ये ऋण भूमि को प्रथम बन्धक रखकर दिये जाते है। बैंक ऋण प्रदान करने की निम्नतम तथा अधिकतम सीमा निर्धारित कर लेती हैं। भारतवर्ष मे निम्नतम सीमा ४०० रु० है और अधिकतम सीमा १०,००० से १५,००० रुपये तक है। दीर्घकालीन ऋण पुराने ऋण चुकाने अथवा भूमि सुधार के लिए जैसे सिचाई, कुँए व मकान बनाने के लिए, भूमि जोतने योग्य बनाने के लिए, मशीनें तथा आधुनिक उपकरण खरीदने के लिए दिये जाते हैं।

भूमि बन्धक बैंको के अन्य कार्य भूमि व कृषि विधियो मे सुधार करना, किसानो के लिए मकान बनवाना तथा किसानो को भूमि खरीदने आदि मे सहायता प्रदान करना है। भारतवर्ष मे अधिकाश ऋण पुराने ऋणो को चुकाने मे ही काम मे

1 *The Times of India Directory and Year Book 1969*, P. 84

लिये गये है। यद्यपि आजकल कृषि उत्पादक कार्यों मे भी अधिक ऋण स्वीकार किये जाने लगे हैं। वर्ष १९६६-६७ मे प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको द्वारा प्रदान किये गये ऋण की राशि ४० ८४ करोड रुपये थी जबकि वर्ष १९६५-६६ मे ४१ २३ करोड रुपये हो गई।[1]

सदस्यता
(Member ship)

भारतवर्ष मे अधिकाश राज्यो मे राज्य स्तर पर केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक हैं जो प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की सघीय सस्थायें हैं। केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको मे प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक, अन्य समितियां तथा व्यक्तिगत सदस्य होते है। भारत वर्ष में ३० जून १९६७ को केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक १९ थी जिनकी सदस्यता म ८७२ प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंक व समितियां तथा ७७१८५४ व्यक्ति सम्मिलित हैं[1]।

भारत वर्ष मे प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की सख्या ३० जून १९६७ को ७०७ थी जिनकी कुल सदस्यता १२ ५५ लाख थी।[2] इन बैंको मे व्यक्तिगत सदस्य होते हैं।

कार्यशील पूंजी
(Working Capital)

प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की कार्यशील पूंजी के निम्नलिखित स्त्रोत हैं—

(१) अंश-पूंजी (Share Capital)

प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको मे अश सदस्यो द्वारा खरीदे जाते हैं। अशो मे प्राप्त धन राशि का कार्य-शील पूंजी मे महत्वपूर्ण भाग होता है। अश पूंजी की मात्रा के ऊपर ही अन्य प्रकार की निधियां निर्भर रहती हैं। प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको ने अश पूंजी बढाने के लिए ऐसे व्यक्तियो को भी सदस्यता दी है जिनके पास भूमि नहीं है पचवर्षीय योजनाओ मे प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की सख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९५१-५२ मे इन बैंको की अश पूंजी केवल ५८ लाख रुपए थी जो कि १९६१-६२ मे बढकर २ ८३ करोड रुपए हो गई। १ वर्ष १९६६-६७ मे इसमे और अधिक वृद्धि हुई है। *इस वर्ष अश पूंजी की राशि १४.१४ करोड रुपए हो गई।*

(२) सचित कोष व अन्य कोष (Reserve Fund and other Funds)

सचित कोष व अन्य कोष भी प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की कार्यशील पूंजी के अग हैं। लाभ के एक निश्चित प्रतिशत को सचित अथवा अन्य कोषों मे सचित कर लिया जाता है। हमारे देश मे सचित कोष तथा अन्य कोषो की राशि वर्ष १९५१-५२ मे क्रमश १३ तथा ५ लाख रुपए थी जो कि वर्ष १९६१-६२ मे बढकर *क्रमश ३९ तथा २९ लाख हो गई। वर्ष १९६६-६७ मे पुन वृद्धि हुई और राशि* क्रमश १०७ व ७९ लाख हो गई।

---

1 India 1969, P 271
2. The Times of India Directory and Year Book 1969 P 84
3 India 1969, P 271

(३) ऋण (Borrowings) ·

प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की कार्यशील पूंजी मे सबसे महत्वपूर्ण भाग ऋणों का है। य बैंक केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंकों से ऋण लेते हैं। हमारे देश मे सभी प्राथमिक बैंको द्वारा लिए गए ऋण की राशि वर्ष १९५१-५२ मे ६.८४ करोड रुपए थी जो कि वर्ष १९६५-६६ मे बढकर ११९-८४ करोड रुपए हो गई।

उपरोक्त विवरण स्पष्ट है कि भारत मे प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की कुल कार्यशील पूंजी वर्ष १९६६-६७ मे १७३.५९ करोड रुपए थी।

केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको की कार्यशील पूंजी

(१) अंश पूंजी (Share Capital)

केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको की अश पूंजी कार्यशील पूंजी का प्राथमिक साधन है। अश पूंजी की मात्रा इतनी नही होती कि सभी प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की वित्तीय आवश्यकतायें पूर्ण की जा सकें। किन्तु फिर भी अश पूंजी के आधार पर ही ऋण सुविधायें मिल सकती है। भारतवर्ष मे वर्ष १९५१ ५२ मे अश पूंजी ४४ लाख रुपए थी जो कि वर्ष १९६६ ६७ मे बढकर १८.९३ करोड रुपये हो गई। अश पूंजी मे वृद्धि होने के प्रमुख कारण सदस्यता मे तेजगति से वृद्धि नही है।

(२) सचित व अन्य कोष

कार्यशील पूंजी मे सचित व अन्य कोषो की राशि भी सम्मिलत की जाती है। भारतवर्ष मे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैको के सचित तथा अन्य कोषो मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९५१-५२ मे संचित एव अन्य कोषो की राशि क्रमश २१ २५ लाख एव १२ लाख रुपए थी जो कि १९६६-६७ मे बढकर क्रमश १.९२ एव १ ६१ करोड रुपये हो गई।

(३) ऋण-पत्र

इन बैंको मे सदस्यो द्वारा प्रदान की गई पूंजी की मात्रा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नही होती हैं अत ऋण पत्रो का निर्गमन किया जाता है। केन्द्रीय बैंको की कार्यशील पूंजी मे ऋण-पत्रो का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। राज्य सरकारें केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको द्वारा निर्गमित ऋण-पत्रो की गारन्टी देती है। केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंको द्वार ऋण के बदले मे दिए गए बन्धक पत्रो (Mortgage Bonds) की जमानत पर ऋण पत्रो का निर्गमन करती हैं भारतवर्ष मे वर्ष १९५१-५२ मे ऋण पत्रो की राशि ७ ८३ करोड रुपए थी जो कि वर्ष १९६१-६२ में बढकर ४७.७४ करोड रुपये हो गयी। वर्ष १९६६-६७ मे इसकी राशि बढकर २३२.०३ करोड रुपए हो गयी।

(४) ऋण .

केन्द्रीय भूमि बन्धक-बैंक रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा राज्य सरकार से ऋण प्राप्त करती है। वर्ष १९५१-५२ मे कुल प्राप्त किए गए ऋण की राशि १.५३ करोड रुपये थी जो कि वर्ष १९६१-६२ में बढकर ५४ ६ करोड रुपये हो गयी।

वर्ष १९६६-६७ मे ऋण की राशि ९·०९ करोड रुपये थी। इन ऋणो की राशियो मे निक्षेपो की राशि भी सम्मिलित है।

सिंकिंग कोष (Sinking Fund)

केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको द्वारा जो ऋण पत्र जारी किए जाते हैं उनकी अवधि समाप्ति पर भुगतान करना पडता है। इसके पहले अवमोचन कोष (Redemption Fund) बनाया जाता था किन्तु आजकल रिजर्व बैंक के परामर्श के आधार पर सिंकिग कोष निर्मित किया जाता है। प्रतिवर्ष कुछ धन राशि इस कोष मे डालदी जाती है जो कि भविष्य मे ऋण-पत्रो के भुगतान मे काम मे ली जाती है।

भूमि बन्धक बेंको को ऋण देने की नीति (Loaning policy of Land Mortgage Banks.)

भूमि बन्धक बैंक अपने सदस्यों को भूमि गिरवी रखकर दीर्घकालीन ऋण किस प्रकार के कार्यों के लिए लिया जा रहा है इस सम्बन्ध मे विचार किया जाता है। बैंक सामान्यत भूमि जो बन्धक के रूप मे रखी गयी है, के दो तिहाई मूल्य तक ऋण प्रदान करती है। ऋण प्रदान करने से पूर्व कृपक की भूमिका योग्य एव अनुभवी अधिकारियो से मूल्याकन कराया जाता है। ऋण प्राप्त करने के उद्देश्य और कृपक की आय के बारे मे जानकारी प्राप्त करके ऋण की राशि निश्चित की जाती है। भारत वर्ष मे भूमि बन्धक बैंको द्वारा दिए जाने वाले ऋण की न्यूनतम और अधिकतम सीमा निर्धारित की गयी है। न्यूनतम सीमा ४०० रुपए है और अधिकतम सीमा १०,०००रु० से १५,०००रु० है। ब्याज की दर सामान्यत ४ या ४·५० प्रतिशत है।

भारत में भूमि बन्धक बैंकों का विकास एव वर्तमान स्थिति

भारतवर्ष मे १९ वी शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे भूमि बन्धक बैंको की स्थापना के प्रयत्न किये गये। ये प्रयत्न फ्रास के आधार पर हुए किन्तु अनेक बाधाओ के कारण सफलता नही मिल सकी। २० वी शताब्दी मे प्रथम प्रयास १९२० मे पजाब के झाग (Ghang) नामक स्थान पर किया गया। धीरे-धीरे पजाब मे इस प्रकार के बैंक की वृद्धि होने लगी। किन्तु मन्दी की स्थिति के कारण इन बैंको की स्थिति खराब हो गयी और पुराने ऋणो की वसूली पर ही अधिक ध्यान दिया जाने लगा। भारत मे सर्वप्रथम सफल प्रयत्न १९२९ मे मद्रास मे किया गया। इस वर्ष यहाँ केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक खोला गया।[1] इस बैंक के कार्यों मे सरकार की पर्याप्त सहायता मिली। इसके ऋण पत्रो को सरकार की गारन्टी प्राप्त हुई। राज्य मे प्रारम्भिक बैंक पहले स्थापित हो चुकी थी। जिसकी स्थिति १९२९ की केन्द्रीय बैंक से सुदृढ हो गयी। धीरे-धीरे मैसूर, बम्बई, कोचीन, उडीसा मे भूमि बन्धक बैंक स्थापित हुए। इसके अतिरिक्त अन्य राज्यो मे भी इस दिशा मे अच्छी प्रगति हुई।

1 Reserve Bank, Review of Coopratıve Movement 1939 40 p 36,

केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक

प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे हमारे देश मे कुल मिलाकार ६ केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक थे। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष (१९६५-६६) मे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको की सख्या वर्ष १९५१ ५२ की तुलना मे तीन गुनी हो गई। ये बैंक राज्य स्तर पर सघीय सस्था हैं जो कि प्राथयिम भूमि बन्धक बैंको के माध्यम से किसानो को दीघकालीन ऋण प्रदान करती है। केन्द्रीय बैंक अपनी निधियाँ मुख्यत ऋण पत्रो के निर्गमन से प्राप्त करती हैं। वर्ष १९६६-६७ मे इन बैंको की *सख्या तथा सदस्य सख्या क्रमश १९ तथा ७ ७२५२६ हो गई। इन बैंको की प्रगति* निम्न तालिका मे स्पष्ट की गई है

केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक

विवरण	१९५१ ५२	१९६१-६२	१९६६-६९	१९६६-६७
१. संस्या	७	१७	१८	१९
२. सदस्यता	३४,५७९	२,९९,३८३	४,०२,९३४	७७२५२६
३. अश पूंजी (लाख रुपये)	४४	५७३	१५३९	१८९३
४. माचत कोष ,, ,,	२५	७४	१५७	१९२
५. अन्य कोग ,, ,,	२२	५६	१०८	१६१
६. ऋण पत्र ,, ,,	७८३	४७७४	१७८३७	२३२०३
७ ऋण (जमा सहित)	१५३	५४६	७२६	९०९
८. कार्य शील पूंजी ,,	१०१७	६१७०	२०६५९	२६३५८
९. प्रदत्त ऋण ,,	२५१	१४७५	५७४१	५८८५
१०. बकाया ऋण ,,	८०५	४०९०	१६३२६	२०७३७

(Source India 1909 P. 271)

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत मे पचवर्षीय योजनाओ मे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको की सख्या, सदस्य सख्या, कार्यशील पूंजी मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। इन बैंको द्वारा प्रदान किये गए ऋण मे भी बहुत वृद्धि हुई है। किन्तु फिर भी वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो पाई है। राज्य सरकारो ने तथा रिजर्व बैंक ने इन बैंको के विकास मे बहुत योगदान दिया है। सरकार ने ऋण पत्रो की गारन्टी दी है तथा सहायता भी प्रदान की है।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको की सदस्य होती हैं। इन बैंको के विकास मे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको का हाथ महत्वपूर्ण रहा है। इन बैंको की प्रगति का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक

वितरण	१९६१-५२	१९६१-५१	१९६५-६६	१९६६-६७
१. अंश पूंजी	५८	२८३	१११८	१४१४
२. सचित कोष	१३	३९	८८	१०७
३. अन्य कोष	५	२३	६७	७९
४. ऋण	६८४	३४८७	११९८४	१५७६०
५. कार्यशील पूंजी	७६०	३८३१	१३६९३	१७३५९
६ अदत्त ऋण	१३०	१२५९	४१२३	४०८४
७ बकाया ऋण	६६६	३५२८	१२४३३	१५४६७

(Source India 1969 P. 271)

प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की सख्या वर्ष १९६६-६७ के ६७३ से ७०० हो गयी। इनसे से ४४८ आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा मैसूर मे थी। इन बैंको की सदस्य सख्या १० ४८ लाख से १३·५५ लाख हो गयी। इन बैंको के गिरिवाद (Overdues) की राशि वर्ष १९६६-६७ के अन्त मे ५ ७ करोड रुपये थी जबकि इसके पिछले वर्ष ४ ४ करोड रुपये थी।

भारतवर्ष मे दक्षिणी भारत मे प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की सख्या उत्तरी भारत की तुलना मे बहुत अधिक है। अत दक्षिण भारत मे इनकी अच्छी प्रगति हुई। इतना होते हुए भी हमारे देश मे भूमि बन्धक बैंक ग्रामीण दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति नहीं कर पायी है। भूमि बन्धक बैंको की प्रगति के लिये अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने कुछ सुझाव दिये है जो कि बहुत महत्वपूर्ण हैं।

धीमी प्रगति के कारण (Causes of slow Progress)

भारतवर्ष मे भूमि बन्धक बैंको के मार्ग मे अनेको बाधाये हैं। विभिन्न बैंको के सगठन तथा सचालन मे अनेको दोष है। योग्य सचालको तथा कुशल कर्मचारियों का सर्वथा अभाव रहा है। पूंजी की कमी विशेष बाधा रही है। इन बैंको की धीमी प्रगति के निम्नलिखित कारण है।

(१) सस्ती ब्याज दर का अभाव

भूमि बन्धक बैंको से सस्ते ब्याज दर पर दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है किन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि ये स्वय कम ब्याज दर पर विभिन्न स्रोतो से धन प्राप्त कर सके। हमारे देश मे अनेको कठिनाइयो के कारण ये बैंक सस्ती दर पर व पर्याप्त मात्रा मे निधियाँ नही प्राप्त कर पाती हैं अत वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति ही नहीं होती है। स्वय ये बैंक ऊँची ब्याज दर पर निधियाँ प्राप्त करके सस्ती ब्याज दर पर ऋण देने में असमर्थ हैं।

(२) प्रबन्ध कुशलता में कठिनाई

भारतवर्ष मे भूमि बन्धक बैंको के सामने प्रबन्ध कुशलता की बहुत बडी कठिनाई है। योग्य अनुभवी एव उत्साही सचालकों की कमी पायी जाती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कर्मचारीगण भी अनुभवहीन तथा अप्रशिक्षित होते हैं। इसके कारण उनमे कार्यक्षमता का अभाव पाया जाता है। इनकी कार्यक्षमता पर ही बैंको कीकार्यक्षमता निर्भर करती है। बैंको की प्रबन्ध समितियो द्वारा निर्णय भी उचित व शीघ्र नही लिये जाते हैं जिससे ऋण मिलने मे बहुत देर हो जाती है।

(३) रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया की उदासीनता

इस बैंक की स्थापना के पश्चात् एक लम्बी अवधि तक इसने दीर्घकालीन ऋणो की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया। इसके अतिरिक्त यह बैंक आरम्भ मे कई वर्षों तक ग्रामीण व्यक्तियो के वित्तीय तथ्यो पर अध्ययन नही करवा पायी। यद्यपि आजकल रिजर्व बैंक इस तरफ ध्यान दे रही है किन्तु इसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

(४) किसानो की ऋण चुकाने की क्षमता का ज्ञान नहीं

भारतवर्ष मे भूमि बन्धक बैंको के समान यह समस्या रही है कि किसानो की ऋण चुकाने की क्षमता का पता किस प्रकार लगाया जाय। इसका कारण यह रहा है कि भारतवर्ष मे वर्षा अनिश्चित एव अनियमित है अत फसल वर्षा पर निर्भर रहती है। जिस वर्ष वर्षा अच्छी नही होती अथवा अधिक हो जाती है फसलें नष्ट हो जाती हैं फलत किसान अपनी ऋण अदायगी की किश्त नही जमा करा पाते है।

(५) भारतीय किसानो की अशिक्षा

अधिकाश भारतीय किसान बिलकुल अशिक्षित है अत भूमि बन्धक बैंको के महत्व को भी नही समझते है और इनकी सदस्यता ग्रहण नही करते। आज भी यह समस्या बनी हुई है। किसान इन बैंको के लाभ को उठाने की बजाय साहूकारो तथा महाजनो से ऋण प्राप्त करना अधिक उत्तम समझते हैं। इस कठिनाई के कारण इन बैंको का विकास तेज गति से नही हो पाया।

(७) ऋणो की स्वीकृति मे विलम्ब

बैंको के सामने अनेको कठिनाइयों तथा कर्मचारियो व सचालको की अयोग्यता के कारण ऋणो की स्वीकृति मे विलम्ब हो जाता है। कुछ भूमि बन्धक बैंको की ऐसी स्थिति है कि उनके सामने वित्तीय समस्या बहुत भयकर होती है और वे ऋणो की स्वीकृति लम्बी अवधि तक नही कर पाती है। इससे उनकी ख्याति पर बुरा प्रभाव पडता है। ऋणो की स्वीकृति मे देरी हो जाने से जिस उद्देश्य के लिये ऋण लिये जाते है वह पूर्ण नही हो पाता है।

(८) अधिकाश ऋण, ऋण चुकाने के लिये

भारतवर्ष मे किसानो द्वारा भूमि बन्धक बैंको से लिया गया ऋण अपने पुराने ऋण चुकाने के लिये ही काम मे लिया जाता रहा है। उत्पादक कार्यो मे

ऋण काम न लेने के कारण किसानो की ऋण चुकाने की क्षमता कम हो जाती है फलत वे ऋण चुकाने मे असमर्थ होते है। आजकल उत्पादक कार्यो के लिये ऋण प्रदान किये जाने लगे हैं।

(९) ऋण प्रदान करने की कार्यविधि कठिन

भूमि बन्धक बैंको से ऋण प्राप्त करने के लिये- किसानो को लम्बी एव कठिन कार्य विधि से गुजरना पडता है। किसानो को तहसीलदार से भूमि के स्वामित्व का प्रमाण पत्र लेना पडता है और इसके अतिरिक्त अनेको प्रमाण पत्र लेने पडते हैं जिन्हें अनपढ किसान लेने मे पर्याप्त कठिनाई महसूस करते हैं।

(१०) पूँजी की कमी

पूंजी की लगभग सभी भूमि बन्धक बैंको के सामने एक समस्या है। ग्रामीण जनता अशिक्षित होने के कारण अश नही खरीद पाती है। फलत प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक अधिक अश पूँजी नही जुटा सकती हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको से भी आवश्यकतानुसार ऋण नही मिल पाता है। वित्त के अभाव से इन बैंको को कार्य विधि मे बहुत असुविधा रहती है।

(११) अन्य

भारतवर्ष मे साहूकारो तथा महाजनो के साथ इन बैंको को प्रतिस्पर्द्धा चली है। महाजनो तथा साहूकारो द्वारा अनेक सुविधायें दिये जान के कारण अधिक ब्याज दर पर भी किसान ऋण लेते रहे हैं। इस बाधा के अतिरिक्त भूमि स्वामित्व प्रणाली दोषपूर्ण होने के कारण अनेको किसान इन बैंको की सेवा से वचित रहे।

उपरोक्त कठिनाइयो के कारण भारत मे भूमि बन्धक की प्रगति तेज गति से नही हो सकी। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने इन बैंको की स्थिति सुधारने के लिय कुछ सुझाव दिये है जिनका सक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैं—

(A) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक

(१) प्रत्येक राज्य मे एक केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक स्थापित होनी चाहिये।

(२) जो वास्तकारी नियम (Tenary laws) भूमि बन्धको बैंको के नियोजित विकास मे बाधक है उनमे उपयुक्त सुधार किया जाना चाहिये।

(३) बन्धक का पजीयन साधारण तथा सस्ता होना चाहिये। इसके अतिरिक्त पजीयन मे अनुचित समय भी नही लगाना चाहिये। साधारणत पजीयन के लिये अधिक समय लग जाता है जिससे अनेको असुविधायें हो जाती है।

(४) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको की अश पूंजी मे सरकार का भाग कम से कम ५१ प्रतिशत होना चाहिये। यदि आवश्यकता पडे तो यह भाग अधिक भी किया जा सकता है जिसमे वित्तीय कठिनाइयाँ कम की जा सके।

(५) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की अश पूंजी मे भाग लेने का प्रावधान अपने नियमो मे करे।

(६) भारत मे अधिकांश ऋण, पुराने ऋणों को चुकाने के काम मे लिये जाते रहे है किन्तु उत्पादक कार्यो के लिये ऋण दिया जाना चाहिये ।

(७) उत्पादक कार्यों के लिये द्वितीय तथा तृतीय ऋण व्यवस्था भी की जानी चाहिये । अर्थात् भूमि बन्धक बैंको को इस प्रकार का अधिकार दिया जाना चाहिये ताकि किसानो को द्वितीय व तृतीय ऋण उत्पादक कार्यो के लिये दे सकें ।

(८) विभिन्न उद्देश्यो के लिये प्रदान किये जाने वाले ऋणो की वापसी की अवधि पूर्व निर्धारित कर देनी चाहिये ।

(९) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक ऋण पत्र जारी करें तो वे भिन्न भिन्न अवधि के लिये हो जिससे कि विभिन्न उद्देश्यो के लिये ऋण देने के लिये उचित निधियाँ हो सकें । इसके अतिरिक्त ग्रामीण ऋण पत्र भी जारी किये जाने चाहियें ।

(१०) केन्द्रीय भूमि बन्धक द्वारा विशेष विकास ऋण पत्र जारी किये जाने पर रिजर्व बैंक इनको खरीदें ।

(११) राज्य सरकारें इन बैंको के ऋण पत्रों की गारण्टी दें ।

(१२) रिजर्व बैंक तथा स्टेट बैंक ऑव इण्डिया को ऋण पत्रो के प्रभावशाली बाजार बनाने में सहायता करनी चाहिय ।

(B) प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक (Primary land Mortgage Banks)

(१) प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको की स्थापना से पूर्व क्षेत्र की उचित जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये ।

(२) प्राथमिक बैंको का क्षेत्र न तो अधिक बड़ा होना चाहिये और न अधिक छोटा अर्थात् आर्थिक आकार होना चाहिये ।

भारत मे भूमि बन्धक बैंको की उन्नति के लिये रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया, स्टेट बैंक ऑव इण्डिया, केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें उचित प्रयत्न करें । भूमि बन्धक बैंको के सगठन तथा वित्तीय स्थिति सुधारने मे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान हो सकता है । भारत मे कृषि के विकास की नीति के अनुसार तेज गति के विकास के लिये दीर्घकालीन ऋणों का भी विशेष महत्व होगा । अत इन बैंको के विकास के लिय प्रयत्न करना चाहिये ।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना (१९६९-७४) मे भूमि बन्धक बैंको के विस्तार का कार्यक्रम रखा गया है । इन बैंको के विस्तार मे तथा इन बैंको को विभिन्न सुविधायें प्रदान करके चतुर्थ पंच-वर्षीय योजना के अन्त तक कृषि विकास के लिये ७०० करोड रुपयें की ऋण सुविधायें प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है । वर्ष १९६८-६९ मे दीर्घकालीन ऋणों की राशि १०० करोड रुपये थी । इस बड़े अन्तर को पाटने के लिये भूमि बन्धक बैंको को अधिक वित्तीय सुविधायें रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक तथा केन्द्रीय व राज्य सरकारें प्रदान करेंगी । आशा है भविष्य मे ये बैंक कृषि विकास के क्षेत्र मे बहुत अधिक लाभप्रद हो सकेंगी ।

प्रश्न

१ भूमि बन्धक बैंको से आपका क्या अभिप्राय है ? इनके क्या क्या कार्य हैं ? भारत मे इनकी वर्तमान स्थिति का विवेचन कीजिये ।

२. भूमि बन्धक बैंको के कार्यो का विवरण देते हुये लिखिये कि इनकी धीमी प्रगति के क्या कारण है ।

३ भारतवर्ष मे भूमि बन्धक बैंको की क्या-क्या समस्याये है ? इनके विकास के लिये सुझाव दीजिये ।

४ भारतीय किसानो की दीर्घकालीन ऋण आवश्यक्ताओं को भूमि बन्धक बैंक कहाँ तक पूरी कर पाये है ? क्या आप कोई सुधार के लिये सुझाव देना चाहेंगे ?

५. पचवर्षीय योजनाओं मे भूमि बन्धक बैंक की प्रगति पर टिप्पणी लिखियें ।

७

सहकारी विपणन
(Cooperative Marketing)

विपणन का आशय क्रेता तथा विक्रेताओ को निकट लाने की क्रिया से है। वस्तुओ के उत्पादक से अन्तिम उपभोक्ताओ तक पहुँचाने के लिए जिन-जिन कार्यों को करना पड़ता है वे सभी विपणन के अन्तर्गत आते हैं। यदि वे कार्य सहकारिता के आधार पर किये जायें तो इसे सहकारी विपणन कहा जाता है। विपणन के अन्तर्गत पैदावार को एकत्र करना, श्रेणी करण, प्रविधिकरण (Processing), यातायात व्यवस्था, वस्तुओं का भण्डारण, उपभोक्ताओं तक माल पहुँचाना, विक्रय के लिए वित्त व्यवस्था आदि कार्य सम्मिलित किये जाते हैं। सहकारी विपणन मे सहकारी समितियों द्वारा ये कार्य किये जाते हैं।

आवश्यकता (Need)

भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था मे सहकारी विपणन का बहुत महत्त्व है। कृषि पदार्थों के विपणन मे मध्यस्थ तथा व्यापारी लाभ कमाते हैं जिससे वस्तुओं के मूल्यों मे बहुत वृद्धि हो जाती है। इन आवश्यक खर्चों को कम करने के लिए और उत्पादक तथा उपभोक्ताओ दोनों के हितो की रक्षा करने के लिए विश्व के प्राय सभी देशों मे सहकारी विपणन के महत्त्व को स्वीकार किया है। इस व्यवस्था मे किसान अपनी उपज को व्यापारियो अथवा अन्य मध्यस्थो को न बेचकर सहकारी समितियों को देते हैं। कहीं-कहीं पर ये समितियाँ कमीशन एजेन्ट अथवा आढ़तिये का काम करती है। इससे एक मध्यस्थ वर्ग जो कि किसानों और उपभोक्ताओं के मध्य होता है, समाप्त हो जाता है। कुछ सहकारी समितियाँ किसानों से माल खरीद कर उसे बाजार मे बेचने लायक बनाती हैं। और उसे बेचकर जो लाभ प्राप्त करती है वे या तो सदस्यों मे बाँट देती हैं या किसानो के कल्याणार्थ अन्य कार्यों मे लगा देती हैं। सहकारी विपणन का महत्व निम्न प्रकार है।

(१) कृषि उपजो के विपणन मे अनेको बुराइयाँ प्रचलित हैं :—इनमे से तोल मे गड़बड़ी, दलाल व क्रेताओं के मध्य गठबन्धन, उत्पादन की कीमत मे कटौतियाँ

आदि प्रमुख हैं। इस बुराइयो को काफी सीमा तक सहकारी विपणन दूर कर सकती है।

(२) सामान्यत मध्यस्थ जो सेवायें विपणन को प्रदान करते हैं उनके बदले मे वे अधिक पैसे वसूल करते हैं इससे एक तरफ किसानो को उनके उत्पादन का कम भाग प्राप्त होता है और दूसरी तरफ उपभोक्ताओ को अधिक मूल्य चुकाना पडता है। विश्व के अनेक देशो मे इस बुराई को दूर करने के लिए सहकारी विपणन का सहारा लिया गया है और बहुत हद तक इस बुराई को दूर किया गया है।

(३) आजकल मूल्य वृद्धि की समस्या बहुत भयकर है। सगठित सहकारी विपणन व्यवस्था से मूल्य वृद्धि को रोका जा सकता है। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि मध्यस्थो के न रहने से उनके द्वारा बडी मात्रा मे लाभ समाप्त हो जायेगा। फलत वस्तुओ के मूल्य नीचे होंगे। इसके अतिरिक्त किसानों को पूर्व की अपेक्षा अधिक मूल्य मिल सकेगा।

(४) हमारे देश मे सहकारी विपणन के विकास का एक दूसरा दृष्टिकोण भी है। सहकारी साख के प्रसार के लिए सहकारी विपणन समितियाँ बहुत महत्त्व की हो सकती हैं। सहकारी साख समितियों द्वारा जो ऋण किसानो को प्रदान किया जाता है उसकी वापिसी मे सहकारी विपणन समितियाँ महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं। अत सहकारी साख के अधिक विकास मे सहकारी विपणन का महत्त्वपूर्ण स्थान हो सकता है।

(५) किसानो को आर्थिक शिक्षा प्रदान करने मे सहकारी विपणन समितियाँ अधिक सहायक हो सकती हैं। सहकारी विपणन मे किसानो की स्वयं की समस्यायें उन्ही के प्रयत्नों से दूर की जाती है जो कि उनको मूलभूत आर्थिक सत्य की शिक्षा देती है। सहकारी समितियाँ किसानों को बताती हैं कि विपणन की समस्या और उत्पादन की समस्या बहुत निकट से सम्बन्धित हैं।[1]

(६) सहकारी विपणन से किसान की स्थिति एक विक्रेता के रूप मे सुदृढ़ हो जाती है। छोटी मात्रा मे माल बेचने की बजाय बडी मात्रा मे माल बेचा जाता है।

सहकारी विपणन समितियो के कार्य

सहकारी विपणन समितियो के कार्य निम्नलिखित हैं

(१) उपज का विक्रय

सहकारी विपणन समितियाँ अपने सदस्यो के माल को बाजार मे बेचने का कार्य करती हैं। किसान अपनी उपजो को इन सहकारी समितियो को दे देते हैं। ये सहकारी समितियाँ उस माल को उचित मूल्य पर या तो थोक व्यापारियो या बाजार मे बेच देती हैं।

(२) ऋण सुविधायें

सहकारी विपणन समितियाँ अपने सदस्यो को उनकी उपज को बन्धक रखकर

---

1 Indian Cooperative Review, Oct 1968, p 48

उनकी आर्थिक सहायता करती है। किसानो को उनकी उपज के लिए कभी-कभी कुछ मात्रा मे आर्थिक सहायता की आवश्यकता पड़ती है इसकी पूर्ति ये समितियाँ ऋण प्रदान करके करती हैं। फसल आ जाने पर समितियाँ प्रदान किये गये ऋण की मात्रा वसूल कर लेती है।

(३) संग्रह व्यवस्था

सहकारी विपणन समितियाँ अपने सदस्यो की उपजो को एकत्रित करती हैं। किसानो की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उनके पास भण्डारण की व्यवस्था नही होती। विपणन समितियो के पास गोदाम होते हैं जिनमे अपने सदस्यो की उपजो को एकत्रित कर लेती हैं।

(४) वर्गीकरण (Grading)

उपज का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिये उसको वर्गीकृत किया जाता है। यह कार्य किसान व्यक्तिगत स्तर पर नही कर सकते हैं। माल के वर्गीकरण से अच्छे किस्म के माल का मूल्य मिल जाता है।

(५) संचयन (Pooling)

सहकारी विपणन समितियाँ सचयन का काम करती है जिससे मोल भाव की शक्ति बढ़ जाती है। सचयन के कारण माल बडी मात्रा मे एक साथ बेचा जा सकता है। उसको थोडी-थोडी मात्रा में बेचने की आवश्यकता नही होती।

(६) यातायात व्यवस्था

सहकारी विपणन समितियाँ अपने सदस्यो के माल के लिये यातायात की व्यवस्था करती हैं। खेतो से माल को भण्डार गृहो तक लाने की व्यवस्था ये समितियाँ करती हैं। इसके अतिरिक्त माल को बेचने के लिए बाजार तक पहुँचाने के लिये भी परिवहन व्यवस्था करती हैं।

(७) उपज वृद्धि में सहायता

ये समितियाँ उपज बढ़ाने के लिए कृषि आवश्यकता की सामग्री के वितरण की व्यवस्था करती हैं। साधन समितियाँ उपज बढ़ाने के लिए औजार, बीज, उर्वरक आदि आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराती हैं।

(८) अन्य :

सहकारी विपणन समितियाँ कही-कही पर कमीशन एजेन्ट का कार्य भी करती हैं। सरकार की वसूली (*Procurement*) तथा मूल्य निर्वाह नीति (*Price Support Policy*) के अनुसार उनको सहायता प्रदान करती हैं।

विपणन समितियो का कार्य क्षेत्र

प्राथमिक विपणन समितियो का कार्यक्षेत्र मण्डी स्तर तक होता है। मण्डियो मे क्रय-विक्रय का कार्य होता है जहाँ पर उपज की बिक्री होती है और किसान यहाँ अपनी खेती की आवश्यकताओ की वस्तुये खरीदने आते है। भारतवर्ष मे द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत इन समितियों का पुनर्गठन विभिन्न मण्डी स्तरो पर किया गया।

सदस्यता (Membership)

सामान्यत इन समितियो की सदस्यता व्यक्तिगत उत्पादको और कार्य क्षेत्र मे विद्यमान ग्राम समितियो के लिए खुली होती है। इन समितियो की पूंजी में वृद्धि करने के उद्देश्य से यह भी सुझाव है कि इन समितियो में उपभोक्ताओ को भी सदस्य बनाया जाये। इस तरफ अभी तक कोई विशेष कदम नही उठाये गये है।

विपणन समितियो का ढाँचा

भारतवर्ष मे विभिन्न राज्यो मे विपणन समितियो का ढाँचा दो या तीन सीढियो का है। दोनो प्रकार के ढांचे ही महत्वपूर्ण है। दो सीढियो वाले ढाचे म बाजार स्तर पर प्राथमिक सहकारी समितियाँ होती हैं और राज्य स्तर पर शीर्ष विपणन समितियाँ। तीन सीढियो के ढांचे मे शीर्ष सस्थाओ और प्राथमिक सस्थाओ के मध्य केन्द्रीय सस्थायें होती है। किन्तु आजकल यह ढांचा चार सीढियो वाला हो चुका है क्योंकि सन १९५८ मे राष्ट्रीय स्तर पर एक सस्था (राष्ट्रीय कृषि विपणन सघ) की स्थापना हो चुकी है। भारतवर्ष मे जून १९६६ के अन्त मे एक राष्ट्रीय कृषि विपणन सँघ, २० शीर्ष विपणन समितियाँ (राज्य स्तर) १६० केन्द्रीय विपणन समितियाँ तथा ३१९६ प्राथमिक विपणन समितियाँ थी।

वित्त व्यवस्था

सहकारी विपणन समितियो की वित्त व्यवस्था के लिए अंश पूंजी, सचित कोष, सरकार तथा रिजर्व बैंक से लिया गया ऋण, गैर सदस्यो से लिया हुआ ऋण, सदस्यो तथा गैर सदस्यो को अमानत आदि स्रोत है। ऋण केन्द्रीय सहकारी बैंक मे मुख्य रूप मे प्राप्त होता है। भारतीय सहकारी बैंक (State Bank of India) इन समितियो को कृषि उपज की जमानत पर ऋण प्रदान करती है। जून १९६६ के अन्त मे प्राथमिक विपणन समितियो की कार्यशील पूंजी ६३ ७० करोड रुपये, और केन्द्रीय विपणन समितियो की कार्यशील पूजी १७ ३१ करोड रुपये थी। राष्ट्रीय तथा शीर्ष विपणन सस्थाओ की कार्यशील पूंजी क्रमश ३१ लाख रुपये तथा ४० ०७ करोड रुपये थी।[1]

सहकारी विपणन समितियो के लाभ

सहकारी विपणन समितियो से किसानो तथा उपभोक्ताओ दोनो को लाभ होता है किसानो को उनके उत्पादन का उचित मूल्य मिल जाता है और उपभोक्ताओ को कम मूल्य पर वस्तुयें उपलब्ध हो जाती हैं। देश की अर्थव्यवस्था मे मूल्य वृद्धि की समस्या बहुत भयकर है। इस समस्या के समाधान मे भी इन समितियो के मुख्य लाभ निम्न प्रकार हैं

(१) अनावश्यक मध्यस्थ वर्ग की कमी

सहकारी विपणन समितियाँ अनावश्यक मध्यस्थ वर्ग को समाप्त करती हैं। यह वर्ग किसानो और उपभोक्ताओ के मध्य कार्य करते है। ये किसानो से माल सस्ते भाव पर खरीद कर बाजार मे ऊँचे मूल्य पर क्रेताओ को बेचते है। इस प्रकार यह

---

1. India 1968, p. 268.

वर्ग बडी मात्रा मे लाभ कमाता है। सहकारी विपणन समितियाँ स्वय यह कार्य करती है जिससे मध्यस्थ वर्ग समाप्त होने लगता है। प्राय विश्व के अनेक देशो मे सहकारी विपणन ने इन मध्यस्थो की बुराइयो को समाप्त किया है।

(२) माल रोकने की क्षमता

प्राय किसान अपनी उपजो को महाजनो व अन्य लेनदारो को फसल निकालते है बेच देते है। क्योकि इन लोगो से किसान ऋण लेते है। वे अपनी उपजो को साहूकारो अथवा महाजनो की इच्छानुसार भाव पर माल बेच देते है। किसानो मे अपने माल को अनुकूल भावो तक रोकने की क्षमता नही होती है। यह क्षमता सहकारी विपणन समितियो के माध्यम से लायी जा रही है। ये समितियाँ किसानो को आर्थिक सहायता प्रदान भी करती हैं।

(३) मोल भाव की क्षमता में वृद्धि

सहकारी विपणन समितियो के माध्यम से किसानो की मोलभाव करने की क्षमता बढाई जा सकती है। इनके अभाव मे किसानो को प्रतिकूल मूल्यो पर भी माल बेचना पड जाता है। क्योकि भारतीय किसानो के सामने अनेको समस्यायें है जिनके कारण वह मोल-भाव नही कर सकते। मोल-भाव करने की क्षमता मे वृद्धि होने से किसानो को अधिक मूल्यो की प्राप्ति से आर्थिक स्थिति अच्छी होने लगती है। उनको अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त हो जाता है।

(४) आय में वृद्धि

किसानो की आय मे सहकारी विपणन से दो प्रकार से प्रभाव पडता है। प्रथम, इनको अनेक उत्पादो के अनुसार पर्याप्त मूल्य मिल जाता है तथा द्वितीय, समितियो को जो लाभ होता है वह सदस्यो को मिल जाता है अथवा उनके कल्याण कार्यो मे लगा दिया जाता है।

(५) वित्तीय सहायता

किसानो के माल को रख कर सहकारी विपणन समितियाँ उनको ऋण भी प्रदान करती है जिससे उनको माल शीघ्र नही बेचना पडता है क्योकि उनकी वर्तमान आवश्यकताओ के लिए सहायता मिल जाती है। माल को भविष्य मे उचित मूल्य हो जाने पर बेचा जाता है।

(६) कृषि उत्पादन में वृद्धि :

कृषि उत्पादन तथा कृषि विपणन दोनो एक दूसरे से बहुत घनिष्ठ सम्बन्धित हैं। सहकारी विपणन से किसानो की आर्थिक स्थिति मे सुधार होता है फलत वे उत्पादन कार्यो मे नवीन विधियो का प्रयोग करते हैं। जिससे उत्पादन मे और तेज गति से वृद्धि होती है। कृषि उत्पादकता बढाने के लिए उत्तम बीज छोटे-मोटे विकास के साधन आदि के लिये ये समितियां वित्तीय साधन जुटाती हैं।

(७) सहकारी साख आन्दोलन में सहायक ·

सहकारी साख समितियो के कार्य को सहकारी विपणन समितियाँ सरल बना देती हैं। साख समितियो के द्वारा प्रदान किये गये ऋण की वसूली मे विपणन समि-

तियाँ बहुत सहायता पहुँचाती हैं। ये समितियाँ माल बेचकर साख समितियो को ऋण वापस कर देती हैं। भविष्य मे सहकारी साख के विकास मे विपणन समितियाँ बहुत सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

उपरोक्त लाभो के अतिरिक्त सहकारी विपणन समितियाँ किसानो के माल का विज्ञापन करती हैं। ये समितियाँ देश के अनेक भागो के थोक व्यापारियो व बड़े उपभोक्ताओ से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर सकती है और माल का उचित मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। आवश्यकता पडने पर किसानों को ये समितियाँ उचित परामर्श भी देती हैं।

भारत में प्रारम्भ मे धीमी प्रगति
(Initial slow Growth in India)

विपणन समितियो के विभिन्न लाभ होते हुए भी सहकारी अधिनियम बनने से एक लम्बी अवधि तक इनका विकास नही हो पाया। भारत मे आरम्भ मे सहकारी साख का विकास हुआ किन्तु देश के किसी भी भाग मे सहकारी विपणन के विकास की तरफ सगठित प्रयास नही किया गया। हमारे देश मे कुछ राज्यो मे १९४० के पश्चात् सहकारी विपणन की प्रगति हुई।[1] अन्य भागो मे इस क्षेत्र मे सीमित विकास हुआ। सामान्यतया ये विपणन समितियाँ कृषि पदार्थो के विपणन का कार्य करती थी। उत्तर प्रदेश मे गन्ना समितियो के विकास के साथ-साथ सहकारी विपणन आन्दोलन तेज गति से बढने लगा।

सहकारी योजना समिति (The Cooperative Planning Committee) ने सुझाव दिया कि १५ वर्षो मे भारत मे विपणन के लिए २००० प्राथमिक विपणन समितियाँ जो कि २००० मण्डियों के क्षेत्रों के लिए होंगी, स्थापित की जानी चाहिये। इनके अलावा ११ राज्य स्तरीय विपणन समितियाँ और एक अखिल भारतीय स्तर का विपणन सघ स्थापित किया जाना चाहिए। ये सुझाव कार्य रूप मे परिणित नही हो पाये। सन् १९५१ मे अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने सर्वेक्षण किया और देखा कि हमारे देश मे सहकारी विपणन समितियो की स्थिति ठीक नही है। इस समिति के अनुसार भारत मे कुछ ही समितियाँ ऐसी थी जो सफलता से कार्य कर रही थी।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सरकार ने सहकारी विपणन और साख दोनो पर जोर दिया। इस योजना मे सहकारी विपणन के सम्बन्ध मे कोई विशेष लक्ष्य निर्धारित नही किये जा सके जिसमे नियोजित प्रगति सम्भव नही हो सकी। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने इस तरफ ध्यान देने के लिए पर्याप्त सुझाव दिये जिनके आधार पर द्वितीय योजना मे प्रगति की गई। भारत मे प्रथम योजना के अन्तिम वर्ष (१९५५-५६) मे कुल ५३ करोड रुपये की कृषि उपज का विपणन इन समितियो द्वारा किया गया।

---

1. The cooperative planning committee (1945) observed that in the early forties, cooperative marketing of agricultural produce had made some progress in states like Madras, Bombay, Utter Pradesh and Panjab "Indian cooperative Review, Oct 1968 P 49

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अच्छी प्रगति—अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति के प्रतिवेदन की सिफारिशों के आधार पर द्वितीय योजना में सहकारी विपणन का कार्यक्रम चालू किया गया। द्वितीय योजना के अन्तर्गत विपणन समितियों के गठन के सम्बन्ध में सन्तोषजनक प्रगति हुई। सन् १९५८ में मण्डी स्तरों पर इन समितियों का पुनर्गठन किया गया। प्राथमिक समितियों के शीर्ष या राज्य स्तरीय संगठन अनेक राज्यों में स्थापित हुये। कुछ राज्यों, जैसे उत्तरप्रदेश आदि में इस प्रकार का संगठन इस योजना से पूर्व हो गया था। राष्ट्रीय स्तर पर कृषि विपणन संघ की स्थापना हुई। द्वितीय पचवर्षीय योजना में प्राथमिक समितियों के पुनर्गठन के अतिरिक्त राज्य स्तर पर सहकारी विपणन संघों के लक्ष्य निर्धारित किये गये। ग्रामीण एवं बाजार स्तरों पर गोदामों के निर्माण तथा सहकारी विपणन के लक्ष्य निर्धारित किये गये। विभिन्न प्रकार की विपणन समितियों की सहायता के लिए योजना में वित्त व्यवस्था की गयी।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में १८०० प्राथमिक विपणन समितियाँ और १५०० गोदाम बनाने का निश्चय किया गया था। इस काल से विभिन्न प्रयत्नों से यह आशा की गयी कि कृषि उपजों के विक्रय का १०% सहकारी विपणन द्वारा हो सकेगा। वर्ष १९६०-६१ में विपणन समितियों द्वारा १७५ करोड़ रुपये की कृषि उपज का विपणन इन समीतियों द्वारा किया गया। इस काल में समितियों ने सहकारी सहायता से मण्डी स्तर पर १७०० गोदाम एवं ४१७० ग्रामीण गोदाम बनाये।

तृतीय पचवर्षीय योजना में प्रगति

तृतीय पचवर्षीय योजना में द्वितीय योजना में चालू किये गये प्रयत्नों के आधार पर विकास किया गया। इस काल में सहकारी विपणन का विस्तार किया गया और इस आन्दोलन को अधिक शक्ति प्रदान की गयी। सरकारी सहायता के अतिरिक्त राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (National Cooperative Development Coorporation) ने अपनी निधियों में से वित्तीय सहायता प्रदान की।

तृतीय पचवर्षीय योजना में ५४४ नयी विपणन समितियाँ गठित करने का लक्ष्य रखा गया। इस काल में किस्म निर्धारण के लिये आवश्यक सामान व कर्मचारी उपलब्ध कराने के लिए सहायता देने का प्रस्ताव किया गया।

तीसरी योजना के अन्तर्गत विपणन समितियों द्वारा मण्डी स्तर पर ९०० गोदाम बनाने और लगभग ९४०० ग्रामीण गोदाम बनाने का लक्ष्य रखा गया। इन प्रयत्नों से योजना के अन्त तक १२ लाख टन अतिरिक्त माल रखने की क्षमता हो सकेगी। इस योजना में ३३ शीत भण्डारों की स्थापना का भी प्रावधान किया गया।[1]

जून १९६६ तक भारत में प्राथमिक, केन्द्रीय, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर क्रमश ३१९६ एवं १६० और २० तथा विपणन समितियाँ थी। तीसरी योजना के अन्त तक गोदाम क्षमता २५ लाख टन थी जो कि द्वितीय योजना के अन्त तक ७ ५ लाख टन थी। तीसरी योजना के अन्त तक सहकारी विपणन समितियों के माध्यम से बेचे गये माल की राशि ३६० करोड़ रुपये थी। इनमें से खाद्यान्न १३७ करोड़ रुपये, गन्ना १४७ करोड़ रुपये तथा अन्य फसलें ७६ करोड़ रुपये थी।

1. सहकारी समाज, फरवरी १९६८, पृष्ठ १८

पिछले वर्षों मे विपणन समितियो ने कुछ वस्तुओ के निर्यात मे पर्याप्त सहयोग दिया है। यह कार्य राष्ट्रीय सहकारी कृषि विपणन सघ द्वारा सम्पन्न किया जाता है। प्राथमिक समितियाँ विभिन्न वस्तुओ के निर्यात के लिए तैयार करती है। वर्ष १९६५-६६ मे ९५ ६१ लाख रुपये की वस्तुओ का निर्माण विपणन समितियो के माध्यम से किया गया।

वार्षिक योजनायें एव चतुर्थ योजना

तृतीय पचवर्षीय योजना के पश्चात् १९६६-६९ मे वार्षिक योजनायें चलती रही। १९६६-६७ मे सहकारी विपणन समितियो द्वारा बेची गयी वस्तुओ का मूल्य ३३८ करोड रुपये था जो कि वर्ष १९६७-६८ मे बढ कर लगभग ४०० करोड रुपय हो गया। वर्ष १९६८-६९ मे इन समितियों का अनुमानित विक्रय ४७५ करोड रुपये का था। इन वर्षो मे खाद्यान्न तथा गन्ना का विपणन मे प्रमुख स्थान रहा। इन वर्षों मे सहकारी विपणन को सहकारी साख के साथ जोडने के भी पर्याप्त प्रयत्न किये गय। वर्ष १९६६ ६७ मे सहकारी विपणन समितियो के कुल उत्पादन मे सम्बन्धित ऋण की वसूली ४६ करोड रुपये थी जो कि वर्ष १९६०-६१ मे केवल १० करोड रुपये ही थी।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इस क्षेत्र मे अधिक विकास करने का लक्ष्य रखा गया है। योजना के आरम्भ मे हमारे देश मे लगभग ३२०० प्राथमिक विपणन समितियाँ थो जिनमे से ५०० विशेष वस्तुओ की विपणन समितियाँ थी। ऊँचे स्तर पर २० शीर्ष विपणन समितियाँ तथा तीन वस्तु विपणन सघ राज्य स्तर पर थे। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन सघ था। इस योजना के आरम्भ मे १७३ केन्द्रीय विपणन समितियां थीं।

योजनाओ मे प्रगति एव चतुर्थ योजना के लक्ष्य

वर्ष	बेचे गये माल की राशि (करोड रुपये)
१९५०-५१	४७
१९५५-५६	५३
१९६०-६१	१७५
१९६५-६६	३६०
१९६८-६९ (सभावित)	४७५
१९७३-७४ (लक्ष्य)	९००

(Source—Fourth Five year plan Draft 1969-74 p 167)

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना के अतिम वर्ष मे वर्ष १९६८-६९ की तुलना मे ४२५ करोड रुपये का अतिरिक्त माल बेचा जायगा। ये चतुर्थ योजना

के अंतिम वर्ष तक ८ मिलियन टन खाद्यान्न, ३६ मिलियन टन गन्ना, १ ८ टन गांठे, ० ६ मिलियन टन मूंगफली, १०,००० टन फल तथा सब्जियाँ आदि का विक्रय करेंगी। वर्ष १९७३-७४ तक लगभग १० करोड रुपये का इनके द्वारा माल निर्यात किया जायेगा। चतुर्थ योजना काल मे भण्डारण क्षमता ४ ६ मिलियन टन कर दी जायगी जो कि वर्ष १९६८-६९ मे २ ६ मिलियन टन थी। इस प्रकार चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सहकारी विपणन की तरफ विशेष ध्यान दिया जायेगा।

सहकारी विपणन समितियों के विकास मे बाधाएं

विश्व के अनेक देशो मे सहकारी विपणन बहुत सफल रही है। कनाडा, डेनमार्क, न्यूजीलैण्ड, हालैण्ड, जापान, आस्ट्रेलिया तथा स्वेडन मे अधिकाश पदार्थों का विपणन इन्ही समितियो द्वारा किया जाता है। डेनमार्क तथा हालैंड मे फल, दूध व अण्डो के उत्पादन का ९० १, विपणन सहकारी समितियो द्वारा किया जाता है। जापान मे चावल और न्यूजीलैंड मे पनीर का विपणन भी ऐसी समितियो द्वारा किया जाता है। भारत वर्ष मे भी इन देशो की तरह सहकारी विपणन का विकास किया जा सकता है। अब तक की इस आन्दोलन की उपलब्धियो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत मे सहकारी विपणन की प्रगति धीमी रही। प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्त तक कोई विशेष सगठित प्रयास नही किये जा सके किन्तु द्वितीय योजना से विकास कुछ तेज गति मे हो रहा है।

भारत मे सहकारी विपणन मे कुछ सगठनात्मक विशेषकर प्रबन्ध एव तकनीकी क्षेत्रो मे कमियाँ हैं। कुछ राज्यो मे शीर्ष विपणन संघो ने अच्छा कार्य किया है उदाहरणत पजाब राज्य विपणन सघ। किन्तु देश के अनक राज्यो मे इस प्रकार के सघो ने सहकारी विपणन मे विशेष योगदान नही दिया। सहकारी विपणन समितियो के मार्ग मे निम्नलिखित बाधायें हैं —

(१) शिक्षित सदस्य

भारत वर्ष मे अधिकाश ग्रामीण जनता अशिक्षित है। सहकारी समितियो के अनक सदस्य सहकारिता के महत्व को नही समझते है। यहां तक कि युद्ध क्षेत्रो मे लोग उतने परम्परागत होते हैं कि वे नवीन विधियों को काम मे लेना बुरा समझते है। इस कठिनाई के कारण सहकारी विपणन समितियाँ अधिक विकास नही कर पायी। सदस्यो की अशिक्षा के कारण वे समितियो के प्रति वफादार नही रहते।

(२) *निजी व्यापारियो से प्रतिस्पर्धा*

हमारे देश मे अधिकाश कृषि विपणन निजी व्यापारियो के हाथ मे है। ये व्यापारी समितियो के साथ कडी प्रतियोगिता करते हैं। विभिन्न प्रकार के व्यापारी समिति के सदस्यों को भडकाते हैं। कभी-कभी तो व्यापारियो के एजेन्ट समितियों के सदस्य हो जाते है जो इनको असफल बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण किसान सहकारिता के महत्त्व को समझने मे असमर्थ रहते हैं और वे महाजनो का अधिक विश्वास करते हैं। फसल बोते समय ये किसान महाजनो से ऋण ले लेते हैं और फसल आने पर उन्ही के हाथो बेच देते हैं।

(३) वित का अभाव

वित्त के अभाव मे सहकारी विपणन समितियाँ अपने कार्य क्षेत्र को विस्तृत नही कर सकी हैं। इन समितियो की अश पूंजी नाममात्र की होती है जब कि महाजन अथवा व्यापारी जो प्रतिस्पर्धा करते हैं धनी होते हैं। वित्त की कमी के कारण ये समितियाँ किसानो को आर्थिक सहायता प्रदान नही कर सकती और न ही भण्डारण की सुविधा दो पाती है।

(४) अकुशल प्रबन्ध व अप्रशिक्षित कर्मचारी

विपणन समितियाँ कुशल, अनुभवी तथा ईमानदार कार्यकर्त्ताओ की सेवायें प्राप्त करने मे असफल रहती है। किसी भी सस्था की सफलता कुशल प्रबन्ध पर निर्भर करती है। इन समितियो मे सामान्यत अनुभव हीन व्यक्ति कार्य करते हैं। ये समितियाँ कार्यकर्त्ताओ को उचित वेतन भी नही दे पाती अत अच्छे व्यक्ति आकर्षित नही कर पाती है। फलत इन समितियो के कार्यो मे अनेको कठिनाइयाँ आती है।

(५) यातायात सुविधाओ का अभाव

हमारे देश मे ग्रामीण क्षेत्रो मे आज भी उचित यातायात के साधनो का अभाव है। कुछ वस्तुयें जैसे दूध, फल व सब्जियाँ जो शीघ्र नष्ट होने वाली है, यातायात के तीव्रगामी साधनो के अभाव मे खराब हो जाती है। जिससे अधिक नुकसान होने की सम्भावना रहती है। इसके अलावा कुछ क्षेत्रो मे सडको के अभाव मे माल मण्डी तक लाना भी कठिन हो जाता है।

(६) भण्डारण की सुविधा न होना

सहकारी विपणन समितियो के पास अपने गोदामों का अभाव होने के कारण भण्डारण की असुविधा रहती है। अनाज तथा अन्य कृषि उपजो को सुरक्षित रखना अत्यन्त आवश्यक है नहीं तो चूहे आदि इन्हे नष्ट कर डालते है। यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ मे भण्डारण व्यवस्था के लिये गोदामों का निर्माण किया गया है किन्तु फिर भी अनेको समितियो के पास गोदाम नही है।

(७) वर्गीकरण व प्रमापीकरण की व्यवस्था न होना

उपज के वर्गीकरण व प्रमापीकरण से उचित मूल्य प्राप्त करने मे सुविधा रहती है वर्गीकरण एक विशेष कार्य है जिसके लिये उपकरणों की आवश्यकता पडती है जो कि इन समितियो के पास पर्याप्त मात्रा मे नही है। प्रमापीकरण का भी विक्रय मे बहुत बडा महत्व है। समितियो के पास अनेक सुविधाओ के अभाव मे यह क्रिया बहुत कठिन रहती है।

(८) व्यापारिक दक्षता की कमी

क्रय विक्रय के लिये व्यापारिक दक्षता का होना आवश्यक है। निजी व्यापारियो मे व्यापार कुशलता बहुत अधिक होती है। परन्तु इन समितियो के कर्मचारी उनकी तुलना मे कम दक्ष होते हैं फलत वे प्रतिस्पर्धा मे नही टिक पाते। व्यापारिक कुशलता के अभाव मे कभी-कभी इन समितियो को हानि भी उठानी पडती है। विपणन मे व्यावसायिक पूर्वानुमान (Business forecasting) का बहुत बडा महत्त्व है

जिसमें वर्तमान तथा भूतकालीन घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। विपणन समितियों के अधिकांश कर्मचारियों में पूर्वानुमान की क्षमता का अभाव होता है।

(९) राजनीति का अखाड़ा

विपणन समितियों के सदस्यों में व्यक्तिगत मतभेद के कारण राजनीतिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं प्रभावशाली व्यक्ति समितियों के प्रबन्ध पर अधिकार जमाकर अपने हितों की पूर्ति करते है। जिससे अन्य लोगों का विश्वास इन समितियों से टूटने लगता है। भारतवर्ष में अनेकों समितियाँ इसका शिकार बनी हुई हैं।

(१०) अन्य

विपणन समितियों के सदस्यों में सद्भाव का अभाव पाया जाता है। इसके अतिरिक्त बाजार की दिन प्रतिदिन की गति विधियों और मूल्य सम्बन्धी सूचना के अभाव के कारण कार्य में कठिनाइयाँ आती हैं। सहकारी विपणन समितियों को पर्याप्त तकनीकी सलाह भी नहीं मिल पाती है। इन समितियों की क्रिया कठिन है। किसानों को फसल समितियों में देने से पूर्व कई प्रकार के पत्र भरने पड़ते हैं। जिसे ये अच्छा नहीं समझते हैं और अपना माल व्यापारियों को बेच देते है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि विभिन्न बाधाओं के कारण विपणन आन्दोलन अधिक विकास नहीं कर पाया। निजी व्यापारी दिन रात कठिन प्रयत्न करते हैं। किन्तु समितियों के कर्मचारी अधिक मेहनत नहीं करना चाहते हैं। निजी व्यापारियों आढ़तियों तथा मध्यस्थों की कुशलता, अनुभव तथा सम्पन्नता को देखते हुए यह आवश्यक है कि सहकारी विपणन में पर्याप्त सुधार किये जायें।

सहकारी विपणन की प्रगति के सुझाव

हमारे देश के विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्तरों पर सहकारी विपणन का ढाँचा समान नहीं है। धीरे-धीरे इसमें समानता लाना अत्यन्त आवश्यक है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में प्रावधान किया गया है कि भावी विकास के लिए सहकारी विपणन का पुर्नसगठन किया जाये। सहकारी विपणन की सफलता के लिये सहकारी नियोजन समिति (१९४६) तथा अखिल भारतीय ग्रामीण साख जाँच समिति की सिफारिशें महत्त्वपूर्ण हैं।

सहकारी नियोजन समिति १९४६ (Cooperative planning committee १९४६ के सुझाव

इस समिति के अनुसार प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों का पुर्नसगठन किया जाना चाहिये ताकि ये अपने सदस्यों के साधारण आर्थिक विकास के केन्द्र का कार्य कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये —

(१) साख और बिक्री क्रियाओं में सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिये ताकि साख और विपणन दोनों का उचित विकास हो सके।

(२) साधारण कृषि आवश्यकताओं जैसे उन्नत बीज, खाद एवं अन्य कृषि उपकरण तथा किसानों की अन्य साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति इन समितियों को करनी चाहिये।

(३) समितियो को माल लाइसेंस प्राप्त भण्डार गृहो मे ही एकत्र करना चाहिये।

(४) प्रान्तीय सहकारी समिति का सगठन किया जाये जो कि प्राथमिक समितियो के लिये मध्यस्थो का कार्य कर सके।

समिति के सुझावो को मान लिया गया और इन्हे पचवर्षीय योजनाओ मे कार्य रूप मे भी परिणित किया गया है। किन्तु कुछ सुझावो को पर्याप्त रूप से व्यवहार मे नही लाया गया है अथवा कम लाया गया है।

अखिल भारतीय ग्रामीण साख जांच समिति की सिफारिशें

(Recommendations of the all India Rural Survey Committee)

रिजर्व बैंक ने वर्ष १९५१-५२ मे अखिल भारतीय ग्रामीण साख जॉच समिति की नियुक्ति की थी जिसका प्रतिवेदन दिसम्बर १९५४ मे प्रकाशित किया गया। समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिये —

(१) सहकारी विपणन समितियो की प्रगति के लिये दीर्घ कालीन ऋण प्रदान *करने के लिये एक National cooperative development and warehousing* board की स्थापना की जानी चाहिये। यह मण्डल एक राष्ट्रीय विकास कोष (National cooperative development fund) स्थापित करेगा जो राज्य सरकारो को विपणन समितियो मे अश क्रय करने अथवा विपणन कार्यों मे सहयोग देने के लिए उचित शर्तो पर दीर्घकालीन ऋण देगा।

(२) राज्य सरकारें सहकारी क्रय विक्रय के विकास की योजना बनायेंगी तथा तकनीकी सेवायें उपलब्ध करायेंगी।

(३) सहकारी विपणन मे सभी स्तरो पर किसानो का प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

(४) प्राथमिक विक्रय समिति के कार्य क्षेत्र मे यदि नियमित बाजार है तो स्थानीय विक्रय समिति को प्रतिनिधित्व का अधिकार होना चाहिये।

(५) समितियो की स्थापना और सगठन ऐसा हो कि जिसमे किसानो को सगठन मे उचित प्रतिनिधित्व मिले।

(६) विपणन समितियों के सदस्यो को अनिवार्य रूप से समिति की अश पूजी मे अनुदान देना चाहिये।

(७) राज्य सरकारें कुटीर उद्योगों के अलावा सभी मिलो, कारखानो को लाइसेंस दें जो कि कृषि सम्बन्धित कार्य कर रही है। नया लाइसेंस देते समय इन समितियो को प्राथमिकता दें।

इस समिति के विभिन्न सुझावो मे निश्चय ही विपणन का विकास तेज गति से हो सकेगा।

अन्य सुझाव

उपरोक्त समितियों के अतिरिक्त रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने ग्रामीण साख सर्वेक्षण की पाँचवी श्रृखला मे सहकारी विपणन विकास की सर्वेक्षण की रिपोर्ट

प्रकाशित की है।[1] सर्वेक्षण वर्ष १९६२-६३ की अवधि से सम्बन्धित है। इस सर्वेक्षण में विकास के अनेक सुझाव पेश किये हैं रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि सहकारी विपणन समितियों की स्थापना के लिए उचित आयोजन की आवश्यकता है। इनकी स्थापना के लिए जितना क्षेत्र रखा जायेगा वह उचित है या नहीं जो कि उचित समय में समितियों को सुदृढ बना देगा। सहकारी विपणन समितियों को सरकार की तरफ से क्रय करने का कार्य भी मिलना चाहिए जिसमें समितियों का कमीशन मिल सके। इस सर्वेक्षण में इस बात पर अधिक ध्यान दिया गया कि समितियों के पास संतोषजनक भण्डारण सुविधाएँ होनी चाहिए। विपणन समितियों को माल सवारने के कार्यों का विकास करना चाहिए।

उपरोक्त सुझावों के अतिरिक्त कुछ अन्य सुझाव निम्न प्रकार हो सकते है।

(१) सहकारी विपणन समितियों के विकास को कृषि विकास कार्यक्रम के साथ जोड़ देना चाहिए। इनकी स्थापना को सघन कृषि कार्यक्रम वाले क्षेत्रों में प्राथमिकता देनी चाहिए। सहकारी विपणन समितियाँ सघन कृषि कार्यक्रमों में सहयोग दें। ये समितियाँ कृषि आवश्यकता के उपकरणों तथा अन्य वस्तुओं के वितरण द्वारा सघन कृषि कार्यक्रम को सफल बना सकती हैं। विशेषकर खाद के वितरण में निजी क्षेत्र से इन समितियों को प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। प्राथमिक विपणन समितियाँ किसानों की छोटी-छोटी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति अपनी पूंजी से भी कर सकती है।

(२) सहकारिता विपणन समितियों के प्रबन्ध के लिए विशेष कदम उठाये जाने चाहियें। समितियों में काम करने वाले कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण की की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (National cooperative development corporation) सहायता प्रदान कर रहा है। किन्तु भविष्य में इस तरफ अधिक प्रयत्न किए जाने चाहिए।

(३) अब तक विपणन समितियां सामान्यतः अपने सदस्यों के माल को एजेन्ट के रूप में बेचने का कार्य किया है। कुछ सीमा तक इन समितियों ने आउट राइट क्रय (Out right Purchase) भी किए हैं। किन्तु वर्गीकरण और संचयन (Pooling) का कार्य प्रगति नहीं कर पाया है। यद्यपि गुजरात में तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में इस तरफ ध्यान दिया गया है यद्यपि स्थिति अभी तक संतोषजनक नहीं है।

(४) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होगी जिसके कारण कृषि अर्थव्यवस्था में मूल्य समर्थन की आवश्यकता होगी। इसके लिए सहकारी विपणन समितियों को सजग भाग लेना चाहिए।

(५) सहकारी विपणन समितियों को अपना कार्यक्षेत्र व्यापक करना चाहिए। अपने व्यापार के विस्तार के लिए ये समितियाँ विभिन्न वाणिज्यिक कार्य कर सकती हैं जिसमें इनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ हो जाएगी। इस सम्बन्ध में विपणन समितियों

---

1. "Development of cooperative marketing survey report (A summary) Reserve Bank of India Bulletin May 1969, p. 651

को केवल सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) की भांति ही कार्य नही करना चाहिए बल्कि निजी क्षेत्र की भांति भी कार्य करना चाहिए।

(६) सहकारी विपणन समितियो व ढांचे मे विभिन्न राज्यो मे विवेकीकरण की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध मे दान्तवला समिति (Dant Wala Committee) की सिफारिशें अधिक हितकर होगी।

(७) जापान की भांति भारतवर्ष मे भी बहुउद्देशीय विपणन सगठन स्थापित किए जाने चाहिए।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि विपणन समितियो के भावी विकास के लिए वित्तीय साधन, समितियो का प्रबन्ध तकनीकी सगठन, सरकारी नीति आदि अनुकूल होने चाहिए। ये समितियाँ आत्म निर्भर होगी तभी तेज गति से विकास हो सकेगा। आशा है भविष्य मे नियोजित अर्थव्यवस्था मे सहकारी विपणन के क्षेत्र मे पर्याप्त उन्नति हो सकेगी।

प्रश्न

१. सहकारी विपणन से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी क्या आवश्यकता है?

२ सहकारी विपणन समितियो के कार्यो का वर्णन करते हुए बताइए कि भारत मे इन समितियों ने कहाँ तक अपने कार्यो को पूरा किया है।

३. भारत मे सहकारी विपणन समितियो के मार्ग मे क्या बाधायें हैं? इनके निराकरण के उपाय बताइए।

४. पंचवर्षीय योजनाओ मे सहकारी विपणन के क्षेत्र मे क्या-क्या प्रयत्न किए हैं? भावी विकास के लिए सुझाव दीजिए।

८

उपभोक्ता सहकारिता
(Consumers Cooperation)

उपभोक्ता मानवता का आर्थिक नाम है। विश्व मे कोई भी ऐसा मनुष्य नही है जो कि कुछ न कुछ उपभोग न करता हो। उत्पादक वस्तुओ का उत्पादन करता है और उपभोक्ता उनका उपभोग करता है दोनो के मध्य निकट का सम्बन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु व्यावहारिक जीवन मे उत्पादक और उपभोक्ता के मध्य एक मध्यस्थो की कडी होती है। ये मध्यस्थ उत्पादक के माल को अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाते हैं। अत माल उपभोक्ता तक पहुँचने से पूर्व अनेक मध्यस्थो के हाथो से गुजरता है। मध्यस्थ अपनी सेवाओ के बदले अपना पारिश्रमिक लाभ के रूप में रखते हैं। फलत वस्तुओ की कीमत ऊँची हो जाती है जिससे उपभोक्ताओ को हानि होती है। इस हानि से बचने के लिए उपभोक्ता सगठित होकर सहकारी समितियो के माध्यम से अपनी उपभोग की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इसे उपभोक्ता सहकारिता कहा जाता है सहकारी समितियो के माध्यम से उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम उपयोगिता पाने मे सफल हो सकता है। मध्यस्थ वर्ग उपभोक्ताओ का अनेक तरीको से शोषण कर सकते हैं। सामान्यत मिलावट, कम तौल, बेईमानी, ऊँचे मूल्य आदि के माध्यम से स्वय अधिक लाभ कमा लेते हैं। सहकारिता इन सभी बुराइयो को समाप्त कर देती है। यद्यपि मध्यस्थो की बुराइयो को सरकारी नियन्त्रण द्वारा भी कम किया जा सकता है किन्तु ऐतिहासिक अनुभव बतलाता है कि नियन्त्रण इन समस्याओ का समाधान करने मे असमर्थ है।

उपभोक्ता सहकारिता का जन्म सर्वप्रथम इगलैण्ड मे हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप वहाँ पूँजीवाद और निर्धन दो वर्गों का जन्म हुआ। ऐसी स्थिति मे रॉबर्ट आवेन (Robert Owen) ने नवीन विचारधारा का प्रतिपादन किया। तत्पश्चात रोकडेल के अग्रगामियो (Rochdel Pionces) ने सन् १८४३ मे अग्रगामी समिति बनायी। इगलैण्ड से यह विचारधारा अन्य यूरोपीय देशो मे फैली।

भारतवर्ष में वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में सहकारिता का जन्म हुआ। यद्यपि आरम्भ में सहकारी साख का विकास हुआ किन्तु बाद में उपभोक्ता सहकारिता का भी विकास हुआ। उपभोक्ता सहकारिता में व्यक्ति बड़े पैमाने के लाभ प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार की सहकारिता में फुटकर, थोक तथा कुछ परिस्थितियों में तो उत्पादन तथा संहार कार्य भी करने पड़ते हैं।

आवश्यकता (Need)

उपभोक्ता सहकारी समितियाँ स्थापित करने की निम्नलिखित आवश्यकता है—

(१) उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए उत्पादक एवं उपभोक्ता के मध्य की मध्यस्थ कड़ी को समाप्त करना होगा। इस कमी को सहकारिता के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है। एवं मध्यस्थों की अनुचित कार्यवाहियों को नियन्त्रण द्वारा कम किया जा सकता है किन्तु उनकी बुराइयों को पूर्ण एवं स्थायी रूप से सहकारी समितियों से समाप्त किया जा सकता है। अतः सहकारी समितियाँ अत्यन्त आवश्यक हैं।

(२) उपभोक्ताओं को वस्तुएँ शुद्ध, उचित दामों पर, तौल में पूर्ण उपलब्ध होनी चाहिएँ। व्यापारी लोग कम तौल, मिलावट आदि कार्यों द्वारा अधिक लाभ कमाने में लगे रहते हैं। इन बुराइयों को उपभोक्ता सहकारिता से दूर किया जा सकता है।

(३) छोटे उत्पादकों को लाभ पहुँचाने के लिए भी उपभोक्ता भण्डार महत्वपूर्ण हैं। कभी-कभी छोटे उत्पादकों को बाजार में व्यापारियों को बहुत नीचे मूल्य पर अपनी वस्तुएँ बेचनी पड़ती हैं अतः सहकारिता द्वारा उनको हानि से बचाया जा सकता है।

(४) भारतवर्ष में वर्तमान समय में मूल्य वृद्धि एक महत्वपूर्ण समस्या है। मूल्य वृद्धि का एक प्रमुख कारण विभिन्न व्यापारी वर्ग हैं। यदि सहकारिता के माध्यम से इन मध्यस्थों को समाप्त कर दिया जाए तो वास्तव में मूल्य वृद्धि को रोका जा सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति भारत में उपभोक्ता भण्डारों व सुपर बाजारों ने की है। बाजार की अपेक्षा इन भण्डारों में माल उचित कीमतों पर मिलता रहता है जिससे व्यापारी वस्तुओं की कीमत बढ़ाने में असमर्थ हो जाते हैं।

(५) सहकारी आन्दोलन की सफलता के लिए भी सहकारी उपभोक्ता समितियों का विस्तार आवश्यक है।

(६) सहकारी उपभोक्ता भण्डारों में वस्तुएँ उधार नहीं मिल पाती हैं किन्तु बाजार की अपेक्षा उचित दाम पर तथा शुद्ध मिलती हैं अतः अधिकतर उपभोक्ता यहीं से खरीदते हैं। इसके विपरीत व्यापारी लोग उधार वस्तुएँ देते हैं जिस पर ब्याज लेते हैं और अशुद्ध तथा ऊँचे मूल्य पर वस्तुएँ देते हैं। सहकारिता में उधार न मिलने के कारण उपभोक्ताओं की मितव्ययिता होती है। अतः सहकारी उपभोक्ता भण्डार बहुत महत्वपूर्ण हैं।

उपभोक्ता सहकारिता मूल्य नियन्त्रण तथा समुचित वितरण की व्यवस्था के लिए बहुत आवश्यक है। नियोजित अर्थव्यवस्था में इसका महत्व और भी बढ़ जाता है हमारा लक्ष्य समाजवादी नमूने का समाज बनाना है जिसके आदर्शों के

प्राप्त करने में सहकारी भण्डार बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वस्तुओं का वितरण इनके द्वारा सरकारी नियन्त्रण में हो सकता है। अतः भारत की वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता सहकारिता अत्यन्त वांछनीय है।

सदस्यता (Membership)

भारतवर्ष में कोई भी व्यक्ति जो १८ वर्ष का हो चुका हो इसका सदस्य बन सकता है। सदस्यता खुली एवं स्वैच्छिक होती है। व्यक्तियों के अतिरिक्त उपभोक्ता सहकारिता में संस्थायें, अर्ध सरकारी सस्थायें, क्लब, स्कूलें आदि भी सदस्य बन सकती हैं। सहकारी भण्डारों की अन्य सहकारी संस्थायें भी सदस्य बन सकती हैं। सहकारी भण्डारों की अन्य सहकारी सस्थाये भी सदस्य बना सकती है। यद्यपि इन भण्डारों में सदस्यता खुली होती है। तथापि कोई भी व्यक्ति सदस्य होने का दावा नहीं कर सकते और सचालक मण्डल किसी भी व्यक्ति को लेने से इन्कार कर सकता है। भारतवर्ष में कुछ राज्यो में किसी व्यक्ति को सदस्यता के लिये बिना उचित कारण के लिए मना नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिये मध्य प्रदेश में सदस्यता न मिलने पर कोई भी व्यक्ति कार्यवाही कर सकता है। इस सम्बन्ध में बम्बई में सहकारी अधिनियम में बहुत अच्छी व्यवस्था की गयी है। इस अधिनियम के आधार पर कोई भी उपभोक्ता सहकारी समिति बिना कोई सतोषजनक कारण के किसी भी व्यक्ति को सदस्यता के लिये मना नहीं कर सकती।[1] कहीं-कहीं पर उपभोक्ता भण्डारों में पुराने दो सदस्यों के द्वारा सिफारिश करने पर किसी भी व्यक्ति को सदस्य बनाया जाता है।

भारतवर्ष ने विश्व की तुलना में उपभोक्ता भण्डारों की औसत सदस्यता को बहुत किया है। वर्ष १९४९-५० के आधार पर इगलैण्ड में औसत सदस्यता १०७४५ थी जबकि भारत में १९६ थी। इनके अतिरिक्त फिनलैण्ड, स्वीडन, चीन तथा सोवियत रूस में इसी वर्ष सदस्यता क्रमशः १९४३, १३५२, एव १२५० थी।[2]

भारत में जून १९६६ के अन्त में कुल थोक सहकारी भण्डारों की सख्या ३८० थी जिनकी सदस्यता ५, २१, २२६ थी। इसी समय प्राथमिक उपभोक्ता भण्डारों की सख्या एव सदस्यता क्रमशः १३१००, तथा २९, ३९, २७७ थी।[3]

कार्यशील पूंजी (Working Capital)

कार्यशील पूंजी निजी तथा उधार ली गयी निधियों का योग होता है। इसमें अशपूंजी, रिजर्व कोष, ऋण तथा निक्षेप आते हैं अशपूंजी सदस्यता पर आधारित है। भारतवर्ष में अनेक उपभोक्ता सहकारी समितियों में निम्न सदस्यता होने के कारण अशपूंजी भी कम है। अन्य देशों की भांति भारत में भी भण्डारों की अधिकतम पूंजी निर्धारित होती है जिससे ऊपर बिना नियमों में परिवर्तन करना असम्भव है। अशो

1. Cooperative Act provides 45—A No consumers' society shall without sufficient cause refuse admission to membership to any person duty qualified therefore under its laws
2. Cosumer Cooperation in India, by S. C. Mehta, p 131
3. India 1986, p. 268

की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है । कही-कही पर तो सदस्यो के लिये प्रति व्यक्ति अधिकतम अशो की सीमा भी निर्धारित होती है ।

भारत वर्ष मे अधिकाश उपभोक्ता भण्डारो मे प्रवेश शुल्क सामान्यत एक रुपया प्रति सदस्य लिया जाता है जो कि वापिस नही किया जा सकता और सचित कोष मे रखा जाता है । भारत वर्ष मे जून १९६७ के अन्त मे कार्यशील पूंजी की स्थिति निम्न प्रकार है ।

सहकारी भण्डारो की कार्यशील पूँजी

(जून १९६७)

विवरण	सख्या	सदस्यता	कार्यशील पूंजी (लाख रुपये)
१. थोक सहकारी समितियाँ	३७१	१०८११०७	२९९८
२. प्राथमिक सहकारी समितियाँ	१३८३७	३३७१६२२	२०६३

(Source—India 1969 p 272)

प्रबन्ध (*Management*)

सहकारी उपभोक्ता समितियो का प्रबन्ध प्रजातान्त्रिक होता है । सदस्यो की साधारण सभा मे सर्वोच्च सत्ता निहित होती है । "व्यक्ति एक मत" सिद्धान्त के आधार पर सभा का कार्य चलता है । साधारण सभा की सामान्य बैठक वर्ष मे एक बार होती है । देश मे कही कही पर समितियो के उपनियमो के अनुसार वर्ष मे दो बार भी बैठक बुलायी जाती है । कभी-कभी सदस्यो अथवा रजिस्ट्रार के आग्रह पर विशेष बैठक (Special Meeting) भी बुलाई जा सकती है । भारतवर्ष मे इन बैठको मे भाग लेने वाले सदस्यो की सख्या बहुत कम रहती है । साधारण सभा सचालक मण्डल की नियुक्ति करती है जो कि इसके निर्णयो को कार्यरूप मे परिणित करवाता है । आवश्यकता पडने पर सचालक मण्डल अपने कार्यो को उप-समिति को भी सौंप देते है ।

सहकारी उपभोक्ता भण्डार आन्दोलन की प्रगति

आधुनिक उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन का जन्म इगलैण्ड मे १८४४ मे हुआ । भारतवर्ष मे १९१२ मे सहकारी समिति अधिनियम पारित करने के साथ इसका जन्म हुआ । उस समय से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक इस क्षेत्र मे कोई विशेष प्रगति नही हुई । सन् १९१२ से १९२८-२९ तक केवल ३२७ प्राथमिक सहकारी भण्डार सगठित किये गये । इसके पश्चात् के दस वर्षो मे भी प्रगति धीमी रही । वर्ष १९३८-३९ मे भण्डारो की सख्या ३९६ हो गयी । द्वितीय महायुद्ध काल मे आवश्यक वस्तुओं की कमी महसूस हुई । युद्ध के तुरन्त पश्चात् भी इन वस्तुओं का अभाव रहा अत सह-कारी उपभोक्ता भण्डारों का विकास होने लगा । इस काल मे बहुत से भण्डार सरकार

द्वारा विभिन्न नियन्त्रित वस्तुओ के वितरण के लिये काम मे लिये गये । फलत भण्डारो की सख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई । ऐसी अनुकूल परिस्थितियो में इस आन्दोलन का विकास कुछ तेज गति से हुआ । वर्ष १९४९-५० में भण्डारो की सख्या ८९४९ हो गयी जिनकी सदस्य सख्या २१·५५ लाख हो गयी जबकि वर्ष १९३८-३९ में ३९६ भण्डारो की सदस्य सख्या ०.४३ लाख थी । प्रथम योजना से पूर्व इस आन्दोलन की प्रगति निम्न प्रकार थी —

प्राथमिक सहकारी उपभोक्ता भण्डारो की प्रगति

विवरण	१९३८-३९	१९४९-५०
१. भण्डारो की सख्या	३९६	८९४९
२. सदस्यता (लाखो मे)	०·४३	२१·५५
३. निजी निधियाँ (लाख रुपये मे)	२·४७	४५९ ४६
४. विक्रय (लाख रुपयो मे)	५७·१५	७०४५·४१
५. लाभ ,, ,,	....	१०१·००

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि दस वर्षो में भण्डारो की सख्या सदस्य सख्या तथा निजी पूंजी में बहुत वृद्धि हुई । इन भण्डारो द्वारा विभिन्न वस्तुओं के विक्रय में भी पर्याप्त उन्नति हुई । वर्ष १९३८-३९ में इन भण्डारों का विक्रय केवल ५७·१२ लाख रुपये का था जबकि १९४९-५० मे बढ कर ७०४५ ४१ लाख रुपये हो गया ।

सहकारी उपभोक्ता भण्डारों को उन्नति प्रथम पचवर्षीय योजना आरम्भ होने से पूर्व तक तेज गति से हुई किन्तु बाद मे पुन धीमा विकास हुआ जिसका कारण वस्तु नियन्त्रण हटा लेना था । नियन्त्रण हटा लेने से इन भण्डारो के व्यवसाय की अवनति प्रारम्भ हो गयी । फलत इनकी सख्या मे कमी होने लगी ।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे शहरी क्षेत्रों मे उपभोक्ता सहकारिता पर विशेष ध्यान देने का प्रावधान किया गया । नियोजित अर्थव्यवस्था मे वितरण योग्य व्यापार के लिये सहकारी उपभोक्ता भण्डारो को अधिक उपयुक्त समझा गया । किन्तु वर्ष १९५१-५२ मे विभिन्न वस्तुओं पर से नियन्त्रण समाप्त होते ही इन भण्डारो का व्यवसाय गिरने लगा और भण्डारो की सख्या कम होने लगी । प्रथम योजना मे सहकारी उपभोक्ता भण्डारो की प्रगति निम्न प्रकार है

प्रथम योजना में सहकारी उपभोक्ता भण्डारो की प्रगति

विवरण	१९५१-५२	१९५५-५६
१. भण्डारो की सख्या	९७५७	७३५९
२. सदस्यता (लाखो मे)	१८·४६	१४·१४
३ निजी निधियाँ (लाख रुपयो मे)	५५२·७०	४९०·००
४ विक्रय (लाख रुपयो मे)	८२१५ ६९	१४४८·००
५ लाभ (लाख रुपयो मे)	८० ८७	२९·००
६ हानि (लाख रुपयो मे)	३७·६४	४० ००

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि अनेको कारणो से भण्डारो की सख्या, सदस्यता, निजी निधियाँ, विक्रय, लाभ आदि मे बहुत कमी हुई और हानि की राशि मे वृद्धि हुई।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे उपभोक्ता सहकारी भण्डारो की आवश्यकता व महत्व को ध्यान मे रखते हुये इस बात पर जोर दिया गया कि इन भण्डारो की समस्याओ का अध्ययन करके विस्तृत विकास का कार्यक्रम तैयार किया जाये। सरकार ने सन् १९५८ मे खाद्यानो के मूल्यो मे वृद्धि तथा चीनी की कमी के कारण विक्रय व्यवस्था उचित दामो की दुकानो के माध्यम से करना चाहा। यह कार्य उपभोक्ता सहकारी समितियो के माध्यम से करना उचित समझा गया। इस प्रयत्न के माध्यम से उपभोक्ता भण्डारों की अवनति को रोकने की व्यवस्था हुई। इसमे प्राथमिक भण्डारों की साधारण प्रगति हुई और विक्रय की राशि मे कुछ सुधार हुआ। सन् १९६० मे उपभोक्ता भण्डारो का विक्रय का मूल्य ५१५३·०८ लाख रुपये था जबकि वर्ष १९५५-५६ एव १९५८-५९ में क्रमश १४४८·०० लाख एव २७०८·६५ लाख रुपये ही था। भण्डारो के साथ की मात्रा मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। लाभ की राशि वर्ष १९५८-५९ तथा १९६० मे क्रमश ४६ ८४ लाख रुपये एव ६१·१६ लाख रुपये थी।

हमारे देश मे वर्ष १९५९-६० मे थोक विक्रय भण्डारो की सख्या तथा सदस्य सख्या क्रमश ६५ एव १२३८५ थी। और कार्यशील पूंजी की राशि ५८ लाख रुपये थी।

१९६१ की समिति की सिफारिशें[1]

१९ नवम्बर १९६० को भारत मे उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन के अध्ययन के लिये एक समिति का गठन करने का विचार किया गया। २५ फरवरी सन् १९६१ को इस विचार के आधार पर National Co-operative Development and ware housing Board द्वारा इस समिति की नियुक्ति की गयी।

1 Committee on Consumers Corporatives (Feb. 1961—May 1961)

समिति ने अपना प्रतिवेदन मई १९६१ मे प्रस्तुत कर दिया जिसमे निम्नलिखित मुख्य सिफारिशें थी।

(१) संगठनात्मक और संरचनात्मक (Organisational and Structural)

(i) बडे शहरो व औद्योगिक नगरो मे जहाँ पर कि मध्य एवं कम आय वाले व्यक्तियों की सख्या अधिक है, उपभोक्ता भण्डारो के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

(ii) एक शहर मे अनेको अलग भण्डारो के स्थान पर कुछ ही मजबूत भण्डारों का सगठन किया जाये जिनकी अनेक शाखायें विभिन्न भागो मे स्थापित की जायें।

(iii) उपभोक्ता भण्डार सरकारी कर्मचारियों, अन्य सार्वजनिक सस्थाओ, व्यापार व औद्योगिक सस्थानो के कर्मचारियो मे स्थापित करने चाहिएँ ताकि उनके सदस्यो से बकाया राशि उनके वेतन मे से पूरी की जा सके।

(iv) ग्रामीण स्तर पर सेवा सहकारी समितियो सहकारी उपभोक्ता भण्डारो के कार्यों को सम्पादित करें जिससे ग्रामीण जनता को आवश्यकता की वस्तुये उचित मूल्यो पर उपलब्ध हो सके।

(v) थोक उपभोक्ता भण्डारो की स्थिति सुदृढ की जाये। जिन क्षेत्रो मे इनकी बहुत आवश्यकता है वहाँ अतिशीघ्र इनकी स्थापना की जाये।

(vi) जिन भागो मे प्राथमिक उपभोक्ता भण्डार स्थापित नही किये जा सकते हैं अथवा पुराने भण्डारो को सुदृढ नही बनाया जा सकता वहाँ पर थोक भण्डार अपनी शाखायें खोलें। जब ये शाखाये अच्छी तरह कार्य करने लगें तो उनको स्वतन्त्र भण्डार बना दिये जायें।

(vii) प्राथमिक भण्डारो की अश पूंजी मे २५०० रु० और थोक भण्डारो की अश पूंजी मे २५,००० रु० की अश पूंजी सरकार खरीद कर इनकी सहायता करें।

(viii) भण्डार के सगठन के समय आकार और आर्थिक सुदृढता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। प्राथमिक भण्डारा की कम से कम अश पूंजी ५००० रु०, सदस्यता २५० तथा वार्षिक विक्रय की राशि एक लाख रुपये होनी चाहिये। जिला तथा क्षेत्रीय स्तर के थोक भण्डारो की सदस्यता कम से कम १०० प्राथमिक भण्डार, ५०,००० रु० अश पूंजी, वार्षिक २ लाख रुपये कार्यशील पूंजी होनी चाहिये। शीर्ष स्तर के भण्डार के लिये २०० प्राथमिक भण्डारो की सदस्यता, १ लाख रुपये अश पूंजी ५ लाख रुपये कार्यशील पूंजी तथा ३० लाख रुपये का वार्षिक विक्रय होना आवश्यक है।

(ix) इगलैण्ड की भाँति भारतवर्ष मे भी स्त्रियो द्वारा उचित भाग लेना चाहिये। इसके लिये सभी सदस्य अथवा क्रय करने वाली स्त्रियों को शीघ्रता एव उचित तरीके से क्रय करने मे मदद करनी चाहिये। सभी सदस्यो की एक विशेष उप-समिति बनायी जाये जो कि विभिन्न परिवारो मे जाकर स्त्रियो को भण्डारों से माल खरीदने के लिये तैयार करें।

(x) कॉलिजो, स्कूलो तथा अन्य सस्थाओ मे इस प्रकार के भण्डार सगठित करने के भरसक प्रयत्न किये जायें।

(xi) देश के सभी राज्यो मे थोक भण्डार स्थापित किये जायें जहाँ ये नही हैं और जहाँ पर हैं उनको सुदृढ बनाया जाये।

(xii) नीचे स्तर पर प्राथमिक भण्डार इनके ऊपर जिला एव क्षेत्रीय भण्डार और सबसे ऊपर शीर्ष भण्डार (राज्य स्तर पर) हो तो बहुत उपयुक्त होगा।

(xiii) अभी या देरी से देश मे राष्ट्रीय स्तर पर सघीय सगठन स्थापित करना चाहिये जो कि देश के उपभोक्ता सहकारिता को उचित दिशा प्रदान कर सके।

(२) वित्त (Finance)

(i) प्राथमिक भण्डारो के अश का अकित मूल्य १० रुपये से अधिक नही होना चाहिये और थोक भण्डारो मे यह राशि अधिकतम १०० रुपये हो सकती है।

(ii) उपभोक्ता भण्डार ब्याज की उचित दरें रख कर निक्षेप (Deposits) का आकर्षित करें।

(iii) सरकार सहकारी भण्डारो की अश पूंजी मे भाग ले जो कि १० से १५ वर्षो की अवधि मे वापिस किया जा सके।

(iv) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया केन्द्रीय सहकारी बैंको को कुछ अतिरिक्त विधियाँ प्रदान करें जो कि इन भण्डारो की वित्तीय सहायता के काम मे लिये जा सकें।

(v) केन्द्रीय सरकारी बैंक इन भण्डारो की विधियो के दुगने तक ऋण प्रदान करें। शीर्ष सहकारी बैंक शीर्ष थोक भण्डारो को उनको विधियो के ४ गुने तक ऋण प्रदान करें जिसमें सरकार की गारन्टी हो। यदि हानि होती है तो उसको केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा शीर्ष बैंक ५० ४० १० के अनुपात से वहन करें।

(vi) यदि केन्द्रीय सहकारी बैंक, उपभोक्ता भण्डारो की वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे असमर्थ हो तो स्टट बैंक आफ इण्डिया आवश्यक वित्तीय सुविधायें प्रदान करे।

(३) व्यवसायिक विधियाँ एव कार्य विधि

(i) भण्डारो को सदस्यो की मासिक अथवा त्रैमासिक बैठकें बुलानी चाहिये जिनमें इनके कार्य विधि के सुधार के लिये सुझावो पर विचार विमर्श किया जाये भण्डारो मे सुझाव की पुस्तकें (Suggestion Books) होनी चाहियें जिनमें क्रेता अपनी आवश्यकता की वस्तुओ को लिख सकें।

(ii) यदि विधियाँ पर्याप्त हैं तो प्राथमिक भण्डार साधारण विधियन जैसे तेल

पेरने, चावल कूटने तथा आटा बनाने का कार्य करें। बडे आकार की विधियन गति विधियाँ थोक भण्डारो द्वारा सम्पादित की जानी चाहियें।

(iii) आयात लाइसेंस देते समय इन भण्डारो को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। आयात सलाहाकार परिषद (Import Advisory Council) मे सहकारी उपभोक्ता भण्डारो को सरकार पर्याप्त एव प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व प्रदान करें।

(iv) उपभोक्ता भण्डार उचित क्रय एव मूल्य नीति अपनाये। मूल्य नीति ऐसी हो जिससे उपभोक्ताओ को भी हानि न हो और भण्डारो को भी नुकसान न हो।

(v) उपभोक्ता भण्डार किस्म का ऊँचा स्तर निर्धारित करें। शुद्धता एव पूर्ण तोल की भी तरफ भी विशेष ध्यान दें।

(vi) प्राथमिक भण्डार अपने विषय को बढाने तथा अपने सदस्यो की सुविधा के लिये घरेलू सुपुदगी ही दें।

(vii) शीर्ष उपभोक्ता भण्डारो को सरकार दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराये जिससे ये भण्डार उपभोक्ता माल की वसूली तथा विक्रय के लिये ट्रक खरीद सकें।

(viii) भण्डार अपने खाते इस तरह से रखें कि लागत तथा लाभ आदि के विषय में उचित जानकारी होती रहे।

(४) प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण एवं प्रबन्ध
(Democratic Control and Management)

(i) सदस्यों को सहकारी भण्डारो की विचारधारा, सिद्धान्त तथा गति विधियो के बारे मे उचित शिक्षा प्रदान की जाये।

(ii) प्रबन्धक मण्डल अथवा सचालक मण्डल के सचालको को चुनने से पूर्व उनके व्यापारिक अनुभव सदस्यो में विश्वास पैदा करने की क्षमता और कार्यों मे उचित भाग लेने की योग्यता आदि बातो पर विचार करना चाहिये।

(iii) भण्डारो के मैनेजरो को सहकारिता के अतिरिक्त व्यापारिक गति विधियो, दुकान प्रबन्ध विशेषकर विक्रय वृद्धि आदि का प्रशिक्षण देना चाहिये।

(iv) नीचे के स्तर के कर्मचारियो को भी विक्रय, खाते स्कन्ध आदि रखना, पैकिंग, सजावट आदि का प्रशिक्षण देना चाहिये।

(५) सरकारी सहायता (Government Assistance)

(i) प्रत्येक राज्य मे उपभोक्ता भण्डारो के पर्याप्त पर्यवेक्षण, निरीक्षण अकेक्षण आदि की व्यवस्था के लिये अतिरिक्त कर्मचारी नियुक्त किये जाने चाहिए।

(ii) केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार द्वारा सहकारी विकास कार्यक्रमो मे लगाये गये अतिरिक्त कर्मचारियो के व्यय का ५०% वहन करे।

(iii) सरकार कुछ चुने हुये प्राथमिक एव शीर्ष भण्डारों को प्रथम तीन से पाँच वर्षों तक प्रबन्ध से सम्बन्धित सहायता प्रदान करे। प्राथमिक भण्डार को यह सहायता १८०० रुपये तक और शीर्ष भण्डारो को १२,००० रुपये तक होनी चाहिये इस सहायता को ५० ५० के आधार पर केन्द्र तथा राज्य सरकार वहन करे।

समिति के उपरोक्त सुझावों को ध्यान मे रख कर यदि कार्य किया जाय तो निश्चय ही उपभोक्ता भण्डार आन्दोलन का तेज गति से विकास होगा।

तृतीय पंचवर्षीय योजना मे उपभोक्ता सहकारी समितियों के अध्ययन के लिय गठित की गयी समिति की सिफारिशो के आधार पर विकास किया गया। योजना के आरम्भ से ही उपभोक्ता भण्डारो के विकास का नया कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इस कायक्रम म २२०० प्राथमिक उपभोक्ता भण्डार शहरी क्षेत्रों मे और प्रत्येक राज्य में शीर्ष थोक भण्डार की स्थापना करने की व्यवस्था थी। भण्डारो को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने सहायता देने का निश्चय किया। सन् १९६२ मे चीनी आक्रमण के कारण आपत कालीन स्थिति घोषित की गयी और मूल्य नियन्त्रण के लिये उपभोक्ता भण्डारो के विकास पर बल दिया गया। भारत सरकार द्वारा कई योजनायें तैयार की गयी जिनका विवरण निम्न प्रकार है —

(१) शहरी क्षेत्रों के लिये केन्द्र सचालित योजना

सन् १९६२ मे हमारे देश मे उन मुख्य नगरो एव कस्बो मे जिनकी जन सख्या ५० हजार से अधिक हो उपभोक्ता भण्डारो का जाल बिछाने का कार्यक्रम चालू किया गया। इस योजना के अन्तर्गत देश में २०० थोक भण्डार और ४००० प्राथमिक भण्डार अथवा शाखायें सगठित करने का निश्चय किया गया। प्रत्येक थोक भण्डार म औसत रूप से २० प्राथमिक भण्डार या शाखायें होंगी। कार्यक्रम निम्न प्रकार से था।

वर्ष	थोक भण्डार	प्राथमिक शाखायें
१९६२-६३	७०	७००
१९६३-६४	१३०	३३००

केन्द्रीय सरकार ने इस योजना मे ११ करोड रुपये की व्यवस्था का प्रावधान किया। योजना म एक थोक भण्डार को ४ लाख १० हजार रुपये तक अधिकतम सहायता प्रदान की जा सकती है। ऐसी सहायता २ लाख रुपये क्नीन क्रेडिट १ लाख रुपये अश पूंजी, १ लाख रुपये ट्रक अथवा गोदाम बनाने के लिए और १० हजार रुपए व्यवस्थापकीय खर्चों के लिए दी जा सकती है। प्राथमिक भण्डार अथवा शाखायें जो कि थोक भण्डार के अन्तगत आते हैं, ४५०० रुपये की सहायता प्राप्त कर सकते हैं ऐसी सहायता २५०० रुपए अश पूंजी और २००० रुपए व्यवस्थापीय खर्चों के लिये दी जा सकती है।

(२) औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता भण्डार

श्रम व रोजगार मन्त्रालय ने सन् १९६२ मे हुये राष्ट्रीय भाव सम्मेलन की सिफारिशो के आधार पर औद्योगिक श्रमिको के लिये उपभोक्ता भण्डार सगठित करने की योजना तैयार की। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के

सस्थानो मे भण्डार सगठित किये जायेंगे जहाँ से २५० रु० से अधिक श्रमिको की सख्या हो । मिल मालिको द्वारा निम्न प्रकार सहायता उपलब्ध करायी जाने का प्रावधान था ”[1]

(१) अश पूंजी अशदान	२५०० रुपये
(२) कार्यशील पूंजी ऋण	१०,००० ,,
(३) ३ वर्षों के लिए व्यवस्थापकीय अनुदान	७८०० ,,
(४) निशुल्क अथवा आशिक किराये पर स्थान की उपलब्धि	

(३) सरकारी कर्मचारियो के लिये उपभोक्ता भण्डार

भारत सरकार ने इस योजना के अन्तर्गत दिल्ली सरकार कर्मचारियो के लिये एक केन्द्रीय भण्डार और उसकी शाखायें स्थापित की हैं। राज्यो मे आन्ध्र प्रदेश सरकार ने अपने कर्मचारियो के लिये उपभोक्ता भण्डारो की स्थापना की है । अश पूंजी, कार्यशील तथा प्रबन्धकीय व्ययो के लिये राज्य सरकार द्वारा सहायता प्रदान की जाती है।

(४) ग्रामीण क्षेत्रों की योजना

भारतवर्ष मे ग्रामीण क्षेत्रो मे वर्ष १९६२ मे १५ हजार ग्रामीण समितियो द्वारा सामग्री वितरण का कार्य किया जा रहा था। इन समितियो के अतिरिक्त अनेको क्षेत्रो मे सेवा समितियाँ भी यह कार्य कर रही हैं। इस योजना के अन्तगत चीनी और मिट्टी का तेल इन समितियो के माध्यम से निर्धारित करने की व्यवस्था रखी गयी । इस आशय के लिये ४५ हजार ग्राम समितियाँ और २ हजार विपणन समितियाँ कार्य करेंगी।

उपरोक्त नयी योजना (केन्द्रीय योजना) के प्रारम्भ हो जाने से उपभोक्ता सहकारिता का विकास तेज गति से होने लगा। तीसरी पचवर्षीय योजना के अन्त मे थोक भण्डारो की सख्या २८० थी और उनकी सदस्य सख्या तथा कार्यशील पूंजी क्रमश ५२१२२६ एव ३३१३ लाख रुपये थी। प्राथमिक भण्डारो की सख्या १३१०० थी। इनकी सदस्य सख्या एव कार्यशील पूंजी क्रमश २९३९२७७ एव १८१८ लाख रुपये थी ।

तृतीय पचवर्षीय योजना के आरम्भ में ग्रामीण क्षेत्रो में उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण १६ ७ करोड रुपये का था जो कि वर्ष १९६५-६६ मे बढकर १९८ १ करोड रुपये हो गया। शहरी क्षेत्रों मे शहरी उपभोक्ता भण्डारो द्वारा वितरण वष १९६० ६१ तथा १९६५-६६ मे क्रमश ४० करोड तथा २०० करोड रुपये था।[2]

---

1. सहकारी समाज, पृष्ठ ३५ ।
2 Fourth Five Year Plan Draft 1969-74, p 167.

तृतीय पंचवर्षीय योजना और चतुर्थ पचवर्षीय योजना के मध्य तीन वर्षो तक एक पंचवर्षीय योजनायें चलती रही। इस काल मे भी सहकारी उपभोक्ता भण्डारो का विकास निरन्तर होता रहा। वष १९६८-६९ मे केन्द्र द्वारा प्रायोजित उपभोक्ता सहकारी समितियो की योजना के सगठित समितियो को सुदृढ करने पर बल दिया गया। जिन भागो मे उपभोक्ता सहकारी समितियाँ नही हैं वहाँ तथा विश्वविद्यालयो मे ऐसी समितियाँ सगठित करने के प्रयत्न किए गए। अधिक आबादी वाले नगरो तथा कस्बो मे बहु-विभागी भण्डार/सुपर बाजार खोलने का काय किया गया। जून १९६८ के अन्त मे देश मे ३५१ थोक भण्डार थे जबकि वष १९६७ मे इनकी सख्या ३४५ थी। विभिन्न योजनाओ के अन्तर्गत सगठित हुआ। १४००० भण्डारो मे से इन थोक भण्डारो से जो प्राथमिक भण्डार व शाखायें सम्बद्ध हुई हैं, उनकी सख्या १०६१७ तक पहुँच गई जबकि इसके पूर्व ९४७१ भण्डार ही थोक भण्डारो से सम्बद्ध थे। ३० जून १९६७ को बहुविभागी भण्डारो/सुपर बाजारो की सख्या ३८ थी जो कि ३० जून १९६८ को बढकर ७२ हो गयी। जून १९६८ के अन्त तक विश्वविद्यालयो तथा महाविद्यालयो मे उपभोक्ता भण्डारो की सख्या २८ हो गयी। इसके पूर्व वर्षो मे राज्य स्तर पर सगठित १४ शोर्ष महकारी उपभोक्ता सघ और एक राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता सघ अच्छी तरह काय करते रहे।[1]

श्रम रोजगार और पुनर्वास मत्रालय ने औद्योगिक तथा खान प्रतिष्ठानो मे जो समितियाँ करने की योजना चालू की थी उसके अन्तर्गत १९६७ ६८ तक २२३६ प्राथमिक उपभोक्ता भण्डार सगठित किए गए। इनके अतिरिक्त कई उचित मूल्य की दूकानो की भी स्थापना की। इस योजना के अन्तर्गत सगठित उपभोक्ता समितिया तथा उचित मूल्य की दूकानो के माध्यम से वर्ष १९६७-६८ मे लगभग ६० ८० करोड रुपये की विक्री की गई। श्रमिक कल्याण निधि से प्राप्त वित्तीय सहायता से कोयला और अभ्रक की खानो के श्रमिको के लिए १३ थोक भण्डार खोले गए। वर्ष १९६७-६८ के अन्त मे रेल कर्मचारियो के लिए ४२६ सहकारी भण्टार थे और डाक व तार विभाग के कर्मचारियो के लिए १५८ उपभोक्ता भण्डार सगठित किए गए थे।

थोक भण्डारों की प्रगति

केन्द्र द्वारा प्रायोजित उपभोक्ता सहकारी समितियो की योजना के अन्तर्गत जून १९६८ के अन्त तक ३५१ थोक भण्डार सगठित किए गए। भविष्य मे इन भण्डारो को अधिक मजबूत बनाने की योजना है। थोक भण्डारो की प्रगति (केन्द्रीय प्रायोजित योजना के अन्तर्गत) निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाती है

1 Report 1968 69, Govt 8 India (Corporative Draft,) p 42

वर्षान्त स्थिति

विवरण	१९६५-६६	१९६६-६७	१९६७-६८
१. गठित किए गए भण्डारो की सख्या	२५२	३४५	३५१
२. कार्य कर रहे भण्डारो की सख्या	२२८	३१३	३४१
३. सदस्य सख्या			
(i) व्यक्ति (लाखो मे)	४·१८	६·६६	८ १६
(ii) प्राथमिक उपभोक्ता समितियाँ	५९३३	७०५२	८०१४
(iii) अन्य सस्थायें ,,	५९८६	७३७७	७३३७
४. केन्द्रीय/थोक भण्डारो द्वारा स्थापित शाखाओ की सख्या	१९३६	२४१९	२५०३
५. प्रदत्त अश पूँजी (करोड रुपये मे)	४·००	७·२१	९·१५
६. कार्यकर पूँजी (करोड रुपये मे)	१६·४५	२१·७४	२७·२०
७ बिक्री (करोड रुपयो मे)	१४३·५२	१७३·६५	१७१·१०

[Source—Report 1968-69, Govt of India, Ministry of Agricultury community Department and corporation (Coop Deptt. p 44]

उक्त सारिणी से स्पष्ट है कि थोक-भण्डारो की सदस्यता, अश पूंजी, कार्यशील पूंजी मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्ष १९६७-६८ मे १९६६-६७ की तुलना मे कुछ कमी हुई है जिसका कारण नियन्त्रण के अन्तर्गत चीनी तथा अन्य नियमित वस्तुओ की सप्लाई कम उपलब्ध हुई। इस वर्ष वस्तुओ के मूल्यो मे उतार चढाव आने के कारण कुछ भण्डारो को हानियाँ भी हुई। थोक भण्डारो का कार्य विस्तार हुआ फलत अधिनियम वस्तुओ की वर्ष १९६७-६८ मे बिक्री ३५% तक पहुँच गयी।

बहु-विभागीय भण्डार/सुपर बाजारो की प्रगति

भारतवर्ष मे सन् १९६६ मे रुपये का अवमूल्यन किया गया। इसके पश्चात् देश के बडे शहरो तथा कस्बो मे बहु-विभागीय भण्डार/सुपर बाजार सगठित करने का कार्यक्रम चालू किया गया। यह कार्यक्रम २ लाख से कम आबादी वाले कस्बो मे चयन करके प्रारम्भ किया गया। जून १९६८ के अन्त मे बहु-विभागीय भण्डार/सुपर बाजारो की सख्या ६० हो चुकी थी। १२ अन्य बहु विभागीय भण्डारो ने भी कार्यारम्भ कर दिया। वर्ष १९६८-६९ मे २२ नये भण्डार स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की गयी। जून १९६८ के अन्त तक इन भण्डारो ने २२ करोड रुपये की वस्तुये बेची।

हमारे देश मे बहु-विभागीय भण्डारो/सुपर बाजारो के कार्यों से मूल्य स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडा है। यद्यपि अनेको भण्डारो को आरम्भ मे हानि हुई है। वर्तमान

समय मे इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि ये भण्डार अपनी बिक्री बढ़ावें और व्यवस्थापकीय व्यय कम करें ताकि हानि न हो।

राज्य सहकारी उपभोक्ता संघ

राज्य स्तर पर उपभोक्ता सहकारिता ढाँचे मे राज्य सरकारी उपभोक्ता सघ शीर्षस्थ सस्थायें हैं। जन १९६८ के अन्त तक हमारे देश मे १४ राज्य उपभोक्ता सघ स्थापित किए गए। इस समय इन सघो से सम्बद्ध समितियो की सख्या २६५ थी और इन सघो की प्रदत्त अश पूंजी ७८·०० लाख रुपये थी। इसमे सहकारी अश दान ५६ ४ प्रतिशत और शेष ४३·६ प्रतिशत सदस्यो का अशदान था। राज्य सहकारी उपभोक्ता सघ *वस्त्रो, दालो, मसालो, आयातित तथा जब्त की गई वस्तुओ* का विक्रय करती हैं। इनके अतिरिक्त टायर, ट्यूब, ब्लेड्स, ड्राइ बैटरी सेल्स बेबीफूड आदि का विपणन करते है। सभी सघो की जून १९६८ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष की बिक्री ६१२·० लाख रुपये थी।

राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता सघ

भारतवर्ष मे राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता सहकारिता की सघीय सस्था १९६६ मे स्थापित की गयी। इस सघ ने अपना कार्य सितम्बर १९६६ मे प्रारम्भ किया। आगे के वर्षों मे सघ ने अपनी व्यापारिक तथा प्रवर्तन सम्बन्धी गतिविधियो का विस्तार किया। जून १९६८ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष मे सघ ने कुल २५ करोड रुपये की बिक्री की। लगभग ५६ लाख रुपये के मूल्य की जब्त वस्तुओं की सप्लाई की। "अपनी प्रवर्तन सम्बन्धी गतिविधियो के दौरान राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता सघ ने I. L O. के विशेषज्ञो की सलाह से एक थोक भण्डार मे प्रायोगिक *तौर पर एक सरलीकृत लेखा पद्धति आरम्भ की है और देश के अन्य भागो* के थोक भण्डारो के प्रतिनिधियो के लिए इस बात के लिए प्रबन्ध किए गए है कि वे इसका अध्ययन करें और अपने भण्डारो मे अपनायें।"[1]

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नए भण्डारो के सगठित करने की बजाय विभिन्न स्तरो पर वर्तमान भण्डारो को सुदृढ बनाया जाएगा। इस योजना के केन्द्रीय थोक भण्डारो को पुनर्संगठित और सुदृढ किया जाएगा। पुनर्संगठन का उद्देश्य इनको बडे आकार की बहु-फुटकर इकाई सहकारी समितियां (Large sized multi-retail unit Co-operative Societies) बनाना है। इस उपभोक्ता भण्डार आन्दोलन का ऊपरी ढाँचा जिसमे राज्य स्तरीय सघ और राष्ट्रीय सघ है, सुदृढ बनाया *जाएगा।*[2] इस योजना मे सहकारी उपभोक्ता भण्डारो द्वारा निम्न प्रकार वितरण की प्रगति की जाएगी।

---

1. Report 1968 69 Govt of India (Coop. Deptt) p 48
2. Fourth Five Year Plan Draft 1969 74, p 164

प्रगति एव चतुर्थ योजना के लक्ष्य

(मूल्य करोड़ रुपयो मे)

वितरण	१९६०-६१	१९६५-६६	१९६८-६९ (अनुमानित)	१९७३-७४ (लक्ष्य)
१. उपभोग्य वस्तुओ का ग्रामीण क्षेत्रो मे वितरण	१६'७	११८'१	२७५	५००
२. शहरी उपभोक्ता समितियो का फुटकर विक्रय	४०	२००	२७५	४००

(Source—Fourth Five year Plan draft 1969-74, Page 167)

तालिका से स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना के लक्ष्य पूर्व के वर्षो की तुलना मे बहुत अधिक हैं। इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए शहरी एव ग्रामीण क्षेत्रो क्षेत्रो मे उपभोक्ता भण्डारो का विस्तार किया जाएगा। नियमित वस्तुओ के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ के विक्रय का प्रतिशत भी बढाया जाएगा। ग्रामीण क्षेत्रो मे विक्रय बढाने के लिए विपणन तथा ग्रामीण समितियो का कार्य क्षत्र विस्तृत किया जाएगा। ऐसे प्रयत्न भी किए जायेंगे जिससे सहकारी सेवा प्रभावित बनाई जा सके जिससे सहकारी भण्डार स्थायी वितरण की सख्यायें कम जायें। उपभोक्ता समितियो तथा विपणन समितियो के कार्यों मे उचित समन्वय स्थापित किया जाएगा।

मूल्य नीति (Price Policy)

सहकारी उपभोक्ता भण्डारो की मूल्य नीति पर विचार करना बहुत महत्वपूर्ण है। सामान्यत मूल्य नीति (1) नुकसान आधार पर (11) न लाभ न नुकसान आधार (111) लाभ आधार (1V) बाजार भाव आदि पर निर्भर करती है। सहकारी भण्डारो मे नुकसान आधार (Loss Basis) पर वस्तुयें बेचना बहुत कठिन है क्योकि इससे इनको बहुत नुकसान होगा जिससे इनका भविष्य अच्छा नहीं रहेगा। कुछ विद्वान इस बात पर बल देते हैं कि उपभोक्ताओं को अधिक लाभ पहुँचने की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक वस्तुयें न लाभ न नुकसान आधार (No profit No Loss Basis) पर बेची जायें। किन्तु इस विधि मे लागत व खर्चों को ही वसूल किया जायगा। इस विधि को अपनाने पर भण्डारो के भावी विकास के लिये निधियों का अभाव रहेगा। इसके अतिरिक्त सबसे बडी कठिनाई यह आवेगी कि गैर सदस्यो को लागत मूल्य पर कैसे माल बेचा जा सकता है। इस बात को सदस्य सहन नहीं करेंगे। इस विधि मे नुकसान न हो जाये इसके लिए प्रत्येक इकाई पर खर्चों का वितरण कठिन होगा। अत लागत पर बेचने का आशय हैं कार्यशील पूंजी को नष्ट करना और लाभपूर्ण अग्रिम क्रय न कर सकना।

सहकारी उपभोक्ता भण्डारो की मूल्य नीति लाभ आधार (profit basis) पर भी आधारित होती है। इस आधार मे लागत मे कुछ प्रतिशत और जोड दिया जाता है और इस मूल्य पर वस्तुयें बेची जा सकती हैं। किन्तु निजी व्यापारियो से प्रतिस्पर्धा करने के लिये बाजार भाव सर्वोत्तम समझा गया है। बाजार भाव भण्डारो के लाभ को बढाते हैं जिससे सदस्यो को उचित लाभाश मिलते हैं। फलत अधिक व्यक्ति सदस्य बनते हैं। किन्तु यदि बाजार भाव अनुचित तरीको से ऊँचे हो गये हैं तो उपभोक्ता भण्डारो को बाजार भाव से कम मूल्य पर वस्तुयें बेचनी चाहियें।

भारत मे उपभोक्ता सहकारिता की धीमी प्रगति के कारण

भारत मे सहकारी उपभोक्ता आन्दोलन की प्रगति धीमी गति से हुई। विश्व के अनेक देशो मे इस क्षेत्र मे सहकारिता ने उल्लेखनीय कार्य किया। विशेषकर इगलैण्ड मे उपभोक्ता भण्डारो ने बहुत प्रगति की। भारतवर्ष मे इस आन्दोलन की धीमी प्रगति के निम्नलिखित कारण थे —

(१) छोटी एव अनार्थिक आकार की इकाइयाँ

भारतवर्ष मे उपभोक्ता सहकारी भण्डारो का अनार्थिक आकार है। छोटे एव अनार्थिक आकार होने से व्यवस्थापकीय अधिक पडता है और कुल विक्रय की मात्रा कम होती है। इससे भण्डारो को नुकसान होता है। निरन्तर हानि होने से इनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो जाती है और यहाँ तक कि अनेको स्थानों पर इनको बन्द करना पडा है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे कई भण्डारो को बन्द करना पडा। इस योजना के प्रथम वर्ष के अन्त मे उपभोक्ता भण्डारो की सख्या १७५७ थी जो कि घट कर १९५५-५६ मे ७३५९ ही रह गयी। गह प्रवृति पुन बनी रही और वर्ष १९६० मे इनकी सख्या पुन घट कर ४२५५ हो गयी।

(२) नियन्त्रित वस्तुओ के व्यापार पर निर्भरता

भारतवर्ष मे अधिकाश उपभोक्ता भण्डार नियन्त्रित वस्तुओ के वितरण का कार्य करते रहे हैं। देश मे जब भी नियन्त्रण हटाया गया है अथवा ढीला किया गया है, इनके व्यापार की मात्रा में पर्याप्त कमी हुई है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे कई वस्तुओ पर से नियन्त्रण हटा लेने के कारण समितियो की कुल बिक्री बहुत घट गयी और फलत अनेक इकाइयाँ बन्द हो गयी।

(३) समितियो के कमचारियो में व्यापारिक योजना एव कुशलता का अभाव

उपभोक्ता भण्डारो मे कार्य करने वाले कर्मचारी व्यवसाय कुशल नही होते हैं क्योकि न तो उनको व्यापारिक प्रशिक्षण ही मिल पाता है और न ही व्यापारिक अनुभव होता है। किन्तु उपभोक्ता समितियो की सफलता व्यापारिक कुशलता पर निर्भर रहती है। निजी व्यापारी इस कार्य मे बहुत कुशल होते हैं अत उनकी प्रतिस्पर्धा मे भण्डारो का कार्य चलना कठिन हो जाता है। व्यावसायिक अकुशलता के कारण कभी-कभी बहुत नुकसान हो जाता है जिससे इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है। हमारे देश मे अधिकाश भण्डार ऐसे हैं जिनमे बहुत ही कम व्यक्ति कुशल एव अनुभवी हैं।

(४) कुशल प्रबन्ध का अभाव :

सहकारी भण्डारो की प्रबन्ध समिति मे कुशल प्रबन्धको की कमी पायी जाती है। आजकल वैज्ञानिक एव कुशल प्रबन्ध का महत्त्व बहुत बढ गया है। भण्डारो की प्रबन्ध समितियो मे प्राय बहुत कुशल व्यक्ति इसलिए नही आना चाहते क्योकि उनको पारिश्रमिक नही मिलता है। प्रबन्ध के उच्च स्तर पर कम कार्य क्षमता वाले व्यक्तियो के कारण निर्णय बहुत धीरे-धीरे लिये जाते हैं जिससे व्यापार को हानि होती है।

(५) वित्तीय समस्या

वित्त भण्डारो की प्रमुख समस्या रही है। अनेको भण्डार आर्थिक दृष्टि से बहुत कमजोर हैं। इसका कारण है सदस्यता की कमी। आरम्भ मे हमारे देश मे सरकारी सहायता बहुत कम थी अत भण्डारो को समय-समय पर वित्त की कठिनाई अनुभव होती रही। धन के अभाव मे कार्यो का विस्तार करना बहुत कठिन होता है। भण्डारो को दुकानो, गोदामो तथा व्यवस्थापकीय कार्यों के लिये पैसो की कमी रहती है। आजकल केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारे आदि सहायता कर रही है।

(६) सीमित मांग की वस्तुओ का अधिक स्टॉक

कुछ भण्डारो के पास ऐसे माल का स्टॉक बहुत इकट्ठा हो गया है जिसकी मॉग सीमित है। कार्यशील पूँजी का बडा भाग इस प्रकार के माल में लगा होने के कारण भण्डारा के सामने समस्या खडी हो गयी है। व्यावसायिक योग्यता के अभाव मे निणय उचित नही लिये जा सकते हैं जिसके कारण बिना मांग की वस्तुओ का भी बडी मात्रा मे क्रय कर लिया जाता है। इस प्रकार कार्यशील पूँजी बेकार हो जाने के कारण अन्य वस्तुयें खरीदने मे कठिनाइयां आती है।

(७) सदस्यों की सद् भावना व रुचि की कमी

उपभोक्ता सहकारिता आन्दोलन मे विभिन्न समितियो के सदस्यो मे समिति के प्रति सदभावना का अभाव पाया जाता है। अनेको सदस्य अन्य स्थानो से वस्तुये खरीदते है। इससे भण्डारो के कुल विक्रय मे कमी हो जाती है। आन्दोलन की प्रगति के लिये आवश्यक है सभी सदस्य भण्डारो के उद्देश्यो को समझे और उनके कार्य क्षेत्र को विस्तृत करने मे मदद करें। इन भण्डारो के विभिन्न कार्यो मे रुचि भी लें ताकि अधिक विकास हो सके।

(८) दोष पूर्ण खाता प्रणाली

हमारे देश मे समितियो के खाते रखने की पद्धति दोष पूर्ण है जिसके कारण विभिन्न निणय लेने मे कठिनाई होती है। उचित खातो के अभाव मे भण्डारों की कार्य क्षमता का पता चलाना कठिन है। इसका प्रमुख कारण है कि भण्डारों के पास अनुभवी एकाउन्टेन्ट्स का अभाव होता है।

(९) कम पारिश्रमिक अथवा अवैतनिक सेवायें

सहकारी भण्डारो मे कार्य करने वाले कर्मचारियों को बहुत कम वेतन दिया जाता है। अन्य ऊपर के अधिकारियो को या तो पारिश्रमिक बिलकुल ही

नही दिया जाता है अथवा बहुत कम। इससे उनकी कार्य मे रुचि बहुत कम होती है। प्रवन्धक मण्डल के सचालको को पारिश्रमिक न देने के कारण वे भण्डारो के कार्यो मे विलकुल रुचि नही लेते हैं।

(१०) अन्य

भारतवर्ष मे उपभोक्ता सहकारिता मे सगठनात्मक ढाँचा (Organizational Sructure) बहुत कमजोर है। वस्तुओ के विक्रय के लिये बाजार का अध्ययन करना आवश्यक होता है किन्तु भण्डार यह कार्य नही कर पाते है जिससे उपभोक्ताओ की रुचि का अध्ययन नही हो पाता है। कभी कभी सदस्यो की रुचि के अनुसार वस्तुयें उपलब्ध नही हो पाती हैं जिससे उनकी रुचि समाप्त होने लगती है। भारतवर्ष मे स्त्रियाँ अशिक्षित होने के कारण इस आन्दोलन मे अधिक सहयोग नही दे पायी हैं। भण्डारो की कार्य लागत अनुपात रहित होती है।

उपरोक्त कठिनाइयो के कारण भारतवर्ष मे इस आन्दोलन का तेज गति से विकास नही हो पाया। प्रथम और द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे इन भण्डारो के विकास के कोई ठोस कदम नही उठाये जा सके। द्वितोय योजना मे इस आन्दोलन के अध्ययन के लिये समिति गठित की गयी जिसकी सिफारिशें पहले बतायी जा चुकी हैं। तृतीय योजना मे एक नवीन केन्द्रीय कार्यक्रम चालू किया गया है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने भी इस आन्दोलन की तरफ ध्यान देना शुरू कर दिया है।

सुधार के सुझाव

हमारे देश मे सहकारी उपभोक्ता भण्डारो का विकास तेज गति से करने की आवश्यकता है। विभिन्न शहरी भागो मे आन्दोलन ने विकास किया है किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों मे स्थिति अच्छी नही है। विश्व के अन्य देशो की तुलना मे भारत मे इस क्षेत्र मे विकास को अधिक गति प्रदान करनी चाहिये। इसके लिये प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हो सकते है

(१) सदस्यता एवं कार्यशील पूँजी में वृद्धि

आन्दोलन के तेज विकास के लिये इस प्रकार के प्रयत्न किये जाने चाहिएँ कि सदस्यता मे पर्याप्त वृद्धि हो सके। सदस्यता मे वृद्धि होने से अश पूँजी मे वृद्धि होती है जिससे कार्य शील पूजी भी अधिक हो जाती है इससे भण्डारो की आर्थिक स्थिति अपने आंतरिक साधनो से बढायी जा सकती है। भारत सरकार ने चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इस बात पर बल दिया है कि भण्डारो की सख्या मे वृद्धि करने की बजाय सदस्यता मे वृद्धि की जाये और वतमान समितियों को सुदृढ बनाया जाय।

(२) सदस्यों को सुविधायें

सहकारी भण्डार अपने सदस्यो को अनेक प्रकार से सुविधायें प्रदान करके उनकी रुचि मे वृद्धि कर सकते हैं। भण्डार अपने सदस्यों को उधार की सुविधायें, रोकडी बट्टा, स्थगित भुगतान आदि सुविधाये प्रदान करें। इसके अतिरिक्त

सदस्यों को घर सुपुर्दगी (Home delivery) की सुविधा प्रदान करके बिक्री की मात्रा भी बढ़ायी जा सकती है और सदस्यों को सुविधा भी मिल जाती है। इन सुविधाओं से सदस्यों में भण्डारों के प्रति सद्‌भावना का उदय होगा।

(३) कर्मचारियों की सुविधायें :

वर्तमान परिस्थितियों में किसी भी संस्था को अपनी कार्य क्षमता में वृद्धि करने के लिये कर्मचारियों को उचित सुविधायें प्रदान करनी चाहियें। भारतवर्ष में सहकारी भण्डारों के कर्मचारियों को इन सुविधाओं का प्रायः अभाव रहा है। वेतन के अलावा अन्य सुविधायें जैसे श्रम, कल्याण, बोनस, चिकित्सा, घर व्यवस्था तथा अन्य सुविधायें प्रदान करनी चाहिये। निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में कर्मचारियों को अनेक सुविधायें होती हैं जिससे श्रमिकों का झुकाव इनकी तरफ अधिक होता है। उपभोक्ता भण्डारों में इनके अभाव में कुशल कर्मचारी नहीं आ पाते हैं।

(४) व्यावसायिक गतिविधियों में सुधार

उपभोक्ता समितियों को अपनी विभिन्न व्यावसायिक गति विधियों में आवश्यक सुधार करने चाहियें। दूकान स्थापित करने से पूर्व अनेक बातों पर विचार करना चाहिये। वस्तुओं की उचित सजावट करनी चाहिये और उनके विक्रय के लिये विज्ञापन व्यवस्था भी करनी चाहिये। आजकल प्रतिस्पर्धा में टिकने के लिये बाजार अनुसन्धान अत्यन्त आवश्यक है। उपभोक्ताओं की रुचि के अध्ययन की व्यवस्था करनी चाहिये। भण्डारों को अपनी दूकानों पर सुझाव स्कीम (Suggestion scheme) चालू करनी चाहिये। इसके लिये सुझाव पुस्तिका रखी जाये जिसमें क्रेता आवश्यक सुझाव समय समय पर लिख सकें। विक्रय की दृष्टि से स्त्रियों को विक्रय कार्य में अधिक भर्ती करनी चाहिये।

(५) उत्पादकों से प्रत्यक्ष सम्पर्क

बाजार में उचित मूल्य पर वस्तुयें प्रस्तुत करने के लिये भण्डारों को प्रत्येक उत्पादकों से सम्पर्क स्थापित करना चाहियें। इसके अभाव में मध्यस्थों से माल खरीदना पड़ता है जिसमें उनका कमीशन वस्तुओं के मूल्य में सम्मिलित हो जाता है। इसका प्रभाव भण्डारों के लाभों पर पड़ता है। यद्यपि तृतीय पंचवर्षीय योजना में चालू की गयी नवीन केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत इस तरफ ध्यान दिया गया है किन्तु इस तरफ और अधिक ध्यान देना आवश्यक है।

(६) सरकारी सहायता

भण्डार आन्दोलन की प्रगति में सरकारी सहायता बहुत आवश्यक है। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि इन भण्डारों के सामने वित्तीय समस्या महत्त्वपूर्ण है। इस समस्या के निराकरण के लिये केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को सहायता प्रदान करनी चाहिये। सहकारी प्रशिक्षण, व्यवस्थापकीय व्ययों, गोदाम बनाने तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में सरकारी सहायता बहुत आवश्यक है। सरकार भण्डारों की अंश पूंजी में अधिक योगदान दें।

(७) प्रशिक्षण व्यवस्था

सहकारी भण्डारों के कर्मचारियों के लिये उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिये। इस प्रशिक्षण मे व्यवसाय प्रबन्ध, खातों तथा सहकारी सिद्धान्तों की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। इससे भण्डारों का कार्य सुदृढ होगा और कार्य क्षमता मे वृद्धि होगी।

(८) व्यापार का प्रसार

उपभोक्ता भण्डारो को अनियन्त्रित वस्तुओ का व्यापार अधिक मात्रा में करना चाहिये। हमारे देश मे अनेक ऐसी समितियाँ हैं जो कि नियन्त्रित वस्तुओं का ही व्यापार करती है। नियन्त्रण हट जाने पर इनकी स्थिति दयनीय हो जाती है। इससे बचने के लिये यह आवश्यक है कि अनियन्त्रित वस्तुओ का व्यापार बढाया जाय इसके अतिरिक्त भण्डारों का व्यापार क्षेत्र भी विस्तृत किया जाये ताकि बिक्री बढ सके।

(९) सघीय सगठन का सुदृढ बनाना

भारत मे भण्डारों का सघीय सगठन अधिक सुदृढ नहीं है। यद्यपि पिछले वर्षों मे राज्यो मे शीर्ष सघ और राष्ट्रीय स्तर पर सर्वोच्च राष्ट्रीय सघ स्थापित किए जा चुके हैं किन्तु इन सघीय इकाइयो से सभी प्राथमिक भण्डार सम्बद्ध नहीं है। इस कमी के कारण विभिन्न समितियो मे उचित समन्वय का अभाव पाया जाता है। सघीय सस्थायें समय-समय पर उचित सहायता अपने से नीचे के भण्डारो को देकर विकास की गति को अधिक तेज कर सकते है।

(१०) अन्य

उपरोक्त सुझावो के अतिरिक्त भण्डारो का समय पर अंकेक्षण, निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण होना आवश्यक है। अंकेक्षण व्यवस्था से किसी भी प्रकार की गडबड नही होगी। पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण से भी कार्य उचित तरह से चलता रहेगा। सरकार को इन भण्डारो को विक्रय मे कुछ करो की छूट देनी चाहिए। इस आन्दोलन को इगलैण्ड की भाँति भारत मे भी स्त्रियाँ अधिक सफल बना सकती हैं इसके लिये स्त्रियों को अधिक सदस्यता प्रदान की जानी चाहिए। भण्डारों से वस्तुयें खरीदने के लिए आने वाली स्त्रियो को उचित सुविधायें प्रदान करना आवश्यक है। उनको शीघ्रता से वस्तुये देनी चाहियें ताकि उनका अधिक समय खराब न हो।

उक्त सुझावो से निश्चय ही भण्डार आन्दोलन का तेज गति से विकास हो सकेगा। ग्रामीण क्षेत्रो तथा शहरी क्षेत्रो मे कार्य करने वाली समितियो में समन्वय स्थापित करना नितान्त वाछनीय है। आशा है भविष्य मे उपभोक्ता भण्डारो का उचित विकास होगा।

प्रश्न

१. उपभोक्ता सहकारिता की क्या आवश्यकता है ? इस आन्दोलन की पंचवर्षीय योजनाओं मे जो प्रगति हुई है उसका संक्षिप्त विवरण दीजिए।

२. उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति के क्या कारण हैं ? सुधार के सुझाव भी दीजिए।

३. क्या आपकी राय मे उपभोक्ता सहकारिता आन्दोलन की प्रगति संतोषजनक रही है ? अपने उत्तर की पुष्टि उदाहरण सहित कीजिए।

४. 'उपभोक्ता सहकारिता' विषय पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

९

प्रौद्योगिक सहकारिता
(Industrial Cooperation)

कुटीर एव लघु उद्योगो का विश्व के प्राय सभी देशो मे उल्लेखनीय स्थान होता है। वृहत उद्योगो मे विकसित देश जैसे इगलैण्ड एव अमेरिका मे भी इन उद्योगो का महत्त्व स्वीकार किया गया है। जापान मे वृहत उद्योगो एव कुटीर व लघु उद्योगो मे उचित समन्वय नजर आता है। भारतवर्ष मे भी प्राचीन काल से ही ये उद्योग प्रसिद्ध रहे है। भारत गाँवो का कृषि प्रधान देश है अत सहायक धन्धे के रूप मे इन उद्योगो का महत्त्व और भी बढ जाता है। देश मे बढती बेकारी को दूर करने के लिये इन उद्योगो का सहारा लिया जा सकता है। इन उद्योगो को वृहत उद्योगो की कठिन प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिये आधुनिक रूप देना नितात आवश्यक है। कुटीर एव लघु उद्योगो को नया रूप देने के लिये सहकारी औद्योगिक समितियो को सर्वाधिक उपयुक्त समझा जाता है। भारतीय कुटीर उद्योगो का ब्रिटिश शासन काल मे पतन हुआ किन्तु किसी न किसी रूप मे ये उद्योग जीवित अवश्य रहे। भारत मे सहकारिता आन्दोलन १९०४ मे पारित सहकारिता अधिनियम से प्रारम्भ हुआ। उस समय से कृषि साख मे विशेष प्रगति हुई किन्तु औद्योगिक क्षेत्र मे कोई उन्नति न हो सकी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इन उद्योगो को हमारी औद्योगिक नीति मे महत्त्वपूर्ण स्थान मिला और इनका उचित विकास प्रारम्भ हुआ। कर्वे समिति ने अपनी रिपोर्ट मे कुटीर एव लघु उद्योगो के विकास के लिए सहकारिता के आधार को सर्वोत्तम बताया।

औद्योगिक सहकारिता ऐसा सगठन है जिसमे व्यक्ति (कारीगर या अन्य लघु एव कुटीर उद्योगो मे लगे हुए या औद्योगिक कार्यकर्ता) समानता के आधार पर अपने सामान्य हित के उद्देश्य से आर्थिक हितो को बढाने के लिए स्वेच्छा से सगठित होते है। विश्व के अनेक देशो मे लघु तथा कुटीर उद्योगो मे ही औद्योगिक सहकारिता उन्नति कर पाई है। भारतवर्ष मे भी अधिकांश औद्योगिक सहकारी समितियाँ इन्ही उद्योगो

मे पायी जाती है । अत औद्योगिक सहकारिता के अन्तर्गत आमतौर पर कारीगरो दस्तकारो, औद्योगिक श्रमिको और लघु उद्योगिको की सहकारी समितियाँ आती हैं । ये समितियाँ सीमित दायित्व की होती है ।

औद्योगिक सहकारी समतियाँ दो वर्गो मे विभिक्त की जा सकती है । प्रथम कारीगरो की औद्योगिक समितियाँ और दूसरे उत्पादक वर्ग की समितियाँ जिनमे छोटे उद्योगपति आते है । प्रथम वर्ग वाली समितियो मे वे व्यक्ति सदस्य होते है जो अधिकांश वंशानुक्रम से इस पेशे को करते आ रहे है जैसे बुनकर, लुहार, कुम्हार, चर्मकार आदि । इस प्रकार की समितियो को निम्न उद्देश्यो से सगठित किया जाता है ।

(१) सदस्यो को आवश्यकतानुसार उचित ब्याज दर पर वित्तीय सहायता करना । समितियाँ अपने सदस्यो के लिए उद्योगो को अच्छी तरह चलाने के लिये पर्याप्त मात्रा मे निम्न ब्याज दर पर ऋण व्यवस्था करती हैं ।

(२) कारीगरो को सस्ते भाव से कच्चे माल की आवश्यकता पडती है । इन समितियो द्वारा कच्ची सामग्री थोक भावो से खरीदी जाती है और सदस्यो को सस्ते दामो पर प्रदान की जाती है ।

(३) इन समितियो की स्थापना का यह भी उद्देश्य है कि सदस्यो को आधुनिक औजार अथवा यत्र थोक भाव से खरीद कर उचित मूल्यो पर प्रदान करना ।

(४) कारीगरो के सामने वस्तु विक्रय की बडी भारी समस्या है । इस समस्या के समाधान के उद्देश्य से ये समतियाँ विक्रय की उचित व्यवस्था करती है । कारीगरो को इससे उचित कीमतें प्राप्त हो जाती है ।

(५) कारीगरो को विभिन्न उत्पादन क्रियाओ मे तकनीकी व अन्य सलाह देने का उद्देश्य भी महत्त्वपूर्ण है ।

(६) जो माल उत्पादित किया जाता है उसका वर्गीकरण एव प्रचार करके माँग बढाना भी उल्लेखनीय उद्देश्य है ।

उपरोक्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये निर्धन कारीगर समितियो का सगठन करते हैं जिससे वे उत्पादन वृद्धि करके अपनी आय बढा सकते हैं । आय बढने से जीवन स्तर ऊँचा उठता है आर्थिक स्थिति मे सुधार होता है ।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत छोटे पूँजीपति सगठित होते हैं । बडे उद्योगों से अपने उद्योगो को बचाने के लिये ये मध्य स्तरीय उद्योगपति यह प्रयास करते हैं । सामान्यत छोटे पूँजीपति, श्रमिक, व्यवस्थापक, विक्रेता आदि समितियों म सदस्य होते हैं । ये समितियाँ उत्पादन से लगाकर विक्रय तक की क्रिया स्वय करती हैं अत इनकी सख्या अल्प है ।

औद्योगिक सहकारी समितियो की आवश्यकता

औद्योगिक सहकारिता हमारे सामाजिक एव आर्थिक उद्देश्या की पूर्ति के लिये आवश्यक सगठन है । इसके द्वारा सामाजिक उद्देश्यो मे निर्धन व कमजोर व्यक्तियो के हितो की रक्षा की जा सकती है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए औद्योगिक सह-

कारिता धन के उचित वितरण मे सहयोग देती हैं। भारतवर्ष मे निर्धन एव धनवान दोनो वर्ग हैं। आर्थिक नियोजन से उद्योगो का तेज गति से विकास किया गया है जिससे धन कुछ बडे उद्योगपतियो के हाथ मे जाने लगा है। धन के समान व उचित वितरण के लिये सहकारिता सर्वोत्तम माध्यम हो सकता है। हमने समाजवादी समाज के नमूने का समाज बनाने का सकल्प लिया है जो कि सहकारिता के माध्यम से पूर्ण किया जा सकता है। औद्योगिक सहकारिता की आवश्यकता निम्न प्रकार है —

(१) कुटीर व लघु उद्योगों के विकास के लिये

ब्रिटिश काल मे भारतीय कुटीर व लघु उद्योगो का पतन हुआ। प्राचीन काल मे भारत विश्व मे इस क्षेत्र मे बहुत आगे था। इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का भारतीय उद्योगो पर भी अग्रेजो के शासनकाल मे बहुत प्रभाव पडा। किन्तु फिर भी भारतीय कुटीर उद्योग थोडी बहुत मात्रा मे जीवित अवश्य रहे। इन उद्योगों के विकास के लिए पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारिता के आधार को चुना गया है। भारतीय कारीगरो तथा छोटे उत्पादको ने सहकारी आधार पर कार्यारम्भ किया। प्रथम पचवर्षीय योजना मे सहकारिता के आधार पर समितियाँ सगठित करने के लिए बल दिया गया। द्वितीय योजना मे छोटी मात्रा के उत्पादन की अनेक क्रियाओं को सहकारी क्षेत्र मे लाने पर जोर दिया गया। तृतीय योजनाओ मे भी इस तरफ पर्याप्त ध्यान दिया गया।

(२) बडे उद्योगो की प्रतिस्पर्धा में टिकने के लिए

बीसवी शताब्दी मे भारत मे बडे-बडे उद्योगो का विकास हुआ। कुटीर तथा लघु उद्योगो को इनसे बडी प्रतिस्पर्धा करनी पडी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस बात पर विचार किया गया कि कुटीर एव लघु उद्योगो का पर्याप्त विकास किया जाए। इन उद्योगो को बडे उद्योगो से प्रतिस्पर्धा सहन करनी पडती है अत ऐसे प्रयत्न किए जायें जिनसे ये उद्योग प्रतिस्पर्धा मे टिक सकें। इसके लिए सहकारिता का सहारा लेना उपयुक्त समझा गया। सहकारी समितियाँ कारीगरो को पर्याप्त मात्रा मे वित्त सहायता देती हैं, औजारो की व्यवस्था करती हैं और उत्पादित माल का विक्रय करने मे मदद करती हैं। ये समितियाँ कम उत्पादन लागत पर माल तैयार करके प्रतिस्पर्धा मे टिक सकती हैं।

(३) रोजगार दिलाना

सहकारी औद्योगिक समितियो के विकास से रोजगार मे भी वृद्धि होती है। जनसख्या की तेजगति मे वृद्धि होने के कारण इसका भार कृषि भूमि पर बढता जा रहा है। इस समस्या का समाधान लघु उद्योगो का सहकारी आधार पर विकास करके किया जा सकता है। अधिक सहकारी समितियो का विकास होने से अधिक व्यक्तियो को रोजगार मिल जाएगा। भारतवर्ष मे अधिकाँश ग्रामीण क्षेत्रो मे वर्ष भर कार्य नही रहता है। किसान वर्ष के कुछ ही महिनो मे कार्य करते हैं शेष समय व्यर्थ ही जाता है। इस काल मे किसानो को लघु उद्योगो के विकास से रोजगार दिलाया जा सकता है। सहकारी आधार पर बडे पैमाने पर भी उत्पादन किया जा सकता है जिसमे अनेको श्रमिको को रोजगार मिलता है। बहुत से कारीगर (परिवार) अपनी जीविका चला सकते हैं।

(४) बड़े पैमाने के उत्पादन के लाभ

सहकारी आधार पर लघु एव कुटीर उद्योगो का विकास करके उनसे बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जा सकता है। समितियो मे अनेको सदस्य होते हैं जो अपने साधनो को एकत्रित करते है और सम्मिलित प्रयत्नो से बड़े पैमाने पर उत्पादन करते है। विभिन्न सस्थाओ से इस समितियो को ऋण भी मिल जाता है। बड़े उद्योगो की भांति सहकारी समितियाँ भी नवीन विधियो मे उत्पादन करती हैं। श्रम विभाजन एव विशिष्टता आदि का अभाव न होने के कारण आर्थिक विकास तेज गति से हो सकेगा। सहकारी समितिया द्वारा अधिक उत्पादन किए जाने पर आय म वृद्धि होगी जिससे पूँजी निर्माण भी अधिक होगा। पूँजी निर्माण अधिक होने से उद्योगो मे पुन विनियोजन अधिक होगा। यह क्रम निरन्तर चलता रहेगा। इससे आर्थिक विकास तेज गति से होगा।

(५) छोटे उद्योगों को अधिक वित्तीय व अन्य आर्थिक सुविधायें

सहकारी समितियाँ छोटे उद्योगो की वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति करती है। समितियाँ सदस्यों के लिए उद्योग को पर्याप्त मात्रा मे चलाने के लिए निम्न ब्याज दर पर धन की व्यवस्था करती हैं। कुछ समितियाँ जो स्वय उत्पादन करती है वे आसानी से अन्य सस्थाओ से धन प्राप्त कर लेती हैं जिससे धन की समस्या नही रहती है। समितियो को अपनी अशपूँजी के कई गुने तक ब्याज उपलब्ध हो जाता है जिससे सस्ता कच्चा माल आधुनिक औजार आदि खरीदने मे कठिनाई नही होती है।

(६) उत्पादित माल का विक्रय

उत्पादित माल का विक्रय भी एक जटिल समस्या है। छोटे उत्पादक व्यक्तिगत रूप से अपने उत्पादित माल को विस्तृत बाजार मे नहीं बेच पाते हैं। सामान्यत ये स्थानीय माँग की ही पूर्ति करते है किन्तु अपनी वस्तुओ की अधिक माँग उत्पन्न करने मे सर्वथा असमर्थ होते हैं। माल के विक्रय काम मे सहकारी समितियो का स्थान उल्लेखनीय हो सकता है। समितियाँ अपने सदस्यो का माल वर्गीकृत व सवार कर बाजार विस्तृत करती हैं। जो समितियाँ स्वय निर्माण कार्य मे लगी होती हैं वे स्वय सभी कार्य करती है। इस प्रकार औद्योगिक सहकारी समितियाँ बाजार विस्तृत करके सदस्यो की आय मे पर्याप्त वृद्धि करती हैं और उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ बनाती हैं।

(७) उद्योगो के विकेन्द्रीकरण में सहयोग

वतमान समय मे हमारे देश मे सतुलित आर्थिक विकास की बहुत बडी आवश्यकता है। इसके लिए उद्योगो का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। उद्योगो के विकेन्द्रीकरण से एक तो पूँजी कुछ ही व्यक्तियो के हाथो मे एकत्र नही होगी और इसके एक ही स्थान विशेष पर अधिक उद्योग नही होंगे अर्थात् सतुलित विकास सभव हो सकेगा।

(८) अन्य

औद्योगिक सहकारी समितियो के विकास से देश की कुल आय मे वृद्धि होगी

क्योकि अधिक व्यक्तियो को रोजगार मिलने से उत्पादन मे वृद्धि होगी जिससे आय भी बढ जाएगी । इसके अतिरिक्त समितियाँ अपने सदस्यो को सेवा भावना, वफादारी और मित्रता का पाठ सिखाती है । समितियाँ देश के तेज आर्थिक विकास मे सहायक होती है ।

हमारा उद्देश्य समाजवादी नमूने का समाज बनाना है जिसमे सहकारिता का महत्वपूर्ण स्थान है । धन के न्यायसगत वितरण मे सहकारी समितियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है । अत औद्योगिक विकास मे सहकारिता की उल्लेखनीय भूमिका है ।

वृहत उद्योग एवं सहकारिता

विश्व के अनेक देशो के सहकारी आन्दोलन के अध्ययन से पता चलता है कि सहकारिता केवल लघु एव कुटीर उद्योगो मे अधिक सफल रही है । भारतवर्ष मे भी यही स्थिति है । सामान्यत कमजोर एव निर्धन व्यक्ति अथवा छोटे उद्योगपति ही सहकारिता के आधार पर औद्योगिक उत्पादन करते हैं । कुछ विद्वानो का मत है कि सहकारिता केवल निर्धन एव निर्बल व्यक्तिगो का सगठन है । किन्तु यह हमेशा सत्य नही होता । बडे उद्योगो मे सहकारिता का विकास न होने के कुछ कारण है। प्रथम, सहकारिता का प्रमुख उद्देश्य लाभ प्राप्त करना नही है बल्कि सेवा को अधिक महत्व दिया जाता है । सहकारिता कुछ ही व्यक्तियो के हाथो मे धन इकट्ठा नहीं होने देता । अत अधिकाश धनी व्यक्ति सहकारिता की तरफ न बढकर अपने निजी उद्योग स्थापित करना उत्तम समझते है ताकि उनको अधिकतम लाभ मिल सके ।

दूसरे, वृहत उद्योगो को प्रारम्भ करने के लिये बहुत बडी मात्रा मे धन की आवश्यकता होती है क्योकि सामान्यत सहकारी समितियो के पास इतनी पूंजी नही होती है कि बडे उद्योग स्थापित कर सकें । उदाहरणत लौह एव इस्पात उद्योग की स्थापना के लिये ५० से १०० करोड तक की पूंजी की आवश्यकता होती है। सीमेन्ट, जूट, सूती वस्त्र कारखानो की स्थापना के लिये भी बडी मात्रा मे पूंजी की आवश्यकता होती है जिसका या तो सरकार प्रबन्ध कर सकती है या बडे बडे पूजीपति । सहकारी समितियो मे धनवान व्यक्ति इसलिये अपनी पूंजी नहीं लगाना चाहते क्योकि उनका मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है । अत सहकारी क्षेत्र वृहत उद्योगो मे उल्लेखनीय स्थान नही प्राप्त कर सकता ।

तीसरे, सहकारिता मे प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध एव नियन्त्रण महत्वपूर्ण है। अधिकाश सहकारी समितियाँ अवैतनिक व्यक्तियो द्वारा प्रबन्धित हैं। कहीं-कहीं कर्मचारियो को कम पारिश्रमिक देकर कार्य चलाया जाता है । अत कर्मचारी एव प्रबन्धक साधारण सभा के प्रति अधिक उत्तरदायी नही ठहराये जा सकते है । किन्तु बडे उद्योगो मे प्रबन्ध बहुत योग्य व्यक्तियो द्वारा किया जाता है और प्रबन्धको को बहुत ऊँची वेतन दी जाती है । वे साधारण सभा के प्रति उत्तरदायी होते है । इसलिये आवश्यक स्थानों पर बहुत योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो को रखना पडता है जिससे प्रबन्धक पर बहुत बडा खर्चा होता है । सहकारी समितियाँ इतना प्रबन्ध व्यय वहन नही कर सकती ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सहकारी समितियां बडे पैमाने पर

उत्पादन करने मे असमर्थ हैं। किन्तु यह नही कहा जा सकता कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसके कुछ अपवाद भी हैं उदाहरण के लिये इगलेंड मे थोक समितियाँ बडे-बडे औद्योगिक उत्पादन कार्य करती हैं और अपने स्वय के यातायात के साधनो द्वारा कार्य सम्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त स्वीडन मे भी सहकारी आधार पर उत्पादन इतनी बडी मात्रा मे होता है कि बडे बडे निजी उत्पादकों से अच्छी तरह प्रतिस्पर्धा की जा सकती है। भारतवर्ष मे अभी ऐसी स्थिति नहीं है। छोटे, एवं मध्य श्रेणी के उद्योगो मे सहकारिता के आधार पर उत्पादन किया जा रहा है।

भारत में औद्योगिक सहकारी समितियाँ

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि भारत मे कुटीर लघु उद्योगो के क्षेत्र मे सहकारिता ने अधिक प्रगति की है। अध्ययन की सुविधा के लिये औद्योगिक समितियों को दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं। विवरण निम्न प्रकार है

(A) बुनकरो की समितियाँ

भारत मे हाथ करघा उद्योग का यहाँ की अर्थव्यवस्था मे उल्लेखनीय स्थान है। इस उद्योग मे लाखों व्यक्तियो को रोजगार प्राप्त है और प्रतिवर्ष लगभग ३५० करोड गज से भी अधिक कपडा बनाते हैं। इस उद्योग के विकास मे मुख्य समस्यायें कच्चे माल की कमी, विपणन, बडी मिलो मे प्रतिस्पर्धा, वित्त आदि हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिये कई व्यक्तियो का सगठन बहुत आवश्यक है। ये व्यक्ति अपने आर्थिक साधन एकत्र करके सहकारी आधार पर उत्पादन कर सकते हैं। हमारे देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व सहकारिता ने इस क्षेत्र मे कोई उन्नति नहीं की। यद्यपि कुछ क्षेत्रो मे सहकारी आधार पर हाथ करघा उद्योग को विकसित करने के प्रयत्न किये गये तथापि सफलता नही मिल सकी। इस उद्योग की उन्नति सन् १९५२ मे अखिल भारतीय हाथ करघा बोर्ड (All India Handloom Board) की स्थापना से हुई है। इससे पूर्व शाही आयोग (Royal Commission) ने सिफारिश की थी कि ग्रामीण उद्योगों को तेज बढती प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिये सहकारी आधार पर इनका विकास करना आवश्यक है।[1]

बुनकर समितियो के उद्देश्य

बुनकरो की समितियो के निम्नलिखित उद्देश्य हैं

(१) समिति द्वारा सदस्यो के लिये कच्चे माल की समस्या का निवारण करना। इसके लिये समितियाँ आवश्यक माल इकट्ठा खरीद लेती है जिससे सस्ता माल उपलब्ध हो जाता है। सदस्यो को सस्ता कच्चा माल मिल जाने से तैयार माल की कीमतें भी ऊँची नहीं होती हैं। अत विक्रय मे सुविधा होती है।

---

1. The Royal Commission had observed that "for the Survival of the village industry in the fast increasing competition it is essential that they are developed on a Co-operative basis"

(२) बुनकरो के समक्ष वर्तमान खर्चों के लिये धन का अभाव होता है। समितियाँ अपने पास धन इकट्ठा करती हैं और सदस्यो को चालू खर्चों की पूर्ति के लिये व्यवस्था करती हैं।

(३) प्रतिस्पर्धा मे टिकने के लिये माल उत्तम किस्म का होना आवश्यक है इसके लिये आधुनिक व उत्तम विधियाँ काम मे लानी पडती हैं। इस सम्बन्ध मे समितियाँ तक्नीकी सलाह प्रदान करती हैं।

(४) माल की अधिक माँग उत्पन्न करने के लिये छपाई, रगाई आदि की आवश्यकता होती है। समितियाँ इन कार्यों की सेवायें प्रदान करती हैं।

(५) समितियाँ अपने सदस्यो के निर्मित माल के विक्रय की उचित व्यवस्था करती है।

हाथ करघा समितियो के प्रकार

प्राथमिक स्तर पर हाथ करघा समितिया दो प्रकार की होती हैं। प्रथम प्रकार की समितियाँ अपने सदस्यो को उत्पादन के लिये विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान करती हैं ये समितियाँ इकट्ठा सूत खरीदती हैं और सदस्यो को प्रदान कर देती हैं। इसके अतिरिक्त ऋण प्रदान करना, उत्पादित माल को बेचने का कार्य भी करती हैं। दूसरे प्रकार की समितियाँ स्वय सदस्यो के द्वारा माल उत्पन्न कराती हैं सदस्य मिल जुल कर माल उत्पन्न करते हैं। उत्पादन के लिये समिति करघे एव अन्य उपकरण लगाती हैं। उत्पादन कार्य मे भाग लेने वाले बुनकरो को मजदूरी प्रदान की जाती है। लाभाश भी बुनकरो द्वारा कमायी गयी मजदूरी के अनुपात मे वितरित कर दिये जाते हैं।

बुनकरो की सहकारी समितियो के सघीय संगठन मे प्राथमिक स्तर पर प्राथमिक समितियाँ होती हैं। इन समितियो के उपर जिला स्तर पर केन्द्रीय समितियाँ होती है। राज्य स्तर पर राज्य सरकारी समिति तथा राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय बुनकर समिति होती है। जून १९६७ के अन्त मे हमारे देश मे राष्ट्रीय स्तर पर एक सघ, राज्य स्तर पर २२ सघ केन्द्रीय समितियाँ १०७ तथा प्राथमिक समितियाँ १२८१६ थीं।[1]

बुनकर समितियों की प्रगति

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व बुनकर समितियो ने कोई प्रगति नही की। सन १९५० से इस उद्योग को मदी का सामना करना पडा। बिना बिके माल की मात्रा अधिक हो गयी और बुनकरो मे बेरोजगार बढने लगा सरकार ने ऐसी स्थिति मे उद्योग की सहायता के प्रयत्न किये। सन् १९५२ मे अखिल भारतीय हाथ करघा बोर्ड स्थापित किया। बोर्ड की स्थापना से इस उद्योग का नवीन युग प्रारम्भ हुआ। इसने हाथ करघा उद्योग के विकास के सहकारी आधार पर विकास के अनेक का कार्यक्रम बनाये। प्रथम पचवर्षीय योजना १९५०-५१ मे प्रारम्भ हुई जिसमे सहकारिता के आधार पर विकास करने पर बल दिया गया। अखिल

---

1 India 1969 p 272

भारतीय बुनकर हाथ करघा बोर्ड के पश्चात् १९५३ मे देश मे १७६० बुनकर समितियाँ थी, जिनकी सदस्यता ७·१३ लाख थी और समितियो मे ४·३१ लाख करघा लगे हुए थे।[1]

आरम्भ मे बुनकरो की समितियो को वित्तीय सहायता प्रदान की गयी किन्तु बाद मे समितियो के अपने साधनो से अधिक धन पाने के प्रयत्न किये गये। इसके लिये विभिन्न प्रकार की बुनकर समितियो मे अशो का मूल्य बढाया गया। सदस्यो की सख्या मे भी वृद्धि करने के प्रयत्न किये गये। इन प्रयत्नो से करघो की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। वर्ष १९५३ मे जहाँ करघो की संख्या ४·३१ लाख थी वहाँ प्रथम, द्वितीय तथा तीसरी योजना के अन्त मे करघो की सख्या क्रमश १०·२६ लाख १३·२४ लाख १४ ४ लाख हो गयी।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे हस्त करघा उद्योग पर २९ करोड रुपये व्यय किए गये। इससे इन समितियो के विकास मे पर्याप्त सहायता मिली। वर्ष १९६१ के अन्त म बुनकर समितियों की सख्या १०८४९ थी। तृतीय पचवर्षीय योजना मे प्रथम दो योजनाओ मे की गयी प्रगति के अनुभव तथा उन्नति के नवीन कार्य क्रमो के आधार पर तेज गति से विकास करने के प्रयत्न किये गये। प्रथम तीन योजनाओ मे किये गये प्रयत्नो से करघो की सख्या और समितियो की कार्य-शील पूंजी मे पर्याप्त वृद्धि हुई। वर्ष १९६५-६६ मे प्राथमिक बुनकर समितियो की प्रदत्त पूंजी बढ कर ६·४७ करोड रुपये हो गयी और सचित कोष बढ कर ८·७८ करोड रुपये हो गये। कुल कार्यशील पूंजी इस वर्ष के अन्त तक ३३·८२ करोड रुपये हो गयी। ३० जून १९६६ को समाप्त होने वाले वर्ष मे बुनकर समितियो द्वारा ५३·०२ करोड रुपये का माल उत्पादित किया गया और ५३·८६ करोड रुपये का माल बेचा गया। जून १९६६ के अत म १८८८ विक्रय डिपो ९२ नमूने बनाने की फैक्ट्रियाँ और ६८५ रग घर कार्यशील थे।[2] जून १९६७ के अंत मे बुनकर समितियो की स्थिति निम्न प्रकार थी

बुनकर सहकारी समितियाँ[3]

(जून १९६७)

समितियो का प्रकार	सख्या	सदस्यता	पूंजी
१ राष्ट्रीय	१	११५८	९०
२. राज्य	२२	८५१०	७९५
३ केन्द्रीय	१०७	७३७१	१५३
४ प्राथमिक	१२,८१६	१३,३३,०२१	३५२४

(Source—India 1969)

1 Indian Cooperative Review July 1969, Special Number Industrial Cooperative, page 502

2 The Times of India Year Book 1968, p 272

3 India 1969 p 272

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे हाथ करघा उद्योग मे सहकारिता का अधिक विकास किया जायेगा। इस काल मे इस बात पर अधिक बल दिया जायेगा कि ये समितियाँ उत्पादक (*Producer*) हो। *भविष्य मे नयी समितियो के सगठन पर* अधिक जोर न देकर वर्तमान समितियो का दृढीकरण किया जायेगा। अखिल भारतीय हाथ करघा बोर्ड ने यह निर्णय लिया है कि सहकारी समितियो को उत्पादन विक्रय नमूने की बनानी है। बोर्ड ने विक्रय मे सहायता के लिये छुट (Rebate) का काय क्रम चालू किया है। इसके अतिरिक्त बोर्ड किस्म नियन्त्रण विज्ञापन, प्रचार आदि कार्यो की तरफ अधिक ध्यान देगा।

बुनकर समितियो की समस्यायें

भारतवर्ष मे हाथ करघा सहकारी समितियो के विकास मे अनेक बाधायें हैं जिनमे प्रमुख निम्नलिखित है

(१) प्रतिस्पर्धा

हाथ करघा उद्योग को मिल के कपडे से कडी प्रतियोगिता करनी पड रही है। बुनकर समितियो द्वारा जो माल तैयार किया जाता है उस पर मिलो की तुलना मे लगात मूल्य अधिक पडता है अत विक्रय मे बहुत बडी कठिनाई आती है। समितियो को कपडा बनाने के लिये मिलो से जो सूत क्रय करना पडता है वह ऊँचे मूल्यो पर उपलब्ध होता है जिसका प्रभाव लगात मूल्य पर पडता है। इसके अतिरिक्त *मिलो को बडे पैमाने के उत्पादन के लाभ मिलते है जिससे ये कम लागत पर कपडा* तैयार कर लेती हैं।

(२) वित्तीय कठिनाई

बुनकर समितियों के पास वित्तीय साधनो का अभाव पाया जाता है। बुनकर *अधिकाश निधन होते है अत अधिक पूंजी की व्यवस्था करने मे असमथ होते है।* समितियाँ पर्याप्त मात्रा मे सदस्यो को ऋण सुविधायें नही दे पाती हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक विधियाँ काम मे लेने के लिये भी अधिक धन की आवश्यकता होती है। यद्यपि आजकल सघीय सस्थाओ द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। सरकार भी सहायता प्रदान करती हैं किन्तु समितियो के पास निजी पूंजी का अभाव है। निजी *पूंजी के अभाव मे बडी मात्रा मे उत्पादन कार्य बहुत कठिन होते हैं।*

(३) उचित विक्रय व्यवस्था का अभाव

समितियो के पास अच्छे कर्मचारियो का अभाव पाया जाता है। *इसके* अतिरिक्त वित्तीय स्थिति भी कमजोर होती है जिससे विक्रय की उचित व्यवस्था नही *हो सकती है। समितियाँ न तो बाजार अनुसधान कर पाती हैं और न ही बिक्री बढाने* के तरीके अपना पाती हैं। समितियाँ प्राय वेतन कम देती है। अत अच्छे विक्रय करने वाले कर्मचारी इन समितियो मे आना ही नही चाहते।

(४) किस्म नियन्त्रण का अभाव

बुनकर समितियाँ किस्म नियन्त्रण पर अधिक ध्यान नही दे पाती हैं। यद्यपि आजकल अखिल भारतीय हाथ करघा बोर्ड इस तरफ ध्यान दे रहा है तथापि किस्म

मे अधिक सुधार नही हो पाया है । किस्म नियन्त्रण के अभाव मे माल की माग अधिक विस्तृत नही हो सकती ।

(५) हाथ करघों का बिखरा होना

ग्रामीण क्षेत्रो मे हाथ करघे बिखरे हुये होते है । ऐसी स्थिति मे उनको उचित तरीके से सगठित नही किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त बुनकरो की कुशलता मे भी वृद्धि नही हो पाती है ।

उक्त समस्याओ के कारण हाथ करघा उद्योग अधिक विकास नही कर सका है । अखिल भारतीय हाथ करघा बोर्ड ने इन समस्याओ के समाधान के अनेको प्रयत्न किये हैं । चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे यह बोड अधिक सुविधाये प्रदान कर सकेगा ।

(B) अन्य औद्योगिक समितियाँ

बुनकर समितियो के अतिरिक्त अन्य औद्यौगिक समितियो मे हस्तकला, खादी, रेशम, जटा जूट कताई मिल, चीनी मिले आदि सम्मिलित की जा सकती है । हस्तकला विकास के लिये अखिल भारतीय हस्तकला बोड, १९५३ (All India Handicrafts Board 1953) की स्थापना की जा चुकी है । इस बोड ने ४० विभिन्न कलाओ के लिये आर्थिक सहायता की व्यवस्था की है । इनमें से कुछ मुख्य कलायें हाथी दाँत दरियाँ, छपाई, जरी का काम नक्कासी, बर्तन आदि है । यह उद्योग निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा के अर्जन मे भी सहायक है । जून १९६६ के अन्त मे हमारे देश मे कुल हस्त कला समितियाँ २७९० थी । इनकी सदस्य सख्या १ ०८ लाख, पूंजी १७६०२ हजार रुपये एव बिक्री १५५५५ हजार रुपये थी ।

पंचवर्षीय योजनाओं मे ग्रामो उद्योग सहकारी समितियो की तरफ भी ध्यान दिया गया । इन समितियो के तेल, साबुन, गुड, खण्डसारी, दाल, नमदा, कुटीर दियासलाई, लुहार का कार्य, बढई, रेशा, मधुमक्खी पालन आदि उद्योग है । ३० जून १९६६ को तेल निकालने को ४४६३ समितियाँ, गुड एव खण्डसारी ४८४१ समितिया,अन्य ग्रामीण समितियाँ ९७१६ थी । इन समितियो का विकास गाँधी दर्शन के आधार पर किया जा रहा है ।

नारियल की रस्सी बनाने वाली समितियों का सबसे अधिक विकास केरल मे किया गया है । यह उद्योग निर्यात भी करता है । नारियल की रस्सियो का वार्षिक उत्पादन १,५०,००० टन है । इस उत्पादन का लगभग आधा निर्यात कर दिया जाता है । केरल मे इस उद्योग मे ३ ५ लाख व्यक्ति लगे हुए है जिनमे से सहकारी क्षत्र मे १ १२ लाख श्रमिक आते हैं । सन् १९५० मे सहकारी आधार पर इस उद्योग ने तेज गति से विकास करना प्रारम्भ किया । सन् १९५४ मे अखिल भारतीय नारियल रस्सी बोर्ड (All India Coir Board) को स्थापना की गयी । नारियल की रस्सी बनाने के लिये नारियल का छिलका कच्चा माल होता है । इसे प्राप्त करने के लिये छिलका समितियाँ (Husk Societies) स्थापित की गयी है । ये समितियाँ रस्सी बनाने वाली समितियो को कच्चा माल उपलब्ध कराती है वर्ष १९६७-६८ मे नारियल की रस्सी बनाने वाली समितियों की स्थिति निम्न प्रकार थी —

नारियल की रस्सी बनाने वाली समितियाँ
(१९६७-१९६८)

राज्य एव केन्द्र शासित प्रदेश	सख्या (समितियाँ)	सदस्यता
केरल	४७६	११२९९०
तामिलनाडु	३५	२५९६
मंसूर	३४	३१२९
आन्ध्र प्रदेश	३	३७४
उडीसा	६	५४३
महाराष्ट्र	७	७५६
गुजरात	२	१०४
पश्चिमी बगाल	५	१५४
पाडोचेरी	२	१५२

सहकारी औद्योगिक मिलो मे चीनी कारखानो का भी महत्वपूर्ण स्थान है। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त मे हमारे देश मे ७६ सहकारी चीनी के कारखाने थे जिनके द्वारा कुल चीनी उत्पादन का २६ ४ प्रतिशत उत्पादित की गयी। वर्ष १९६७-६८ के अन्त मे सहकारी चीनी मिलो की सख्या ७९ हो गयी और उनके द्वारा उत्पादन देश के कुल चीनी उत्पादन की ३१ ४ प्रतिशत था। वर्ष १९६७-६८ मे समितियो की सदस्य सख्या ३४१०१७ थी जबकि वर्ष १९६५-६६ मे २८०२५२ थी।[1]

उपरोक्त समितियो के अतिरिक्त अन्य प्रकार की औद्योगिक समितियाँ भी हैं। सभी प्रकार की औद्योगिक समितियो मे अनेक प्रयत्न करने के बाद भी अधिक सफलता नही मिल सकी। जून १९६६ को हमारे देश मे सभी प्रकार की औद्योगिक समितियों की जो स्थिति थी वह नीचे दी जा रही है।

सभी प्रकार की औद्योगिक समितियाँ
(जून १९६६)

सख्या	४८३६१
सदस्यता	३०७६०८६
पूंजी	१२२ ८९ करोड रुपये
विक्रय	१३० ९८ करोड रुपये

औद्योगिक सहकारी समितियो की सख्या, सदस्य, पूंजी तथा विक्रय मे पर्याप्त वृद्धि हुई है किन्तु फिर भी सतोषजनक वृद्धि नहीं कही जा सकी। चतुर्थ पचवर्षीय

1 रिपोर्ट १९६८-६९ भारत सरकार (सहकारिता विभाग) पृष्ठ ९६।

योजना मे इस क्षेत्र मे समितियो को अधिक सुदृढ करने के प्रयत्न किए जायेंगे । सभी प्रकार की समितियो की सख्या बढाने के बजाय उनका दृढीकरण करने के प्रयत्न किए किए जायेंगे ।

औद्योगिक सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता

भारतवर्ष मे औद्योगिक समितियो को निम्नलिखित स्रोतो से सहायता प्राप्त होती है ·

(१) सहकारी बैंक -

औद्योगिक समितियो को निधियाँ प्राप्त करने के साधनो मे केन्द्रीय सहकारी बैंको का स्थान उल्लेखनीय है । राज्य सहकारी बैंक भी इन समितियो को अल्प एव मध्यकालीन ऋण सुविधायें उपलब्ध कराती है । तृतीय योजना के अन्त मे ३४२ केन्द्रीय सहकारी बैंको मे से ६५ बैंको ने विविधन समितियो को ऋण दिये, १३७ बैंको ने बुनकर समितियो को वित्तीय सहायता प्रदान की और ११८ बैंको ने अन्य औद्योगिक समितिया को सहायता दी ।[1]

औद्योगिक ऋण प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सहकारी बैंको ने निम्नलिखित प्रयत्न किए हैं

(i) इन समितियो को निधियाँ उपलब्ध कराने के लिए अपनी निधियो मे से कुछ भाग सुरक्षित रखना ।

(ii) समितियो के ऋण प्राप्त करने के प्रार्थना पत्रो और अन्य कार्यों के लिए औद्योगिक उप-समिति का संगठन करना ।

(iii) अपने सचालक मण्डल मे औद्योगिक समितियो के प्रतिनिधियो को सम्मिलित करना ।

(iv) औद्योगिक समितियो के मामलो की देखरेख के लिए उप-व्यवस्थापक, उप-सचिव और निरीक्षक नियुक्त करना ।

सहकारी बैंको द्वारा औद्योगिक समितियो को २½ प्रतिशत कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान कराने के लिए सरकार अनुदान देती है जिससे बैंक दर व घटी हुई दर का अन्तर पूरा किया जा सके । सहकारी बैंक जो ऋण औद्योगिक समितियो को प्रदान करते हैं उनसे जो हानि होती है उसे सरकार पूरा करती है और इसके लिए एक गारण्टी का कार्यक्रम तैयार किया है जिसमे नुकसान ९० प्रतिशत तक केन्द्र व राज्य सरकारें क्रमश ५० ४० के अनुपात मे वहन करती हैं । सहकारी बैंक इन समितियो को निम्न प्रकार भी सहायता प्रदान करती है ·[2]

(i) सहकारी बैंक औद्योगिक समिति को उसकी निजी पूँजी तक क्लीन अकोमोडेशन उपलब्ध कराती हैं ।

---

1. Role of Industrial Cooperative Banks p 539, Indian Cooperative Review, July 1969, Industrial Cooperatives Special Number.
2. सहकारी समाज, जयपुर, फरवरी १९६८, पृष्ठ ४२१

(ii) बैंक के गोदाम मे कच्चा माल तथा तैयार माल रखा जाए उस पर रहन ऋण सुविधा देती हैं।

(iii) प्रथम और द्वितीय सुविधायें न मिल सके वहाँ कारखानो के अनुसार अग्रिम धन दिया जाता है।

(iv) क्रेता को भेजे जाने वाले सामान की रेलवे रसीद पर अग्रिम देना।

(v) व्यावसायिक बैंक अपने ग्राहक को आयात करने अथवा थोक के काम करने पर जो सुविधायें उपलब्ध कराती हैं वे सभी सुविधायें सहकारी बैंक औद्योगिक समितियो को प्रदान करती है।

उक्त सभी सुविधाओ की व्यवस्था के बाद भी औद्योगिक सहकारी समितियो की वित्तीय सहायता पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नही हो पाती है।

(२) औद्योगिक सहकारी बैंक

औद्योगिक सहकारी समितियो को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए *औद्योगिक सहकारी बैंको की भी स्थापना की जाने लगी है। प्रत्येक राज्य मे राज्य* स्तरीय औद्योगिक बैंक होनी चाहिए जिसकी अनेको उप समितियाँ विभिन्न क्षेत्रों में हो।[1] औद्योगिक बैंक राज्य स्तर पर तथा क्षेत्रीय व जिला स्तर पर स्थापित किए जा रहे है। देश मे कुछ राज्यो मे क्षेत्रीय व जिला स्तर और राज्य स्तर की औद्योगिक बैंक स्थापित हो चुकी है। जिला अथवा क्षत्रीय बैंको मे व्यक्तिगत सदस्यता भी खुली होती है किन्तु शीर्ष बैंको मे सदस्यता केवल सहकारी समितियो तक ही सीमित होती है।

(३) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया

स्टेट बैंक ने भी औद्योगिक सहकारी समितियों को माल देना प्रारम्भ किया है। जो औद्योगिक बैंक औद्योगिक समितियो को माल प्रदान करने मे असमर्थ हैं उनको स्टेट बैंक से सहायता दी जायेगी।[2] *औद्योगिक समितियो को दो प्रकार के* उद्देश्यो के लिये साख की आवश्यकता पडती है। प्रथम, पूंजीगत समितियो और द्वितीय कार्यशील पूंजी के लिये। यह बैंक दोनो प्रकार की साख सुविधायें प्रदान करती हैं। स्टेट बैंक औद्योगिक सहकारी समितियों को घटी दर पर ऋण उपलब्ध कराती है। यह बैंक सन् १९५६ से पाइलट (Pilot) योजना के अन्तर्गत औद्योगिक समितियो को सहायता प्रदान कर रहा है।

---

1 Role of Industrial Cooperative Banks, p 541, Indian Cooperative Review, July 1969

2, On the recommendation of the Working Group the Central Govt decided that "Whereover Cooperative banks were not in a position to finance industrial cooperation they may be financed by the State Bank of India

स्टेट बैंक कार्यशील पूंजी के लिये जो अग्रिम देता है जिनमे से कुछ निम्नलिखित हैं [1]

(१) 'ताले और चाबी' अग्रिम ('Lock and Key' Advances)

ये अग्रिम स्वीकार करने योग्य कच्चे माल और निर्मित माल के रहन पर प्रदान किया जाता है। इस अग्रिम से समितियां अधिक मात्रा में कच्चा माल खरीद सकती हैं। जो कच्चा माल शीघ्र कार्य मे नही लिया जाता है वह बैंक के ताले और चाबी के अन्तर्गत होता है इसी प्रकार तैयार माल की सुपुर्दगी तक के लिये माल प्रदान किया जाता है।

(२) 'फैक्ट्री टाइप अग्रिम ('Factory Type' Advances)

इस प्रकार का अग्रिम जो स्टॉक निर्माण विधि (process) के अन्तर्गत है, उसके रहन पर दिया जाता है। फैक्ट्री मे बैंक की तरफ से पूरे समय निगरानी के लिये एक व्यक्ति नियुक्त कर दिया जाता है। इस प्रकार के अग्रिम उत्पादन कार्यों के लिये होते हैं।

(३) कार्यशील पूंजी के लिये कुछ अग्रिम निर्मित माल की सुपुर्दगी के विनिमय पत्रो के रहन पर भी स्वीकार किये जाते हैं।

(४) नवीन कार्यशील पूंजी अग्रिम सरकारी गारण्टी अथवा शीर्ष या केन्द्रीय या औद्योगिक सहकारी बैंको की गारण्टी पर दिया जाता है।

स्टट बैंक सहकारी समितियो को कच्चे माल खरीदने के लिये भी वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

रिजर्व बैंक

भारतवर्ष मे रिजर्व बैंक शीर्ष बुनकर समितियो को सूत खरीदने के लिये सहायता देती है। यह व्यवस्था सन १९५२ से चालू की गयी है। किन्तु १९५३ के पश्चात् इस बैंक ने सभी लघु एव कुटीर उद्योगो का उत्पादन तथा विक्रय के लिये सहायता प्रदान करनी प्रारम्भ कर दी है। हाथ करघा उद्योग के लिये एक पाइलट योजना चालू की गयी है।

अन्य वित्तीय सुविधायें

राज्य वित्त निगम उत्पादन करने वाली, माल सवार सहकारी समितियो को मध्यकालीन व दीर्घकालीन सहायता प्रदान करते हैं। सहकारी औद्योगिक बस्तियो को जीवन बीमा निगम (L. I. C.) द्वारा दीर्घकालीन ऋण प्रदान किया जाता है औद्योगिक समितियो को राजकीय सहायता भी प्रदान की जाती है।

औद्योगिक सहकारी विकास मे बाधायें

हमारे देश मे सहकारिता के आधार पर औद्योगिक विकास के अनेक

---

1. State Bank of India and Industrial Cooperative p 545, Indian Cooperative Review, July 1969.

प्रयत्न पचवर्षीय योजनाओ म किये गये किन्तु कोई विशेष प्रगति न हो सकी। इस दिशा म बढने के माग म अनक बाधायें हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है

(१) वित्तीय कठिनाइयाँ

औद्योगिक समितियो के सामने सबसे महत्वपूण समस्या वित्तीय साधनो का अभाव है। पचवर्षीय योजनाओ म शीषकेन्द्रीय व औद्योगिक सहकारी बैंको ने वित्तीय सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की है किन्तु फिर भी औद्योगिक समितियो के पास पर्याप्त मात्रा म निधियाँ नहीं हो पाती हैं। वास्तव म देखा जाये तो केन्द्रीय सहकारी बैंक इन समितियो को अच्छी तरह से पर्याप्त मात्रा मे ऋण उपलब्ध नही करा सकी हैं। इसके अतिरिक्त औद्योगिक बैंको का भी अभी तक विशेष विकास नही हो सका है अत वित्तीय कठिनाई बनी हुई है। यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि उत्पादन कार्यों मे अधिक धन की आवश्यकता है। बडी मात्रा मे कच्चा माल खरीदना पडता है और वस्तु निर्माण के लिये भी अधिक पूजी की आवश्यकता होती है। धन के अभाव मे उत्पादन मे आधुनिक उपकरणो एव विधियो का उपयोग भी नही हो सका है जिसका प्रभाव उत्पादन लागत पर पडता है।

(२) विक्रय प्रणाली

औद्योगिक समितियो के निर्मित माल के विपणन को भी प्रमुख समस्या है। समितियो के पास कभी-कभी निर्मित माल माँग के अभाव मे इकट्ठा हो जाता है। माग के अभाव का मुख्य कारण है उचित विपणन व्यवस्था का अभाव। उत्पादको का माल विस्तृत बाजार म पहुँचाने की कठिनाई होती है। वस्तुओं का प्रचार भी नही हो पाता है। माल विक्रय योग्य बनाने के लिये प्रमाणीकरण विधियन आदि कार्यों की व्यवस्था न होने के कारण माल की साख अच्छी नही हो पाती है। फलत कम माल बिकता है।

(३) कच्चे माल की मात्रा

सामान्यत औद्योगिक सहकारियो मे निधन व्यक्ति सदस्य बनते हैं। उनके पास धन का अभाव होता है और दूसरी तरफ समितियो के पास भी सीमित साधन होते हैं जिससे पर्याप्त मात्रा मे कच्चे माल का क्रय करना कठिन होता है। समितियाँ अपने सदस्यो के लिय अथवा स्वय के लिय (यदि उत्पादन करती हैं) पर्याप्त मात्रा मे माल नही खरीद पाती हैं जिससे वस्तुओं के उत्पादन मे कठिनाई आती है। इसके अतिरिक्त सहकारी समितिया थोक कच्चा माल भी नही खरीद पाती हैं। अत ऊँचे मूल्यो पर कच्चा माल उपलब्ध होता है। यद्यपि आजकल स्टट बैंक ऑफ इण्डिया ने कच्चे माल को रहन रख कर अग्रिम देना प्रारम्भ किया है। किन्तु इससे भी कई बाधायें उत्पन्न हो जाती हैं।

(४) प्रशिक्षित कमचारियों का अभाव

वतमान काल मे बडे-बडे उद्योगो की प्रतिस्पर्धा मे जीवित रहने के लिय कम कीमत पर उत्तम किस्म के माल के उत्पादन की बहुत बडी आवश्यकता है। यह सब प्रशिक्षित एव कुशल कमचारियो द्वारा किया जाता है। अधिकाश औद्योगिक समितियों

मे कर्मचारी प्राचीन विधियो से उत्पादन करते हैं जिससे माल की उत्तम किस्म नही होती है। अकुशल कर्मचारियो मे उत्पादकता भी निम्न होती है अतः समितियो की उत्पादकता भी नीची रहती है।

(५) प्राविधिक सहायता का अभाव

आधुनिक विधियो से उत्पादन करने के लिये प्राविधिक सहायता की आवश्यकता पडती है। नवीन औजारो को काम मे लाने के लिये तकनीकी ज्ञान बहुत जरूरी है। हमारे देश मे अधिकाश समितियो मे उत्पादन मे लगे व्यक्तियो को प्राविधिक ज्ञान नही है। इसके अतिरिक्त बहुत सी समितियाँ प्राविधिक सहायता के अभाव मे नवीन उपकरणो को काम मे भी नही ले पाती है।

(६) किस्म नियन्त्रण की कठिनाई :

किस्म नियन्त्रण आधुनिक उत्पादन की मूल आवश्यकता है। बाजार मे उत्तम किस्म की वस्तुयें अधिक बिकती हैं। यद्यपि बडे-बडे उत्पादन गृहो मे किस्म नियन्त्रण अपनाया गया है किन्तु सहकारी समितियाँ अनेक कारणो से किस्म नियन्त्रण नही कर पाती है। वस्तुये इसके अभाव मे एक प्रमाण की नही होती है जिससे उनकी साख नही बन पाती है। इसकी तरफ बडे-बडे उद्योगो के द्वारा निर्मित माल प्रमापित होता है जो कि बाजार मे अधिक पसन्द किया जाता है।

(७) ऊँची लागत पर उत्पादन

औद्योगिक समितियो द्वारा अनेक कारणो से उत्पादन लागत ऊँची पडती है। लागत दर ऊँची होने का प्रमुख कारण निम्न उत्पादकता है। श्रमिक प्राचीन विधियो को काम मे लेते है जिससे उनकी उत्पादकता मे सुधार नही हो पाता है। माल का उत्पादन थोडी मात्रा मे भी होता है जिससे अधिक उत्पादन की मितव्ययिता नही मिल पाती है। अतः लागत ऊची पडती है।

(८) कठिन प्रतिस्पर्धा

बडे-बडे उद्योगो का विकास तेज गति से हो रहा है। उत्पादन की नवीन विधियाँ भी उनमे काम मे ली जा रही हैं। क्रिया नियन्त्रण, कुशल कर्मचारी, आधुनिक प्रबन्ध, वित्तीय सुविधाओ आदि के कारण उत्तम और नीची लागत पर वस्तुयें तैयार हो जाती हैं। बडे उद्योगो को वृहत मात्रा मे उत्पादन के लाभ भी मिलते हैं। अतः इनकी प्रतिस्पर्धा मे औद्योगिक समितियो की स्थिति बहुत कमजोर होती है। दोना क्षेत्रो मे प्रतिस्पर्धा होती है जिसमे लघु एव कुटीर उद्योग टिक नही पाते हैं।

(९) अन्य

औद्योगिक समितियाँ बाजार अनुसन्धान करने मे असमर्थ होती हैं। वस्तुओ की विभिन्न प्रकार की डिजाइने नही डाल पाती है जिससे कम वस्तुये बिकती हैं। इसके अतिरिक्त औद्योगिक समितियों म कई प्रकार की सगठनात्मक कठिनाइयाँ भी हैं।

उक्त कठिनाइयो के कारण भारत के औद्योगिक क्षेत्र मे सहकारिता महत्व-

पूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर सकी है। बडे-बडे उद्योगो के लिये यह क्षेत्र उपयुक्त सिद्ध नहीं हो पाया है। अत औद्योगिक सहकारिता पिछडी अवस्था मे है।

सुधार के सुझाव

औद्योगिक सहकारी समितियो को नयी शक्ति प्रदान करने की आवश्यकता है। समितियाँ स्वय अपनी प्रबन्ध क्षमता को सुधार कर और अपने सदस्यो को दिन प्रतिदिन के कार्यों मे अधिक लगाने का प्रयत्न करके सफलता प्राप्त कर सकती हैं। समितियाँ आर्थिक दृष्टि से सुदृढ होनी चाहियें। औद्योगिक सहकारी आन्दोलन के लिये प्रथम और द्वितीय वर्किंग ग्रुप (Working Groups) ने अध्ययन किया और सुधार के सुझाव पेश किये। प्रथम वर्किंग ग्रुप ने जुलाई १९५८ मे अपना प्रतिवेदन पेश किया। द्वितीय वर्किंग ग्रुप न अपना प्रतिवेदन मई १९६३ म पेश किया। उपरोक्त अध्ययन दलो द्वारा दिये गये सुझाव तथा कुछ अन्य सुझाव निम्न प्रकार हैं

(१) कुछ सहकारी समितियो को आयातित कच्चे माल को आवश्यकता पडती है। तृतीय योजना मे यह समस्या भयकर हो गयी। यद्यपि इस बाधा को दूर करने के प्रयत्न किये गये किन्तु फिर भी समस्या भयकर है। इस समस्या के समाधान के लिये ऐसी औद्योगिक समितिया को कच्चा माल उपलब्ध कराया जाय जो कि निर्यात व्यापार मे महत्वपूर्ण हैं। भारत सरकार न कुछ समय पूर्व सहकारी समितियो के लिये कच्चे माल के आयात के लिये कुछ छूट भी दी है। समितियो को कच्चा माल, तथा कुछ आवश्यक सामान मगवाने के लिये लाइसेन्स दने की व्यवस्था करने का निश्चय किया है।

सरकार भविष्य मे निर्यात किए जाने वाले सामान के उत्पादन के लिए समितिया को आवश्यक कच्चे माल के आयात की सुविधा प्रदान करे। इसके अतिरिक्त लाइसेन्स समितियाँ भी कुछ ढील दें ताकि औद्योगिक समितियो को पर्याप्त मात्रा मे माल मिल सके।

(२) वित्तीय समस्या के समाधान के लिए औद्योगिक बैंक का पर्याप्त सख्या में सगठन किया जाना चाहिए। इस क्षत्र में सघीय सहकारी ढांचा बहुत आवश्यक है। प्राथमिक औद्योगिक बैंक केन्द्रीय औद्योगिक सहकारी बैंको की स्थापना करें। केन्द्रीय औद्योगिक सहकारी बैंक राज्य सीमा शीर्ष औद्योगिक बैंक स्थापित करें और राष्ट्रीय स्तर पर सभी शीर्ष बैंको द्वारा राष्ट्रीय औद्योगिक बैंक स्थापित की जायें। स्टेट बैंक ऑव इण्डिया भी औद्योगिक सहकारियो को अधिक वित्तीय सहायता प्रदान करे।

(३) डामरी समिति (Damry committee) ने अपने प्रतिवेदन में औद्योगिक सहकारी समितियो का पुनस गठन किया जाए। समितिया की सख्या में वृद्धि करने के स्थान पर समितियो का ढाँचा सुदृढ करना आवश्यक है। समितियो की सदस्यता, कार्यशील पूंजी तथा बिक्री मे पर्याप्त वृद्धि की जाये। कमजोर समितियाँ जिनका सुधार किसी भी तरह सम्भव नही है उन्हें समाप्त करना चाहिए। चतुर्थ पचवर्षीय योजना में इस बात पर जोर देने का प्रयत्न किया जायगा कि समितिया की सख्या में वृद्धि करने के स्थान पर जो समितियाँ वतमान हैं उन्हे सुदृढ किया जाये।

(४) औद्योगिक समितियों की वस्तुओ की बिक्री की समस्या को भी अविलम्ब दूर किया जाये। वस्तुओ के विक्रय के लिए बाजार अनुसन्धान करना चाहिए और दूर दूर तक वस्तुओं को पहुँचाने की व्यवस्था करनी चाहिए। बिक्री बढाने के अन्य तरीके भी काम में लाने आवश्यक है। वस्तुओं की मांग पर बिक्री निभर करती है अत मांग बढाने के जो साधन हैं वे सभी काम में लेकर औद्योगिक समितियों की प्रगति की जा सकती है।

(५) उत्पादन कार्यों में किस्म नियन्त्रण की तरफ विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। किस्म नियन्त्रण से वस्तुओ की किस्म सुधर जाती है और वस्तुयें प्रमाप के आधार पर तैयार हो जाती हैं। इससे वस्तुओ की साख बढती है और मांग भी अधिक हो जाती है।

(६) समितियाँ अपने कार्य करने वाले श्रमिको को अथवा सदस्यो को प्राविधिक शिक्षा प्रदान करे। कर्मचारियो को उचित प्रशिक्षण देने से उनकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। प्रशिक्षण उत्पादन विधियों और प्रबन्ध के लिए हो सकता है।

(७) सहकारी समितियो में आपस मे आवश्यक वस्तुओ के व्यापार पर भी जोर देना चाहिए। उदाहरण के लिये गृह निर्माण समितियाँ ऐसी निर्माणी समितियो से माल ले सकती हैं जो कि खिडकियाँ,दरवाजे आदि बनाती हो। इसी प्रकार छोटे-मोटे इजीनियरिंग के सामान बनाने वाली समितियो से कृषि औजार खरीदे जा सकते हैं।

उपरोक्त सुझावो के अतिरिक्त उत्पादन समितियों के निरीक्षण की भी उचित व्यवस्था की जाये। बडे उद्योगो की प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए कुछ वस्तुओं का उत्पादन केवल कुटीर उद्योगो के लिये छोड दिया जाये। समितियो के प्रबन्धको को उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उत्पादन कार्यों मे आधुनिक विधियों को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जाये। सहकारिता के सिद्धान्तो की जानकारी सभी सदस्यो को दी जाये। इस प्रकार औद्योगिक सहकारी आन्दोलन का विकास किया जा सकता है। आशा है कि भविष्य मे इस दिशा मे पर्याप्त उन्नति हो सकेगी।

प्रश्न

१ भारतवर्ष मे औद्योगिक सहकारिता की क्या आवश्यकता है ? इस क्षेत्र मे क्या सफलता मिली है ? आप भविष्य मे विकास के लिये क्या सुझाव देना चाहते हैं ?

२. भारत मे औद्योगिक सहकारी आन्दोलन की प्रगति का संक्षिप्त विवरण दीजिए। क्या औद्योगिक क्षेत्र मे सहकारिता को सफलता मिली है ?

३. औद्योगिक सहकारी विकास के मार्ग मे क्या बाधायें हैं ? इनके निराकरण के उपाय बतलाइये।

४. बृहत् उद्योगो मे सहकारिता का विकास क्यो नही किया जा सका है ? क्या आपकी राय मे बड़े उद्योगो के लिये सहकारिता उपयुक्त है ? कारण सहित उत्तर लिखिए ।

५. भारतवर्ष मे बुनकर समितियो की प्रगति तथा समस्याओ का वर्णन कीजिए ।

६ 'औद्योगिक सहकारिता' विषय पर एक निबन्ध लिखिए ।

१०

सहकारी गृह निर्माण समितियाँ
(Cooperative Housing Societies)

आज विश्व मे गृह निर्माण समस्या लगभग सभी देशो मे है। भोजन और वस्त्र के पश्चात् गृह प्रमुख आवश्यकता है। मनुष्य के जीवन स्तर और रहन सहन मे निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है। जनसख्या तेजगति से बढ रही है। ऐसी स्थिति मे गृह समस्या होना स्वभाविक भी है। भारतवर्ष मे जनाधिक्य की समस्या दिन प्रतिदिन बढ रही है। साथ ही साथ बेरोजगारी भी बढ रही है। ग्रामीण जनता शहरो की तरफ बढने लगी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् निरन्तर बाहर से शरणार्थी देश मे आ रहे हैं। प्रतिवर्ष देश के किसी न किसी भाग मे बाढ आ जाती है जिससे घर नष्ट हो जाते है। इन सब परिस्थितियो ने गृह निर्माण समस्या को अधिक गम्भीर बना दिया है। देश के अनेक बडे-बडे नगरो मे औद्योगीकरण तेज गति से हो रहा है। श्रमिक तथा अन्य कर्मचारियो की सख्या निरन्तर बढ रही है जिससे रहने की समस्या जटिल होती जा रही है। गृह समस्या निम्न तथा मध्य वर्ग के लिये अधिक भयंकर है। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक हमारे देश मे ७४ लाख घरो की कमी थी। गृह समस्या विश्व के विकसित राष्ट्रो जैसे सयुक्त राज्य अमरीका, स्विटजर लैण्ड, स्वीडन आदि मे भी है। एशिया, लेटिन अमेरिका, अफ्रीका आदि के विकासशील राष्ट्रो के सामने यह समस्या जनसख्या के तेजगति से बढने के कारण विकट होती जा रही है। गृह निर्माण समस्या उत्पन्न होने का प्रमुख कारण है घरो के निर्माण पर बहुत बडी मात्रा मे धन की आवश्यकता। निम्न आय तथा मध्यम आय वाले व्यक्ति इतनी बडी मात्रा मे धन जुटाने मे असमर्थ हैं। अत. सहकारिता के आधार पर समस्या का समाधान किया जा सकता है। इगलैण्ड मे सहकारी आधार पर घर निर्माण कार्य उन्नीसवी शताब्दी मे प्रारम्भ हो गया था। हमारे देश मे सन् १९१५ मे बम्बई मे इस प्रकार के प्रयत्न किये गये। धीरे-धीरे देश के अन्य भागो मे भी आन्दोलन ने प्रगति की।

सहकारी गृह निर्माण समितियों का प्रमुख उद्देश्य अपने सदस्यों को घर सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध कराना है। समितियाँ सम्मिलित रूप में उचित दामों पर घर प्रदान करती हैं। गृह निर्माण समितियाँ भवन बनाने के लिये सदस्यों को विभिन्न सुविधायें प्रदान करती हैं। समितियाँ सदस्यों की गृह समस्या का निवारण करके उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाती हैं। निर्माण समितियाँ सदस्यों को मकान गिरवी रख कर ऋण भी प्रदान करती हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये गृह निर्माण आन्दोलन ने तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मैसूर और पश्चिमी बंगाल में अधिक उन्नति की। हमारे देश में पंचवर्षीय योजनाओं में गृह निर्माण समस्या को अधिक ध्यान में रखते हुए भी इस क्षेत्र में विनियोजन निरन्तर गिरता रहा है। इसका प्रमुख कारण राज्य सरकारों ने इस तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया है। वास्तव में गृह समस्या के निराकरण की तरफ न ध्यान देने की नीति कल्याणकारी राष्ट्र के लिये उपयुक्त नहीं है। गृह निर्माण से अप्रत्यक्ष रूप से अनेक लाभ हो सकते हैं। अच्छे घरों में रहने वाले व्यक्ति स्वस्थ होते हैं। उनकी कार्यक्षमता अधिक होती है। तथा इनमें रहने वाले परिवार अधिक अनुशासनशील होते हैं।

गृह निर्माण समितियों का वर्गीकरण

गृह निर्माण समितियों के विभिन्न रूप निम्न प्रकार हैं —

(१) व्यक्तिगत गृह स्वामित्व वाली समितियाँ (Individual Home Ownership Societies).

व्यक्तिगत गृह स्वामित्व वाली समितियाँ वास्तव में देखा जाये तो विशेष प्रकार की ऋण समितियाँ होती हैं। यद्यपि ये समितियाँ ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त अन्य कई घर निर्माण सम्बन्धी बातों में सहायता प्रदान करती हैं। ये समितियाँ अपनी पूँजी का निर्माण अंश पूँजी और जमा के रूप में करती हैं। जो सदस्य मकान खरीदते हैं वे मकान के मूल्य का एक निश्चित भाग समिति में जमा करवा देते हैं। ये समितियाँ मकानों को गिरवी रख कर ऋण भी प्रदान करती हैं। ऋण की अवधि पाँच वर्ष से २० वर्ष तक हो सकती है। समितियाँ गृह निर्माण के लिये आवश्यक सामान भी उपलब्ध कराती हैं। मकान बनाने से पूर्व भूमि प्राप्त करने की समस्या भी विकट होती है। समितियाँ सस्ते मूल्यों पर भूमि दिलाने में भी सहायता प्रदान करती हैं।

(२) किरायेदार मालिक समितियाँ (Tenant Ownership Housing Societies).

ये गृह निर्माण समितियाँ अपने सदस्यों को मकान बनवा देती हैं। आरम्भ में घरों का स्वामित्व समितियों के पास होता है। सदस्य महीने में किराया जमा कराते रहते हैं। मकान किराये से समितियाँ अपने ऋणों का भुगतान करती रहती हैं। समितियाँ जब अपना पूरा ऋण चुका देती हैं तब किरायेदार मकान के मालिक हो जाते हैं। इसके पश्चात् भी समितियाँ सदस्यों से थोड़ी मात्रा में किराया लेती हैं जो कि समिति के व्यवस्था पर व्यय किया जाता है। समिति के सदस्य इन मकानों को समिति की पूर्व अनुमति के बिना न तो किराये पर दे सकते हैं और न ही वे उन मकानों को बेच सकते हैं। यह एक व्यवस्था समिति पहले निश्चित रूप में कर लेती है।

(३) सह साझेदारी गृह निर्माण सहकारी समितियाँ (Copartnership)

ऐसी समितियाँ सदस्यों के लिये मकान बना कर सदस्यों को दे देती हैं और उनसे किराया लेती हैं। समितियाँ मकानों की अनुमानित लागत का एक चौथाई भाग सदस्यों से अंश पूंजी के रूप में ले लेती हैं। समितियाँ किराया इतना लेती हैं जिससे समिति के व्यवस्थापकीय व्यय और किस्तों (जो समिति चुकाती है) की पूर्ति होती रहे। जब समितियाँ लागत के बराबर किराया सदस्यों से प्राप्त कर लेती हैं अथवा ऋण चुका देती हैं तब शेष तीन-चौथाई रकम के अंश दे दिये जाते हैं। समितियाँ अन्य अनेक सुविधायें जैसे खेल के मैदान सफाई, बाग आदि भी प्रदान करती हैं।

(४) फ्लैट स्वामित्व निर्माण समितियाँ (Flat Ownership Housing Societies)

ऐसी समितियाँ बहुत बड़ा मकान बनवा कर उसमें छोटे-छोटे फ्लैट बनवा लेती हैं और सदस्यों को दे देती हैं। इस प्रकार के मकान के विभिन्न खण्डों पर सदस्यों के अलग अलग स्वामित्व होते हैं।

सहकारी गृह निर्माण समितियों के लाभ

हमारे देश में गृह निर्माण समस्या बहुत गम्भीर समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिये सहकारिता बहुत महत्त्वपूर्ण है। मध्यम आय तथा निम्न आय वाले व्यक्तियों के लिये बड़ी मात्रा में गृह निर्माण पर व्यय करना बहुत कठिन है। सहकारी आधार पर यह कार्य सरल हो जाता है। गृह निर्माण निजी क्षेत्रों में ही हो सकता है किन्तु उसके कई दोष हैं जिनके कारण सहकारिता का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। गृह निर्माण समितियों के निम्नलिखित लाभ हैं —

(१) गृह निर्माण के लिये विभिन्न सुविधायें :

गृह निर्माण समितियाँ अपने सदस्यों को मकान बनाने के लिये ऋण की व्यवस्था करती हैं ऋण के अतिरिक्त मकान बनाने से सम्बन्धित कई कामों में सलाह भी प्रदान करती हैं। समितियाँ सदस्यों को गृह निर्माण के लिये आवश्यक सामान की भी व्यवस्था करती हैं। जो समितियाँ स्वयं मकान बनाती हैं। वे अपने सदस्यों को अन्य सुविधायें प्रदान करती हैं। इन समितियों के सदस्य जब मकान की लागत किराये के रूप में चुका देता है तो उनका व्यक्तिगत स्वामित्व हो जाता है।

(२) मकान मालिकों का दुर्व्यवहार न होना :

निजी क्षेत्र के मकान मालिक किरायेदारों के साथ उचित व्यवहार नहीं करते हैं। सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों को जो मकान किराये पर देती हैं उनमें सदस्यों के हितों की तरफ अधिक ध्यान दिया जाता है। उचित किराये पर मकान मिल जाने के कारण किरायेदारों का शोषण भी नहीं होता है।

(३) जीवन स्तर ऊँचा उठाने में सहायक

सहकारी गृह निर्माण समितियाँ अच्छे मकान बनवा कर अपने सदस्यों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में सहायता प्रदान करती हैं। समितियाँ मकानों में अनेक सुविधायें प्रदान करती हैं। मकान आधुनिक ढंग के बनाये जाते हैं।

(४) श्रमिकों व कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि -

ये सहकारी समितियाँ अप्रत्यक्ष रूप से देश के श्रमिकों व कर्मचारियों को कार्यक्षमता मे वृद्धि कराती हैं। अच्छे घरो की व्यवस्था होने से व्यक्ति स्वस्थ रहते है। उनका सम्पूर्ण परिवार सुखी रहता है जिससे ऊनकी कार्यक्षमता बढती है।

(५) उचित किराये पर मकान

किरायेदार समितियाँ अपने सदस्यो को उचित किराये पर मकान की व्यवस्था करती हैं। इससे निम्न व मध्यम वर्ग की आय मे वृद्धि होती है क्योकि उनको अधिक धन किराये पर व्यय नही करना पडेगा। कई बार मकान मिलने मे भी कठिनाई होती है जिसे समितियाँ दूर कर सकती हैं।

(६) मध्यम व निम्न आय के व्यक्तियों के पास घर

धनवान व्यक्ति तो मकान बनवाने मे सामर्थ्य होते हैं किन्तु निर्धन व्यक्तियो के लिए शहरी क्षेत्रों मे मकान बनवाना स्वप्न ही रह जाता है। सहकारिता के माध्यम से निधन व्यक्ति भी घर बनाने में समर्थ हो जाते हैं क्योकि गृह निर्माण समितियाँ अपने सदस्यो को इसके लिए लाभ व अन्य सुविधायें उपलब्ध कराती हैं।

(७) कल्याणकारी राष्ट्र निर्माण में सहायक

सरकारी गृह निर्माण समितियाँ कल्याणकारी राज्य की स्थापना में बहुत सहायता प्रदान करती हैं। निधन व्यक्तियो के कल्याण मे ये समितियाँ उल्लेखनीय स्थान प्राप्त कर रही हैं। निर्धन व्यक्तियों के पास उचित घर हो जाने से उनके आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होती है और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठता है। देश के कमजोर वग को ऊँचा उठाने मे इस प्रकार की समितियाँ आवश्यक है।

(८) अन्य -

कई नगरो मे निजी क्षेत्र भी मकानो की मांग की पूर्ति नही कर पाता है। इन भागो मे सहकारी आधार पर गृह निर्माण करके सदस्यो की भलाई की जा सकती है। जिन भागो मे मकान बहुत महगे हैं वहाँ पर भी समितियाँ उपयोगी सिद्ध हुई हैं। औद्योगिक नगरो मे किरायेदार सहकारी गृह निर्माण समितियाँ उपयुक्त हो सकती हैं।

भारत सरकार ने गृह निर्माण समस्या पर विचार किया है और सहकारिता के महत्त्व को भी उपयुक्त स्थान दिया है। पचवर्षीय योजनाओ मे इस तरफ ध्यान भी दिया गया है। किन्तु आशाजनक सफलता नही मिल पायी है। समाजवादी समाज के निर्माण मे सहकारी गृह निर्माण समितियाँ उल्लेखनीय काय कर सकती हैं।

केन्द्रीय सरकार को गृह निर्माण योजनायें और सहकारिता

केन्द्रीय सरकार ने गृह निर्माण समस्या को दूर करने के लिए कुछ योजनायें चालू की हैं। इन योजनाओं मे सहकारी समितियो का योगदान उल्लेखनीय हो सकता है। केन्द्रीय सरकार की निम्नलिखित योजनायें हैं

(१) आर्थिक सहायता प्राप्त औद्योगिक गृह निर्माण समितियाँ (Subsidised Industrial Housing Scheme) :

औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिको के लिए भवन निर्माण के लिए केन्द्रीय सरकार ने मिल मालिको को आर्थिक सहायता देने की योजना तैयार की है। सरकार मिल मालिको के कर्मचारियो व श्रमिको के लिए भवन निर्माण के लिए भवन तथा भूमि के ६२½ प्रतिशत तक आर्थिक सहायता प्रदान करती है। इसमे ५० प्रतिशत मूल्य ऋण तथा शेष १२½ प्रतिशत अनुदान स्वरूप दिया जाता है।

सहकारी समितियों को सुविधायें

उपरोक्त योजना यदि श्रमिको की सहकारी समितियों के माध्यम से पूर्ण की जाती है तो सरकार कुछ आर्थिक सहायता प्रदान करती है जैसे भूमि तथा मकान की कुल लागत के ९० प्रतिशत तक ऋण व अनुदान उपलब्ध हो जाते हैं। कुल लागत का ६५ प्रतिशत ऋण के रूप मे और २५ प्रतिशत अनुदान के रूप में। समितियों को ऋण की राशि का भुगतान ३३⅓ प्रतिशत मकान बनाने के आरम्भ मे, ३३⅓ प्रतिशत मकान के नीचे से ऊपर आ जाने पर, और ३३ प्रतिशत मकान के छत तक आ जाने पर दिया जाता है।

समितियो के मकान बनाने के लिये जो अनुदान दिया जाता है वह ५० प्रतिशत तक मकान तैयार हो जाने पर दिया जाता है। ५० प्रतिशत अंकेक्षण के पश्चात् लेखे प्रस्तुत करने पर दिया जाता है। इस प्रकार सहकारी समितियो के माध्यम से सहकारी योजना कार्यान्वित की जा सकती है।

(२) निम्न आय समूह की गृह निर्माण योजना (Low Income Group Housing Scheme)

इस योजना के अन्तर्गत ६००० रु० तक वार्षिक आय वाले व्यक्ति आते हैं। अधिकतम ऋण सीमा ८००० रु० तक है। अधिकतम देय ऋण की सीमा वार्षिक आय के आधार पर निर्धारित की गयी है। ऋण प्राय ३० वर्षों तक के लिए प्रदान किया जाता है। इस योजना मे केन्द्रीय सरकार राज्यो को ४½ प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण देती है। ऋण, २० प्रतिशत स्वीकृत के तुरन्त पश्चात् मिल जाता है। मकान की नीव तैयार हो जाती है तब ५० प्रतिशत रकम दे दी जाती है। शेष ३० प्रतिशत धन छत स्तर तक मकान बनने पर उपलब्ध हो पाता है।

(३) मध्यम आय समूह गृह निर्माण योजना (Middle Income Group housing Scheme) .

इस योजना के अन्तर्गत ६००० रु० से १२,००० रु० तक की आय वाले व्यक्तियो को सम्मिलित किया जाता है। ऋण की अधिकतम सीमा २०,००० रु० तक है जो कि १०,००० रु० वार्षिक आय से अधिक और १२,००० रु० वार्षिक आय वाले व्यक्तियो को उपलब्ध होती है। इस योजना मे भी अधिक देय ऋण सीमा आय वर्गों के आधार पर बाँट दी गयी है। ऋण के वापिस भुगतान की अवधि प्राय ३० वर्षो की है।

सहकारी समितियो को भी जिनके सदस्यो की आय ६००० रु० से १२,००० वार्षिक है ऋण दिया जाता है। शर्तें वही है जो ऊपर दी गई हैं।

उपरोक्त सरकार की योजनाओ मे सहकारी समितियो के माध्यम से कार्य अधिक उपयुक्त रहता है क्योकि व्यक्तियो को ऋण उपलब्ध करने मे आसानी रहती है।

गृह निर्माण समितियों की प्रगति

भारत मे इस प्रकार का आन्दोलन सन् १९१५ मे बम्बई मे एक गृह निर्माण समिति के सगठन से प्रारम्भ हुआ। यद्यपि मद्रास मे सन् १९१४ मे प्रथम समिति का पजीयन हो चुका था किन्तु उसने सन् १९२३ मे सरकारी सहायता प्राप्त करके अच्छी तरह से कार्यारम्भ किया। विश्वव्यापी मदी के समय मे देश के अनेक भागो मे आन्दोलन व्यापक होने लगा। इसका कारण था इस काल मे वस्तुओ के मूल्य बहुत नीचे हो गये थे जिससे मकान कम लागत पर बनने लगे। चारो तरफ मकान बनने लगे इससे सहकारी समितियो को भी बढावा मिला। जिन लोगो के पास बचत होती थी वे भवन निर्माण मे लगा देते थे। द्वितीय महायुद्ध काल मे इस आन्दोलन ने कोई विशेष उन्नति नही की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने गृह समस्या की तरफ ध्यान दिया और सहकारिता के आधार पर समस्या के निराकरण पर विचार किया। भारतवर्ष मे बम्बई मे वर्ष १९४४-४५ मे १२९ गृह निर्माण समितियाँ थी और इसी वर्ष मद्रास मे ११४ समितियाँ थी। वर्ष १९४६-४७ और १९४७-४८ मे बम्बई मे १६५ नयी समितियो का पजीयन किया गया। इस प्रकार इस राज्य मे इस आन्दोलन ने तेजगति से प्रगति की। मद्रास मे वर्ष १९४९-५० मे ऐसी समितियो की सख्या १९३ हो गयी। अन्य राज्यो मे समितियो की सख्या अधिक नही थी।

केन्द्रीय सरकार सन् १९४८ मे प्रत्यक्ष रूप से भाग लेना आरम्भ किया जबकि इसने राजस्थान को ६४ लाख रुपये प्रतापनगर टाउनशिप परियोजना के लिए जो कि उदयपुर सहकारी समिति के द्वारा प्रारम्भ की गयी थी, प्रदान किये। सन् १९५२ से केन्द्रीय सरकार ने आर्थिक सहायता प्राप्त गृह निर्माण योजना चालू की।

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में सहकारी गृह निर्माण समितियो ने कोई विशेष प्रगति नही की। यद्यपि समितियो की सख्या, सदस्यता तथा कार्यशील पूजी मे वृद्धि हुई है किन्तु कोई आशाजनक प्रगति नही हो सकी। निम्न तालिका से प्रथम योजना की प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है

भारत में गृह निर्माण सहकारिता

वर्ष	सख्या समितियाँ	सदस्यता	कार्यशील पूंजी (करोड रुपये)
१९५०-५१	१४८२	० ९१	१३ ९४
१९५५-५७	२९६३	१·८३	२८·१८

तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में अन्त में समितियाँ लगभग दुगनी हो गयी और सदस्यता भी लगभग दुगनी हो गयी। कार्यशील पूँजी दुगने से भी कुछ ज्यादा हो गयी। किन्तु जितने प्रयास किये गये थे उतनी सफलता न मिल सकी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी समितियों की संख्या सदस्यता तथा कार्यशील पूंजी में वृद्धि हुई। इस काल में प्रगति का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है

द्वितीय योजना में गृह निर्माण समितियाँ

वर्ष	संख्या (समितियाँ)	सहायता	कार्यशील पूंजी (करोड रुपये)
१९५६-५७	३०८१	२·१६	३०·७८
१९६०-६१	६४५८	३·८१	५७·७३

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि समितियों की संख्या दुगने से भी अधिक हो गयी। किन्तु सहायता और कार्यशील पूंजी में इसी अनुपात से वृद्धि नहीं हुई। वास्तव में सफलता प्राप्त करने के लिए सहायता और कार्यशील पूंजी में वृद्धि होना आवश्यक है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में प्रथम दो योजनाओं के अनुभव के आधार पर कार्य किया गया। इस काल में सहायता तथा कार्यशील पूंजी बढ़ाने के अधिक प्रयत्न किये गये समितियों की प्रगति निम्न तालिका में स्पष्ट है—

तृतीय योजना में गृह निर्माण सहकारियाँ

वर्ष	संख्या (समितियाँ)	सदस्यता	कार्यशील पूंजी (करोड रुपये)
१९६१-६२	७८७७	४ ५५	६४ ३४
१९६५-६६	११७६५	. ....	१४०·००

तृतीय योजना के अन्त में हमारे देश में १३ राज्य स्तरीय सहकारी समितियाँ थी और ११७६५ प्राथमिक समितियाँ थीं जिनकी कार्यशील पूंजी १४० करोड रुपये थी। वर्ष १९६५-६६ में इन समितियों ने १७,००० स्वतन्त्र घरों का निर्माण किया और १५,००० टनमेटस् का निर्माण किया।

तृतीय योजना के पश्चात् वार्षिक योजनाओं में भी गृह निर्माण समितियो

की तरफ ध्यान दिया गया। जून १९६७ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष के अन्त मे समितियो की स्थिति निम्न प्रकार थी—

गृह निर्माण समितियाँ (जून १९६७)

	सख्या	सदस्यता	कार्य शील पूजी (करोड रुपये)
१. राज्य स्तरीय गृह निर्माण समितियाँ	१६	७४७०	४१·१८
२. प्राथमिक समितियाँ	११८१०	७२४६६१	१२४ २१

(Source—India 1969, p 272)

इस काल मे समितियो की सख्या मे वृद्धि करने के स्थान पर उनकी सदस्यता तथा कार्यशील पूंजी मे वृद्धि करने पर अधिक ध्यान दिया गया। वर्ष १९६६-६७ मे समितियो ने ३११२५ मकान/टनमेंट बनाये।[1] वर्ष १९६७-६८ और १९६८-६९ मे भी सदस्यता तथा कार्यशील पूंजी बढाने के अधिक प्रयत्न किये गये।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे गृह निर्माण मे सहकारी समितियाँ अधिक भाग ले सकेगी। इस काल मे कमजोर समितियो के दृढीकरण पर अधिक ध्यान दिया जायेगा। समितियो की सख्या अधिक न बढा कर समितियाँ बडे आकार की बनायी जायेगी। *नयी समितियाँ उन भागो मे गठित की जायेंगी जहाँ समितियाँ या तो है नही अथवा अनुकूल परिस्थितियाँ है।*

विकास मे बाधायें

सहकारी गृह निर्माण आन्दोलन कोई विशेष प्रगति नही कर पाया। सरकार की गृह निर्माण योजना मे—सहकारी समितियो का भाग बहुत कम है। इन समितियो के विकास मे अनेक बाधायें है जिनका विवरण निम्न प्रकार है —

(१) सरकार द्वारा कम सहयोग

गृह निर्माण योजना के अन्तर्गत सरकार ने जो सहकारी समितियो के माध्यम मे *अधिक कार्य नही करवाया। कुछ राज्य सरकारो ने सामाजिक गृह निर्माण* परियोजनाओं के अन्तर्गत सहकारी समितियो को कोई सहायता नही दी। उदाहरण के लिए आसाम, जम्मू एव काश्मीर मे इस प्रकार की सहायता नही दी गई। अन्य राज्य सरकारो ने भी पर्याप्त मात्रा मे इस परियोजना के अन्तर्गत पर्याप्त सहायता नही प्रदान की। राज्य सरकारो की ऐसी नीति के कारण गृह निर्माण समितियाँ केन्द्रीय सरकार की इस योजना में अधिक भाग नही ले सकी।

1 *Report 1968 69, Govt of India (Cooperative Deptt)*

(२) वित्तीय कठिनाइयाँ :

अन्य क्षेत्र की सहकारी समितियो की भाँति ये समितियाँ भी वित्तीय समस्या की शिकार हैं। इन समितियों के वित्त के मुख्य साधन जीवन बीमा निगम (L.I.C) तथा सरकार हैं। कुछ राज्यो मे शीर्ष गृह निर्माण समितियाँ नही हैं जो कि प्राथमिक समितियों को पर्याप्त सहायता प्रदान कर सकें। राज्य सरकारो ने इन समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान नहीं की है। इन समितियो की वित्तीय समस्याओ की तरफ इन सरकारो ने पर्याप्त ध्यान ही नहीं दिया है। ऐसी स्थिति मे पर्याप्त विकास बहुत कठिन है।

(३) उचित मूल्यों पर भूमि न प्राप्त होना :

हमारे देश मे गृह निर्माण समितियाँ पर्याप्त मात्रा मे उचित मूल्यो मे भूमि प्राप्त करने मे असमर्थ रही हैं। अधिकाश राज्यो मे सरकारी अधिकारियो ने समितियो को भूमि देने मे प्राथमिकता नही दी है। समितियाँ धन के अभाव मे ऊँची कीमत पर पर्याप्त मात्रा मे भूमि नही खरीद सकती हैं जिससे कारण समितियाँ गृह निर्माण मे अधिक भाग नहीं ले पायी हैं।

(४) भवन निर्माण के आवश्यक सामान के मूल्यो में वृद्धि :

गृह निर्माण के लिये सीमेंट तथा अन्य अनेक प्रकार के सामान की आवश्यकता पड़ती है। हमारे देश मे बढती हुई कीमतो के कारण विभिन्न प्रकार के सामान का मूल्य भी बहुत बढ गया है। कभी समितियो को भवन निर्माण का खराब कच्चा माल मिल जाता है जिससे अच्छे मकान बनाने मे कठिनाई होती है। समितियाँ विभिन्न प्रकार के माल के उत्पादको से सम्पर्क नही कर पाती है क्योंकि कुछ राज्यों मे शीर्ष समितियाँ नही है।

(५) कुशल प्रबन्धको का अभाव :

गृह निर्माण समितियो के सामने भी अन्य प्रकार की समितियो की भाँति कुशल प्रबन्धको की कमी पायी जाती है। समितियाँ अधिक वेतन देकर कुशल मैनेजर रखने मे असमर्थ है क्योकि उनके पास धन का अभाव पाया जाता है। अकुशल प्रबन्धक विभिन्न कार्यों को उचित प्रकार से नही कर पाते हैं। प्रबन्ध कुशलता के अभाव मे न तो भावी योजनायें बना पाते हैं और न समय पर निर्णय ले पाते हैं।

(६) निजी लाभ के लिये समितियो का गठन :

कुछ साहसी अपने निजी लाभ के उद्देश्य से गृह निर्माण समितियाँ बना लेते है। ये मकान बना कर ऊँचे मूल्यों पर बेच कर लाभ कमा लेते है। इस प्रकार की क्रिया से सहकारिता का उद्देश्य पूरा नही हो पाता है।

(७) अन्य :

कुछ समिति के संगठन कर्त्ता बहुमत के लिये ऐसे व्यक्तियों को सदस्य बना लेते हैं जो वास्तव मे इच्छुक नही है। कहीं-कहीं पर लाभ कमाने के उद्देश्यों से भवनों को किराये पर दे दिया जाता है। इससे समितियों के प्रति जनता का

विश्वास कम होता है। सरकार तथा स्थानीय संस्थायें मकान बनाने के पश्चात् बडी मात्रा मे कर लगा देती हैं। स्थानीय सस्थायें समितियो को भवन निर्माण कार्य मे कोई विशेष सहयोग भी नही देती हैं।

उपरोक्त समस्याओ के कारण गृह निर्माण समितियाँ तेज गति से विकास नही कर पायी। सहकारी नियोजन समिति ने सन् १९४६, वकिंग ग्रुप ने सन् १९६३ तथा इसके पश्चात् मिर्धा समिति ने इन समितियो के सुधार के लिये सुझाव दिये हैं।

सहकारी नियोजन समिति के सुझाव

सन् १९४६ मे सहकारी नियोजन समिति ने गृह समस्या को सुलझाने के लिए कुछ सुझाव दिये। समिति के कुछ सुझावो पर कई राज्यो ने अधिक ध्यान नही दिया। यदि इन सुझावो पर ध्यान दिया जाये तो निश्चय ही प्रगति को गति प्रदान हो सकेगी। कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्न प्रकार हैं —

(१) राज्य सरकारें, नगर विकास ट्रस्ट तथा नगरपालिकायें मकान निर्माण, भूमि बेचते समय सहकारी समितियो को प्राथमिकता दें।

(२) प्रत्येक राज्य मे शीर्ष स्तर पर केन्द्रीय सहकारी गृह निर्माण समिति स्थापित की जानी चाहिए जो कि प्राथमिक समितियो के लिये उचित मूल्यो पर भूमि खरीदने के लिए धन दे सकें।

(३) गृह निर्माण समितियो के धन की आवश्यकता की पूर्ति जीवन बीमा निगम (L. I C.) सरकार तथा विशेष परिस्थितियो मे भूमिबधक बैंक द्वारा की जाय।

(४) समितियो की सम्पत्ति को ध्यान मे रखकर कर न लगा कर व्यक्तिगत सदस्यो को ध्यान मे रखना चाहिये।

कार्यकारी दल के सुझाव
(Working Group or Housing Cooperatives)

सन् १९६३ मे कार्यकारी दल नियुक्ति किया गया जिसने अपना प्रतिवेदन सन् १९६४ मे प्रस्तुत किया। इस दल के निम्नलिखित सुझाव थे —

(१) राज्यो को गृह निर्माण परियोजना के अन्तर्गत प्रदान किये गये धन में से २० प्रतिशत सहकारी गृह निर्माण समितियों के लिए सुरक्षित रखा जाये।

(२) निम्न आय वर्ग गृह निर्माण परियोजना मे दिये जाने वाले ऋण की अधिकतम सीमा ८००० से १०,००० कर दी जाये।

(३) ऋण का भुगतान करते समय प्रथम किश्त १२ माह के स्थान पर २४ माह के पश्चात् देय होनी चाहिए।

(४) सरकार भूमि, सीमेंट, अन्य मकान बनाने मे काम आने वाले सामान प्रदान करने मे सहकारी समितियों को प्राथमिकता प्रदान करें।

(५) राज्यो मे जहां १०० या इससे अधिक प्राथमिक गृह निर्माण समितियाँ हैं वहाँ शीर्ष समिति की स्थापना की जाये ।

(६) राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सघ स्थापित किया जाये ।

(७) राज्यो मे गृह निर्माण समितियो को ऋण प्रदान करने के लिये गृह बन्धक बैंक स्थापित की जायें ।

(८) गृह निर्माण समितियो को गृह कर से ३० प्रतिशत छूट प्रदान की जाये ।

मिर्धा समिति (१९६४) के सुझाव

गृह निर्माण समितियों की कुरीतियो को रोकने के लिये मिर्धा समिति ने कुछ सुझाव दिये हैं । इसका विवरण निम्न प्रकार है —

(१) हमे आधारभूत रूप से यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि गृह निर्माण समितियां अल्प साधन वाले व्यक्तियो को लाभ प्रदान करने के लिए हैं । इसके लिए सदस्यता निश्चित सीमा की आय वाले व्यक्तियो के लिए निश्चित कर दी जाय ।

(२) "भवन निर्माण के लिए भूमि तथा निर्माण सामग्री का विशेष अभ्यश (Quota) देने के लिए सरकारी सहायता उसी समय प्रदान की जाय जबकि समिति के सदस्य आय की उच्च सीमा नियमों का पालन कर रहे हों ।"

(३) यदि समिति के किसी सदस्य के पास उसी नगर या कस्बे मे यदि कोई अन्य मकान है तो उसे निवास के लिए घर का आबटन नही करना चाहिए ।

(४) समिति के प्रबन्ध मण्डल की स्वीकृति से कुछ विशेष परिस्थितियो मे किराये पर मकान देने के अलावा किराये पर देना बन्द कर देना चाहिए ।

(५) शीर्ष सघ को अपनी सदस्य प्राथमिक समितियो की देखरेख का अधिकार होना चाहिए ।

(६) यदि सदस्य किश्त व्याज सहित नही चुकाते हैं तो समिति अपनी सम्मति को वापिस ले ले और प्रतीक्षा सूची के सदस्यो को उस मकान का आबटन कर देना चाहिए ।

उक्त सुझावों के आधार पर गृह निर्माण समितिया मे प्रचलित कुरीतियाँ समाप्त हो जायेंगी और आन्दोलन उचित दशा की तरफ अग्रसर हो सकेगा ।

अन्य सुझाव

(१) समितियों को पुनर्जीवित करना तथा दृढीकरण करना

कमजोर समितियो को पुनर्जीवित करके उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ करनी चाहिए । इसके लिए सदस्य सख्या मे वृद्धि करनी चाहिए । इससे अश पूजी मे भी वृद्धि होगी जिससे समिति की कार्यशील पूंजी बढ सकेगी । चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे समितियों के दृढीकरण पर विशेष ध्यान देने का कार्यक्रम बनाया गया है । भविष्य मे जिन समितियो की आर्थिक स्थिति ठीक हो उन्ही का पजीयन किया जाए ।

(५) प्रशिक्षण व्यवस्था

सरकार को समितियों के प्रबन्धको को उचित प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था करनी चाहिए। भारतवर्ष मे सहकारी आन्दोलन उस समय तक सफल नही हो सकेगा जब तक समितियो का प्रबन्ध प्रशिक्षित एव प्रबन्धको द्वारा न किया जाएगा। प्रबन्धको के अतिरिक्त अन्य कर्मचारियो को भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(३) सरकार तथा स्थानीय सस्थाओं का सहयोग

सरकार तथा स्थानीय सस्थाये जैसे नगर पालिकायें, नगर विकास न्याय आदि गृह निर्माण सस्थाओ को उचित सहयोग प्रदान करे। भूमि के आबटन तथा अन्य सुविधाओ मे इन समितियो को प्राथमिकता दें।

(४) अन्य

केन्द्रीय सरकार की गृह निर्माण योजनाओं के अन्तर्गत सहकारी समितियों का स्थान अधिक व्यापक बनाया जाय। राज्य सरकारें समितियो को पर्याप्त सहायता प्रदान करें। समितियो के अकेक्षण, निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण की उचित व्यवस्था की जाए।

अब तक के सहकारी गृह निर्माण आन्दोलन की सबसे बडी कमी रही है कि कमजोर वर्ग को अधिक लाभ नही पहुंच पाया है। एक तरफ जहाँ कमजोर वर्ग की सुविधा के लिए समितियो का गठन किया जाता है वहाँ उन्हे लाभ भी नही मिल पाता है। ग्रामीण क्षेत्रो मे भी गृह निर्माण समितियाँ सफलता प्राप्त नही कर पायी हैं। अत इस तरफ भी ध्यान देना चाहिए।

प्रश्न

१. भारतवर्ष मे गृह निर्माण समस्या के समाधान मे गृह निर्माण सहकारी समितियो का क्या स्थान है ? क्या समितियाँ इस समस्या को सुलझा पायी हैं ?

२. भारतवर्ष मे गृह निर्माण समितियो की प्रगति का विवरण देते हुए इनकी समस्याये बताइये।

३. गृह निर्माण समितियो के विकास मे कौन-कौन सी बाधायें है। इन्हे दूर करने के क्या उपाय है।

४. भारत मे कितने प्रकार की गृह निर्माण समितियाँ पायी जाती हैं ? एक औद्योगिक क्षेत्र मे आप किस प्रकार की समिति के सगठन की सिफारिश करेंगे।

११

सहकारी खेती
(Cooperative Credit)

भारतीय कृषि की उन्नति के लिये तथा उसे स्वावलम्बी बनाने के लिए कृषि प्रणाली का पुनर्संगठन आवश्यक है। पुनर्संगठन का सर्वोत्तम उपाय सहकारी खेती है। सहकारी खेती व्यक्तिगत कृषि स्तर को बडे पैमाने पर बनाने के लिये तथा बडे पैमाने के लाभो की प्राप्ति हेतु महत्वपूर्ण सगठन है। इसमे व्यक्तिगत स्वामित्व की रक्षा करते हुये भूमि का एकीकरण किया जाता है और सयुक्त रूप मे खेती की जाती है। कृषि के पुनर्संगठन की कुछ अन्य विधियाँ भी हो सकती हैं जैसे पूँजीवादी कृषि, सहकारी कृषि अन्य सामूहिक कृषि। भारतवर्ष मे ये प्रणालियाँ अनेक कारणो से उपयुक्त नही हैं। पूँजीवादी कृषि सयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका, आदि देशो मे प्रचलित हैं। भारतवर्ष मे भी इसके कुछ उदाहरण हैं जैसे चाय, कहवा, रबड आदि पूँजीवादी कृषि पर आधारित हैं। महाराष्ट्र मे कुछ चीनी कारखानो के पास भी अपने खेत हैं। सरकारी कृषि अथवा सामूहिक कृषि प्रणालियाँ रूस मे अधिक प्रचलित हैं। इनमे सरकारी हस्तक्षेप ज्यादा होता है। किन्तु हमारे देश मे जनतान्त्रिक सिद्धान्तो को अधिक महत्व दिया जाता है। सहकारी खेती मे जनतान्त्रिक नियन्त्रण सिद्धान्त महत्वपूर्ण है अत यह प्रणाली सर्वोत्तम है।

सहकारी खेती सहकारी सिद्धान्तो पर आधारित कृषि उत्पादन की प्रणाली है जिसमे छोटे-छोटे भू-स्वामी बडे पैमाने के उत्पादन के लाभ कमाने के उद्देश्य से सगठित होते हैं। खेतो पर स्वामित्व उनका यथावत् बना रहता है। अत व्यक्तिगत स्वामित्व को ध्यान मे रखते हुए भूमि का एकीकरण किया जाता है और बडे पैमाने पर उत्पादन किया जाता है। अन्य शब्दो मे किसान मिल कर सहकारिता के आधार पर खेती करते हैं जिसमे भूमि के आधार पर सदस्यो को लाभाश दिया जाता है और किये गये कार्य के लिये मजदूरी दे दी जाती है। इसमे सहकारी कार्य का प्रबन्ध सभी सदस्य प्रजातान्त्रिक आधार पर करते हैं और पदाधिकारियो का चुनाव कर लेते हैं। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के सलाहकार मण्डल ने

सहकारी कृषि को परिभाषित करते हुए लिखा है, "सहकारी कृषि समिति मे किसानो को अपनी भूमि के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त होता है और कार्य सयुक्त रूप से पूरा किया जाता है।" सलाहकार मण्डल की परिभाषा सहकारी सयुक्त कृषि के लिये उपयुक्त है। किन्तु सहकारी कृषि के अन्य भी कई प्रकार हैं।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे सहकारी कृषि को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है, "सहकारी खेती मे भूमि का एकीकरण होता है और सयुक्त प्रबन्ध होता है।"[1] भूमि के एकीकरण में व्यक्तियो का (जिनकी भूमि है) स्वामित्व होता है किन्तु समिति का प्रबन्ध प्रजातान्त्रिक होता है। सभी सदस्य मिलकर जनतान्त्रिक आधार पर नियन्त्रण करते हैं।

भारत मे सहकारी खेती की विशेषतायें

भारतवर्ष मे सहकारी कृषि कार्यक्रम की निम्नलिखित विशेषतायें हैं [2]

(१) सहकारी कृषि समितियो मे सदस्यता ऐच्छिक है। किसी भी व्यक्ति पर किसी भी प्रकार की अनिवार्यता नही है।

(२) अधिकाश सदस्यता छोटे भूमि वालो अथवा भूमिहीनो की होती है।

(३) भूमि प्रदान करने वाले किसानो का भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार होता है। सामान्यत भूमि का एकीकरण कम से कम पांच वर्षों तक के लिये होता है।

(४) समिति के सदस्य कार्य करते हैं जिसके लिये उन्हें पारिश्रमिक दिया जाता है और भूमि अनुपात मे लाभाश दिया जाता है।

(५) समितियाँ सेवा सहकारी कृषि समिति, सहकारी सयुक्त कृषि, सहकारी सामूहिक कृषि, सहकारी लगान दर कृषि आदि चार प्रकार की होती हैं।

सहकारी खेती के प्रकार

सहकारी खेती समितियो के विभिन्न रूप निम्न प्रकार हैं

(१) सहकारी उत्तम कृषि समिति (Cooperative better Farming Society)

सहकारी उत्तम कृषि को सेवा सहकारी खेती समिति (Service Cooperative Farming Society) आदि कह सकते हैं। इसमे किसान अपनी अपनी भूमि पर खेती करते हैं किन्तु अपनी कुछ आवश्यकतायें सहकारी समिति से पूरी करते हैं जैसे बीज, कृषि उपकरण, खाद आदि। इन समितियो मे भूमि का स्वामित्व व्यक्तिगत होता है और प्रबन्ध भी व्यक्तिगत ही होता है। समितियाँ सदस्यो को उत्पादन के लिए अनेक सुविधायें देती हैं साथ ही विपणन कार्यों को भी सम्पन्न करती हैं। ये सहकारी समितियाँ अपने पास कृषि यन्त्र भी रखती हैं। आवश्यकता पडने पर सदस्य

---

1 Third Five year plan defined cooperative farming as one 'Which necessary implies pooling of land and its joint management

2 Cooperative Farming p. 173, Indian Cooperative Review Jan 1969

किसानो को किराये पर दिया जा सकता है। आजकल हमारे देश मे इन समितियो के कार्य साधन समितियाँ कर रही है अत उत्तम समितियो का महत्व बहुत घट गया है।

(२) सहकारी सयुक्त कृषि (Cooperative joint Farming)

सहकारी सयुक्त कृषि मे भूमि का एकीकरण इस प्रकार किया जाता है कि भू-स्वामियो का स्वामित्व बना रहता है किन्तु कार्यो का प्रबन्ध सयुक्त होता है। सभी समिति के सदस्य मिलकर कार्यकारिणी के सदस्यो का चुनाव करते है। यह समिति का प्रबन्ध करती है। वास्तव मे सहकारी समिति का आशय सहकारी सयुक्त खेती से ही होता है। समिति सदस्यो की भूमि का एकीकरण करती है और आवश्यकता पडने पर मैनेजर की तथा अन्य कर्मचारियो की नियुक्तियाँ भी करती है। सदस्य कार्य भी कर सकते हैं उसके लिए उन्हे मजदूरी दी जायेगी। लाभ मे से खर्च और उचित सचित कोष रखने के पश्चात् सदस्यो को भूमि के अनुपात मे बाँट दिया जाता है।

सहकारी संयुक्त कृषि समितियो मे सदस्यता सामान्यत सभी किसानो के लिये खुली होती है। छोटी छोटी भूमि के टुकडे वाले किसान तथा भूमि रहित श्रमिक जो कि खेती के कार्य मे योग देते हैं सदस्य हो सकते हैं। भारत सरकार ने यह सुझाव दिया है कि अनुपस्थित भूमि पतियो (Absent Landlords) को सदस्य न बनाया जाये यदि वे निर्बल, शारीरिक कमी, अधिक भागो मे लगे हुए किसान न हो। इस सम्बन्ध मे अनुपस्थित भूपतियों की सदस्यता कुल सदस्यता के एक चौथाई से अधिक नहीं होनी चाहिए।

सहकारी सयुक्त कृषि प्रणाली मे सचयन (Pooling) की अवधि निम्नतम पाँच वर्षो की है। विशेष परिस्थिति मे इस अवधि के मध्य मे भी सदस्य अलग हो सकता है। अलग होने पर उसे भूखण्ड वापिस मिल जाता है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वही खण्ड उसे मिले। समिति समान उपज का दूसरा खेत भी उसे दे सकती है।

सहकारी कृषि के अन्तर्गत समिति के लिये उसके पजीयन के लिये कोई निश्चित आकार नही दिया गया है किन्तु ऐसी समितियो के पास पर्याप्त मात्रा मे भूमि होनी चाहिए। सरकार की भी ऐसी नीति है कि आर्थिक सहायता उन्ही समितियो को प्रदान की जानी चाहिए जो कि निकट भविष्य मे स्वावलम्बी हो जायेंगी। विभिन्न राज्यो ने आर्थिक सहायता पाने के लिये अपने अपने राज्यो मे सदस्यता की न्यूनतम सख्या और न्यूनतम क्षेत्र निर्धारित कर दिया है।

(३) सहकारी लगान दार खेती समिति (Cooperative Tenant Farming)

इस प्रकार की समितियो को सहकारी आसामी समिति अथवा सहकारी खेतिहर कृषि समिति भी कहा जाता है। समिति सरकार से पर्याप्त मात्रा मे भूमि खरीद लेती है। सामान्यत ऐसी समितियाँ नये कृषि क्षेत्रो मे स्थापित की जाती हैं। इस भूमि को उचित आकार के खेतो मे विभक्त करके समिति अपने सदस्यो को खेती के लिये किराये पर दे देती है। ये समितियाँ सदस्यो को सिचाई, खाद, बीज आदि का प्रबन्ध करती हैं। सदस्यो को आवश्यकता पडने पर तान्त्रिक सलाह प्रदान करना और उत्पादित माल की विक्रय के लिये व्यवस्था करना आदि कार्य भी समितियाँ

करती है। भूमि का स्वामित्व सदस्यों का व्यक्तिगत न होकर समिति का होता है। सामान्यत बजर भूमि जो कि कृषि योग्य बनायी जाती है वहाँ इस प्रकार की सहकारी समितियाँ अधिक सफल हुई हैं।

(४) सहकारी सामूहिक खेती (Cooperative Collective Farming) :

सहकारी सामूहिक खेती मे कृषि का स्वामित्व समिति के पास होता है तथा कृषि से सम्बन्धित कार्य सामूहिक रूप मे किये जाते हैं। इस प्रकार की समितियो में या तो किसान अपनी जमीन का स्वामित्व समितियो को दे देते हैं अथवा समिति स्वय सदस्यो की तरफ से सरकार से भूमि अपने नाम ले लेती है। सहकारी सामूहिक खेती मे श्रम अधिक महत्वपूर्ण है। समिति स्वय खेती करती है और सदस्य मिलजुल कर एक साथ कार्य करते है और पारिश्रमिक प्राप्त करते हैं। कार्यशील पूंजी अशों से प्राप्त होती है। सदस्यो की साधारण सभा प्रबन्ध समिति निर्वाचित करती है और सचालन यही प्रबन्ध समिति करती है। श्रमिक की मजदूरी समिति की साधारण सभा मे तय की जाती है। सदस्यो को लाभाश प्राप्त मजदूरी के आधार पर दिया जाता है क्योकि भूमि का अनुपात इसलिए नही होता कि सदस्य के नाम भूमि नही होती है। सामूहिक खेती का रूस मे बहुत प्रचलन है किन्तु सहकारी सामूहिक खेती और रूस की सामूहिक खेती मे पर्याप्त अन्तर है जो निम्न प्रकार है

(१) सहकारी सामूहिक खेती समितियो का एच्छिक सगठन होता है जबकि रूसी सामूहिक खेती अनिवाय होती है।

(२) सहकारी सामूहिक खेती के श्रमिक स्वतन्त्र होते है किन्तु रूसी सामूहिक खेती के श्रमिक स्वतन्त्र नही होते।

(३) सहकारी सामूहिक समितियाँ प्राचीन तथा नवीन दोनो ही प्रकार की विधियो को काम मे लेती है किन्तु रूस मे सामूहिक खेतो में खेती के नवीन यन्त्र काम मे लाये जाते हैं।

(४) सहकारी सामूहिक खेती मे सरकारी हस्तक्षेप नही होता जबकि रूसी सामूहिक खेती मे सरकारी हस्तक्षेप बहुत होता है।

(५) सरकारी सामूहिक खेती मे भूमि पर समितियो का अधिकार होता है जबकि रूसी सामूहिक खेती मे भूमि पर सरकारी अधिकार होता है।

सहकारी कृषि के लाभ

किसानो के जीवन स्तर को उठाने के लिये यह आवश्यक है कि न्यूनतम व्यय मे अधिकतम उत्पादन किया जाये। भारतवर्ष मे अधिकांश भागो मे किसानो के पास छोटे-छोटे खेत हैं जिनका आकार अनार्थिक है। इन छोटे खेतो मे आधुनिक विधियों से खेती करना असम्भव है। अत हमारे देश में धन, समय तथा उपजाऊ भूमि का अपव्यय होता है। भूमि होते हुए भी उत्पादन कम होता है और खाद्य सकट बढता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे खेती को स्वावलम्बी बनाना आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कृषि प्रणाली का पुनर्संगठन किया जाना चाहिए। यद्यपि पुनर्संगठन की कई विधियाँ है तथापि भारतीय परिस्थितियो को ध्यान मे

रखते हुए सरकारी खेती उपयुक्त है। सरकारी खेती के अन्तर्गत किसानो का भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है और बडे पैमाने के उत्पादन के लाभ उपलब्ध हो सकते हैं। कृषि मे आधुनिक विधियाँ काम मे लायी जा सकती हैं। जहाँ एक व्यक्ति सभी साधनो को जुटाने मे असमर्थ होता है, वहाँ सम्मिलित प्रयास से काम इसी विधि द्वारा चलाना उत्तम हो सकता है। सभी समिति के सदस्य अपने साधनो को सकलित करते हैं और सगठित प्रयास से विकास करते हैं। सहकारी खेती के निम्न-लिखित लाभ हैं

(१) व्यक्तिगत स्वामित्व

सहकारी खेती के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वामित्व की रक्षा की जाती है और भूमि का एकीकरण करके सम्मिलित प्रयास किये जाते हैं। हमारे देश मे किसान भूमि पर से व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त नही करना चाहते ऐसी स्थिति मे सहकारी खेती द्वारा कृषि उत्पादन बढाया जा सकता है। समिति के सदस्य भूखण्ड समिति को प्रदान करते हैं जिन पर उनका व्यक्तिगत अधिकार होता है। जब सदस्य समिति को छोडते हैं तो उनको भूमि वापस मिल जाती है। व्यक्तिगत स्वामित्व के अभाव मे हमारे देश मे समितियाँ सगठित नही हो पाती है।

(२) वृहत पैमाने की कृषि के लाभ

भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार होते हुए भी इस प्रणाली मे वृहत पैमाने की खेती के लाभ प्राप्त किये जा सकते है। छोटे-छोटे किसानो से भू-खण्डो का एक बडा फार्म बना लिया जाता है और उस फार्म मे आधुनिक विधियाँ काम मे लायी जाती हैं। छोटे खेतो का अनार्थिक आकार होता है जिन पर उत्पादन व्यय अधिक होता है किन्तु आर्थिक आकार के कार्मो मे मितव्ययिता हो जाती है। कई प्रकार के खर्चे जो अलग-अलग खेतो पर करने पडते थे वे अब नही करने पडते है। सहकारी खेती मे फार्म बडा होता है अत नवीन कृषि यन्त्रो का प्रयोग भी अच्छी तरह हो सकता है। तथा बडे पैमाने के लाभ प्राप्त हो सकते है।

(३) ऋण प्राप्ति की क्षमता में वृद्धि

छोटे छोटे कृषक जब अपने खेतो पर अलग-अलग खेती करते है तो उनको कृषि कार्यो के लिए ऋण प्राप्ति मे बहुत कठिनाई होती है। कभी-कभी तो इन किसानो को ऋण उपलब्ध भी नही होता है। किन्तु सहकारी समितियाँ की ऋण प्राप्त करने की क्षमता अधिक होती है। पर्याप्त मात्रा मे धन उपलब्ध हो जाने पर कृषि उत्पादन बढाने के लिए नवीन विधियो को अपनाया जा सकता है। कृषि यन्त्र खरीदे जा सकते हैं। भूमि का पर्याप्त सुधार किया जा सकता है।

(४) सरकारी सहायता आसान

कृषि विकास के लिए सरकार जो सहायता प्रदान करने की योजनायें कार्यान्वित करती है तो समितियो के माध्यम से कार्य बहुत सरल हो जाता है जबकि छोटे-छोटे किसानो को अलग-अलग सहायता प्रदान करने मे कई बाधायें आती हैं। वर्तमान समय मे हमारे देश मे नवीन कृषि नीति के अन्तर्गत सरकार ने कई प्रकार की विकास परियोजनायें चालू की हैं जो कि सहकारिता के माध्यम से बहुत सरलता से चालू की जा सकती हैं। सरकार ने सहकारी खेती के महत्व को समझा भी है।

(५) भूमि की उत्पादकता में वृद्धि

सहकारी खेती के द्वारा भूमि की उत्पादकता बढायी जा सकती है। भूमि की उत्पादकता बढाने के लिये उन्नत बीज, नवीन कृषि विधियाँ, कृषि यन्त्र, सिचाई खाद आदि काम मे लाये जाते हैं। भारत मे निर्धन किसान व्यक्तिगत तौर पर इनको काम मे लाने मे असमर्थ है। सहकारी समितियाँ सरलता से इन आवश्यक चीजो को खरीद कर अथवा सुविधा प्रदान करके भूमि की उत्पादकता बढा सकती हैं।

(६) उचित विपणन व्यवस्था

हमारे देश मे कृषि उपज की विपणन की उचित व्यवस्था नही है। किसानो के पास उपज को सुरक्षित रखने के न तो भण्डार हैं और न ही यातायात के पर्याप्त साधन हैं जिससे बाजार मे ले जाकर वे अपनी उपजो को बेच सकें। इसके अतिरिक्त उनको मध्यस्थो के माध्यम से अपना सामान बेचना पडता है जिससे उनको अपनी उपज का उचित मूल्य नही मिल पाता है। सरकारी खेती के अरति समितियाँ सभी प्रकार की विपणन सुविधायें प्रदान करती है।

(७) सहायक उद्योगों का विकास

सहकारी खेती के अन्तर्गत बडे बडे फार्म होते हैं और उत्पादन भी बडी मात्रा मे होता है। इन बडे कृषि फार्मो मे सहायक उद्योग धन्धे चलाये जा सकते हैं जिससे ग्रामीण जनता को रोजगार मिल सकता है। इसके अलावा कृषि उपज के दिनो के अतिरिक्त बेकार समय का सदुपयोग करने के लिये भी इन उद्योगो का महत्व अधिक है।

(८) कृषि श्रमिको की दशा में सुधार

कृषि क्षेत्र मे सस्थागत सुधार करके ही श्रमिको की दशाओ को सुधारा जा सकता है। व्यक्तिगत खेतो मे सरकार के श्रमिको के सम्बन्धित सुरक्षा नियम लागू नही किये जा सकते हैं। इसके लिये खेती मे सस्थागत परिवतन ही उपयुक्त हो सकता है। सहकारी खेती के अन्तर्गत श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी, उचित काम के घन्टे, श्रम कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी सुविधायें प्रदान की जा सकती हैं। हमारे देश मे कृषि श्रमिको की दशा दयनीय है जिसे सुधारना बहुत आवश्यक हो गया है। इनकी दशा के सुधार मे सहकारी खेती मे उचित प्रयत्न किये जा सकते है।

(९) तकनीकी सुविधायें

सहकारी समितियाँ प्रशिक्षित कर्मचारियो की सेवायें प्राप्त कर सकती हैं। कृषि की नवीन विधियो मे तकनीकी शिक्षा अथवा सहायता की आवश्यकता होती है। समितियाँ यह सुविधा प्रदान कर सकती हैं जबकि व्यक्तिगत सेवा मे कठिनाई रहती हैं।

(१०) रोजगार में वृद्धि

सहकारी खेती के अन्तर्गत समितियो मे कुछ भूमिहीन किसान भी सदस्य होते हैं। ये सदस्य समिति के कार्यो मे भाग ले सकते हैं अथवा श्रमिकों के रूप में कार्य

करके रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त बडे पैमाने पर खेती होने के कारण कई व्यक्तियों को एक साथ रोजगार प्राप्त होता है। ज्यो ज्यो उत्पादन बढता है फार्म की गतिविधियाँ भी बढती हैं और श्रम सख्या मे भी निरन्तर वृद्धि होती है।

(११) ग्रामीण क्षेत्रो में पूँजी निर्माण

सहकारी खेती के माध्यम से किसानो की आय मे वृद्धि होती है। आय की वृद्धि से बचत प्रभावित होती है। अधिक बचत होने के कारण उसे पुनर्नियोजन किया जाता है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रो मे किसानो की बचत को प्रोत्साहित करके पूँजी निर्माण किया जा सकता है।

(१२) नियोजन में सहायता

हमारे आर्थिक नियोजन मे कृषि विकास के भी कार्यक्रम चालू किये गये हैं। इन कार्यक्रमो की सफलता मे सहकारी खेती से बहुत सहायता मिलती है। कृषि उपज सम्बन्धी आँकडे भी अच्छी तरह उपलब्ध हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार के कृषि विकास के कार्यक्रमो को अपना कर उत्पादन के लक्ष्यो की प्राप्ति हो सकती है।

सहकारी खेती से ग्रामीण क्षेत्रो मे सर्वांगीण विकास हो सकेगा। किसानो की आय बढ़ेगी जिससे उनके रहन सहन का स्तर भी ऊँचा उठेगा। सहकारी खेती एक तरफ तो किसानो के व्यक्तिगत अधिकारो को सुरक्षित रखती है और दूसरी तरफ व्यक्तिगत खेती के दोषो को दूर करती है और किसानो के जीवन को सुखमय बनाती है।

सहकारी खेती के दोष

उपरोक्त लाभो के आधार पर हम यह नही कह सकते कि सहकारी खेती दोष मुक्त है। इस प्रणाली मे निम्नलिखित दोष हैं।

(१) बेरोजगारी फैलने का डर

[illegible] कारी खेती के अन्तर्गत बडे पैमाने का उत्पादन किया जाता है जिसमे बडे-[illegible] गतिविधियो मे, मशीनें आदि काम मे लाये जाते हैं। मशीनो आदि को प्रयोग मे लाने [illegible] को की आवश्यकता होगी। अत श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे। यद्यपि [illegible] म अवधि के लिये ही हो सकता है। दीर्घकाल मे तो रोजगा[illegible] [illegible] रहती है। निरन्तर उत्पादन बढने से फार्मो [illegible] सुझाव [illegible] रहती है जिससे अधिक श्रमिको को रोजगार [illegible] के अन्त तक भारतवर्ष म [illegible] मे भी अधिक थी [illegible] ल सकता है।

[illegible] अकुशल प्रबन्ध की आशका

यह आवश्यक नही है कि सभी समितियो को कुशल प्रबन्धक उपल[illegible] जायें। यदि किसी समिति को कुशल प्रबन्धक उपलब्ध नही हो तो उसका प्र[illegible] अकुशल समितियो के हाथो मे चला जाता है जिससे भारी नुकसान हो सकता है [illegible] अनेको सदस्य किसानो को हानि उठानी पडती है। हमारे देश मे अनेको समितियो के सामने यह बाधा है।

(३) उपज में कमी की आशका

यह भी आवश्यक नही है कि व्यक्तिगत फार्मों की तुलना मे सहकारी आधार पर उत्पादन बढ जायेगा। यह भी हो सकता है कि अनेक कारणो से उत्पादन भी न बढ पाये और उत्पादन व्यय भी कम न होने पाये। हमारे देश मे यह बहुत कठिन है कि सभी सदस्य अपने कार्यों और दायित्वो को अच्छी तरह निभायें। सहकारी फार्मों का सचालन का आधार भी प्रजातान्त्रिक होता है अत. कर्मचारी अथवा श्रमिक अधिक मेहनत नही करते हैं। व्यक्तिगत खेती के अन्तर्गत श्रमिक अधिक काम करते हैं। स्वय मालिक भी अपने खेत मे अपनी पूर्ण शक्तियाँ लगा देता है।

(४) अधिक व्यय

सहकारी खेती के अन्तर्गत व्यक्तिगत खेती की तुलना मे अधिक व्यय करने पडे गे। सहकारी प्रणाली मे स्थायी तथा चालू खर्चों मे भी वृद्धि हो जाती है। श्रमिक समय-समय पर अधिक सुविधायें और ऊँची मजदूरी की माँग करेंगे जिससे लागत व्यय म वृद्धि हो जायेगी। व्यक्तिगत फार्मों की तुलना मे सहकारी खेती मे मजदूरो से कम काम लिया जाता है जिसका प्रभाव किसानो की आय पर पडता है।

(५) अन्य

व्यक्तिगत कृषि प्रणाली मे किसान व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र होते हैं। अपने खेत को सुधारने के लिए किसान बेहद मेहनत करता है। अपनी इच्छानुसार कार्य करता है। इसके अतिरिक्त सहकारी खेती मे कभी-कभी अनेको कमियो के कारण भूमि का दुरुपयोग भी होने लगता है। समितियो मे गन्दी राजनीति प्रवेश ले लेती हैं जिससे किसानो मे असतोष व्याप्त होने लगता है।

उपरोक्त सहकारी कृषि के गुण-दोषो पर विचार करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि वतमान परिस्थितियो म भारत मे पूँजीवादी खेती के स्थान पर सहकारी खेती अधिक उपयुक्त सिद्ध हो सकती है। धीरे-धीरे सहकारिता का व्यापक विस्तार करना चाहिए। हमे वर्तमान समय मे एक दम सहकारी खेती का भी सहारा नही लेना चाहिए। हम धीरे धीरे सहकारी खेती का विस्तार कर सकते हैं जो कि हमारी सामाजिक और आर्थिक नीतियों के अनुकूल है। सहकारी खेती के दोषो को नैतिक उत्थान के द्वारा तथा सहकारिता के सिद्धान्तो का पालन करके दूर किया जा सकता है।

(९) तकनी१।、 सहकारी कृषि और सरकारी प्रयत्न

सहकारी समितियाम सहकारी आयोजन समिति ने १९४६ मे सहकारी खेती कृपि की नवीन इसी समिति ने देश के विभिन्न राज्यो मे सहकारी कृपि के प्रयोग होती है। सिफारिश की। सन् १९४९ मे *कुमारप्पा समिति ने आर्थिक जोतो के* नाई।र को महत्वपूर्ण बताया। इसके *लिए सहकारी खेती उपयुक्त हो सकती है।* (१ म पचवर्षीय योजना मे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्संगठन पर जोर दिया गया। इसके लिए सहकारी ग्राम प्रबन्ध स्वीकार किया गया। सन् १९५२ मे भारतीय काग्रेस ने सुझाव पश किया कि जहाँ भी सम्भव हो सके राज्य द्वारा सहकारी खेती की समितियाँ सगठित करने पर विशेप ध्यान दिया जाना चाहिये। विभिन्न प्रयत्नो

के कारण देश में प्रथम योजना के अन्त तक देश मे कुल १००० सहकारी खेती समितियाँ सगठित हो गयी। वास्तव में देखा जाये तो सहकारी खेती की दिशा मे प्रगति विशेष अच्छी नहीं थी।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में प्रथम पचवर्षीय योजना के अनुभव के आधार पर पर कार्य प्रारम्भ किया गया। इस काल मे सहकारी खेती के विस्तार के लिए तेज गति से विकास करने पर जोर दिया गया। द्वितीय योजना मे लिखा है, "इस प्रकार के विकास के प्रयत्न किये जाने की आवश्यकता है जिससे कि अगले दस वर्षो मे देश मे अधिकाश खेती योग्य भूमि पर सहकारी खेती का आधार सुदृढ हो जाये।" इस योजना के प्रारम्भ मे चीन जाने वाले प्रतिनिधि मण्डल का प्रतिवेदन प्रकाशित किया गया जिसमे सहकारी खेती के विकास पर जोर दिया गया। सन् १९५७ मे एक अन्य प्रतिवेदन प्रकाशित किया गया जो कि चीन व जापान जाने वाले प्रतिनिधि मण्डल का था। इस प्रतिवेदन मे भी सहकारी कृषि को महत्वपूर्ण बताया गया।

नागपुर अधिवेशन का प्रस्ताव

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सन् १९५९ मे अखिल भारतीय नागपुर अधिवेशन मे सहकारी कृषि के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय प्रस्ताव पारित किया गया। नागपुर प्रस्ताव की मुख्य-मुख्य बातें निम्नलिखित थी

(१) भारतीय कृषि का पुनर्संगठन सहकारी सयुक्त कृषि (Cooperative Joint Farming) के आधार पर किया जाये।

(२) किसानो का भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व सुरक्षित रखा जाये।

(३) कृषि भूमि का एकीकरण करके सहकारी संयुक्त खेती की जाये।

(४) भूमि के अनुपात मे किसानो को लाभाश वितरित किया जाये। जो सदस्य संयुक्त कृषि भूमि पर कार्य करते है तो उनको मजदूरी दी जाये और काम के अनुसार लाभ मे से भी भाग दिया जाये।

(५) देश मे सेवा सहकारी समितियो के द्वारा कार्य करना प्रारम्भ किया जाये।

द्वितीय योजना काल मे सन् १९५९ मे सरकार ने निर्जलिगप्पा समिति नियुक्त की। इस समिति ने सहकारी खेती समितियो की आर्थिक एव तकनीकी समस्याओ के निराकरण के उपाय बताये। प्रतिवेदन १९६० मे प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय विकास परिषद ने इस प्रतिवेदन पर विचार किया। तृतीय योजना मे इस समिति के सुझावो के आधार पर कार्यक्रम बनाये गये। जून सन् १९६१ के अन्त तक भारतवर्ष मे ६३२५ सहकारी कृषि समितियाँ थी जिनकी सदस्यता ३ लाख से भी अधिक थी और पूंजी लगभग १० लाख रुपये लगी हुई थी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना मे कृषि विकास का निम्नलिखित कार्यक्रम निर्धारित किया गया

(१) प्रत्येक जिले मे एक अग्रगामी (Pilot) सहकारी कार्य परियोजना चालू की जाये। ऐसी प्रत्येक परियोजना मे कम से कम १० सहकारी फार्म परियोजना

प्रारम्भ की जाये। देश भर मे ऐसी ३३०० सहकारी कृषि समितियों की स्थापना की जाये। अग्रगामी परियोजनायें सहकारी कृषि विकास के लिये भविष्य मे आधार होंगी।

(२) इस प्रकार की समितियो को १२००० रु० विभिन्न कार्यों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाये। केन्द्रीय सरकार ने इस व्यवस्था के लिये ६ करोड रुपये का प्रावधान किया। राज्य सरकारो ने भी लगभग इतनी ही धनराशि का प्रावधान किया।

(३) सहकारी कृषि कार्यक्रम को प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्र मे राष्ट्रीय सहकारी खेती सलाहकार मण्डल (National Cooperative Farming Advisory board) की स्थापना की गयी। राज्यो मे भी मण्डलो का गठन किया गया।

(४) तीसरी योजना मे सरकार को अतिरिक्त प्राप्त भूमि पर सहकारी समितियो को प्रोत्साहन दिया जाने का कार्यक्रम था।

(५) तृतीय योजना काल मे अग्रगामी तथा गैर अग्रगामी योजना खण्ड की सहकारी खेती समितियो के लिये ११ करोड रुपये की वित्तीय सहायता देने का प्रावधान किया गया था।

गाडगिल समिति (Gadgil Committee) ने सहकारी खेती के लिए कई सुझाव दिये। समिति ने ऊँची उत्पादकता के विषय मे निर्देशन दिये। इस समिति ने सहकारी खेती समितियो के सर्वेक्षण करने पर जोर दिया।

तीसरी योजनाकाल मे ५५०१ सहकारी खेती समितियाँ गठित की गयी जिनकी सदस्य सख्या १,१८,८३५ थी और जिनके पास ५,८३,७६८ एकड भूमि थी।[1]

तृतीय योजना के पश्चात तीन वार्षिक योजनाओ मे भी सहकारी कृषि समितियो का विकास किया गया। वर्ष १९६६-६७ तथा वर्ष १९६७-६८ मे हमारे देश मे क्रमश ५२१ तथा ४४९ सहकारी खेती समितियाँ सगठित की गयीं। मार्च १९६८ के अन्त मे देश मे ८५८२ सहकारी खेती समितियाँ थी जिनकी सदस्य सख्या २,१४,४४० थी जिनके पास लगभग ११ लाख एकड भूमि थी। दिसम्बर १९६८ के अन्त तक १४५ समितियाँ और गठित हुई। भारतवर्ष मे प्रशिक्षण तथा शिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत मार्च १९६८ तक सहकारी कृषि समितियो के १४८७ सचिवो को प्रशिक्षण प्रदान किया गया।

भविष्य के लिये कार्यक्रम

भविष्य मे इस क्षेत्र मे कमजोर समितियो को सुदृढ करने की योजना है। जनवरी १९६८ मे राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल ने निम्नलिखित सुझाव दिये।

(१) राज्य सरकारें पुनर्जीवीकरण कार्यक्रम को प्राथमिकता प्रदान करें। नयी समितियाँ वही पर स्थापित की जायें जहाँ पर पर्याप्त साधन उपलब्ध हो तथा परिस्थितियाँ अनुकूल हो।

---

1 Report 1968 69, Govt of India (Cooperative Deptt p 63

(२) सदस्य समिति की सम्पूर्ण भूमि पर संयुक्त खेती करें।

(३) जो समितियाँ निर्धारित सहकारी सिद्धान्तों पर कार्य करें उन्ही को वित्तीय सहायता प्रदान की जाये। परिणामात्मक विकास की बजाय प्रकारात्मक विकास की तरफ अधिक ध्यान दिया जाये।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना मे अधिक सहकारी कृषि समितियों के सगठन के स्थान पर वर्तमान समितियो को सुदृढ किया जायेगा। कमजोर समितियो को पुनर्जिवत करने पर प्राथमिकता दी जायेगी। जिन भागो मे परिस्थितियाँ बहुत ही अनुकूल हैं केवल वही पर नयी समितियाँ सगठित की जायें।

सहकारी कृषि विकास के मार्ग में बाधायें

सहकारी कृषि विकास मार्ग मे सामाजिक एवं आर्थिक विषमता, प्रवन्धकीय समस्यायें आदि प्रमुख बाधायें हैं। समितियो के पास पर्याप्त मात्रा मे धन भी नही है। मुख्य बाधाओ का वर्णन निम्न प्रकार है।

(१) खेतों के प्रति मोह .

भारतवर्ष मे किसान अपने खेतो के प्रति बहुत अधिक मोह रखते हैं। आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओ के कारण किसान भूमि सहकारी कृषि के अन्तर्गत लाना उचित नहीं समझते हैं। अत समितियो के पास पर्याप्त मात्रा मे भूमि का अभाव पाया जाता है।

(२) प्रबन्ध कुशलता का अभाव :

सहकारी कृषि समितियो के समक्ष अन्य सहकारी समितियो की भाँति प्रशिक्षित एव कुशल कर्मचारियो का अभाव पाया जाता है। किसान इस बात से बहुत डरते है कि कही अकुशल प्रबन्ध के कारण उन्हे नुकसान नही हो जाये। यदि सहकारी कृषि के कारण हानि हो जाती है तो किसान जिन्होने अपनी भूमि दे दी है अपना कार्य नही चला पायेंगे। इस डर से वे अपनी भूमि को समितियो के अन्तागत नही लाते हैं।

(३) वित्तीय कठिनाइयाँ

सहकारी कृषि समितियों को अपने फार्मों पर आधुनिक विधियो से खेती करने के लिए बडे-बडे उपकरण एव मशीनो की आवश्यकता पडती है। कभी-कभी सिंचाई सुविधा भी प्रदान करनी पडती है। इसके लिए बडी मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता पडती हैं। अधिकाश समितियाँ कमजोर स्थिति मे है अत वे नवीन विधियो एव मशीनो का उपयोग नही कर पाती हैं।

(४) अशिक्षा एव अज्ञानता .

शिक्षा के अभाव मे ग्रामीण जनता परम्परागत कृषि को उपयुक्त समझती है। वह किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही चाहती। अधिकाश किसान सहकारी सिद्धान्तो से भी भिज्ञ नही होते हैं।

(५) अन्य :

भारत मे ग्रामीण भागो मे अच्छे नेतृत्व का अभाव है जो कि आन्दोलन को सही दिशा प्रदान कर सकें। अधिकाश समितियां बहुत कमजोर हो चुकी है जिनको कि पुनर्जीवित करना आवश्यक है।

उपरोक्त विवरण के अनुसार भारतवर्ष मे सहकारी कृषि विकास के मार्ग मे अनेक बाधायें है जिनको दूर करना आवश्यक है। नीचे इस समिति के लिये सुझाव दिए गए हैं।

निराकरण के उपाय

अक्टूबर सन् १९६५ मे प्रो० डी० आर० गाडगिल समिति ने सहकारी खेती समितियो के विकास के लिये उल्लेखनीय सुझाव दिये है। समिति ने छोटे छोटे किसानो को अधिक आकर्षित करने पर जोर दिया। इस समिति ने जिला तथा राज्य स्तर पर संघीय इकाइयां स्थापित करने का भी सुझाव दिया था। कुछ अन्य सुझाव निम्नलिखित हो सकते है

(१) उचित प्रबन्ध व्यवस्था

सहकारी कृषि समितियो के विकास के लिए समितियो की उचित प्रवन्ध व्यवस्था अति आवश्यक है। इसके लिए प्रबन्ध कर्मचारियो को तथा सचिवों को उचित प्रशिक्षण प्रदान किया जाये। यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ मे प्रशिक्षण व्यवस्था की गयी है किन्तु इस तरफ अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। कर्मचारियो तथा प्रबन्धकों को अन्य प्रकार की सहकारी समितियों की तुलना मे सहकारी खेती समितियो मे अधिक प्रशिक्षित होना चाहिए क्योकि इन समितियो में किसान अपनी जमीन समिति को खेती के लिए प्रधान करते है जबकि अन्य समितियों मे इस प्रकार की जीविकोपार्जन की सम्पत्ति नही लानी पडती। समितियो के मैनेजरो को प्रशिक्षण देने की उचित व्यवस्था शीघ्र करनी चाहिए।

(२) समितियो का संगठन

समिति के सगठन से पूर्व व्यक्तियो मे वास्तविक इच्छा और आवश्यकता होनी चाहिए। समितियों को आर्थिक आकार प्रदान करने के लिए नयी समितियाँ खोलने के लिए एक निश्चित निम्नतम सदस्य सख्या होनी चाहिए। सामान्यत सभी सदस्य लगभग एक ही जैसी स्थिति के होने चाहिए। एक गाँव मे एक से अधिक समिति का भी निर्माण किया जा सकता है यदि परिस्थितियाँ बहुत अनुकूल हो और सदस्य सख्या अधिक हो। कृषि के लिये विभिन्न सुविधायें भी वहाँ होनी चाहिए। भूमि सहित और भूमि रहित सदस्यो मे मत देने के अधिकार मे भेदभाव नही होना चाहिए। यदि कोई सदस्य समिति से अलग होता है तो उसे उसकी भूमि वापिस कर देनी चाहिए। इसके लिए कम से कम पाँच वर्ष की अवधि निश्चित कर देनी चाहिए। किन्तु कभी-कभी विशेष परिस्थितियो मे सदस्य समिति छोडता है तो उसे भूमि वापस कर देनी चाहिए। यदि किसी कारण समिति उसी सदस्य को भूमि देने मे असमर्थ हो रही हो तो उसी उत्पादकता की तथा उसी गुण वाली दूसरी भूमि उसे दे देनी चाहिए। इससे सदस्य अधिक आकर्षित हो सकते हैं।

(३) वित्तीय व्यवस्था :

सहकारी खेती समितियों को भूमि बन्धक बैंको मे सदस्य बनने देना चाहिए। इन बैंको से ये समितियां दीर्घकालीन ऋण प्राप्त कर सकती हैं। जिन भागो मे भूमि बन्धक अच्छी तरह से कार्य नही कर रही हैं उन भागो से राज्य सरकार दीर्घ कालीन ऋण की सुविधायें प्रदान करें। मध्यकालीन ऋणो के लिये केन्द्रीय सहकारी बैंक बहुत उचित हैं। सरकार भी इस प्रकार के ऋण प्रदान कर सकती हैं। सभी खेती समितियां केन्द्रीय बैंको से सम्बन्धित कर देनी चाहिएं। समिति के लिए अधिकतम साख सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए। सहकारी खेती समितियां यदि अपने कुटीर एव लघु उद्योगो के लिए सहायता चाहती है तो उन्हे प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अधिक अन्न उपजाओ, मिट्टी के कटाव आदि को रोकने के लिए सहायता दी जाती है तो समितियो को सहायता प्रदान करनी चाहिए। समितियो को अपने सदस्यो की सहायता करने के लिये लाभ में से कुछ धन संचित करना चाहिये। उनको आवश्यकता पडने पर ऋण प्रदान करना चाहिये। सदस्यो मे मितव्ययिता और बचत की आदत डालने का प्रयत्न करना चाहिए।

(४) कमजोर समितियों को पुनर्जीवित करना :

कमजोर समितियो का कार्य भली प्रकार नही चल पाता है अत इनको पुनर्जीवित करना चाहिए। भारत सरकार ने यद्यपि चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इस कार्यक्रम पर विशेष बल देने का प्रावधान किया है तथापि इस तरफ अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है समितियो की सख्या मे अधिक वृद्धि करने से कोई लाभ नही है बल्कि उनका आर्थिक आकार व सुदृढता आवश्यक है। समितियां अपने कार्यो को अच्छी तरह चला सकें ऐसी अवश्य होनी चाहियें। जिन समितियो की हालत बहुत खराब है उनका सुधार भी कठिन है उन्हे बन्द कर देना चाहिए।

(५) अधिक भूमि संचित की जाय :

इस प्रकार के प्रयत्न किये जायें कि समिति के कार्यक्षेत्र मे सभी सदस्यो की पूरी भूमि आ जाये। ऐसा निश्चित कार्यक्रम तैयार किया जाये कि धीरे धीरे सारी भूमि समिति मे लाने का प्रयत्न किया जाये। इससे समिति के पास भूमि की कमी नहीं रहेगी। अधिक भूमि सचय करने के लिये समिति को उचित नेतृत्व प्रदान करना चाहिए। इससे समिति मे विश्वास अधिक होगा। ऐसे व्यक्तियो को समिति के प्रबन्ध मे लगाया जाये जो कि अपने कार्य और व्यवहार से अधिक सदस्य बना सकें।

(६) नवीन विधियों तथा मशीनों का प्रयोग

सहकारी कृषि समितियों को बडी मात्रा मे उत्पादन करने के लिए सिंचाई, उन्नतिशील बीज, खाद, आधुनिक उपकरण तथा मशीनो की आवश्यकता पडती है। समितियाँ इन नवीन विधियो और औजारो को काम मे लें ताकि अधिक मात्रा मे उत्पादन हो सके। इससे उत्पादन लागत कम होगी और लाभ की मात्रा बढ जायेगी। लाभ बढ जाने से समितियो मे विश्वास बढ़ेगा और अधिक व्यक्ति आकर्षित हो सकेंगे।

(७) निरीक्षण व्यवस्था

सहकारी साख समितियो की कार्यप्रणाली की उचित समय पर जाँच होती रहनी चाहिये। समय समय पर निरीक्षण होने से गडबडियाँ नही होगी। खाते भी वैज्ञानिक तरीको से रखने चाहिएँ और उनके अकेक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिये।

(८) उत्तम कार्य की दशायें एव मानव सम्पर्क

श्रम की उत्पादकता बढाने के लिये उत्तम कार्य दशायें तथा मानव सम्पर्क बहुत आवश्यक है। इसके लिये श्रमिको के लिये काम के घण्टे निश्चित कर देने चाहिएँ। काम करन की उचित परिस्थितियाँ करनी चाहियें। श्रम कल्याण की व्यवस्था भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन सुविधाओ से श्रमिको की कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

(९) अन्य :

वित्तीय सहायता उन्ही समितियो की की जानी चाहिये जो कि वास्तव मे उन्नति करने लायक है। जो समितियाँ केवल सहायता के लिये ही गठित की गयी हैं उन्हें सहायता नही देनी चाहिये। सहकारी खेती तथा चकबन्दी कायक्रम का उचित समन्वय किया जाना चाहिये। नई स्थापित की जाने वाली समितियो मे सदस्यो मे भारी असमानता नही होनी चाहिए अर्थात् कुछ सदस्य बडे भूमिपति और कुछ बहुत छोटे और निर्धन किसान। लगभग एक जैसी आर्थिक स्थिति के किसानो को समिति का सदस्य बनाया जाना उचित रहता है।

उपरोक्त सुझावो के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो में सहकारिता के सिद्धान्तो की उचित जानकारी दी जानी चाहिये। सदस्यो को भी इसकी शिक्षा देनी चाहिये। आशा है भविष्य मे हमारी नवीन कृषि नीति मे सहकारी खेती महत्त्वपूर्ण कार्य करेगी।

प्रश्न

१. सहकारी कृषि से आपका क्या अभिप्राय है ? इसके गुण व दोपो की विवेचना कीजिए।

२. सहकारी खेती क्या है ? हमारे देश मे इसका क्या महत्त्व है ? सरकार ने पचवर्षीय योजनाओ मे इसके लिये क्या प्रयत्न किये हैं ?

३. सहकारी कृषि से क्या तात्पर्य है ? भारत मे यह कहाँ तक सफल हुई है।

४. भारतवर्ष मे सहकारी खेती की क्या-क्या समस्यायें हैं ? इनके निराकरण के उपाय बताइए।

५. 'सहकारी खेती' विषय पर एक निबन्ध लिखिये।

१२

बहुउद्देश्योय सहकारी समितियाँ
(Multipurpose Cooperative Societies)

सहकारी साख समितियाँ ग्रामीण क्षेत्रो मे किसानो की आर्थिक दशा सुधारने मे सफल नहीं हो सकी। हमारे देश मे यह विवाद उठा कि उन भागो मे एक उद्देश्यीय समितिया हो या अनेको उद्देश्यो की समितियाँ स्थापित की जायें। सन् १९३७ मे रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया की कृषि साख शाखा ने बहुउद्देश्यीय विचार धारा पर जोर दिया। उस समय से ऐसी समितियाँ स्थापित करने पर विचार किया जाने लगा। बहुउद्देश्यीय सहकारी समिति से तात्पर्य ऐसी समिति से है जो किसानो को साख के अतिरिक्त अन्य प्रकार की उचित सुविधायें भी प्रदान करें। एक से अधिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये समितियो का आकार भी बड़ा हो जाता है। बहुउद्देश्यो मे साख व्यवस्था, किसानो की उपज का विपणन, उनके लिये उन्नत बीज, खाद उपकरण व्यवस्था तथा किसानो की अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति करना, सम्मिलित किये जाते हैं। बहुउद्देश्यो मे मनोरजन शिक्षा स्वास्थ्य एव चिकित्सा भी सम्मिलित किये जा सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि एक समिति उपरोक्त सभी उद्देश्यो की पूर्ति करे। व्यवहार मे ये समितियाँ कुछ उद्देश्यो की पूर्ति करती हैं जैसे किसानो को साख और विपणन की सुविधायें प्रदान करती हैं। विश्व के अन्य देशो मे भी समितियाँ एक से अधिक उद्देश्यो की पूर्ति करती हैं। उदाहरण के लिये इगलैण्ड मे उपभोक्ता भण्डारो ने गृह निर्माण कार्य करना प्रारम्भ किया और जर्मनी मे साख समितियो ने विपणन का कार्य भी सम्पन्न किया। विदेशो म इस प्रकार की सफलता तथा भारत मे ग्रामीण साख समितियो की असफलता के कारण बहुद्देश्यीय समितियो का विकास बहुत विवाद करने के पश्चात् किया गया।

बहुउद्देश्योय सहकारी समितियाँ एक नियन्त्रण के अन्तर्गत अनेक कार्य करती हैं। भारतवर्ष मे ग्रामीण क्षेत्रो मे इन समितियो के विकास की बहुत सम्भावना है। एक ही ग्राम मे विभिन्न उद्देश्यो के लिये अलग-अलग समितियो की स्थापना अत्यन्त कठिन कार्य है। जैसा कि पूर्व कहा गया है एक उद्देश्य की समितियाँ केवल एक ही

कार्य करती हैं जैसे साख व्यवस्था या कृषि उपजो का विक्रय या उपभोग वस्तुओ की पूर्ति। द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ तक हमारे देश मे एक उद्देश्य की पूर्ति (विशेष कर ग्रामीण क्षत्रो मे साख व्यवस्था) की समितियाँ स्थापित हुई। किन्तु उस समय इस बात पर अधिक विचार किया गया कि ऐसी समितियाँ स्थापित की जायें जो साख के अतिरिक्त किसानो की अन्य आवश्यकताओ की भी पूर्ति कर सकें। वास्तव मे देखा जाये तो बहुउद्देश्यीय समितियाँ ग्रामीण साख समितियो के सुधार के रूप मे हैं। रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया ने सुझाव दिया था कि इन समितियो के माध्यम से किसानो और कारीगरो की दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकेगी जैसे उपज के लिये वित्त व्यवस्था, बीज, खाद- उपकरण और उपभोक्ता वस्तुओ आदि की व्यवस्था, उपज के विपणन की उचित व्यवस्था सहायक धन्धों को प्रोत्साहन आदि। इनके अतिरिक्त ये समितियाँ सामाजिक सगठन की सेवा करेंगी जो कि ग्रामीण दशाओ मे सुधार लायेंगी और उत्तम जीवन यापन की स्थिति पैदा करेंगी।[1] रिजर्व बैंक की इस सिफारिश को सन् १९४६ मे रॅयाल सीमा सहकारी जाँच समिति, मद्रास ने भी समर्थन दिया।[2] समिति के अनुसार वर्त्तमान ग्रामीण सहकारी समितियाँ अधिक उन्नति नही कर सकती हैं क्योकि पिछले अनेको वर्षो मे उनकी प्रगति देखी जा चुकी है अत उनमे सुधार करने के लिये बहुउद्देश्यीय समितियाँ स्थापित की जायें।

आवश्यकता

हमारे देश मे ग्रामीण क्षेत्रो मे सहकारी साख का ही अधिक विकास हो सका है। किसानो और ग्रामीण कारीगरो की अनेक आवश्यकतायें हैं जिनमे से साख एक है। इन लोगो को समितियो से ऋण मिल पाता है किन्तु अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये महाजनो तथा व्यापारियो पर निर्भर रहना पडता है। किसानो को उन्नत बीज, खाद तथा औजारो के लिये साहूकारो अथवा महाजनो पर निर्भर रहना पडता है। ऐसी स्थिति मे किसानो को लाभ नही हो सकता है। यदि विभिन्न उद्देश्यो की पूर्ति के लिये अलग-अलग समितियाँ स्थापित की जायें तो किसानो को अलग अलग व्यवहार करना पडता है। विभिन्न समितियो मे अलग सदस्यता ग्रहण करने के लिये प्रवेश शुल्क और अश खरीदने पडते हैं। अधिकांश ग्रामीण क्षत्रो मे किसान अनेको असुविधाओ के कारण कई प्रकार की समितियाँ स्थापित भी नही कर पाये हैं। अनेक समितियाँ स्थापित करने के लिये कई झझट उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ ग्रामो मे तो एक समिति की भी स्थापना कठिन होती है। अत. बहुउद्देश्यीय समितियो की बहुत आवश्यकता है।

देश मे सहकारी आन्दोलन को व्यापक बनाने मे इन समितियो का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रो मे यदि किसानो की अधिकाश आवश्यकताओं की पूर्ति सहकारी आधार पर पूरी की जाती है तो जनता में इसके प्रति विश्वास बढ़ेगा। जनता सहकारिता के सिद्धान्तो तथा उद्देश्यो से अधिक परिचित हो सकेंगी। इन

1. Reserve Bank of India Review of cooperative movement, 1939 46 p 10
2. Report of the Rayalaseema Coperative Enquiry Committee Madras (1946)

समितियो से सहकारिता का प्राथमिक ढांचा सुदृढ हो जायेगा। वर्तमान परिस्थितियो मे कमजोर समितियो का सुदृढीकरण किया जा रहा है। भविष्य मे ग्रामीण क्षेत्रो मे समितियाँ सगठित की जायें वे बहुउद्देश्यीय हो ताकि उनकी स्थिति अधिक सुदृढ हो। इन समितियो की गतिविधियाँ भी अधिक होगी जिससे कार्य भी व्यापक होंगे। फलत अधिक सहायता एव कार्यशील पूँजी होगी। ये समितियाँ जनता को अधिकाधिक सुविधायें प्रदान करके उनकी सुख समृद्धि मे वृद्धि कर सकेगी और देश मे सर्वांगीण विकास होने लगेगा।

बहुउद्देश्यीय समिति की विशेषता

इन समितियो की निम्नलिखित विशेषतायें हैं —

(१) बहुउद्देशीय समितियो का सगठन अनेको उद्देश्यो की पूर्ति के लिये किया जाता है। साख के अतिरिक्त किसानो तथा कारीगरो की जो आवश्यकतायें होती हैं उन्हे ये समितियाँ पूरा करती है।

(२) अनेको प्रकार के कार्यों का सचालन करने के कारण समितियो का कार्य क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक होता है। प्राय एक ग्राम या आस-पास के ग्रामो सहित ग्राम सम्मिलित किये जाते है।

(३) अपेक्षाकृत सदस्य सख्या अधिक होती है क्योकि समितियाँ कई कार्य करती हैं अत अधिकांश ग्रामीण व्यक्ति समितियो के सदस्य हो जाते हैं।

(४) समितियो का दायित्व सीमित होता है। इसलिये कार्यशील पूँजी भी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

(५) समितियाँ एच्छिक सगठन हैं और सदस्यता खुली होती है।

(६) समितियो का प्रबन्ध जनतान्त्रिक नियन्त्रण के आधार पर होता है। सामान्य सभा मे सर्वोच्च सत्ता निहित होती है।

(७) समितियो का कार्य वैतनिक कर्मचारियो द्वारा किया जाता है।

बहुउद्देश्यीय समितियो के लाभ

बहुउद्देश्यीय समितियाँ एक उद्देश्योय समितियो की तुलना मे अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं। एक उद्देश्यीय समितियाँ केवल साख व्यवस्था के उद्देश्य की ही पूर्ति करती हैं किन्तु बहुउद्देश्यीय समितियाँ अनेको आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये सुविधायें प्रदान करती हैं। ग्रामीण जनता के सर्वांगीण विकास मे इन समितियो का उल्लेखनीय योगदान हो सकता है। किसानो तथा कारीगरो को साहूकारो महाजनो तथा व्यापारियो के शोषण से बचाने के प्रमुख साधन ये समितियाँ हैं। मुख्य-मुख्य भाग निम्न प्रकार हैं —

(१) सर्वांगीण विकास में योगदान :

बहुउद्देश्यीय समितियाँ ग्रामीण जनता की अनेको आवश्यकताओ की पूर्ति करके उनके सर्वांगीण विकास मे योगदान देती हैं। पर्याप्त एव उचित सुविधायें प्राप्त करके सदस्य सुखी एव समृद्ध होते हैं। शिक्षा, मनोरजन, स्वास्थ्य, चिकित्सा तथा

ग्राम सुधार क्षेत्र मे भी समितियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं। समितियाँ सदस्यो को सम्पन्न करके उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाती हैं। किसानो की आय मे भी निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

(२) श्रम व समय की बचत :

बहुउद्देश्यीय समितियाँ अपने सदस्यो को एक स्थान पर अनेक सुविधायें प्रदान करती हैं। इससे उनके समय मे बचत होती है। क्योंकि इनके अभाव मे व्यक्तियो को कई स्थानो मे जाकर वस्तुयें खरीदनी पडेगी। अपनी उपजो को बाजार मे बेचने के लिये बहुत सा समय व्यर्थ खोना पडेगा। कुछ वस्तुयें जो ग्रामो मे उपलब्ध नही हैं उनके लिये शहरो मे जाकर लानी पडती हैं अत समय और श्रम दोनो अधिक पडते है। किन्तु ये समितियां श्रम और समय दोनो मे बचत कर देती हैं।

(३) मितव्ययिता :

कई कार्यो के लिये एक समिति होने के कारण व्यवस्थापकीय एव सगठन के व्ययो मे मितव्ययिता होती है। विभिन्न कार्यों के लिये कई समितियो के गठन से अलग अलग ये कार्य करने पडते हैं। समितियों के लिये अलग कार्यालयो की आवश्यकता पडती है तथा अलग अलग कर्मचारियो की नियुक्ति करनी पडती है। अत व्यर्थ का व्यय बढता है। बहुउद्देश्यीय समितियो की दशा मे ये खर्च टल जाते हैं और बडी मात्रा मे व्यापार के लाभ उपलब्ध हो जाते है।

(४) प्रबन्ध कुशलता के लाभ -

एक उद्देश्यीय समितियो की तुलना मे बहुउद्देश्यीय समितियो मे अधिक कुशल व्यक्ति नियुक्त किये जाते है। इन समितियो का कार्य क्षेत्र व्यापक होता है। आर्थिक स्थिति भी सुदृढ होती है अत वैतनिक प्रशिक्षित कर्मचारियो की नियुक्ति की जाती है। उचित प्रबन्ध के कारण लाभ की राशि भी अधिक होती है जिससे सहकारिता मे लोगो का अधिक विश्वास पैदा होता है।

(५) साख एवं विपणन में समन्वय :

साख समितियों और विपणन समितियो के पृथक-पृथक सगठित होने के कारण उनमे उचित समन्वय नही हो पाता है। सहकारी साख, सहकारी विपणन के साथ जोडने में कठिनाई उत्पन्न होती है किन्तु बहुउद्देश्यीय समितियाँ दोनो कार्य स्वय करती हैं अत दोनो कार्यों में उचित समन्वय सम्भव हो पाता है। सदस्यो को प्रदान किये गये ऋणों की वापसी मे अधिक कठिनाई नही होती क्योंकि विपणन कार्य के कारण किसानो की उपजें समिति द्वारा सम्पन्न की जाती है।

(६) सुदृढ आर्थिक स्थिति :

बहुधन्धी समिति होने के कारण सदस्य सख्या अधिक होती है और कार्यशील पूँजी भी अधिक होती है। समिति को यदि कोई एक कार्य मे हानि होती है तो वह दूसरे कार्यो मे पूरी हो जाती है। अत समितियाँ सफलतापूर्वक कार्य करती रहती हैं। सुदृढ स्थिति होने से जनता का इन पर विश्वास भी अधिक होता है। एक उद्देश्यीय समितियो की स्थिति सुदृढ नही पायी जाती है। देश मे अधिकांश ऋण समितियाँ कमजोर स्थिति मे है जिनका दृढीकरण किया जा रहा है।

भारतवर्ष मे बहुउद्देश्यीय समितियो ने उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास आदि राज्यो मे अच्छी प्रगति की है। इन राज्यो मे इन समितियो का उपजो के विपणन, किसानों के लिये बीज, खाद और औजार व्यवस्था, पुराने ऋण चुकाने मे योगदान कार्य सराहनीय है। इन समितियो ने मनोरंजन, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रो मे भी प्रशंसनीय कार्य किया है।

बहुउद्देश्यीय समितियो के दोष

बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियो मे कुछ दोष भी हैं। प्राय समितियो मे इतने कुशल व्यक्ति नही पाये जाते है जो कि इनकी विभिन्न क्रियाओ को अच्छी तरह से पूरा कर सकें। कुछ गाँवो मे समितियो का आकार भी छोटा होता है अत प्रशिक्षित कर्मचारियो की नियुक्ति बहुत कठिन होती है। ऐसी स्थिति मे एक उद्देश्य वाली समितियाँ भी उपयुक्त सिद्ध हो सकती हैं समितियो के मुख्य दोष निम्नाँ कित हैं —

(१) बहुउद्देश्यीय समितियो को कई कार्य करने पडते हैं अत कार्य प्रणाली बहुत जटिल हो जाती है। ग्रामीण व्यक्ति इन सब बातो को नही समझ पाते हैं अत कुछ ही व्यक्ति समितियो के सचालन मे भाग लेकर अपने स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

(२) विभिन्न कार्यों से यह ज्ञात करना कठिन होता है किस कार्य में सफलता मिली है और किस मे नही। एक कार्य के लाभो से दूसरे कार्य की हानि पूरी की जाती है। इससे एक काय की हानि को दूसरे कार्यो के लाभो से छुपाया जाता है।

(३) अनेको कार्यों का एक साथ सम्पादन करने के कारण विभिन्न समस्यायें अच्छी तरह से पूरी नहीं की जाती हैं। एक उद्देश्य वाली समिति अपने कार्य को अधिक कुशलता के साथ सम्पन्न कर सकती है।

(४) साख की विपणन के साथ सम्बन्धित करने से भी कभी-कभी अविवेक पूर्ण ऋण प्रदान किये जाते हैं। समितियाँ विपणन को बढाने के लिये सदस्यो को अधिक मात्रा मे ऋण दे देती हैं।

(५) बहुउद्देश्यीय समितियो मे सदस्यो का दायित्व सीमित होता है जिसका कि विरोध किया जाता है।

उक्त दोषो को देखकर हम यह नहीं कह सकते कि बहुउद्देश्यीय समितियाँ उपयुक्त नही है। वास्तव मे देखा जाये तो इन समितियो की वर्तमान समय मे बहुत आवश्यकता है। इनके माध्यम से ग्रामोत्थान किया जा सकता है। द्वितीय पचवर्षीय योजना से सहकारिता के विकास के लिये सुसगठित कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। पहले तो कृषि साख ही आन्दोलन का आधार था किन्तु सन् १९५६ के पश्चात् विपणन व्यवस्था को भी उचित स्थान दिया गया है। ग्रामीण विकास के लिये सहकारिता का आधार स्वीकार किया जा चुका है जिसके लिये सहकारी बहुउद्देश्यीय समितियाँ अत्यन्त महत्व की हैं।

बहुउद्देश्यीय समितियो की प्रगति

रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया ने सन् १९३७ मे बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियाँ स्थापित करने का सुझाव दिया। इसके दो वर्ष पश्चात् विभिन प्रान्तो के सहकारी

पंजीयन अधिकारियों ने इनका समर्थन किया। सरैया समिति ने सन् १९४६ में बहुउद्देश्यीय समितियों का सुझाव दिया। इस समिति ने सुझाव दिया कि दस वर्ष की अवधि में ५० प्रतिशत गाँव और ३० प्रतिशत जनसंख्या इन समितियों के अन्तर्गत आ जायें। सन् १९४७ से प्रथम योजना प्रारम्भ होने से पूर्व तक इन समितियों के विकास में पर्याप्त सफलता मिली। वर्ष १९५०-५१ में ऐसी समितियों की संख्या ४० हजार थी। सन् १९५५-५६ में इन समितियों की संख्या ६५ हजार थी जो कि १९५९-६९ में बढ़कर ७५ हजार हो गयी। सदस्यता २४ लाख से बढ़कर ४४ लाख हो गयी।

पिछले वर्षों में यह अनुभव किया गया है कि बहुउद्देश्यीय समितियाँ अधिक सफल नहीं हो पायी हैं। प्राय समितियाँ एक उद्देश्य की पूर्ति तो अच्छी तरह से कर सकती हैं। किन्तु कई उद्देश्यों की पूर्ति करना बहुत कठिन है। इन समितियों की पर्याप्त सफलता के अभाव में भारत वर्ष में वृहत्ताकार समितियाँ स्थापित की जाने लगी और वर्तमान समय में सेवा सहकारी समितियाँ स्थापित की जाने लगी हैं। सेवा समितियाँ भी बहुउद्देश्यीय विचार धारा के अन्तर्गत हैं। इन समितियों के भी एक उद्देश्य न होकर कई उद्देश्य हैं। इनका प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है।

प्रश्न

१ बहुउद्देशीय सहकारी समितियों से आपका क्या अभिप्राय है? इनकी क्या आवश्यकता है।

२ बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों के लाभ हानि की विवेचना कीजिये।

३. बहुउद्देशीय समिति की प्रगति का संक्षिप्त विवरण दीजिये।

१३

भारत मे सहकारी समितियों का प्रबन्ध
(Management of Co-operative Societies in India)

सहकारी समितियों का प्रबन्ध जनतान्त्रिक ढग से होता है। एब्राहम लिंकन के अनुसार जनतान्त्रिक प्रशासन के अन्तगत सरकार जनता की, जनता द्वारा तथा जनता के लिये होती है।[1] सहकारी समिति का प्रबन्ध, सदस्यो का, सदस्यो के लिये, साधारण सभा और प्रबन्धक मण्डल के माध्यम से किया जाता है। साधारण सभा मे समिति की सर्वोच्च सत्ता निहित है।[2] सामान्यत प्रबन्ध तीन प्रकार का होता है—उच्च स्तरीय, मध्यस्तरीय तथा निम्न स्तरीय। उच्च स्तरीय प्रबन्ध के अन्तगत प्रबन्धक मण्डल होता है जो कि साधारण सभा के निर्णयो तथा नीतियो को कार्य रूप मे परिणित करवाता है। साधारण सभा नीतियो से सम्बन्धित निर्णय लेती है। साधारण सभा मे सभी सदस्यों को समान अधिकार प्राप्त हैं। निर्णय लेने मे सभी को समान सुविधायें दी जाती हैं। कोई भी सदस्य नीति निर्माण के समय स्वतन्त्र रूप से अपने विचार व्यक्त कर सकता है। इस मे "एक व्यक्ति एक मत" का सिद्धान्त काम मे लिया जाता है। स्पष्ट है कि प्रबन्ध मे पूंजी की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्त्व दिया जाता है। सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलो मे आम सभा अथवा साधारण सभा मे अंशो के आधार पर मत देने का अधिकार होता है। अत इन सस्थाओं मे मनुष्य की अपेक्षा पूंजी को अधिक महत्त्व दिया जाता है। सभी प्रकार के महत्त्वपूर्ण निर्णय साधारण सभा मे बहुमत के आधार पर लिये जाते हैं इसलिये समितियो का प्रबन्ध स्वयं सदस्यो के हाथो मे होता है। सदस्यो द्वारा चुने हुये व्यक्ति प्रबन्धक समिति अथवा सचालक मण्डल मे आते हैं जो कि उनके निर्णयो के आधार पर समितियो के सचालन की व्यवस्था करते हैं।

---

1. Government of the people, by the people, for the people.'' —Abraham Lincon.
2. The General Body is the supreme authority of the society in whom the ultimate authority lies

कभी-कभी समिति के सदस्य बहुत अधिक हो जाते हैं और सदस्यों के पास समय भी कम होता है। ऐसी स्थिति में तदर्थ (ad hoc Committees) समितियाँ गठित की जाती हैं जिनमे समिति के सभी सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं। ये तदर्थ समितियाँ समय-समय पर निरन्तर कार्य मे आने वाले नीति सम्बन्धी मामलो, जैसे क्रय, विक्रय, कर्मचारियो का चयन, सदस्य की शिक्षा आदि पर निर्णय लेती हैं। तदर्थ समितियाँ साधारण सभा द्वारा नियुक्त की जाती हैं जिनमे सदस्यों के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं।

साधारण सभा

साधारण सभा समिति के सभी सदस्यों की बनी होती है। साधारण सभा मे समिति की सर्वोच्च सत्ता रहती है। यदि इस मे सदस्य अधिक होते हैं तो प्रतिनिधि साधारण सभा नियुक्त की जाती है।

सदस्यता

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है साधारण सभा मे समिति के सभी सदस्य सम्मिलित रहते हैं। समितियो में सदस्यता खुली एव एच्छिक होती है। कोई भी साधारण बुद्धि तथा अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति सदस्य बन सकता है। प्रत्येक सदस्य को अपनी इच्छानुसार समिति छोडने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। प्राथमिक समितियो मे सदस्य व्यक्ति होते हैं। किन्तु सघीय सस्थाओ मे समितियाँ सदस्य होती है।

साधारण सभा के कार्य

साधारण सभा समिति की सर्वोच्च सत्ता है। नीति सम्बन्धी तथा अनेक महत्त्वपूण निणय इसी मे लिये जाते हैं। उसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं

(१) साधारण सभा प्रबन्धक मण्डल अथवा सचालक मण्डल का चुनाव करती है। सचालक मण्डल साधारण सभा के महत्त्वपूण निणया एव नीतियो को कार्य रूप मे परिणित करता है। अत इसके चुनाव मे बडी सावधानी रखनी पडती है। सचालको के चुनाव मे भी सभी सदस्यो को समान अधिकार प्राप्त हैं। एक व्यक्ति का एक मत' के सिद्धान्त के आधार पर चुनाव होता है।

(२) साधारण सभा अकेक्षको की नियुक्ति करती है। अकेक्षक समिति के खातो का अकेक्षण करते हैं अत उनकी नियुक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(३) सचालक मण्डल, सस्था या किसी व्यक्ति द्वारा रखे गये प्रस्तावो को साधारण सभा पास कर सकती है, अस्वीकार कर सकती है अथवा उसमे सशोधन कर सकती है। ये प्रस्ताव निम्न हो सकते हैं —

(a) अधिकारियो के प्रतिवेदन जिनमे व्यापारिक और लाभ-हानि-खाता, पक्की तलपट, अकेक्षकों की रिपोट आदि सम्मिलित हैं।

(b) लाभ अथवा आधिक्य को लगाना, रक्षितनिधि तथा अन्य कोषो मे रखी गयी धन राशि, ब्याज का भुगतान, अश पूंजी पर लाभाश, क्रय पर बोनस अथवा छूट देना आदि।

(c) किसी सदस्य को बाहर निकालना।

(d) समिति का विघटन, एक दूसरे मे मिलना तथा विलय।

(e) समिति का बजट। यद्यपि बजट को स्वीकार करना सचालक मण्डल का कार्य है किन्तु कुछ समितियों के उप-नियमो में यह व्यवस्था होती है कि समिति का बजट आम सभा म स्वीकार किया जाना आवश्यक है।

(f) समिति के उप-नियमों मे परिवर्तन।

(g) कभी-कभी सचालक मण्डल के महत्त्वपूर्ण नीति सम्बन्धी निणय जैसे क्रय अथवा भवन निर्माण आदि साधारण सभा के सामने सूचनार्थ अथवा सुधार के लिये रखे जाते हैं।

(४) आवश्यकता पडने पर साधारण सभा तदर्थ समिति अथवा प्रतिनिधि साधारण सभा की भी नियुक्ति करती है।

(५) समस्त महत्त्वपूर्ण एव नीति सम्बन्धी निर्णय साधारण सभा में लिये जाते है।

(६) साधारण सभा सचालक मण्डल को सत्ता डेलेगेट करती है।

(७) सचालक मण्डल को समिति के प्रबन्धक के विषय मे साधारण सभा आवश्यक निर्देशन भी देती है।

प्राथमिक समितियों मे यदि सदस्य सख्या बहुत अधिक है तो साधारण सभा को समय-समय पर बैठके अत्यन्त कठिन हो जाती है क्योंकि न तो सदस्यों के पास इतना समय है कि वे बैठक मे सम्मिलित हो सकें और न ही इतनी जगह बैठक के लिए होती है। अत प्रतिनिधि साधारण सभा की नियुक्ति की जाती है।

सचालक मण्डल (*Board of Directors*)

सचालक मण्डल मे साधारण सभा द्वारा चुने गये प्रतिनिधि (सचालक) सदस्य होते हैं। साधारणत प्रधान मैनेजर को भी इसमे सदस्य बनाया जाता है जिसको मत देन का भी अधिकार प्रदान किया जाता है। सचालक मण्डल मे सरकार के मनोनीत व्यक्ति भी सदस्य हो सकते हैं। यदि सरकार अश पूजी मे योगदान देती है तो निश्चय ही उसका प्रतिनिधि होना चाहिये। कुछ ऐसे उदाहरण भी देखने को आये हैं जिनमे अधिकांश सदस्य सरकार के मनोनीत किये हुये हैं। किन्तु मिर्धा समिति (१९६४) ने अपने प्रतिवेदन मे सरकार के मनोनीत व्यक्तियों की सख्या निश्चित करने को कहा है। सामान्यत सरकार जिन समितियो मे अश पूंजी का अंशदान करती है उनमें कुछ सचालक (साधारणतया तीन अथवा कुल सचालको की सख्या का एक तिहाई जो भी कम हो) वह मनोनीत कर सकती है।

बनावट एवं अवधि

सचालक मण्डल मे सचालकों की सख्या न तो अधिक होनी चाहिये और न बहुत कम। कुछ विद्वानों का मत है कि जहाँ तक हो सके सचालको की सख्या कम होनी चाहिये। अधिक सख्या होने से शीघ्र निणय नहीं लिये जा सकते हैं। सहकारी

समितियो के लिये ७ से ९ सदस्य सचालक मण्डल मे तो हो उपयुक्त है। यदि इनकी सख्या ९ या ११ से अधिक है तो सबसे ऊपर एक अन्य समिति नियुक्त कर देनी आवश्यक है।[1] यदि सचालक मण्डल मे सचालको की सख्या कम है तो निणय बिना कठिनाई के लिया जा सकते है। बडे सचालक मण्डल मे निणय लेने मे देर हो जाती है क्योंकि कई व्यक्तियो का शीघ्र एक मत होना कठिन है। इसके अतिरिक्त सचालको की बैठकें भी छोटे सचालक मण्डल की स्थिति मे आसानी से हो सकती है। भारतवर्ष मे अनेक सहकारी समितियो मे सभी सचालक एक साथ रिटायर होते है। किन्तु आजकल वैज्ञानिक एव आधुनिक प्रबन्ध मे यह उचित नही है। इसके लिये अलग समाप्त अवधि उपयुक्त समझी जाती है। इसमे सभी सचालक एक साथ न रिटायर होकर कुछ अवधि के अन्तर से होते है। इससे निम्नलिखित लाभ होते हैं —

(i) प्रबन्ध को निरन्तर जारी रखने के लिये उपयुक्त रहतो है।

(ii) प्रबन्ध मे अकस्मात परिवर्तन नही होने देने के लिये भी अच्छी रहती है। क्योंकि अल्प अवधि के लिये चुने गये सचालक अचानक ऐसे निर्णय नही ले लें जिससे बहुत बडा और मूलभूत परिवर्तन हो जाये।

(iii) पहले के चले आ रहे प्रबन्ध के अनुभव का लाभ उठाने के लिये एक साथ सभी सचालको को रिटायर करना अनुचित है।

अत यह विधि बहुत ही उपयुक्त समझी जाती है। इस व्यवस्था मे पहले के प्रबन्ध की अच्छाइयो को अपनाया जा सकता है। एक दम परिवर्तन हो जाने से सचालक मण्डल के कार्य मे आरम्भ मे कठिनाई आती है और निर्णय लेने मे अधिक समय लग जाता है जिससे समिति को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है।

कार्य (Functions)

सचालक मण्डल को साधारण सभा अपनी शक्ति का प्रतिनिधित्व (delegation of Authority) प्रदान करती है। साधारण सभा नीति सम्बन्धी निणय लेकर उन्हे कार्य रूप मे परिणित करने के लिये सचालक मण्डल को सौप देती है। सचालक मण्डल अपने यहाँ—सहकारी समिति अधिनियम की सीमाओ के अन्दर, साधारण सभा के निर्देशनो के अन्तगत अपनी शक्ति को कार्य रूप देता है।[2] इसको समिति के नियमो, उप-नियमो और साधारण सभा मे जो प्रस्ताव पास हुये हैं आदि को ध्यान मे रखकर निर्णय लेने पडते है। सचालक मण्डल के मुख्य कार्य निम्नलिखित है

(१) सचालक मण्डल साधारण सभा से अधिकार प्राप्त करके उनको कार्य रूप मे परिणित करवाता हैं।

(२) संचालक गण जन समुदाय के ट्रस्टी के रूप मे कार्य करते है।

---

1 Indian Co operative Review, Aprial 1969, p 1004

2 Management Cadre for Co operatives by K K Taimni, Kurukshetra' November 1968 p 17.

(३) यह समिति के उचित सचालन के लिये आवश्यक निर्णय लेता है। निर्णय बहुमत के आधार पर लिये जाते हैं।

(४) सचालक मण्डल प्रधान मैनेजर की नियुक्ति करता है। इसके अतिरिक्त यह अन्य उच्च अधिकारियों की नियुक्तियाँ भी कर सकता है।

(५) समिति के कार्य के लिये सचालक मण्डल समिति के सदस्यों के प्रति उत्तरदायी होता है।

(६) यह समिति के प्रबन्ध की उचित व्यवस्था करता है।

(७) संचालक मण्डल का अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य है समय-समय पर समिति की प्रगति की जाँच करना।

(८) समिति को समय-समय पर बाहरी निधियों की आवश्यकता पडती है। सचालक मण्डल इन आवश्यक निधियों को उधार लेने की व्यवस्था करता है।

(९) साधारण सभा की साधारण और विशेष बैठकें सम्पन्न कराना और उनके लिये एजेण्डा स्वीकार करना।

(१०) समिति मे सदस्यों के प्रवेश स्वीकार करना, सदस्यो के हिस्सों का हस्तांतरण, अशो को वापिस लेने से सम्बन्धित विषयों पर कार्य करना।

(११) समिति की तरफ से वैधानिक कार्यवाहियाँ करना और आवश्यकता पडने पर समझौता करना।

(१२) समिति के कर्मचारियों के लिये सेवा नियम (Services rules) बनाना जिनमे वेतनमान एव भत्ते निर्धारित करना, कर्मचारी कल्याण कार्यक्रम चालू करना आदि।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त समितियों के स्वभाव के आधार पर संचालक मण्डल अलग-अलग कार्य करते हैं। वस्तुत ये समिति के सभी मामलो को सम्भालते हैं। सचालक मण्डल के कर्तव्यों में कमचारियों की नियुक्ति, नियन्त्रण, सेवा निवृत्ति, उचित हिसाब-किताब रखना, निधियों की व्यवस्था करना, ऋण स्वीकार करना और उनकी देखरेख करना तथा समिति के व्यापार सम्बन्धी लेख पत्रों मे प्रतिनिधित्व करना आदि सम्मिलित किये जाते हैं। सचालक मण्डल मे निर्णय बहुमत से लिये जाते हैं और समिति की उप-नियमावली मे बैठक का कोरम (quorum) भी तय किया हुआ होता है। इस प्रकार समिति के प्रबन्ध मे सचालक मण्डल का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

शक्ति का प्रतिनिधित्व सौंपना (Delegation of Power)

अच्छे प्रबन्ध मे सचालक मण्डल मैनेजर को अपनी *सत्ता अथवा शक्ति का* स्पष्ट प्रतिनिधित्व सौंप देते हैं। व्यवसाय सगठन जितना अधिक बडा होता है शक्ति का प्रतिनिधित्व बढता जाता है। अधिकांश सहकारी समितियों मे सचालक मण्डल दिन प्रति दिन के मामलो मे अपनी शक्ति का प्रयोग नही कर पाते हैं। अत उनको अपनी शक्ति कार्य करने के लिये पूरे समय काम करने वाले मैनेजर को देनी पडती है। प्रतिनिधित्व के लिये शक्ति वही व्यक्ति या मण्डल दे सकता है जिसके पास स्पष्ट शक्ति होती है। अत मण्डल केवल वही शक्तियाँ मैनेजर को प्रतिनिधित्व के लिये सौंप सकता है जो कि उसके पास हैं। यह ध्यान मे रखने योग्य बात है कि सचालक

मण्डल अपनी शक्तियाँ मैनेजर को सौंप देता है किन्तु वह उत्तरदायित्व (Responsibility) का हस्तातरण नही कर सकता है। साधारण सभा के प्रति सचालक मण्डल उत्तरदायी होता है। यद्यपि मैनेजर, सचालक मण्डल के लिये उत्तरदायी होता है किन्तु इसमे सचालक मण्डल का साधारण सभा के प्रति उत्तरदायित्व समाप्त नहीं हो जाता।

जनरल मैनेजर (General Manager)

जनरल मैनेजर समिति के सगठन मे सर्वोच्च अधिकारी होता है जो कि समिति का कार्य सचालित करता है। सचालक मण्डल इसकी नियुक्ति करता है। मैनेजर की कुशलता पर समिति की सफलता निर्भर होती है। भारतवर्ष मे अधिकाश समितियो मे कुशल प्रबन्धको का अभाव पाया जाता है। इसका मुख्य कारण सहकारिता के क्षेत्र मे प्रबन्धको को पर्याप्त वेतन नही प्रदान किया जा सकता है जबकि सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र मे कुशल प्रबन्धको को अच्छा वेतन दिया जाता है। प्रबन्धको को समय-समय पर अनेको निर्णय लेने पडते है। किन्तु योग्यता के अभाव मे न तो ये शीघ्र निर्णय ले पाते हैं और न ही उचित निणय हो पाते हैं। फलत समितियाँ कुशलता पूर्वक कार्य करने मे असमथ होती हैं।

कार्य (Functions)

प्रधान प्रबन्धक (General Manager) प्रबन्धक मण्डल अथवा सचालक मण्डल के नीति निर्णयों के अन्तर्गत प्राप्त शक्तियो को समिति के प्रबन्ध के काम मे लाता है। इसके मुख्य कार्य निम्न लिखित है —

(१) प्रधान प्रबन्धक समिति के सम्पूर्ण सगठन के प्रधान के रूप मे कार्य करता है। समिति के कार्य की निरन्तर देख रेख करता है।

(२) प्रधान प्रबन्धक क्रय, मूल्य निर्धारण, विक्रय आदि के सम्बन्ध मे दिन प्रतिदिन विचार विमर्श का प्रबन्ध करता है।

(३) वह मासिक व्यावसायिक प्रतिवेदन सचालक मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करता है।

(४) वह समिति के वार्षिक और मासिक क्रय, विक्रय, लागत व्यय आदि के सम्बन्ध मे बजट तैयार करता है और उसे मण्डल के समक्ष मजूर करवाने के लिये प्रस्तुत करता है।

(५) बडे आकार की समितियो मे अपने से नीचे के कर्मचारियो की नियुक्ति तथा सेवा निवृत्ति करता है।

(६) नीचे के स्तर के कर्मचारियो के वेतन मान भत्ते निर्धारित करना तथा वृद्धि (In rements) देना भी प्रधान प्रबन्धक को अनेक समितियों मे सौपा जाता है।

(७) सचालक मण्डल की बैठकों मे प्रधान प्रबन्धक भाग लेता है। वह अपने अनुभव तथा समस्यायें मण्डल के समक्ष रख सकता है और अपनी राय भी व्यक्त कर सकता है। कुछ समितियों के मण्डलों मे प्रधान प्रबन्धक को मत देने का अधिकार भी दिया जाता है।

(८) समिति के सचालन के दिन प्रतिदिन के मामलो मे निर्णय भी लेता है।

(९) समितियो का उचित हिसाब-किताब रखने की जिम्मेवारी प्रबन्धक की होती है।

(१०) प्रबन्धक अपने अन्तर्गत सगठन मे सभी विभागो जैसे हिसाब किताब विभाग (Accounts Department), क्रय विभाग, विक्रय विभाग, उत्पादन विभाग सामान्य प्रबन्ध विभाग आदि में उचित समन्वय (Co-ordination) स्थापित करता है।

(११) प्रबन्धक सम्बन्धित विभागो को प्रबन्धक मण्डल अथवा सचालक मण्डल के निर्णयो से अवगत कराता है।

स्पष्ट है कि प्रधान प्रबन्धक सगठनात्मक ढाँचे मे एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है जो कि सचालक मण्डल के निणयो को कार्य रूप मे परिणित करवाता है। वह अपने से नीचे के अधिकारियो को उनके विभागो से सम्बन्धित शक्ति का प्रतिनिधित्व सौंपता है। अत वह एक प्रमुख प्रशासक होता है।

बडे आकार की उपभोक्ता सहकारी समितियो मे प्रजातांत्रिक प्रबन्ध का चार्ट निम्न प्रकार हो सकता है —

उपभोक्ता सहकारी समिति में प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध[1]

1 Indian Co-operative Review
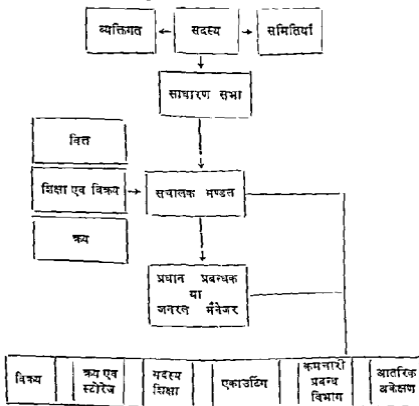
उक्त चार्ट एक बडे आकार की उपभोक्ता सहकारी समिति के प्रबन्ध का है। इसमे सदस्य सर्वोपरि होते हैं। इन समितियो मे समितियाँ तथा व्यक्तिगत सदस्य दोनो प्रकार के होते हैं। सदस्यो के पश्चात् साधारण सभा आती है जिसमे समिति की सर्वोच्च सत्ता निहित है। साधारण सभा मे सभी सदस्य सम्मिलित होते हैं। साधारण सभा के पश्चात् सचालक मण्डल का स्थान है जिसमे साधारण सभा के चुने हुये प्रतिनिधि होते हैं। सचालक मण्डल प्रधान प्रबन्धक की नियुक्ति करता है। प्रधान प्रबन्धक के पश्चात् विक्रय, क्रय एवं स्टोरेज, सदस्य शिक्षा, एकाउन्टस, कर्मचारी प्रबन्ध (Personnel Administration) तथा आन्तरिक अकेक्षण विभाग आते हैं।

कर्मचारी नीति (Personnel Policy)

किसी भी व्यवसाय सस्था की सफलता उचित मनुष्य शक्ति, मशीन तथा कच्चेमाल के उचित उपभोग पर निर्भर है। मनुष्य शक्ति के उत्तम उपयोग के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिको को उचित सुविधायें प्रदान की जायें। समितियो के प्रबन्धको को इस प्रकार की परिस्थितियाँ बनानी चाहिएँ जिससे श्रमिको को अधिकतम सतोष मिल सके। श्रमिको को विभिन्न सुविधायें प्रदान करने के लिए कर्मचारी सम्बन्ध का एक अलग विभाग बडी-बडी समितियो मे स्थापित किया जा सकता है। कर्मचारी प्रबन्ध (Personnel Administration) विभाग के निम्नलिखित कार्य हो सकते हैं —

(१) कर्मचारी की नियुक्ति एव पदोन्नति

कर्मचारी प्रबन्ध मे कर्मचारियो की नियुक्ति एक महत्त्वपूर्ण अग है। कर्मचारियो की नियुक्ति के समय यह ध्यान मे रखना चाहिये कि कार्य के लिये उचित श्रमिको को नियुक्त किया जाये। जो व्यक्ति जिन कार्यों के योग्य हैं उन्हें उन्ही कार्यो मे लगाया जाये। सहकारी समितियो मे नियुक्ति करते समय सदस्यो को प्राथमिकता दी जाती है। यदि सदस्य पर्याप्त मात्रा मे नही उपलब्ध हो तो अन्य व्यक्तियो को भी नियुक्त किया जाता है। भारतवर्ष मे सहकारिता के क्षेत्र मे नियुक्तियाँ इतनी वैज्ञानिक विधियो से नही की जाती है जितनी सार्वजनिक क्षेत्र एव निजी क्षेत्र की सस्थाओ मे की जाती है। समितियो मे नियुक्ति करते समय यह ध्यान मे रखना चाहिये कि प्रशिक्षित अनुभवी व्यक्तियो को प्राथमिकता दी जाये। अच्छे व्यक्तियो को आकर्षित करने के लिये अधिक वेतन व्यवस्था भी आवश्यक है।

नियुक्त किये गये कर्मचारियो को भविष्य मे पदोन्नति की सुविधा प्रदान करनी चाहिये। पदोन्नति करते समय अनेक बातो को ध्यान मे रखना चाहिये। ऐसे व्यक्तियो को पदोन्नति नही देनी चाहिये जो उसके योग्य नही हो। उचित आधार पर पदोन्नति करने से कर्मचारियो के उत्साह मे वृद्धि होती है। फलत उनकी कार्यक्षमता मे भी उन्नति होती है।

(२) मजदूरी एवं वेतन प्रबन्ध

कर्मचारी प्रबन्धन मे उचित मजदूरी नीति अत्यन्त आवश्यक है। कार्य के अनुसार श्रमिको को पर्याप्त मजदूरी देनी चाहिये। मजदूरी एव वेतन निर्धारण मे वैज्ञानिक विधियो को अपनाना आवश्यक है। सामान्यत कर्मचारियो की बुनियादि

आवश्यकताओ की पूर्ति हो जाये इतना वेतन आवश्यक रूप से देना चाहिये अन्यथा कर्मचारी मानसिक दृष्टि से पीडित होंगे और उनके उत्साह मे कमी आ जायेगी। सहकारिता के क्षेत्र मे मजदूरी दरे और वेतन मान ऐसे होने चाहिये कि कुशल, अनुभवी एव प्रशिक्षित कर्मचारी आसानी से आकर्षित किये जा सकें। अभी तक हमारे देश मे सहकारिता के क्षेत्र में कर्मचारियो को बहुत कम वेतन दिया जाता है जिसके कारण अच्छे व्यक्ति इस तरफ न आकर सार्वजनिक अथवा निजी क्षेत्र की सस्थाओ मे चले जाते हैं।

(३) प्रशिक्षण सुविधायें :

उत्तम प्रबन्ध के लिये प्रशिक्षण अनिवार्य है। कर्मचारियों को उचित ढग से प्रशिक्षण प्रदान करने से उनकी कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है। नव नियुक्त कर्मचारी प्रशिक्षण के अभाव मे अकुशल होते हैं अत वे कार्य करने मे असमर्थ होते हैं। भारतवर्ष मे प्रशिक्षण सुविधायें सहकारी समितियो से तो कोई विशेष प्रदान नही की जाती हैं किन्तु अन्य सस्थाओ के अन्तर्गत प्रशिक्षण दिया जाता है। इस अध्याय के अन्त मे इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

(४) स्वास्थ्य एव सुरक्षा

आजकल सहकारिता के क्षेत्र मे उद्योगो की स्थापना भी होने लगी है। इन उद्योगो मे मशीनो से काम चलाया जाता है। कभी-कभी इनमे अनेक कारणो से दुर्घटनाये घट सकती हैं अत श्रमिको को सुरक्षा सुविधाये प्रदान करनी चाहिए। कर्मचारियो के स्वास्थ्य के लिये भी सुविधायें प्रदान करनी चाहिए। ये सुविधाये निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्रो मे पर्याप्त मात्रा मे प्रदान की जा रही हैं अत इस क्षेत्र मे भी इस तरफ ध्यान देना आवश्यक है।

(५) कल्याण कार्यक्रम

श्रमिको को कार्य करने की दशा सुधारने के लिए कल्याण कार्यक्रम अपनाये जाते है। कल्याण कार्यक्रमो मे गृह सुविधा, ठण्डे पानी की व्यवस्था, जल-पान-गृह व्यवस्था, आराम गृह आदि सुविधायें सम्मिलित की जा सकती हैं। इन सुविधाओ से श्रमिको एव कर्मचारियो की कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है। भारतवर्ष मे सहकारिता के क्षेत्र मे ये सुविधायें बहुत कम प्रदान की जा रही हैं। इसका कारण है समितियो का छोटा आकार तथा उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होना। भविष्य मे बडे आकार की समितियो मे ये सभी सुविधायें प्रदान करनी चाहिए।

(६) अन्य सुविधायें

अन्य सुविधाओ के अन्तर्गत प्रोविडेन्ड फण्ड, बोनस काम के उचित घण्टे, वेतन सहित छुट्टियो की सुविधाये आदि हैं। इनके माध्यम से कर्मचारियो का पर्याप्त सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। ये सुविधाये बडी समितियो विशेषकर उपभोक्ता भण्डार, शहरी सहकारी बैंक आदि मे प्रदान की जा रही हैं।

श्रम सम्बन्ध (Labour Relations)

भारतवर्ष मे निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना मे सहकारी समितियो मे श्रम-सम्बन्ध अच्छे पाये जाते हैं। इसके अनेक कारण हैं। प्रथम, श्रमिक कम

संख्या में होते हैं अतः वे संगठित नहीं हो पाते हैं। द्वितीय, इन समितियों के कर्मचारियों में श्रमिक संघों का अभाव पाया जाता है। समितियाँ अधिकाश ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाती है अतः श्रम संघों से उनका सम्पर्क नहीं हो पाता है। तृतीय, अधिकाश श्रमिक एवं कर्मचारी अशिक्षित होते हैं, अकुशल होते हैं अतः वे किसी भी प्रकार से अपने सम्बन्ध प्रबन्ध से नहीं तोड़ते हैं। चतुर्थ अधिकाश समितियों में सदस्य ही कार्य करते हैं अतः वे स्वयं प्रबन्ध में होते हैं और स्वयं कर्मचारी भी।

सहकारिता क्षेत्र में श्रम-सम्बन्ध अच्छे होने का प्रमाण यह हो सकता है कि निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में इसमें हड़तालें तथा तालाबन्दी नहीं के बराबर है। सामान्यतः सहकारी समितियों के कर्मचारी हड़तालें नहीं करते हैं अतः तालाबन्दी की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है। आजकल धीरे धीरे कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। इसके कारण श्रम-सम्बन्ध कुछ ढीले पड़ने लगे हैं। जिन समितियों में श्रमिक एवं कर्मचारी संख्या अधिक है और वे संगठित हैं वहाँ अपनी माँगें पूरी करवाने के लिए हड़तालें भी कर देते हैं। शहरी क्षेत्रों में जो समितियाँ हैं उन पर अन्य क्षेत्रों की संस्थाओं का प्रभाव पड़ चुका है। उदाहरण के लिए शहरी सहकारी बैंकों के कर्मचारी बैंकों के श्रमिक संघों के सदस्य बनते हैं और आवश्यकता पड़ने पर हड़ताल भी कर देते हैं। ग्रामीण समितियों में अभी तक इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है।

सहकारी समितियों में श्रम सम्बन्ध बहुत अच्छे होने अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि इनमें अधिकाश कर्मचारी मालिक (समिति के सदस्य) भी होते हैं। आजकल श्रमिकों एवं कर्मचारियों को समितियों के सदस्य बनाये जा रहे हैं जिससे यदि कोई शिकायत होती है तो वे साधारण सभा में रख सकते हैं। सहकारिता के क्षेत्र में कर्मचारियों में सेवा भावना भी होती है अतः वे अधिक सुविधाओं की तरफ ध्यान नहीं देते हैं। किन्तु आवश्यक सुविधायें प्रदान करना नितान्त आवश्यक है।

कर्मचारी प्रशिक्षण (Training)

सहकारी समितियों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रशिक्षण से तात्पर्य सहकारी संस्थाओं व सहकारी विभाग के कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करना है। भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति का मुख्य कारण समितियों के कर्मचारियों तथा नेताओं के प्रशिक्षण का अभाव रहा है। प्रशिक्षण से कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। प्रशिक्षण शिक्षा के क्रम को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया है। मनुष्य इसके माध्यम से किसी विशेष क्षेत्र में विशिष्टीकरण प्राप्त कर सकता है। प्रशिक्षित व्यक्ति उत्तम एवं कुशल व्यवसाय में दक्ष होते हैं। कृषि पर शाही आयोग (Royal Commission on Agriculture) के अनुसार आन्दोलन की सफलता कार्यकर्त्ताओं के उत्साह एवं कुशलता पर आधारित है। सन् १९३५ में एम० डार्लिंग ने कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने की एक योजना बतलायी।

प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये पर्याप्त शिक्षकों तथा प्रशिक्षण केन्द्रों की आवश्यकता पड़ती है। प्रशिक्षण निम्न प्रकार से प्रदान किया जा सकता है —

(१) संस्था के कार्यक्षेत्र के अन्दर प्रशिक्षण,

(२) सस्था के बाहर प्रशिक्षण ,
(३) बाहरी व्यक्तियो को प्रशिक्षण ।

सस्था के भीतर प्रशिक्षण व्यवस्था सस्था के कार्य के साथ-साथ प्रदान किया जाता है । सहकारी समितियो मे कर्मचारियो के चयन के पश्चात् उनको आरम्भ मे समिति के कार्यो का प्रशिक्षण दिया जाता है । बडे आकार की सहकारी समितियाँ जैसे विभागीय भण्डारो मे इस प्रकार की व्यवस्था की जा सकती है । समिति के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये समिति के पास इतना धन होना आवश्यक है कि प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जा सके । उत्पादन सहकारी समितियो में श्रमिको को तकनीकी प्रशिक्षण देना आवश्यक है । इसके लिये समितियाँ अपने सगठन के अन्तर्गत प्रशिक्षण विभाग स्थापित कर सकती हैं । किन्तु अनेको समितियाँ इतने छोटे आकार की तथा आर्थिक दृष्टि से कमजोर होती हैं कि सस्था के अन्तर्गत प्रशिक्षण व्यवस्था करने मे असमर्थ हैं । भारतवर्ष मे सरकार इस तरफ पर्याप्त ध्यान दे सकती है । सस्था के बाहर या तो सरकार प्रशिक्षण व्यवस्था करती है अथवा सघीय सहकारी सस्थाये यह कार्य भार सम्भाल सकती हैं । पचवर्षीय योजनाओ मे राज्य सरकारो तथा केन्द्रीय सरकार ने इस तरफ पर्याप्त ध्यान दिया है । सरकारी प्रयत्नो के देखने से पूर्व अनेक समितियो के सुझावों का उल्लेख करना आवश्यक है ।

सहकारी योजना समिति की सिफारिशें

सन् १९४६ मे सहकारी योजना समिति ने सहकारी प्रशिक्षण एव शिक्षा की आवश्यकता की तरफ सरकार का ध्यान आकर्षित किया । इस समिति ने निम्न वर्गों के व्यक्तियो की प्रशिक्षण व्यवस्था पर जोर दिया —

(i) ग्रामीण समितियो के प्रबन्धक मण्डलो के सदस्यो,
(ii) ग्रामीण समितियो के सचिवों,
(iii) सहकारी समितियो के कार्यकर्त्ताओ,
(iv) अनुसन्धान एव शोध कार्यों मे लगे हुये व्यक्तियो
(v) सहकारी विभाग के अधिकारियो तथा कर्मचारियो ।

समिति का दृढ विश्वास था कि उक्त कर्मचारियो को पर्याप्त प्रशिक्षण उपलब्ध करा दिया जाये तो निश्चय ही भारत मे सहकारी आन्दोलन सफल होगा । सहकारी योजना समिति ने सुझाव दिया कि समितियो के प्रबन्धक मण्डल के सदस्यो को दो सप्ताह तथा सचिवों को छ सप्ताह का प्रशिक्षण प्रदान किया जाये ।

सहकारी प्रशिक्षण के अध्ययन दल के सुझाव

(Recommendations of the Study Team on Cooperative Training)

इस अध्ययन दल के अध्यक्ष श्री एस० मिश्रा थे । दल ने अपना प्रतिवेदन सन् १९६१ मे प्रस्तुत किया । दल ने सुझाव दिया कि सहकारी आन्दोलन की विशेष समस्याओ के सम्बन्ध मे आवश्यक रूप से प्रशिक्षण प्रदान किया जाये । इस दल ने सहकारी सस्थाओ तथा सहकारी विभाग के कर्मचारियो को अलग-अलग कोर्सो की

व्यवस्था करनी चाहिए। इसने यह भी सिफारिश की कि भारतीय सहकारी सघ शिक्षा तथा प्रशिक्षण कायक्रम निर्धारित करे।

इस अध्ययन दल की सिफारिशो के आधार पर भारत सरकार ने सहकारी प्रशिक्षण तथा शिक्षा का कार्य राष्ट्रीय सरकारी सघ को सौप दिया। सघ ने सहकारी प्रशिक्षण समिति नियुक्त की।

सहकारी प्रशिक्षण के लिए समिति
(Committee for Co-operative Training)

सहकारी प्रशिक्षण समिति के निम्नलिखित कार्य हैं —

(१) देश मे सहकारी समितियो तथा सहकारी विभागो के कमचारियो के प्रशिक्षण एव शिक्षा व्यवस्था का सगठन तथा उचित निर्देशन करना।

(२) सहकारी प्रशिक्षण एव शिक्षा सम्बन्धित कार्यों मे उचित समन्वय स्थापित करना। पाठयक्रम परीक्षा विधियाँ निश्चित करना शिक्षा तथा प्रशिक्षण के स्तर को बनाये रखने के प्रयत्न करना।

(३) *शोध कार्यों तथा उच्च अधिकारियो के प्रशिक्षण को बढावा देने के लिए* एक केन्द्रीय सस्था की स्थापना करना।

(४) मध्यस्तरीय प्रशिक्षण केन्द्र मे विशिष्ठ कोर्स की व्यवस्था करना।

(५) मध्यस्तरीय प्रशिक्षण केन्द्र चलाना।

(६) प्रशिक्षण के विभिन्न पाठ्यक्रमो का मूल्याकन करना तथा उपयुक्त सुधार करना।

(७) भारत सरकार के प्रशिक्षण कायक्रम को बढाने के लिए सुझाव पेश करना।

वरिष्ठ अधिकारियो का प्रशिक्षण

अप्रैल सन् १९५२ मे पूना मे बम्बई राज्य सहकारी सघ द्वारा वरिष्ठ अधिकारियो के लिए एक प्रशिक्षण कालेज स्थापित किया गया था। अप्रैल सन् १९६१ मे सहकारी प्रशिक्षण केन्द्रीय समिति के अन्तर्गत आ गया। राष्ट्रीय सघ द्वारा इस कालिज के ले लेने के पश्चात् इसका पुनर्गठन किया गया और इसका नाम राष्ट्रीय सहकारी कालिज व अनुसन्धान सस्थान पूना रख दिया गया। कालिज के निम्न काय हैं —

(i) सहकारी विभाग व सहकारी सस्थाओ के वरिष्ठ अधिकारियो के ओरियेन्टशन पाठ्यक्रम चलाना।

(ii) प्रशिक्षण केन्द्रो के प्राध्यापको के लिये रिफ्रेशर पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना।

(iii) सहकारी विकास की सूचना एकत्रित करना।

(iv) सहकारिता विषयक सर्वेक्षण व क्षत्रीय अध्ययनो को सगठित करना।

मध्यस्तरीय कर्मचारियो का प्रशिक्षण

पहले इस श्रेणी के कर्मचारियो के लिए दो प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्र थे। पूना, मद्रास, रांची, इन्दौर, मेरठ मे क्षेत्रीय सहकारी प्रशिक्षण केन्द्र और कोटा, पटियाला, गोपालपुर-बानसी, भावनगर कल्याणी, फैजाबाद, हैदराबाद तथा तिरुपति मे खण्ड स्तरीय प्रशिक्षण केन्द्र थे। सहकारी प्रशिक्षण समिति द्वारा कार्यक्रम को हाथ मे लेने के पश्चात् माध्यमिक सहकारी प्रशिक्षण केन्द्रों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को स्वीकृत करने का काम प्रारम्भ किया गया। इस समय के पाठ्यक्रम तथा विषयो के लिये एक कर्मकारी दल भी नियुक्त किया गया। दल ने अपना प्रतिवेदन मे प्रशिक्षण कार्यक्रम को पुनर्गठित करने की सिफारिश की। अगस्त सन् १९६३ से नये कार्यक्रम की अवधि ३६ सप्ताह रखी गयी जिसमे से २४ सप्ताह तक प्रशिक्षण केन्द्र पर सैद्धान्तिक प्रशिक्षण की व्यवस्था थी और शेष १२ सप्ताह का क्षेत्रीय प्रशिक्षण निश्चित किया। इन प्रशिक्षण केन्द्रो मे कुछ तदर्थ पाठ्यक्रम भी चलाये गये। इनमे श्रमिक ठेका, निर्माण सहकारिता, उपभोक्ता सहकारिता तथा सहकारी अंकेक्षण सम्मिलित किए गए। इनके अतिरिक्त औद्योगिक सहकारिता, सहकारी बैंकिंग, सहकारी भूमिबन्धक बैंकिंग, विपणन आदि के सम्बन्ध मे भी विशेष पाठ्यक्रम चालू किए गये।

कनिष्ठ कर्मचारियों का प्रशिक्षण

कनिष्ठ स्तर के विभागीय तथा सहकारी संस्थाओ के कर्मचारियो को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इन कर्मचारियो मे लेखापाल क्लर्क, अंकेक्षक, सुपरवाइजर आदि होते हैं। उनके लिए राज्य स्तर पर प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं। कनिष्ठ वर्ग के कर्मचारियो के लिए बुनियादी प्रशिक्षण का प्रबन्ध सहकारी प्रशिक्षण केन्द्रो मे किया जाता है। ऐसे केन्द्र इस समय ६४ है। यह सामान्य कार्य पाठ्यक्रम रखा गया है। कुछ मामलो मे विशेष वर्ग के कार्यकर्त्ताओ जैसे कि लेखा-परीक्षक के लिए विशेष पाठ्यचर्या निर्धारित की जाती है। पाठ्यक्रम की अवधि ६ ९ महीने के बीच होती है। उपभोक्ता भण्डारो के इस श्रेणी के कर्मचारियो के लिए सहकारी प्रशिक्षण समिति, सहकारी प्रशिक्षण केन्द्रों और राज्य सरकारी सघो के सहयोग से तीन सप्ताह का पाठ्यक्रम लगाती है।

प्रशिक्षित किये गये कर्मचारी

(I) दिसम्बर, १९६८ को समाप्त होने वाले वर्षान्त तक प्रशिक्षित किये गये वरिष्ठ कर्मचारियो की संख्या गत वर्ष इसी वर्ष अवधि तक प्रशिक्षित किये गये १३०७ की अपेक्षा बढकर १३९० हो गयी। इस वर्ष मे ८३ व्यक्तियों ने नियमित पाठ्यक्रमो मे प्रशिक्षण प्राप्त किया और २१४ व्यक्तियों ने संस्थान मे आयोजित अन्य ११ कार्यक्रमो मे प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस वर्ष मे २१ व्यक्ति वरिष्ठ अधिकारियो के पाठ्यक्रम, १४ महा प्रबन्धो के पाठ्यक्रम, १२९ नवीकर, अनुस्थापन तथा अल्पावधि पाठ्यक्रमो मे प्रशिक्षित किये गये।

(II) दिसम्बर १९६८ को समाप्त होने वाले वर्ष मे माध्यमिक श्रेणी के कुल १६७० कर्मचारियो ने विभिन्न पाठ्यक्रमो मे प्रशिक्षण तथा अनुस्थापन प्राप्त किया।

सामान्य बुनियादी पाठ्यक्रम मे इस वर्ष १०,१९४ व्यक्तियो को प्रशिक्षित किया गया। इस अवधि मे ७४२ व्यक्तियो को सहकारिता मे उच्च डिप्लोमा दिया गया तथा ४९६ व्यक्तियो को सहकारी विपणन, बैंकिग, भूमि विकास बैंकिग औद्योगिक सहकारिता लेखापालन परीक्षा मे विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया गया। तदर्थ तथा अल्पकाल पाठ्यक्रमो मे ४३२ व्यक्तियो ने भाग लिया।

(iii) जून १९६८ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष के अन्त तक कनिष्ठ बुनियादी पाठ्यक्रम मे प्रशिक्षित व्यक्तियो की सख्या ६९८१४ हो गयी। इस वर्ष ७३८३ व्यक्ति प्रशिक्षित किये गये और ३४०६ व्यक्ति प्रशिक्षण पा रहे थे। औद्योगिक सहकारिता के प्रायोगिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ७१ व्यक्तियो को डिप्लोमा दिया गया। इस काल मे ९६४ व्यक्तियो को उपभोक्ता सहकारिता मे प्रशिक्षण दिया जायगा। ३० जून १९६८ तक प्रशिक्षित किये गये कनिष्ठ कर्मचारियो की सख्या ७२,६३२ हो गयी।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतवर्ष मे सहकारी समितियो के कर्मचारियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था समिति के सगठन से बाहर है। समितियो के सामान्य सचालन गतिविधियो का प्रशिक्षण समितियो के अन्दर भी दिया जाता है। किन्तु अभी तक देश की अनेको सहकारी समितियो मे प्रशिक्षित कर्मचारियो का अभाव पाया जाता है।

१४

पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारिता
(Co-operation in Five Year Plans)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने नवीन आर्थिक नीति घोषित की। इसका प्रभाव देश के सहकारी आन्दोलन पर भी पड़ा। पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत कृषि सुधार के अनेक कार्यक्रम अपनाये गये है जिनसे किसानो की आर्थिक दशा धीरे-धीरे सुधरने लगी है। कृषि पदार्थों के मूल्य निरन्तर बढ़ते रहे हैं जिससे उनकी आय मे वृद्धि हुई है। किसान अब इस स्थिति मे आ गये है कि सहकारिता का लाभ उठा कर अपने व्यवसाय की स्थायी उन्नति कर सकें। भारत सरकार, राज्य सरकारो तथा रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया ने इस आन्दोलन के विकास के लिये अनेक प्रयत्न किये है। राष्ट्रीय योजना मे सहकारिता को उल्लेखनीय स्थान प्रदान किया गया। कुछ क्षेत्र सहकारी ढग पर सगठित करने के लिये विशेष रूप से उपयुक्त हैं। किसानो को ऋण प्रदान करने, कृषि उपजो का क्रय-विक्रय एव विधियन, उपभोक्ता सहकारिता, सहकारी कृषि, कारीगरो व मजदूरो की सहकारियाँ आदि क्षेत्रों मे उत्तरोत्तर सहकारिता आर्थिक व्यवहार का मुख्य आधार बनती चली जाये।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सहकारिता

हमारी पचवर्षीय योजना का लक्ष्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। योजनाओ के माध्यम से अधिकतम उत्पादन बेरोजगारी समाप्त करना, सामाजिक न्याय तथा आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। जुलाई सन् १६५१ मे योजना आयोग ने लिखा कि प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में योजना को सामाजिक ढग पर चलाना आवश्यक है। योजना मे प्रत्येक नागरिक को भाग लेने के समान अवसर प्रदान किये जाने चाहिये। योजना आयोग ने इस बात पर भी बल दिया है कि नियोजित आर्थिक विकास के लिये सहकारिता बहुत महत्वपूर्ण है क्योकि सहकारिता मे एच्छिक सहयोग और स्थानीय जिम्मेदारी प्राप्त हो सकती

है । प्रजातन्त्र मे नियोजन मे सहकारिता एक आवश्यक अग है । पचवर्षीय योजना मे कृषि, विपणन, ग्रामीण एव लघु उद्योगो का विकास, उपभोक्ता वस्तुओं के व्यापार आदि मे सहकारिता को विशेष स्थान प्रदान किया गया ।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सहकारी सगठन के लिये ७ करोड रुपये की व्यवस्था की गयी । योजना मे लगभग १२५ करोड रुपये अल्पकालीन एव मध्य-कालीन ऋण प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया । दीर्घकालीन ऋण देने का लक्ष्य ५ करोड रुपये था । प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ में सभी, प्रकार की सहकारी साख समितियो की संख्या १·८ लाख थी जो कि इस योजना के अन्त म २ ४ लाख हो गयी । समितियो की सख्या मे वृद्धि होने का प्रभाव समितियो की सदस्यता, अश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी पर भी पडता है ।

सभी किस्मो की सहकारी समितियाँ (प्रथम योजना)

मद	प्रथम योजना का प्रारम्भ (१९५०-५१)	प्रथम योजना का अन्तिम वर्ष (१९५५-५६)
१. समितियो की सख्या (लाखो मे)	१ ८	२ ४
२. प्राथमिक समितियो की सदस्य सख्या (लाखो मे)	१३७	१७६
३· अश पूंजी (करोड रुपयो मे)	४५	७७
४ कार्यकर पूंजी (करोड रुपयो मे)	२७६	४६९

[रिपोर्ट १९६८ ६९ पृ० ७५; भारत सरकार (सहकारिता विभाग)]

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम योजना के आरम्भ से योजना के अन्तिम वर्ष मे सभी मदो मे वृद्धि हुई है । सभी प्रकार की समितियो मे लगभग ३३ प्रतिशत की वृद्धि हुई है । वर्ष १९३० की तुलना मे प्राथमिक समितियो की सदस्यता मे ३९ लाख की वृद्धि हुई । इन समितियो की अश पूंजी तथा कार्यशील पूजी मे क्रमश ३२ करोड रुपये और १९३ करोड रुपये की वृद्धि हुई ।

प्रथम योजना मे विशेष कर कृषि साख पर विशेष ध्यान दिया गया । अल्प एव मध्यकालीन ऋण प्रदान करने के लिये प्राथमिक कृषि साख समितियो का विकास किया गया । प्रथम योजना मे अल्प एव मध्यकालीन ऋण की प्रगति का विवरण निम्न प्रकार है

प्रथम योजना में अल्प एव मध्यकालीन ऋण

मद	१९५०-५१	१९५५-५६
१. सहकारी समितियो की सख्या (लाख)	१·०५	१·२६
२. सदस्य सख्या (लाख)	४४	७८
३. इनके अन्तर्गत कृषक आबादी का प्रतिशत	९	१५
४. अल्प एव मध्यकालीन ऋण जो दिये गये (करोड रुपये)	२८·९	४९·६

(रिपोर्ट १९६८-६९, पृष्ठ ७, भारत सरकार (सहकारिता विभाग)

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि अल्प, एव मध्यकालीन ऋण प्रदान करने वाली समितियो की सख्या मे १,००० समितियो की वृद्धि हुई। सदस्य सख्या मे ३४ लाख की वृद्धि हुई। प्रथम योजना के आरम्भ की तुलना मे योजना के अन्त मे अल्प एव मध्यकालीन ऋण सुविधाओ के अन्तर्गत कृषक परिवारो के प्रतिशत मे पर्याप्त वृद्धि हुई। अल्प एव मध्यकालीन ऋणो मे लगभग २० ७ करोड रुपये की वृद्धि हुई।

वर्ष १९५० ५१ मे राज्य सहकारी बैंको की सख्या १५ थी जो कि वर्ष १९५५-५६ मे बढकर २४ हो गयी। बैंको की सख्या मे वृद्धि के फलस्वरूप इनकी अश पूंजी, निक्षेप तथा दिये गये ऋण तथा अग्रिम मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। इस अवधि मे केन्द्रीय बैंको की सख्या ५०५ से घट कर ४७८ हो गयी। किन्तु अश पूंजी तथा निक्षेपो मे वृद्धि हुई।

प्रथम योजना में दीर्घकालीन ऋणो के लिये भूमि बन्धक बैंको का विकास किया गया। केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक तथा प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक दोनो की सख्या मे वृद्धि हुई किन्तु अधिक वृद्धि नही की जा सकी। इन बैंको की स्थिति निम्न प्रकार थी।

भूमि बंधक बैंक
(दीर्घकालीन ऋण)

मद	१९५०-५१	१९५५-५६
१. बैंको की सख्या		
(i) केन्द्रीय	५	९
(ii) प्राथमिक	२८६	३०२
२ इस वर्ष व्यक्तियो को दिये गये ऋण (करोड रुपये)	१ ३८	२·८६
३. व्यक्तियो के नाम बकाया ऋण (करोड रुपये)	६·५९	१३ ४७

इस तालिका से स्पष्ट है कि केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको की सख्या ५ से बढ कर ९ हो गयी और प्राथमिक बैंको की सख्या मे १६ की वृद्धि हुई। यह वृद्धि कोई विशेष नही थी। दीर्घकालीन ऋण जो प्रदान किया गया उसमे भी वृद्धि हुई किन्तु बकाया ऋण की राशि बहुत अधिक हो गयी।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सहकारी बिक्री को बढावा देने पर बल देने का लक्ष्य, रखा गया था। किन्तु योजना मे कोई लक्ष्य निर्धारित नही किये जा सके। इस काल मे सहकारी विपणन मे कोई विशेष प्रगति भी नही हुई। प्रथम योजना अवधि मे राज्य सहकारी बिक्री समितियो द्वारा वेची गयी वस्तुओ का मूल्य सन् १९५१-५२ मे १४५८ लाख रुपयो से घट कर वर्ष १९५५-५६ मे ८५१ लाख रुपये ही रह गया। प्राथमिक सहकारी समितियो का व्यापार ३४४७ लाख रुपयो से घट कर २३७८ लाख रुपये हो गया। अत कोई प्रगति न होकर व्यापार मे कमी हुई। व्यापार मे कमी होने का मुख्य कारण नियन्त्रण हट जाना था।

प्रथम योजना मे उपभोक्ता प्राथमिक भण्डारो की भी उन्नति न हो सकी। प्राथमिक भण्डारो की सख्या मे कमी हुई जिसके परिणाम स्वरूप उनकी सदस्यता, निजी पूंजी बिक्री आदि मे भी कमी हुई। प्राथमिक भण्डार वर्ष १९५०-५१ मे ९७५७ थे जिनकी सदस्यता १८ ४६ लाख थी। वर्ष १९५५-५६ मे सख्या तथा सदस्यता घट कर क्रमश ७३५९ तथा १४ १४ लाख हो गयी इन भण्डारो की निजी पूंजी तथा बिक्री वर्ष १९५०·५१ में क्रमश ५५२ ७० लाख रुपये तथा ८२१५ ६९ लाख रुपये थी जो कि वर्ष १९५५·५६ मे घट कर क्रमश ४९० लाख तथा १४४८ लाख ही रह गयी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

द्वितीय योजना मे ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति के सुझावो के अनुसार सहकारिता के विकास का कार्यक्रम बनाया गया। प्रथम योजना तक सहकारिता विकास केवल ग्रामीण ऋण तक ही सीमित था। द्वितीय योजना प्रारूप के अनुसार "ऋण से आगे सहकारिता का विस्तार ग्रामो के अन्य अनेक कार्यों मे करना होगा। सहकारी खेती भी उनमे से एक है। ग्रामो मे सहकारिता फैलाने का मूल प्रयोजन यह है कि वहां की बस्तियां सहकारिता के आधार पर ऐसी सगठित हो जायें कि उनके जीवन का कोई भी पहलू उससे अधूरा न रहे।"[1]

नवीन भारत के निर्माण मे द्वितीय योजना मे सहकारिता को महत्वपूर्ण स्थान दिया। "लोकतन्त्रीय पद्धति पर आर्थिक विकास करने मे सहकारिता के विविध रूपो मे प्रयोग की बडी गु जाइश है। समाजवादी ढग की हमारी परिकल्पना मे कृषि उद्योग दोनो मे बहुत बडी सख्या मे विकेन्द्रीकृत इकाइयो की स्थापना निहित है। इन छोटी इकाइयो के विस्तार और सगठन के लाभ मुख्यत एकत्र होकर प्राप्त हो सकते हैं। भारत मे आर्थिक विकास के साथ साथ सामाजिक परिवर्तन पर भी जोर दिया जा रहा है और इसमे सहकारिता के सगठन के लिये बडा भारी क्षेत्र

---

१. द्वितीय पचवर्षीय योजना पृष्ठ ८६

है। इसलिये नियोजित विकास के रूप मे एक सहकारिता क्षेत्र की रचना हमारी राष्ट्रीय नीति का प्रमुख उद्देश्य है।"[1]

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे सहकारिता आन्दोलन को व्यापक बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस योजना मे निम्नलिखित उद्देश्य सम्मिलित किये गये —

(i) सहकारिता क्षेत्र मे ऋण नीतियो मे सुधार करना ताकि कमजोर वर्ग को पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सके।

(ii) सहकारी ऋण ढांचे को सभी स्तरो पर सरकारी अश पूंजी के माध्यम से सुदृढ बनाना।

(iii) सहकारी ऋण को सहकारी क्रय-विक्रय के साथ सम्बद्ध करना।

(iv) सहकारी विपणन एव माल सवार समितियो का अधिक विकास करना।

(v) भण्डारण की अधिक सुविधायें प्रदान करना।

(vi) सहकारी प्रशिक्षण, पर्यवेक्षण तथा प्रशासनिक ढांचे को सुदृढ बनाना।

इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये सहकारिता के विभिन्न क्षेत्रो के लिये लक्ष्य निर्धारित किये गये जो निम्न प्रकार है —

द्वितीय योजना के लक्ष्य

(I) ऋण देना	
बडी-बडी समितियो की सख्या	१०,४००
अल्प अवधि के ऋण	१५० करोड रुपये
मध्यकालीन ऋण	५० ,, ,,
दीर्घ कालीन ऋण	२५ ,, ,,
(II) माल बेचना और सवारना	
इन कार्यों के लिये सगठित की जाने वाली समितियो की सख्या	१,८००
चीनी के सहकारी कारखाने	३५.
कपास की सहकारी मिलें	४८.
माल सवार अन्य समितियाँ	११८
(III) गोदाम	
केन्द्र और राज्यो के निगमों के गोदाम	३५०.
विपणन समितियो के गोदाम	१५००.
बडी समितियो के गोदाम	४०००

(स्रोत-द्वितीय पचवर्षीय योजना पृष्ठ ८७)

१. सहकारी समाज, प्रस्तावना (ii).

द्वितीय योजना मे इन लक्ष्यो के आधार पर कार्य प्रारम्भ किया गया। नवम्बर १९५८ मे राष्ट्रीय विकास परिषद ने सहकारिता को एक नवीन क्षेत्र प्रदान किया। परिषद के अनुसार कृषि उत्पादन मे गतिशीलता लाने, स्थानीय साधनों तथा जन शक्ति को सगठित करने और मुख्यतया ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन करने के लिये सहकारिता आन्दोलन का उपयोग किया जाये। परिषद ने इस बात पर भी बल दिया कि सहकारी समितियो को प्राथमिक इकाइयो के रूप ग्रामीण समुदाय के आधार पर गठित करनी चाहिये। ग्रामीण स्तर पर आर्थिक एव सामाजिक विकास ग्राम समिति तथा ग्राम पचायतों के द्वारा किया जाये।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सहकारिता के लिये ४७ करोड रुपये निर्धारित किये थे किन्तु वास्तविक व्यय केवल ३४ करोड रुपये ही हुआ। उस काल मे रिजर्व बैंक तथा स्टेट बैंक ने अपने योगदान मे पर्याप्त वृद्धि की। रिजर्व बैंक ने सहकारी ऋण की मात्रा मे वृद्धि के उद्देश्य से राष्ट्रीय कृषि साख (दीघकालीन) कोष तथा राष्ट्रीय कृषि साख (स्थिरीकरण) कोषो की स्थापना की। सन १९५६ मे केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय सहकारी विकास एव भण्डार गृह मण्डल की स्थापना की। योजना के अन्त मे सभी प्रकार की समितियो की सख्या, सदस्यता, अश पूँजी तथा कार्यकर पूंजी मे वृद्धि हुई।

सभी प्रकार की सहकारी समितियाँ (प्रगति का रुख)

मद	१९६०-६१
१ समितियो की सख्या (लाखो मे)	३·३
२. प्राथमिक समितियो की सदस्य सख्या (लाखो मे)	३४२
३ अशपूंजी (करोड रुपये)	२२२
४ कार्यकर पूंजी (करोड रुपये)	१३१२

(स्रोत रिपोर्ट १९६८-६९ पृष्ठ ७५ भारत सरकार (सहकारिता विभाग)

द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे सभी प्रकार की समितियो की सख्या तथा सदस्यता मे क्रमश ४ हजार तथा १६६ लाख की वृद्धि हुई। अश पूँजी तथा कार्य कर पूंजी मे क्रमश १४५ करोड रुपये तथा ८४३ करोड रुपये की वृद्धि हुई। स्पष्ट है कि अश पूँजी तथा कार्यशील पूँजी द्वितीय योजना के आरम्भ से अन्त मे लगभग तीन-तीन गुनी हो गयी। अल्प एव मध्यकालीन ऋण प्रदान करने वाली सहकारी समितियो की सख्या द्वितीय योजना के अन्त मे १·०६ लाख से बढकर २·१२ लाख हो गयी। इनकी सदस्यता १९५५-५६ मे ५८ लाख थी जो कि वर्ष १९६०-६१ मे बढ कर १७० लाख हो गयी। लगभग ३०% कृषक आबादी इस क्षेत्र के अन्तर्गत लायी गयी। अल्पकालीन एव मध्यकालीन ऋणो की राशि बढकर ४९ ६ करोड से बढकर २०२·७५ करोड रुपये हो गयी। इस योजना मे राज्य तथा केन्द्रीय सहकारी बैंक

और भूमि बन्धक बैंको की प्रगति का अनुमान नीचे दी गई तालिका से लगाया जा सकता है।

राज्य तथा केन्द्रीय सहकारी बैंक और भूमि बन्धक बैंक

(प्रगति का अखिल भारतीय रुख)

मद	१९५५-५६	१९६०-६१
I राज्य सहकारी बैंक		
(i) बैंको की सख्या	२४	२१
(ii) प्रदत्त अश पूंजी (करोड रुपये)	४ ३७	१८ २४
(iii) डिपाजिट्स (करोड रुपये)	३६ ६७	७२·३३
(iv) इस वर्ष दिये गये ऋण तथा अग्रिम (करोड रुपये)	६७·८६	२५८ २०
II केन्द्रीय सहकारी बैंक		
(i) बैंको की सख्या	४७८	३८०
(ii) प्रदत्त अश पूंजी (करोड रुपये)	८·५०	३७ ९३
(iii) डियोजिट्स (करोड रुपये)	५५·७१	११० ५९
(iv) इस वर्ष दिये गये ऋण तथा अग्रिम (करोड रुपये)	७९ ८३	३५०·९१
III भूमि बन्धक बैंक		
(i) बैंको की सख्या .		
(क) केन्द्रीय	९	१८
(ख) प्राथमिक	३०२	४६३
(ii) इस वर्ष व्यक्तियों को दिये गये ऋण (करोड रुपये)	२ ८६	११ ६२
(iii) व्यक्तियो के नाम बकाया ऋण (करोड रुपये)	१३ ४७	३७·७४

[स्रोत—रिपोर्ट १९६८-६९, भारत सरकार (सहकारी विभाग)]

उक्त तालिका के अनुसार राज्य सहकारी बैंक तथा केन्द्रीय सहकारी बैंको की सख्या मे कमी हुई किन्तु उनकी अश पूंजी, निक्षेप आदि मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने वाली भूमि बन्धक बैंको मे केन्द्रीय तथा प्रायमिक दोनो की सख्या प्रदान किये गये ऋण दोनों मे पर्याप्त वृद्धि हुई है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे विपणन समितियो के गठन मे सतोषजनक प्रगति हुई। सन १९५८ मे इन समितियों का पुनर्गठन तथा गठन मण्डी स्तर पर किया गया। इस काल मे राष्ट्रीय कृषि क्रय-विक्रय सघ भी स्थापित किया गया है। अनेक राज्यो मे राज्य स्तरीय सगठन स्थापित किये गये। इस योजना मे विपणन समितियो

के विकास के लिये किये गये अनेक प्रयत्नों के फलस्वरूप वर्ष १९६०-६१ के अन्त मे प्रारम्भिक विपणन समितियो की सख्या २५७६ थी। सहकारी क्रय विक्रय समितियो द्वारा १९५५-५६ मे ५३ करोड रुपये के कृषि उत्पादन का विक्रय किया गया जबकि वर्ष १९६०-६१ मे १७४ करोड रुपये की बिक्री की गयी। दूसरी योजना के अन्तर्गत सहकारी चीनी कारखानो के अलावा विभिन्न प्रकार की ४६४ सहकारी प्रोसेसिंग एकको को सहायता प्रदान की गयी। सहकारी समितियों के लिये गोदाम निर्माण की योजना इसी योजना मे प्रारम्भ की गयी। इस काल मे लगभग १७१६ मण्डी स्तर के गोदामो और ४९८५ ग्रामीण गोदामों के निर्माण के लिये सहायता दी गयी। इन गोदामो के अतिरिक्त सहकारी समितियो ने अपने साधनों से मण्डी स्तर पर लगभग १००० गोदाम और ग्रामीण क्षेत्रो मे १५०० गोदाम बनाये।

द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे सहकारी गृह आन्दोलन के विकास की तरफ भी ध्यान दिया गया। इस काल मे यातायात एव सचार मत्रालय द्वारा एक अग्रगामी योजना स्वीकार की गयी जिससे कि पाँच मोटर यातायात सहकारी समितियों का गठन किया जा सके। जून १९६१ को भारत वर्ष मे श्रम समितियो की सख्या २२९१ थी। इनमे सदस्यता, अश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी क्रमश: १८५६१५, ४० लाख रुपये तथा २४६ लाख रुपये थी। वर्ष १९६०-६१ मे इन समितियो ने ३२७ लाख रुपये का निर्माण कार्य किया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना

तीसरी पचवर्षीय योजना मे सहकारिता को आर्थिक विकास और सामाजिक स्थायित्व का आधार माना गया है। योजना के अनुसार "समाजवाद और लोकतत्र के मूल्यो से वचनबद्ध आयोजित अर्थव्यवस्था मे, सहकारिता को उत्तरोत्तर आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे मुख्य सगठन बनाना आवश्यक है। विशेषकर कृषि लघु सिचाई, लघु उद्योग, माल सवारने, क्रय-विक्रय, वितरण, पूर्ति, ग्रामीण विद्युतिकरण, ग्रह निर्माण, निर्माण कार्यों और स्थानीय समुदायो की अनिवार्य सुविधाओं की उपलब्धि मे। यहाँ तक कि माध्यम व बडे उद्योगो और यातायात के क्षत्र की बढती हुई गतिविधियों को सहकारिता के आधार पर चलाया जा सकता है।"

तृतीय योजना मे सहकारिता के विकास पर ८० करोड रुपये की व्यवस्था की गयी जो कि कृषि पर किये जाने वाले व्यय का ६ १ प्रतिशत थी। योजना के अन्त तक समस्त देश की ग्रामीण जनसख्या के ६० प्रतिशत भाग को सहकारिता के क्षेत्र मे लाने का लक्ष्य रखा गया। अल्पकालीन एव मध्यकालीन ऋणो के लिये ५३० करोड रुपये तथा दीर्घ कालीन ऋणो के लिये १५० करोड रुपये प्रतिवर्ष का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। जहाँ तक प्राथमिक सहकारी समितियों का प्रश्न है उनकी सख्या २ १२ लाख से बढकर योजना के अन्त तक २ ३ लाख हो जायेगी और इनकी सदस्यता १७० लाख से बढ़कर ३७० लाख हो जाने का अनुमान लगाया गया। लगभग ६०० प्राथमिक विपणन समितियाँ स्थापित की जायेंगी और मण्डियो मे ९९० गोदाम तथा ग्रामीण क्षेत्रों मे ९२०० गोदाम बनाने के लक्ष्य रखे गये। लगभग ३२०० सहकारी कृषि समितियाँ स्थापित करने की योजना बनायी गयी। इनके

अतिरिक्त सहकारी उपभोक्ता समितियाँ, सहकारी प्रशिक्षण, श्रम समितियाँ, कारखानो आदि के लिये उपयुक्त व्यवस्थायें की गयी।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे ७६ करोड रुपये की वास्तविक धन राशि व्यय की गयी। इस काल मे सभी प्रकार की समितियो की सख्या ३·३ लाख से बढकर ३ ५ लाख हो गयी। इसकी वृद्धि के साथ-साथ अन्य क्षेत्रो मे भी पर्याप्त उन्नति हुई जिनका विवरण निम्न प्रकार है

सभी प्रकार की सहकारी समितियाँ (प्रगति का रुख)

मद	१९६५ ६६	वर्ष १९६०-६१ की तुलना मे वृद्धि
१. समितियो की सख्या (लाखो मे)	३ ५	०·२
२. प्रार्थमिक समितियो के सदस्य सख्या (लाखो मे)	५०३	१६१
३. अश पूंजी (करोड रुपये)	४५१	२२९
४. कार्य कर पूंजी (करोड रुपये)	२८००	१४८८

[स्रोत—रिपोर्ट १९६८-६९, भारत सरकार (सहकारी विभाग)]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि तृतीय पचवर्षीय योजना मे सहकारी समितियो की सख्या, सदस्यता, अश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। प्रार्थमिक समितियो की सदस्यता मे १६१ लाख की वृद्धि हुई। सदस्यता मे वृद्धि होने के कारण अश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी म भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

तृतीय पचवर्षीय योजना काल मे प्रार्थमिक कृषि सहकारी साख समितियो की सख्या १७ मिलियन से बढकर २६ १ मिलियन हो गयी। देश के कृषि परिवारो का ४२ प्रतिशत इसके अन्तर्गत लाया गया। वर्ष १९६५-६६ मे अल्प एव मध्यकालीन ऋणो की राशि ३४१ ७५ करोड रुपये थी जिसमे मध्यकालीन ऋणो की राशि ३६·९५ करोड रुपये थी तीसरी योजना के आरम्भ से राज्य सरकारें परस्पर मिल कर, कार्यक्षेत्र व्यापक बनाकर तथा परिसमापन के माध्यम से जीवन क्षम इकाइयाँ बनाने के लिये ऋण समितियो को पुनर्गठित कर रही हैं। इस अवधि मे राज्य तथा केन्द्रीय सहकारी बैंक और भूमि बन्धक बैंको की प्रगति नीचे की तालिका म दी जा रही है —

राज्य तथा केन्द्रीय सहकारी बैंक और भूमि बन्धक बैंक

(प्रगति का अखिल भारतीय सार)

मद	वर्ष १९६५-६६	वर्ष १९६०-६१ की तुलना मे वृद्धि अथवा कमी
I राज्य सहकारी बैंक		
(i) बैंको की सख्या	२२	+१
(ii) प्रदत्त अश पूंजी (करोड रुपयो मे)	२८·८३	+१० ५९
(iii) डिपोजिट् (करोड रुपये)	१४६·५१	+७४ १८
(iv) इस वर्ष दिये गये ऋण तथा अग्रिम (करोड रुपये)	४७४·२२	+२१६ ०२
II केन्द्रीय सहकारी बैंक		
(i) बैंको की सख्या	३४६	—३४
(ii) प्रदत्त अश पूंजी (करोड रुपये)	७३ ३२	+३८ ३९
(iii) डिपाजिट्स (करोड रुपये)	२३७ ५९	+१२६ ००
(iv) इस वर्ष दिये गये ऋण तथा अग्रिम (करोड रुपये)	७७१ ६६	+४२० ७५
III भूमि बन्धक बैंक		
(i) बैंको की सख्या		
(क) केन्द्रीय	१८	—
(ख) प्राथमिक	६७३	२१०
(ii) इस वर्ष व्यक्तियो को दिये गये ऋण (करोड रुपये)	५७·९६	४६ ३४
(iii) व्यक्तियो के नाम बकाया ऋण (करोड रुपये)	१६६ ४१	११८·६७

[स्रोत—रिपोट १९६८,६९, भारत सरकार (सहकारिता विभाग)]

तृतीय पचवर्षीय योजना मे राज्य सरकारी बैंको मे एक वृद्धि हुई किन्तु केन्द्रीय सहकारी बैंको की सख्या मे ३४ की कमी हुई। इस कारण इन बैंको का कार्य क्षत्र व्यापक बनाया गया। इन समितियो की अश पूंजी, निक्षेप तथा प्रदान किये गये ऋण मे पर्याप्त वृद्धि हुई।

तृतीय पचवर्षीय योजना काल मे सहकारी क्रय-विक्रय समितियो के विकास के पर्याप्त प्रयत्न किये गये। सहकारी विपणन समितियो द्वारा ३६० करोड रुपये की कृषि उपज का विक्रय किया गया जबकि वर्ष १९६०-६१ मे केवल १७५ करोड रुपये की बिक्री हुई थी। सहकारी क्रय-विक्रय समितियो के विकास के कार्यक्रम के अग के रूप मे राष्ट्रीय विकास निगम ने कई योजनाओ का सूत्रपात किया है। इनमे शिखर

क्रय-विक्रय समितियो मे तकनीकी एकक स्थापित करना मुख्य क्रय-विक्रय कर्मचारियो के पूल का निर्माण, अधिक खरीद के कारण जो हानि हो उससे बचाव करने लिये क्रय-विक्रय समितियो मे मूल्य के उतार-चढाव के लिये निधि स्थापित करना, विपणन समितियो की अश पूंजी को आगे सुदृढ बनाना आदि है। योजना के अन्त में देश मे कुल १५०० कृषि विपणन समितियां हो गयी जबकि आरम्भ मे १००४ थी। वर्ष १९६५-६६ मे ५१ चीनी के कारखाने सहकारी क्षत्र मे थे जिन्होने २६ प्रतिशत राष्ट्रीय चीनी का उत्पादन किया। कपास के क्षत्र मे वर्ष १९६४-६५ मे सहकारी समितियां ने ८·८ प्रतिशत कच्ची कपास के ओटाई का काम किया गया लगभग १० प्रतिशत कपास की पट्टियो को प्रेस किया गया। तीसरी योजना मे सहकारी समितियो की योजना के अन्तर्गत लगभग ८०० क्रय विक्रय गोदाम और ६६०० गोदाम ग्रामो मे बनाने के लिये सहायता प्रदान की गयी। वर्ष १९६५ ६६ के अन्त भण्डारण क्षमता २४ मिलियन टन हो गयी जबकि वर्ष १९६० ६१ मे यह २३ मिलियन टन थी। जहाँ तक उर्वरक वितरण का प्रश्न है सहकारी समितियो द्वारा वष १९६५-६६ मे ८० १० करोड रुपये के मूल्य के उर्वरको का व्यापार किया गया जबकि वर्ष १९६०-६१ मे २८·२ करोड रुपये के उर्वरक वितरित किये गये।

भारत सरकार ने सन् १९६२ मे बढते हुये मूल्यो को रोकने के लिये उचित मूल्य पर उपभोक्ता वस्तुयें प्रदान करने की योजना चालू की। इस योजना को उपभोक्ता भण्डारो के साथ सम्बद्ध किया गया। दिसम्बर १९६५ मे थोक भण्डार और फुटकर भण्डार क्रमश २३० तथा ७३३२ थे। वर्ष १९६५-६६ के अन्त मे ग्रामीण क्षत्रो मे उपभोक्ता वस्तुओ का वितरण १९८ १ करोड रुपये का था तथा शहरी उपभोक्ता समितियों का फुटकर विक्रय २०० करोड रुपये का था। इस प्रकार भण्डार आन्दोलन के क्षेत्र मे इस योजना मे पर्याप्त उन्नति हुई।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के अन्तर्गत उपभोक्ता भण्डार (थोक) जो सगठित हुये उनकी सख्या २५२ तथा कार्य कर रहे भण्डारो की सख्या २२८ थी। इन थोक भण्डारो की सख्या ४·१८ लाख व्यक्ति तथा ५९३३ प्राथमिक भण्डार थे। इन शाखाओ की सख्या १९३६ थी। इन भण्डारों की कुल कार्यकर पूंजी १६·४२ करोड रुपये थी।

तीसरी पचवर्षीय योजना अवधि मे ५५०१ सहकारी खेती समितियाँ गठित की गयी थी जिनकी सदस्यता ११८८३५ थी। इन समितियो के पास ५८३७६८ एकड भूमि थी। वर्ष १९६४-६५ मे श्रम ठेका एव निर्माण सहकारी समितियो की सख्या ४००० थी तथा इनकी सदस्यता २·७८ लाख थी। इस वर्ष इन समितियो ने १०·५ करोड का काम किया। जहाँ तक औद्योगिक सहकारी समितियो की सख्या का प्रश्न है वर्ष १९६४-६५ के अन्त मे देश मे कुल लगभग ५१००० समितियाँ थी। तीसरी योजना मे प्रशिक्षण एव शिक्षा व्यवस्था की तरफ भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। इस अवधि मे सहकारी प्रशिक्षण एव शिक्षा पर ५२१·५२ लाख रुपये व्यय किये गये। मार्च १९६६ के अन्त मे ८७३ वरिष्ठ अधिकारियों ११८०४ मध्य स्तरीय कर्मचारियो तथा ५२९८८ कनिष्ठ स्तर के कर्मचारियो को प्रशिक्षित किया गया।

वार्षिक योजनायें (१९६६-६७)

तीसरी योजना के पश्चात् तीन वर्षों तक एक वर्षीय योजनायें चलायी गयीं। इसके पश्चात् चतुर्थ योजना प्रारम्भ की गयी है। इन एक वर्षीय योजनाओं में सहकारिता के क्षेत्र में विकास के पर्याप्त प्रयत्न किये गये। इस काल में विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों को सुदृढ़ बनाने के प्रयत्न किये गये। तृतीय योजना में चालू किये गये विशेष प्रयत्नों को आगे बढ़ाया गया। १९६६-६७ की अवधि में सहकारिता के क्षेत्र में ६३·९ करोड़ रुपये व्यय की सम्भावना है। वर्ष १९६७-६८ के अन्त में १ ७५ लाख प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ थी। इनके अन्तर्गत ३५ ग्रामीण और ४२ प्रतिशत कृषक आबादी थी। अल्प एवं मध्यकालीन ऋण प्रदान करने वाली समितियों की प्रगति निम्न प्रकार है —

प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ

मद	१९६६-६७ (उपलब्धि)	१९६७-६८ उपलब्धि (अस्थायी)
१. समितियों की संख्या (लाख)	१·७९	१·७५
२ सदस्य संख्या (लाख)	२६७	२ ८३
३ कृषक आबादी जो इनके अन्तर्गत है (प्रतिशत)	४१	४२
४ अल्प एवं मध्यकालीन ऋण जो दिये गये (करोड़ रुपये)	३६६ ४७ (३९ ७१) ●	४०४ ५८ (४६ ०४) ●

● (कोष्ठकों में दिये गये आंकड़े कुल राशि में मध्यकालीन ऋण को बताते हैं)

१९६६-६७ के काल में प्राथमिक ऋण ढांचे को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न किये गये। समितियों के दृढ़ी करण के फलस्वरूप इन समितियों की संख्या में कमी हुई प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की संख्या जून १९६७ के अन्त में १ ७९ लाख थी जबकि जून १९६१ के अन्त में २ १२ लाख समितियाँ थीं। इन समितियों में ३०-६-१९६८ तक पुन कमी हुई। इस समय तक ये समितियाँ घट कर १ ७५ लाख हो गयी। अल्प एवं मध्यकालीन ऋण के क्षेत्र में १९६१-६२ से १९६६-६७ (६ वर्ष) में मध्य लगभग २७ करोड़ रुपये की औसत वार्षिक वृद्धि हुई थी।

वर्ष १९६७-६८ के अन्त में केन्द्रीय सहकारी बैंकों की संख्या ३४४ हो गयी। इन बैंकों की अंशपूंजी ९९ २४ करोड़ रुपये थी जिसमें सहकारी अंश दान २६ ७९ करोड़ रुपया था। वर्ष १९६६-६७ में इनकी राशियाँ क्रमशः ३५ ९९ करोड़ रुपये तथा २१ ६३ करोड़ रुपये थी। इन बैंकों के निक्षेप वर्ष १९६७-६८ में २५९·३२

करोड रुपये से बढकर २८८ ५८ करोड रुपये हो गये। इनके द्वारा वर्ष १९६६-६७ मे ९४३·५३ करोड रुपये के ऋण प्रदान किये गये जबकि वर्ष १९६७-६८ मे यह राशि घटकर ८८६ करोड रुपये हो गयी। राजस्थान, मैसूर और गुजरात मे कमजोर केन्द्रीय बैंकों की पुन स्थापना योजनायें आरम्भ की गयी है।

वर्ष १९६७-६८ के अन्त में देश मे शीर्ष सहकारी बैंक २५ थे। इनकी अश पूंजी वर्ष १९६६-६७ तथा १९६७-६८ मे क्रमश ३१ १६ करोड रुपये तथा ३४·९७ करोड रुपये हो गयी। जहाँ तक इनकी निधियों का प्रश्न है इनमे पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९६७-६८ मे इनकी राशि १४७ ३८ करोड रुपये से बढकर १८० ६७ करोड रुपये हो गयी। इन बैंको ने वर्ष १९६६-६७ तथा वर्ष १९६७-६८ में क्रमश ५१३ १६ करोड रुपये तथा ६३५ ३ करोड रुपयो के ऋण प्रदान किये। वर्ष १९६६-६७ मे ऋण स्थिरीकरण प्रवन्ध भी किया गया है। पजाब राज्य को छोड़कर *सभी राज्य सहकारी बैंको ने ऋण स्थिरीकरण निधियो का निर्माण कर* लिया है।

देश मे भूमि बन्धक बैंको के विकास के भी अनेक प्रयत्न किये गये है। अब राज्यो तथा केन्द्र शासित क्षेत्रो मे १९ केन्द्रीय भूमि विकास बैंक हैं। वर्ष १९६६-६७ तथा वर्ष १९६७ ६८ मे प्राथमिक *भूमि बन्धक बैंको की सख्या* क्रमश ७०७ तथा १०२७ हो गयी। इन बैंको द्वारा वर्ष १९६६-६७ मे ५७ ५५ करोड रुपये के ऋण दिये गये थे जो कि वर्ष १९६७-६८ मे बढकर ८३ ३१ करोड रुपये हो गये। इस काल मे बकाया ऋण की राशि क्रमश २०९ ३० करोड रुपये तथा २६९ ९८ करोड रुपये हो गयी। वर्ष १९६८-६९ मे सामान्य कार्य-क्रमो के अन्तर्गत दीर्घकालीन ऋण की राशि १०० करोड रुपये तक बढ जाने की सम्भावना है।

३० जून १९६८ को प्राथमिक स्तर के विपणन ढाँचे मे ३३०० प्राथमिक विपणन समितियाँ थी। इनमे मे २४५१ समितियो मे सरकार की साझेदारी थी। *क्षेत्रीय आधार पर लगभग २८०० विपणन समितियाँ गठित की गयी थी।* वर्ष १९६८-६९ म वर्तमान विपणन समितियो को मजबूत बनाने का काम मुख्य था। वर्ष १९६७-६८ के अन्त मे १५७८ विधायन इकाइयो मे से लगभग १२०० इकाइयाँ विपणन समितियो के सहायक के रूप मे स्थापित की गयी थी। सहकारी चीनी मिलो के ८ राज्य सघ हैं। ये सभी सघ राष्ट्रीय सहकारी चीनी कारखाना सघ से सम्बद्ध हैं।

वर्ष १९६६-६७ मे विपणन समितियो ने ३३८ करोड रुपये के *मूल्य की कृषि* उपज का कारोबार किया जबकि वर्ष १९६७-६८ मे यह कारोबार ४६२ करोड रुपये का हो गया। इस कारोबार की स्थिति निम्न प्रकार है —

सहकारी विपणन कारोबार

मद	सहकारी समितियों द्वारा खरीदी बेची गयी कृषि उपज का मूल्य (करोड रुपये)	
	१९६६-६७	१९६७-६८ (अस्थायी)
१. खाद्यान्न	१४८	१६३
२. गन्ना	९५	१८०
३ अन्य फसलें	९५	११९
कुल	३३८	४६२

(Source —Report 1968-69 Govt cf India (Co-operative Deptt)

सहकारी समितियो ने गत वर्षों मे निर्यात व्यापार मे भी भाग लेना प्रारम्भ किया है। वर्ष १९६७-६८ में कृषि उपज के लिये किये गये व्यापार की मात्रा का मूल्य लगभग ६० करोड रुपये हो गया जबकि वर्ष १९६६-६७ मे ११ करोड रुपये के मूल्य का व्यापार किया गया था।

वर्ष १९६८-६९ के अन्त तक सहकारी चीनी कारखानो की सख्या ७९ तक पहुँच गयी। सहकारिता के क्षेत्र मे कुल लाइसेन्स शुदा क्षमता १५ २६ लाख मीटरी टन हो गयी। इन चीनी कारखानो की सदस्यता तथा अश पूंजी जुन १९६८ के अन्त में क्रमश ३ ४१ लाख तथा ३७ ०७ करोड रुपये हो गयी। वर्ष १९६७-६८ मे सहकारी चीनी कारखानो ने निर्यात व्यापार के लिये १·१४ लाख मीटरी टन चीनी प्रदान की।

जून १९६८ के अन्त में ३५१ थोक भण्डार थे जवकि पिछले वर्ष इनकी सख्या ३४५ थी। इन थोक भण्डारो से १०६१७ प्राथमिक भण्डार व शाखायें सम्बद्ध हो चुकी हैं। विभिन्न योजनाओ मे लगभग १४००० भण्डारो की स्थापना हो चुकी है। इस समय बहु-विभागी भण्डारो/सुपर बाजारो की सख्या ७२ हो गयी जबकि ३० जून १९६७ को इनकी सख्या ३८ थी। थोक भण्डारो की कुल बिक्री वर्ष १९६६-६७ तथा १९६७-६८ मे क्रमश १७३ ६५ करोड तथा १७१·१० करोड रुपये हो गयी। ३० जून १९६८ तक १४ राज्य उपभोक्ता संघ स्थापित हो चुके हैं। इनकी अश पूंजी १८०·०० लाख रुपये थी जिसमे सहकारी अशदान ५६·४ प्रतिशत है। १९६६ मे राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता सघ ने अपना कार्यारम्भ कर दिया। सघ ने जून १९६८ को समाप्त होने वाले वर्ष मे २·५ करोड रुपये की बिक्री की।

सहकारी खेती के अन्तर्गत वर्ष १९६६-६७ और १९६७-६८ मे क्रमश ५२१ तथा ४४९ समितियाँ गठित की गयी। ३१ मार्च १९६८ को हमारे देश मे कुल

८५८२ सहकारी खेती समितियाँ थी जिनकी सदस्यता २१४४० थी तथा इनके पास ११ लाख एकड़ भूमि थी । इस प्रकार इन वर्षों में सहकारिता पर विशेष ध्यान दिया गया । वर्ष १९६८-६९ के सम्बन्ध में कुछ आँकड़े निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाते हैं —

विभिन्न सहकारी कार्यक्रम

कार्यक्रम	१९६८ (अनुमानित)
१. प्राथमिक कृषि साख समितियों की सदस्यता (मिलियन)	३०
२. इनके अन्तर्गत लाये गये कृषि परिवार (प्रतिशत)	४५
३. अल्प एवं मध्यकालीन ऋण प्रदान किये गये (करोड़ रुपये)	४५०
४. दीर्घकालीन ऋण प्रदान किये गये (करोड़ रुपये)	१००
५. विपणन समितियों द्वारा कृषि उपज का विपणन (करोड़ रुपये)	४७५
६ कृषि विधायन समितियाँ (संख्या)	१६००
७ सहकारी समितियों द्वारा प्रदान किये गये उवरक (करोड़ रुपये)	२६०
८. भण्डारण (मिलियन टन)	२ ६
९. ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण (करोड़ रुपये)	२७५
१०. शहरी उपभोक्ता समितियों की फुटकर बिक्री (करोड़ रुपये)	२७५

(Source :—Fourth Five Year Plan 1969 74, Draft page 167)

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वार्षिक योजनाओं (१९६६-६७) की अवधि में सहकारिता के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की गयी । विभिन्न क्षेत्रों में अनेक विकास के प्रयत्न किये गये जिनके फलस्वरूप सहकारी आन्दोलन को नया रूप मिला है ।

चतुर्थ योजना के लक्ष्य

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में सहकारिता के विकास की तरफ विशेष ध्यान दिया जायेगा । इस काल में सर्वाधिक प्रयत्न आन्दोलन के ढाँचे को सुदृढ़ बनाने में किये जायेंगे । विभिन्न प्रकार की समितियों को दृढ़ीकरण योजना के अन्तर्गत लाया जायेगा । कमजोर समितियों का पुनर्गठन इस प्रकार किया जायेगा कि वे अच्छी तरह से काम करने लग जायें । विभिन्न चल रहे कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने का प्रस्ताव किया गया है । इस योजना में सहकारिता विकास के लिये व्यय का प्रावधान निम्न प्रकार किया गया है —

सहकारी विकास कार्यक्रमों के लिये प्रावधान

विवरण	प्रावधान (करोड रुपये)
१. राज्य	९६.९८
२ केन्द्र शासित प्रदेश	३.९८
३. केन्द्र चलित कार्यक्रम	२२ ००
४. केन्द्रीय क्षेत्र	२८.७५
५. योग	१५१.४१

[Source—Fourth plan, 1969-74, Draft page 167]

इस प्रकार चतुर्थ योजना में सहकारी विकास पर कुल १५१.४१ करोड रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गयी है। इस काल मे विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियो के विकास के प्रयत्न किये जायेंगे। सहकारी प्रशिक्षण तथा शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी। चतुर्थ योजना मे विकास के लक्ष्य इस प्रकार रखे गये हैं

चतुर्थ योजना के लक्ष्य

कार्यक्रम	लक्ष्य १९७३-७४
१ प्राथमिक कृषि साख समितियो की सदस्यता (मिलियन)	४२
२ इनके अन्तर्गत लाये गये कृषि परिवार (प्रतिशत)	६०
३. अल्प एवं मध्यकालीन ऋण (करोड रुपये)	७५०
४. दीर्घकालीन ऋण (करोड रुपये)	७००
५. विपणन समितियो द्वारा बेची गयी कृषि उपज (करोड रुपये)	९००
६. सहकारी कृषि विधायन समितियां (सख्या)	२०००
७ समितियो द्वारा वितरित उवरक (करोड रुपये)	६५०
८ भण्डारण (मिलियन टन)	४.६
९ ग्रामीण क्षेत्रो के उपभोक्ता वस्तुओ का वितरण करोड रुपये)	५००
१० शहरी उपभोक्ता वस्तुओ की फुटकर बिक्री (करोड रुपये)	४००

(Source —Fourth Five year plan 1969-74, Draft, page 167)

सहकारिता आन्दोलन की धीमी प्रगति के कारण

भारतवर्ष मे पचवर्षीय योजनाओ मे अनेक प्रयत्नो के बावजूद भी आन्दोलन की प्रगति धीमी रही। यद्यपि आर्थिक क्षेत्र मे अनेक भागो मे सहकारिता को अपनाया

गया है । सहकारी साख समितियाँ देश की कृषि साख व्यवस्था करने मे असमर्थ रही है । वस्तुओं के क्रय विक्रय की समस्या ग्रामों मे आज भी बनी हुई है । किसानो की दीर्घकालीन आवश्यकताये भी पूर्ण नही हो पायी है । देश के अनेक भागो मे समितियाँ बहुत कमजोर हो चुकी हैं जो अपना कार्य भी नही चला पा रही है । समितियों की असफलता के कारण ग्रामीण जनता का विश्वास भी इनके कार्यो पर नही रहा है । सहकारिता आन्दोलन निर्बल वर्ग के लिये प्रारम्भ किया गया था किन्तु इस वर्ग को इससे कोई विशेष लाभ नही हुआ । आन्दोलन के विषय मे अनेक बाधायें रही हैं जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है ।

(१) शिक्षा का अभाव :

भारतवर्ष में अधिकाश जनता ग्रामो मे रहती है । ग्रामीण लोग अधिकाशत अशिक्षित हैं । जनता निरक्षर होने के कारण सहकारिता के सिद्धान्तो को नही समझ पायी । जिन उद्देश्यों को लेकर इसका विकास प्रारम्भ किया गया उनके विषय मे किसानो को अभी तक जानकारी नहीं हो पायी है । यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि किसी भी प्रकार का आर्थिक एव सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है । शिक्षा लोगों की समझ बढाती है । इसके माध्यम से रूढिवादी दृष्टिकोण समाप्त किया जा सकता है । किसान अशिक्षित होने के कारण वही विधियाँ काम मे ला रहे हैं जो आज से १०० वर्ष पूर्व काम मे ली जाती थी । उनका नवीन विधियों मे विश्वास नही है । यद्यपि आजकल शिक्षा का विस्तार हो रहा है किन्तु ग्रामीण किसान जो वडी उम्र के हैं अभी तक निरक्षर हैं ।

सहकारी आन्दोलन के विकास के लिये जन सहयोग मिलना नितान्त आवश्यक है । शिक्षा के अभाव मे जन सहयोग सुलभ नही हो सकता । ग्रामीण क्षेत्रो मे अभी तक समितियों के अधिकाश सदस्य अशिक्षित हैं । अत उनका भी उचित विकास नही हो पाया है । द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सहकारी आन्दोलन को जनता का आन्दोलन घोषित किया गया किन्तु फिर भी जन सहयोग पर्याप्त मात्रा मे नहीं मिल सका ।

(२) सहकारी साख को सर्वाधिक महत्व

भारतवर्ष के सहकारिता आन्दोलन मे आरम्भ मे ही साख को सर्वाधिक महत्व दिया जाता रहा है । प्रथम योजना के अन्त तक केवल इसी क्षेत्र मे विकास के प्रयत्न किये गये । किन्तु द्वितीय योजना के आरम्भ मे अन्य क्षेत्रो मे भी सहकारिता को महत्व दिया गया । ग्रामीण क्षेत्रो के सर्वांगीण विकास के लिये यह आवश्यक है कि वहाँ की अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे सहकारिता को आधार मान लिया जाये । सहकारी आन्दोलन न तो साख सुविधायें ही पर्याप्त मात्रा मे प्रदान कर पाया और न ही अन्य क्षेत्रों मे । कृषि विकास के लिये आधुनिक विधियों का प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है । वैज्ञानिक विधियो के अन्तर्गत उत्तम बीज, खाद, आधुनिक उपकरण तथा सिंचाई व्यवस्था आवश्यक हैं । इन भागो मे सहकारिता ने कोई विशेष प्रगति नही की । अत देश मे सहकारी आन्दोलन सफल नही हो सका ।

(३) धन सम्बन्धित कठिनाइयाँ :

सहकारी समितियों के उचित संचालन के लिये पर्याप्त मात्रा में धन होना आवश्यक है। विशेषकर ऋण समितियों को धन सम्बन्धी व्यवहार करना पड़ता है। किसानों को ऋण प्रदान करने के लिये पर्याप्त धन के अभाव में सहकारी साख समितियाँ अधिक विकसित नहीं हो सकी। विपणन समितियों को अधिक मात्रा में कृषि उपज खरीदने, उनके भण्डारण व्यवस्था तथा किसानों की अल्पकालीन फसल ऋण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये धन आवश्यक होता है। इनके अतिरिक्त मार संचार समितियों औद्योगिक समितियों, गृह निर्माण समितियों आदि के पास पर्याप्त मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। हमारे देश में अभी तक सभी प्रकार की समितियाँ आर्थिक दृष्टि से निर्बल हैं। यद्यपि वित्तीय व्यवस्था के लिये अनेक प्रयत्न किये गये है किन्तु अनेक समितियाँ इतनी कमजोर हो चुकी हैं जिनका जिन्दा रहना बहुत कठिन हो गया है। सहकारी समितियों के पास धन का अभाव इसलिये बना हुआ है कि उनके पास अंश पूंजी कम है। अन्य निधियाँ तथा कार्यशील पूंजी समितियाँ की अंश पूंजी पर निर्भर होती हैं। यदि अंश पूंजी पर्याप्त है तो अन्य निधियाँ भी बढ़ायी जा सकती हैं।

ऋण समितियों के सामने धन सम्बन्धी कठिनाई का एक मुख्य कारण अवधिपार बकाया ऋण की राशि में निरन्तर वृद्धि होना है। अधिकांश ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिये किये जाते हैं। किसान अपने पुराने ऋणों को चुकाने में इनको कार्य में ले लेते है अतः वापिस करने में कठिनाई आती है। फलतः बकाया राशि निरन्तर बढ़ती जाती है।

(४) सहकारी प्रशिक्षण एवं शिक्षा की कमी

सहकारी प्रशिक्षण से तात्पर्य उस कार्यक्रम से जिसमे सहकारी संस्थाओं तथा सहकारी विभाग के वेतन भोगी कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाये। सहकारी शिक्षा से अभिप्राय उन सभी कार्यक्रमों का है जिससे सहकारी पदाधिकारियों, सदस्यों तथा जनता की ज्ञान की वृद्धि की जा सके। सहकारी शिक्षा के द्वारा सहकारिता के मुख्य उद्देश्य तथा सिद्धान्तों की जानकारी प्रदान की जाती है। भारतवर्ष में इस दोनों व्यवस्थाओं का अभाव पाया जाता है। दूसरी तरफ समितियों के सदस्य सहकारिता के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों से भी अनभिज्ञ हैं। अतः सहकारी आन्दोलन विकास नहीं कर सका।

(५) अकुशल नेतृत्व :

भारतवर्ष में ग्रामीण क्षेत्रों में कुशल नेतृत्व का अभाव पाया जाता है। अशिक्षा के कारण अच्छे नेता तैयार नहीं किये जा सके है। सहकारी समितियों को अकुशल नेतृत्व प्राप्त है। नेता कुशल ईमानदार, साहसी तथा कर्मठ होने आवश्यक हैं। किन्तु भारतवर्ष में स्वार्थयुक्त राजनीति वाले नेताओं का आधिपत्य है। ये व्यक्ति अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये समितियों की निधियों का अनुचित उपयोग करते हैं। नेतृत्व की अकुशलता के कारण समितियों को निरन्तर हानि उठानी पड़ती है जिसके कारण इनकी ख्याति बिगड़ती चली जाती है।

(६) अकुशल प्रबन्ध

सहकारी समितियों मे प्रबन्धक अकुशल पाये जाते हैं। इसका सबसे प्रमुख कारण है कि ये समितियाँ प्रबन्धको को पर्याप्त वेतन देने मे असमर्थ हैं अत अच्छे, अनुभवी, प्रशिक्षित, ईमानदार तथा परिश्रमी व्यक्ति आकर्षित नही हो पाते हैं। आजकल वैज्ञानिक प्रबन्ध का महत्व बहुत बढ चुका है। किन्तु सहकारिता के क्षेत्र मे इसका सर्वथा अभाव पाया जाता है। भारतवर्ष मे प्रबन्धको के प्रशिक्षण की व्यवस्था का भी अभाव पाया जाता है।

(७) उचित समन्वय का अभाव .

किसी भी सगठन के कुशल सचालन के लिये सभी भागो मे उचित समन्वय स्थापित करना आवश्यक है। एक ही समिति के अन्दर विभिन्न विभागो के अधिकारियो मे समन्वय की आवश्यकता पडती है। इसके अतिरिक्त अनेक सहकारी समितियो मे भी समन्वय स्थापित करना उपयुक्त रहता है। किन्तु भारतवर्ष मे सघीय सस्थाओ के उचित ढाँचे के अभाव मे सभी क्षेत्रो की समितियो मे समन्वय स्थापित नही किया जा सका है।

(८) प्रतियोगिता

सहकारिता आन्दोलन को निजी क्षेत्र के व्यक्तियो से कठिन प्रतियोगिता करनी पड रही है। प्राथमिक ऋण समितियो को महाजनो तथा साहूकारो से प्रतिस्पर्धा करनी पडती है। विपणन समितियो तथा उपभोक्ता भण्डारो को निजी व्यापारियो से प्रतियोगिता करनी पड रही है। निजी व्यापारी बहुत व्यापार कुशल तथा पर्याप्त साधनो वाले होते हैं अत उनके सामने टिकना बहुत कठिन है। निजी क्षेत्र के व्यक्ति कभी-कभी तो इन समितियो मे अपने एजेण्टो को सदस्य बनवा देते हैं और समितियो को नुकसान पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। इस स्थिति मे सहकारिता आन्दोलन की सफलता बहुत कठिन है।

(९) दलबन्दी एव पक्षपात :

भारतवर्ष मे ग्रामीण क्षेत्रो मे सहकारी समितियाँ राजनैतिक दलबन्दी का अखाडा बनी हुई है। दलबन्दी से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति समितियों के सदस्य बन जाते हैं और उनका समितियो मे अधिक प्रभाव हो जाता है। इसके कारण उनको समिति मे उच्च स्थान प्राप्त हो जाते हैं। ये व्यक्ति अपने दल के व्यक्तियो तथा सम्बन्धियों को समिति के लाभ पहुँचाने मे पक्षपात करते हैं। ऋण समितियो में ये व्यक्ति अपने दल के लोगों को ऋण देनेमे प्राथमिकता देते है।

(१०) अपर्याप्ति अकेक्षण, एवं पर्यवेक्षण व्यवस्था

भारतवर्ष मे सहकारी समितियां के अकेक्षण, निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण का अभाव पाया जाता है। प्रतिवर्ष अनेको समितियाँ बिना अकेक्षण के रह जाती हैं। निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के अभाव मे अनेक प्रकार की अनियमितताये आने लगती हैं जिनका प्रभाव समिति की कुशलता पर पडता है। हमारे देश मे अभी विभिन्न क्षेत्रो

मे सघीय ढांचा भी पूर्ण नही है अत पर्यवेक्षण नहीं हो पाता है। सहकारिता के क्षेत्र मे अभी तक अकेक्षण, निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के लिये कर्मचारियों की भी कमी पायी जाती है।

(११) अन्य :

देश के विभिन्न भागों मे समितियो के पास भण्डारण व्यवस्था का अभाव है। विपणन समितियां इस समस्या के कारण बहुत नुकसान उठा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों म अनेको भाग ऐसे है जहाँ अभी तक यातायात व्यवस्था नही है। न तो ग्राम किसी रेलवे लाइन से सम्बद्ध है और न ही किसी सडक यातायात से। अत आन्दोलन की व्यापकता मे कठिनाई आती है। अभी तक सहकारी ऋण को सहकारी विपणन के साथ सम्बद्ध करने मे भी विशेष प्रगति नही हुई है। इस व्यवस्था के हो जाने से ऋण समितियो के ऋण वसूली मे पर्याप्त आसानी हो जायेगी। सहकारी आन्दोलन का लाभ अभी तक निर्धन व्यक्तियो को नही मिल पाया है क्योकि ऋण प्राप्त करने के लिये या तो व्यक्तिगत जमानत की आवश्यकता पडती है अथवा भूमि बन्धक रखनी पडती है। किन्तु निर्धन व्यक्तियो के पास दोनों प्रकार की जमानतो का अभाव पाया जाता है। अत वे इन सुविधाओं का लाभ उठाने मे असमर्थ है। उनको विवश होकर महाजनो के पास जाना पडता है। यही पर सहकारिता का मूल उद्देश्य समाप्त हो जाता है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतवर्ष मे अनेको कारणो से सहकारी आन्दोलन असफल रहा है। किन्तु इसे सफल बनाना आवश्यक है। इसके मुख्य सुझाव निम्न प्रकार है —

सहकारी आन्दोलन की सफलता के सुझाव

(१) सहकारी प्रशिक्षण व्यवस्था

सहकारी आन्दोलन की सफलता के लिए सहकारी समितियों मे काम करने वाले कर्मचारियो को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। देश मे सहकारी प्रशिक्षण व्यवस्था के लिये वरिष्ठ, मध्यस्तरीय तथा कनिष्ठस्तरीय अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है जिनमे सहकारी सस्थाओं तथा सहकारी विभाग के अधिकारियो को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। देश की सभी समितियों के कर्मचारियो को पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए। प्रशिक्षण से कर्मचारियों की उत्पादकता मे वृद्धि होगी। फलत समितियो को लाभ हो सकेगा।

(२) सहकारी शिक्षा का विस्तार

देश मे सहकारी शिक्षा का विस्तार करना आवश्यक है। समितियो के सदस्यो तथा अधिकारियो को सहकारिता के उद्देश्यो तथा सिद्धान्तो के बारे मे पर्याप्त जानकारी प्रदान की जाये ताकि वे आन्दोलन का लाभ उठा सके। आम जनता मे सहकारिता के महत्व की जानकारी देनी चाहिए। सहकारी शिक्षा के विस्तार के लिए विशेष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाना, कक्षायें चलाना, प्रचार सामग्री का प्रकाशन करना, फिल्म प्रदर्शन, रेडियो वार्ता आदि प्रमुख माध्यम हैं।

(३) समितियों को सुदृढ़ बनाना

सहकारी समितियों के दृढ़ीकरण का कार्यक्रम चालू किया जा चुका है। किन्तु यह कार्य बहुत धीमी गति से हो रहा है। समितियाँ सुदृढ़ बनाने के लिये उनकी सदस्यता में पर्याप्त वृद्धि करनी पड़ेगी। वर्तमान परिस्थितियों में समितियों की संख्या में अधिक वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु उनको आर्थिक आकार प्रदान करना चाहिए। दृढ़ीकरण कार्यक्रम को अपनाने से समितियों की संख्या में कमी अवश्य होगी किन्तु सदस्यता, अंशपूंजी तथा कार्यशील पूँजी में संतोषजनक वृद्धि होगी।

(४) वित्तीय सुविधायें

सहकारी समितियों के सफल संचालन के लिये सरकार को पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिए। यद्यपि पंचवर्षीय योजनाओं में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा रिजर्व बैंक ने इस तरफ प्रयत्न किये हैं किन्तु इस तरफ अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। बाहरी सहायता के अतिरिक्त समितियों को अपने आन्तरिक साधनों को भी बढ़ाना चाहिए क्योंकि आन्तरिक निधियाँ सर्वोत्तम मानी जाती हैं।

(५) समन्वय व्यवस्था

देश के सहकारी आन्दोलन में समन्वय स्थापित करना नितान्त महत्वपूर्ण है। सभी क्षेत्रों को सहकारी समितियों में समन्वय तथा एक ही क्षेत्र की विभिन्न समितियों में समन्वय स्थापित करना चाहिए। समन्वय कार्य के लिये संघीय संस्थायें बहुत सहायक सिद्ध हो सकती हैं। अतः देश में सहकारिता के क्षेत्र में संघीय ढाँचे को अधिक सुदृढ़ रूप प्रदान करना चाहिए।

(६) अंकेक्षण तथा पर्यवेक्षण व्यवस्था

देश के सहकारी विकास में इन दोनों की बहुत आवश्यकता है। अंकेक्षण की व्यवस्था देश के विभिन्न राज्यों के विभागों के रजिस्ट्रारों का उत्तरदायित्व है। आजकल कई जगह अंकेक्षण कार्य के लिये सहकारी विभाग में अलग अंकेक्षण की इकाई स्थापित की जा रही है। पर्यवेक्षण का कार्य संघीय संस्थाओं को प्रदान करना चाहिये।

(७) अन्य .

सहकारी आन्दोलन की सफलता के लिये अन्य उपाय भी काम में लाने चाहिये। विभिन्न सहकारी समितियों में कुशल, अनुभवी तथा परिश्रमी प्रबन्धकों की नियुक्ति करनी चाहिये। सहकारी ढाँचे को सुदृढ़ बनाया जाये। सहकारी साख को सहकारी विपणन के साथ सम्बद्ध किया जाये ताकि बकाया धन की पूर्ति करने में सुविधा रहे। ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डारण व्यवस्था का भी उचित विकास किया जाना चाहिए। इन सुझावों के आधार पर उन्नति के प्रयत्न किये जायेंगे तो निश्चय ही सफलता मिल सकेगी।

प्रश्न

१. भारत के सहकारी आन्दोलन के विषय में आप क्या जानते हैं ? आन्दोलन की धीमी प्रगति के क्या कारण हैं ? सफलता के लिये अपने सुझाव दीजिये ।

२. पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी आन्दोलन की प्रगति विषय पर संक्षिप्त नोट लिखिये ।

३ भारतीय सहकारी आन्दोलन की नवीन प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिये । आन्दोलन के विकास के लिये आप क्या सुझाव पेश करेंगे ।

४ देश की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में सहकारी समितियों के महत्व की व्याख्या कीजिये ।

१५

सहकारी अंकेक्षण एवं पर्यवेक्षण
(Cooperative Audit, Supervision)

अंकेक्षण किसी संस्था की वित्तीय सुदृढता का सूचक है। सहकारिता मे अंकेक्षण सहकारी समितियों की आर्थिक स्थिति की जानकारी देता है। समितियों के सदस्य इसके आधार पर यह जान सकते हैं कि संस्था से प्रबन्धक, संस्था के हित मे उचित ढग से कार्य कर रहे है या नही। हमारे देश मे सहकारिता को राजकीय सरक्षण प्राप्त है अत सहकारिता के सावजनिक रूप को बनाये रखने और जन साधारण को विश्वास दिलाने के लिये कि आन्दोलन उचित दिशा मे बढ रहा है, अंकेक्षण आवश्यक है। सन् १९१५ मे नियुक्त मैंकलेगन समिति ने अपने प्रतिवेदन मे लिखा है। "अंकेक्षण का आशय केवल सहकारी समितियो के सतुलन चित्र को ही तैयार करना नही वरन् सदस्यो को भौतिक सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए आवश्यक रोक बनाय रखना भी है।"

मिर्धा समिति ने जो कि सन् १९६४ मे नियुक्त की गयी थी, अपने प्रतिवेदन मे लिखा है, "अंकेक्षण को अपना दायरा कानून द्वारा चाही गयी आवश्यकताओं की सीमा मे आगे बढाना चाहिए और उन सभी परिस्थितियो की जाँच की जानी चाहिए जो किसी संस्था की साधारण स्थिति को निर्धारित करती हो। उदाहरणत अंकेक्षको का यह कर्तव्य हो कि वे ऐसी घटनाओ की सूचना दें जिसमे कानून अथवा उपविधियो के प्रावधानो का उल्लघन हुआ हो रोकड बाकी की जाँच तथा लेखो की शुद्धता का प्रमाणीकरण करें, देखें कि ऋण उचित रूप से उचित अवधि एव उद्देश्यो के लिये आवश्यक एव पूर्ण जमानत पर दिये जाते हैं भुगतानो की जाँच करें और साधारणतया यह देखें कि समिति सुदृढ नीतियो पर कार्य कर रही है एव समिति (Committee), अधिकारी तथा साधारण सदस्य अपने कर्त्तव्यो एव उत्तरदायित्व को समझते हैं।"[1]

---

१ मिर्धा समिति रिपोर्ट—अध्याय ९, पृष्ठ ६३.

सहकारिता मे अकेक्षण दो प्रकार का हो सकता है प्रथम वित्तीय अकेक्षण और द्वितीय कार्यपद्धति का अकेक्षण ।[2] वस्तुत सहकारी अकेक्षण का आधारभूत रूप वित्तीय है और कार्यप्रणाली का अकेक्षण वित्तीय अकेक्षण का पूरक होना चाहिए । वित्तीय अकेक्षण का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि व्यापारिक सूझ-बुझ की सामान्य मान्यताओं को ध्यान मे रखते हुए सहकारी समिति का कार्य उचित प्रकार मे एव ईमानदारी से चल रहा है या नही । दूसरी तरफ कार्य प्रणाली के अकेक्षण के अन्तर्गत सहकारी समिति मे पायी जाने वाली प्रशासनिक और प्रणाली सम्बन्धी व्यवस्थाओं की देखरेख की जाती है ।

भारतवर्ष मे अकेक्षण व्यवस्था

भारत मे सहकारी समितियो की अकेक्षण व्यवस्था सामान्यत सहकारी समितियो के रजिस्ट्रार द्वारा नियन्त्रित सहकारी कर्मचारी वर्ग द्वारा करवाने की है। पहले पजाब मे ऐसी व्यवस्था थी कि वर्ष मे कम से कम एक बार ऐसे अधिकारियों द्वारा अकेक्षण होना चाहिए जो कि रजिस्ट्रार के नियन्त्रण मे न हो किन्तु बाद म यह प्रथा छोड दी गयी । उत्तर-प्रदेश मे अकेक्षण का सरकार के वित्त विभाग का उत्तरदायित्व है । देश के अन्य भागो मे अकेक्षण रजिस्ट्रार के नियन्त्रण मे होता है ।

सहकारिता के क्षेत्र मे विकसित देशों मे सहकारी अकेक्षण कार्य सघीय संस्थाओ के आधीन है । जर्मनी मे सहकारी समितियो के अकेक्षण के लिए अकेक्षण सघ स्थापित कर लिये गये । कुछ देशो मे सहकारी समितियाँ निजी व्यावसायिक अकेक्षक नियुक्त कर लेती हैं । भारतवर्ष मे भी यह प्रथा बहुत सीमित अश तक प्रचलित रही है ।

अब प्रश्न उठता है कि क्या भारतवर्ष मे अकेक्षण रजिस्ट्रार के प्रभाव से मुक्त अधिकारियो के हाथ मे रखा जाये ? इस प्रश्न की जांच 'सहकारी कानून पर समिति (१९५७) ने की । समिति का विचार था कि "अकेक्षण को रजिस्ट्रार तथा उसके विभागीय कर्मचारियो के अधिकार क्षेत्र से दूर रखने का एक मुख्य कारण यह है कि सहकारी विभाग सहकारी समितियो के कारोबार का प्रबन्धकर्त्ता है । यदि सहकारी समितियो का पर्यवेक्षण कार्य सहकारी विभाग सहकारी वित्तीय बैंको को हस्तातरित कर देता है तो अकेक्षण रजिस्ट्रार के आधीन रखा जा सकता है ।" इस समिति ने वास्तव मे देखा जाये तो अकेक्षण का उत्तरदायित्व सहकारी विभाग को देने का सुझाव दिया किन्तु पर्यवेक्षण कार्य सहकारी विभाग पास न रखे ताकि इस बात की आलोचना करने का कोई अवसर पैदा नही होगा कि जो लोग सहकारी समितियां को चलाते है अथवा पर्यवेक्षण करते हैं वे ही अकेक्षण करते हैं ।

सहकारी प्रशासन पर नियुक्त मेहता समिति ने सिफारिश की है कि अकेक्षण कार्य रजिस्ट्रार का वैधानिक उत्तरदायित्व होना चाहिए । समिति ने आगे कहा कि रजिस्ट्रार के नियन्त्रण मे मुख्य अकेक्षण अधिकारी की अध्यक्षता मे एक पृथक अकेक्षण कक्ष होना चाहिए ।

---

२. सहकारी प्रबन्ध एव प्रशासन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, १९६०.

मिर्धा समिति (१९६४) ने अपने प्रतिवेदन में यह विचार व्यक्त किया है, "सहकारी समितियों का अंकेक्षण किसी ऐसे अभिकरण से जो सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के प्रभाव से स्वतन्त्र हो कराया जाय। ऐसा अभिकरण लगभग उन्हीं रूपरेखाओं पर स्थापित किया जा सकता है जिन पर स्वायत्त निधि अंकेक्षण अभिकरण गठित हैं और जो कई राज्यों में पहले मौजूद हैं। यह अभिकरण चाहे राज्य वित्त विभाग द्वारा नियन्त्रित हो चाहे राज्य के विकास आयुक्त द्वारा। इस सन्दर्भ में ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति का सुझाव, कि उन राज्यों में जहाँ विकास आयुक्त हो, अंकेक्षण को रजिस्ट्रार के बजाय विकास आयुक्त के अधिकार में रखा जाये, महत्त्वपूर्ण है। हमारे मत में इससे सहकारी समितियों के लेखों के निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ अंकेक्षण को प्रोत्साहन मिलेगा। यह अन्ततः जर्मनी की भाँति, सहकारी समितियों द्वारा अपने पृथक अंकेक्षण संघ बनाकर अंकेक्षण के कार्य को सम्भालने या इसे राज्य सहकारी संघों अथवा राष्ट्रीय सहकारी संघों को सौंप जाने का मार्ग प्रशस्त करेगा।"

सहकारी समितियों का अंकेक्षण वास्तव में रजिस्ट्रार के विभागीय कर्मचारियों द्वारा नहीं करवाया जाना चाहिए क्योंकि ये प्रशासन कार्य में लगे हुये होते हैं। अंकेक्षण एक स्वतन्त्र अभिकरण के हाथ में होना उचित रहेगा। विभागीय क्षेत्रों में सहकारी समितियों के संघों द्वारा यह कार्य सम्पादित करवाया जाना चाहिए।

सहकारी अंकेक्षण में कमियाँ एवं सुधार के उपाय

भारतवर्ष में सहकारी अंकेक्षण में अनेकों कमियाँ रही हैं जिनके कारण आन्दोलन की सही स्थिति जानने में कठिनाई रही है देश में अनेकों समितियाँ ऐसी रह जाती हैं जिनका वार्षिक अंकेक्षण नहीं हो पाता है। इससे समितियों में कई प्रकार की अनियमिततायें आ गयी हैं। मुख्य-मुख्य कमियाँ और सुझाव निम्न प्रकार है —

(१) हमारे देश में अंकेक्षण कार्य के अन्तर्गत कम सहकारी समितियाँ आ पाती हैं। उदाहरणतः सहकारी वर्ष १९६१-६२ के प्रारम्भ में ३,२८,२४७ समितियों का अंकेक्षण होना था जिनमें से ३०,५१२ समितियों का अंकेक्षण दो वर्ष से भी अधिक समय में होना था। वर्ष १९६१-६२ में २,६९,५३५ समितियों का अंकेक्षण हुआ था जिसमें से १६,१३४ समितियाँ भी सम्मिलित थीं जिनका दो वर्ष या अधिक समय से अंकेक्षण होना शेष था। इनके पश्चात् के वर्षों में भी यही स्थिति रही है।

इस सम्बन्ध में यह सुझाव महत्त्वपूर्ण है कि देश की सभी सहकारी समितियों का उचित समय पर अंकेक्षण होना चाहिए। इससे समितियों में अनियमितताऐं समय-समय पर ज्ञात होती रहती हैं।

(२) साधारणतः अंकेक्षण कार्य सामान्य एवं नीचे स्तर के अंकेक्षकों को सौंपा जाता है। ये व्यक्ति अंकेक्षण कार्य में अधिक दक्ष नहीं होते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए अंकेक्षण कार्य अनुभवी व्यक्तियों को सौंपा जाये। अंकेक्षण करने के लिए पर्याप्त एवं प्रशिक्षित कर्मचारी नियुक्त किये जाने चाहिए।

(३) भारतवर्ष मे अंकेक्षण रजिस्ट्रार का उत्तरदायित्व है। विभागीय अधिकारी अंकेक्षण करते है अत उपयुक्त अंकेक्षण नही हो पाता है। आलोचको का मत है कि जो व्यक्ति सहकारिता के प्रशासनिक कार्यों मे लगे हुए हैं उन्हे अंकेक्षण कार्य नही सौंपना चाहिए। सहकारी समितियों का अंकेक्षण वास्तव मे एक स्वतन्त्र अभिकरण को सौंपना चाहिए।

(४) भारतवर्ष मे अभी तक अंकेक्षण कार्य अधिक व्यापक नही है। इस बात की छानबीन नहीं की जाती है कि सहकारी समितियाँ सहकारी सिद्धान्तो पर चल रही है या नही। सहकारी समितियो के अंकेक्षण को अंकेक्षण के प्रतिवेदन मे यह एक नियम बना लेना चाहिए कि क्या सहकारी सिद्धान्तो से विचलित होने का कोई उदाहरण सामने आया है। समिति के निर्बल एवं छोटे वर्गों के सदस्य उसके लाभ एवं सेवाओ का उचित उपभोग कर पा रहे हैं या नही। इन सब बातो की उचित जानकारी की जानी आवश्यक है।

उपरोक्त सुझावो को ध्यान मे रखकर अंकेक्षण कार्य को अधिक व्यापक बनना चाहिए। सभी प्रकार की सहकारी समितियो का उचित समय पर तथा अच्छी तरह से अंकेक्षण होना आवश्यक है।

पर्यवेक्षण (Supervision)

सहकारी समितियो के गठन के पश्चात् सदस्यो मे उनका विश्वास प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक है। समितियों को समय समय पर उनकी कार्य प्रणाली मे पथप्रदर्शन की आवश्यकता पडती है। सन् १९१५ मे नियुक्त मेक्लेगन समिति ने सुझाव दिया था कि सहकारी समितियो के लेखा पुस्तको की निरन्तर जाँच करना और उनके प्रबन्ध का उचित समय पर परीक्षण नितान्त आवश्यक है। पर्यवेक्षण के अन्तर्गत प्रशासनिक सहायता देना, आर्थिक मामलो मे परामर्श देना और सहकारी एवं व्यावसायिक क्षेत्रो मे पथप्रदर्शन करना सम्मिलित किये जाते हैं। पर्यवेक्षण मे वे बातें भी सम्मिलित की जाती हैं जो कि निरीक्षण तथा अंकेक्षण से सम्बन्धित होती हैं।

सहकारी प्रशासन समिति (१९६३) ने पर्यवेक्षण कार्यों को बताते हुए लिखा है कि पर्यवेक्षण का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि समिति उस प्रकार से कार्य कर रही है या नही जिस ढग से उसके कार्य की आशा की जाती है। पर्यवेक्षण मे निम्न बातो की जाँच करनी होती है —

(i) समिति की सम्पत्तियो का दुरुपयोग तो नही हो रहा है।

(ii) समिति मे लेखा उचित प्रकार से और सही-सही किया जा रहा है या नही।

(iii) समितियो का रूप सहकारी है या नहीं तथा उनमे अनुशासन की क्या स्थिति है ?

(iv) व्यवसाय मे इस प्रकार का दोष तो नही है जिसका समाधान किया जा जा सकता है।

उक्त सभी बातें पर्यवेक्षक को ध्यान मे रखनी होगी। इस सम्बन्ध मे अंकेक्षक की सबसे अन्तिम रिपोर्ट प्रारम्भिक सामग्री के रूप मे अधिक उपयोगी होगी। पयवेक्षण मे उक्त चारो बातो को उचित छान-बीन करके कमियो को ज्ञात करने के पश्चात् सम्बन्धित अधिकारियों को बतला कर दुरुस्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सहकारी आन्दोलन मे आत्म निर्भरता लाने के लिये पर्यवेक्षण अनिवार्य पूर्वापेक्ष्य है। मेकलेगन समिति के अनुसार "पर्यवेक्षण कार्य मे सदस्य को सहकारी सिद्धान्तो की शिक्षा देने और नयी समितियो के गठन द्वारा आन्दोलन का प्रचार करने का कर्तव्य ध्वनित होता है। पर्यवेक्षक का काम यह देखने से सम्बन्ध रखता है कि समिति का कार्य केवल व्यापार जैसा ही नही वल्कि यथार्थ मे सहकारी है।"

भारतवर्ष मे सहकारी समितियो का पर्यवेक्षण

पर्यवेक्षण कार्य भारत मे अधिकाश राज्यो मे सहकारी विभाग द्वारा सम्पन्न किया जाता है। कुछ राज्यो मे यह कार्य सहकारी विभाग के हाथ मे न होकर सहकारी समितियो की गैर-सरकारी सस्थाओ द्वारा किया जा रहा है। पजाब तथा जम्मू काश्मीर मे सहकारी विभाग पर्यवेक्षण करता है। मध्य प्रदेश एव आसाम राज्यो मे प्राथमिक ऋण समितियो का पयवेक्षण केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा सहकारी विभाग करते हैं। उडीसा, तामिलनाद, केरल तथा आन्ध्र प्रदेश राज्यो मे प्राथमिक ऋण समितियों का पर्यवेक्षण केन्द्रीय ऋण सहकारी समितियों द्वारा किया जाता है तथा शेष समितियो का पर्यवेक्षण सहकारी विभाग करता है। राजस्थान, गुजरात, पश्चिमी बगाल तथा बिहार राज्यो मे भी ऋण दात्री समितियो का पयवेक्षण केन्द्रीय सहकारी बैंक करते है। उत्तर-प्रदेश मे यह कार्य राज्य सहकारी सघ करता है। बम्बई में सबसे पूर्व पयवेक्षण कार्य गैर सहकारी सस्थाओ द्वारा किया गया। जिला अथवा क्षेत्र स्तरो पर जिला अथवा क्षत्रीय पर्यवेक्षण समितियाँ स्थापित की गयी हैं। विभिन्न क्षेत्रो की कृषीय एव बहुउद्दश्यीय समितियाँ पयवेक्षण सघो से जोड दी गयी है। सघो मे पर्यवेक्षक होते हैं जिनको पारिश्रमिक सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है। कृषि ऋण एव बहुउद्देश्यीय समितियो के अतिरिक्त अन्य समितियो का पर्यवेक्षण सहकारी विभाग द्वारा किया जाता है।

पर्यवेक्षण की सस्थायें

पर्यवेक्षण निम्न सस्थाओ द्वारा किया जा सकता है—

(१) सहकारी विभाग :

भारतवर्ष मे प्रारम्भ से ही अधिकाश राज्यो मे पर्यवेक्षण कार्य सहकारी विभाग द्वारा किया जा रहा है। किन्तु आजकल इस कार्य को सहकारी विभाग द्वारा करने की आलोचना की जा रही है। कुछ विद्वानो का कहना है कि सहकारी विभाग आरम्भ मे यह कार्य करता था तब तो उचित था किन्तु वर्तमान समय मे इस आन्दोलन को आत्म निर्भर बनाने के लिये सहकारी विभाग को यह कार्य नही करना चाहिए।

(२) केन्द्रीय ऋण समतियाँ :

पर्यवेक्षण कार्य करने वाली सस्थाओ मे द्वितीय महत्वपूर्ण सस्थायें केन्द्रीय ऋण-दात्री समितियां हैं । केन्द्रीय ऋण-दात्री समितियां प्रायमिक ऋण-दात्री समितियो का उचित पर्यवेक्षण कर सकती हैं । जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि कुछ राज्यो में प्रार्थमिक ऋण समितियो का पयवेक्षण केन्द्रीय सहकारी बैंक-कर रहा है । सहकारिता के प्रशासन पर समिति और सहकारी ऋण पर समितियो न अपने प्रतिवेदनो मे केन्द्रीय सहकारी वैंको को पर्यवेक्षण के लिये उपयुक्त सस्थायें बताया है । किन्तु केवल ऋण समितियो का पयवेक्षण ही इन सस्थाओ द्वारा उपयुक्त हो सकता है ।

(३) सहकारी पर्यवेक्षण सघ

महाराष्ट्र राज्य मे पर्यवेक्षण सघो द्वारा पर्यवेक्षण कार्य प्रारम्भ किया गया है । हमारे देश में कई राज्यो मे ऋण समितियो के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार की समितियो का पर्यवेक्षण सहकारी विभाग कर रहा है किन्तु वतमान परिस्थितियों में यह उचित नही है । अत यह कार्य सहकारी पर्यवेक्षण सघो द्वारा किया जाना चाहिए ।

(४) जिला परिषद् एव पंचायत समितियाँ :

जिला परिषद् एव पचायत समितियाँ भी पर्यवेक्षण कार्य के लिए उपयुक्त नही हैं । "सहकारी समितियो एव पचायतो पर कायकारी दल" ने इस विषय में विचार व्यक्त किया कि ये सहकारी समितियाँ और पचायतें दोनो ही प्रजातान्त्रिक आधार पर स्थित है अत इनकी स्वतन्त्रता को समाप्त करना अनुचित है । पचायत समितियाँ यदि पर्यवेक्षण काय करेंगी तो इनका अनुचित प्रशासन सहकारी समितियो पर बढने लगेगा जिससे सहकारिता की आत्मनिर्भरता एव स्वतन्त्रता का हनन होगा । इसलिए पचायत समितिया द्वारा पयवेक्षण करवाना ठीक नही है ।

अब प्रश्न उठता है कि पर्यवेक्षण कार्य किन सस्थाओ द्वारा किया जाये । इस समस्या के समाधान के लिए सघीय समितियाँ उपयुक्त है । सघीय सस्थाओ द्वारा यह कार्य करने के सम्बन्ध मे कई तर्क दिये जा सकते हैं । प्रथम, सघीय सस्थाओं द्वारा यह कार्य करने से एक दूसरे से सम्बन्धित होने की भावना पैदा होगी । इससे प्राथमिक केन्द्रीय तथा शीर्ष समितियाँ एक सघीय ढाँचे को महसूस करेंगी । द्वितीय, सघीय समिति पयवेक्षण के माध्यम से आन्दोलन के प्रचार तथा कठिनाइयो को दूर करने मे सुरक्षात्मक रुचि ले सकती हैं । तीसरे, सहकारी विभाग इस कार्य से मुक्त हो कर अन्य कई कार्य कर सकेगा जो कि आन्दोलन की सफलता के लिए आवश्यक है ।

सघीय सस्थाओ द्वारा पर्यवेक्षण बनाने के लिये दो उपाय महत्वपूर्ण हैं— (१) जिन भागो मे केन्द्रीय व शीर्ष समितियाँ नही है वहाँ इनका निर्माण, (२) केन्द्रीय एव शीर्ष स्तरो पर योग्य एव प्रशिक्षित कमचारी नियुक्त किये जाने चाहिए । वास्तव मे योग्य एव प्रशिक्षित कमचारियो की जटिल समस्या है । इसके समाधान के लिये प्रशिक्षण व्यवस्था को अधिक व्यापक बनाना चाहिये । इसमे सहकारी आन्दोलन को उचित मार्ग दर्शन हो सकेगा और यह आन्दोलन आत्म निर्भर हो सकेगा ।

प्रश्न

१. सहकारी अंकेक्षण से आपका क्या अभिप्राय है ? आपकी राय मे यह कार्य किसे करना चाहिए ?

२ भारतवर्ष मे सहकारी अकेक्षण की क्या स्थिति है ? इसमे क्या-क्या कमियां हैं ? सुधार के सुझाव भी दीजिये ।

३ पर्यवेक्षण से आपका क्या अभिप्राय है ? यह कार्य किन-किन सस्थाओ द्वारा किया जा सकता है ? आप किस सस्था को अधिक उपयुक्त समझते है ? सकारण उत्तर दीजिए ।

द्वितीय खण्ड

राजस्थान में सहकारिता आन्दोलन

९

राजस्थान में सहकारी आन्दोलन की उत्पत्ति एवं विकास
(Begning and Development of Cooperative Movement in Rajasthan)

समाजवादी समाज का आधार सहकारिता है। इसके बिना कल्याणकारी राज्य के अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति असम्भव प्रतीत होती है। सहकारिता के आधार समानता, सामूहिक प्रयास, सामूहिक चेतना तथा एकता की भावना हैं। सहकारिता का प्रमुख लक्ष्य शोषणहीन समाज की स्थापना करना है। हमारी राष्ट्रीय नीति मे सहकारी सगठनो के विकास पर बल दिया गया है जिससे कि राष्ट्रीय अथव्यवस्था मे ये महत्त्वपूर्ण योगदान दे सके। हमारा देश बुनियादी तौर पर ग्रामो का देश है और ग्राम्य जीवन कृषि पर निर्भर है। कृषि कायक्रमो मे सहकारिता अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण जो कार्य अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा नही किया जा सकता उसे सगठित रूप से करना आवश्यक हो जाता है। अत हमारी नियोजित अर्थ व्यवस्था मे सहकारिता को आवश्यक समझा गया। राजस्थान मे भी आर्थिक विषमता को समाप्त करने की आवश्यकता हुई और सहकारिता के माध्यम से राज्य को ग्रामीण एव शहरी अर्थ व्यवस्था मे परिवर्तन के सकल्प किये गये। यहाँ जागीरदारी एव जमीदारी के निराकरण के पश्चात् ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे सहकारिता का महत्व और भी बढ गया। ग्राम्य जीवन स्तर मे उन्नति, आवश्यक तकनीकी सुधार एव रोजगार की वृद्धि के लिये सहकारिता मुख्य साधन समझा गया।

राजस्थान मे सहकारी आन्दोलन की उत्पत्ति एव विकास

अजमेर मेरवाडा के कृषको की आर्थिक स्थिति १९ वी शताब्दी के अन्त तक काफी बिगड चुकी थी। इस दशा मे महाजनो के विरुद्ध आन्दोलन होना स्वाभाविक था। १९०४ मे यह आन्दोलन सहकारिता के रूप मे अजमेर मे प्रगट हुआ। भारत

के प्रथम सहकारी अधिनियम तथा सशोधित सहकारी अधिनियम के अधीन १९१५ मे सहकारी कार्यक्रम भरतपुर जिले मे प्रारम्भ किया गया। इसके पश्चात् १९१६ मे कोटा, १९२० मे बीकानेर, १९२३ मे जोधपुर, १९३४ मे अलवर मे आन्दोलन फैल गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति तक किसनगढ, जयपुर तथा जोधपुर मे भी सहकारी कार्यक्रम चालू किये गये। धीरे धीरे यह कायक्रम अन्य भागो मे भी फैला। आर्थिक नियोजन से पूर्व मुख्यत ऋण देने का कार्य ही सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत था।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सहकारिता

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सहकारिता के कार्यक्रमो पर २५·७७ लाख रुपये व्यय किये गये। इस काल मे सहकारी शिक्षा समितियो एव सदस्यो को अनुदान तथा इनके अलावा केन्द्रीय सहकारी समितियो एव ऋण बैंको का गठन आदि कार्यक्रमो पर विशेष जोर दिया गया। सहकारी प्रशिक्षण के लिये एक स्कूल जयपुर मे तथा तीन केन्द्र भरतपुर, डूगरपुर तथा कोटा मे स्थापित किये गये। १९५३ मे एक शीर्ष सहकारी बैंक का निर्माण हुआ। इसी वर्ष राजस्थान सहकारी अधिनियम पारित किया गया। इन प्रयत्नो से आन्दोलन को काफी सहायता मिली। इस काल मे अनुकूल वातावरण बनाया गया तथा भविष्य के विकास के लिये पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ। विभिन्न प्रयत्नो के फलस्वरूप जो प्रगति हुई उसका विवरण अग्र लिखित है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सहकारिता का विकास

मदें	इकाई	१९५१-५६
१. समितियाँ	सख्या	८०७७
२ सदस्यता	लाखो मे	२·७५
३ प्राथमिक कृषि समितियाँ	सख्या	४८१२
४ सदस्यता		
५. सहकारिता के अन्तर्गत ग्रामीण परिवार	प्रतिशत	५
६. अल्प एव मध्यकालीन ऋण	लाख रुपये मे	८५·४६

(स्रोत—राजस्थान की आर्थिक प्रगति, जन सम्पर्क निदेशालय राजस्थान जयपुर)

इस तालिका से स्पष्ट है कि योजना के आज तक कुल सहकारी समितियो की सख्या ८०७७ हो गयी तथा इनकी सदस्य सख्या २·७५ लाख थी। इस काल मे ५ प्रतिशत ग्रामीण परिवार इस क्षेत्र के अन्तर्गत लाये गये। प्राथमिक कृषि समितियों की सख्या ४८१२ थी तथा सदस्य सख्या १ ३२ लाख थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे सहकारी विकास

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सहकारी क्षेत्र मे १९३ ६९ लाख रुपये व्यय हुए। ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति के सुझावो के आधार पर कार्य चालू किये गये। इस समिति के प्रमुख सुझाव उत्पादन के आधार पर ऋण देना, माल का सग्रह, सहकारिता के विभिन्न स्तरो पर राज्य द्वारा हिस्सा पूंजी के रूप मे साझेदारी की स्थापना करना आदि थे। द्वितीय योजना मे कुछ आधार भूत सस्थायें जैसे शीर्ष क्रय विक्रय समितियाँ, ग्राम्य गोदाम, प्राथमिक भू-बन्धक बैंक, केन्द्रीय सहकारी भू-बन्धक बैंक आदि इसी काल मे चालू की गयी। इस काल मे जो प्रगति हुई वह निम्न प्रकार है—

द्वितीय पचवर्षीय योजना में सहकारिता की प्रगति

मदें	इकाई	द्वितीय योजना (१९५६-६१)
१ समितियाँ	सख्या	१८,३०९
२ सदस्यता	लाखो मे	९·६८
३. प्राथमिक कृषि समितियाँ	सख्या	१० ९१३
४ सदस्यता	सख्या	६·७२
५. सहकारिता के अन्तर्गत ग्रामीण परिवार	प्रतिशत	२६·००
६ अल्प एव मध्यकालीन ऋण	लाख रु० मे	५६५ २३
७ दीर्घकालीन ऋण	लाख रु० मे	५ ३९

(स्रोत—राजस्थान की आर्थिक प्रगति, जनसम्पर्क निदेशालय जयपुर)

इस सारिणी के अनुसार कुल समितियाँ १८३०९ हो गयी तथा सदस्य सख्या ९·६८ लाख हो गयी। सहकारिता के अन्तर्गत ग्रामीण परिवार २६ प्रतिशत आ गये। द्वितीय योजना के अन्त तक १०९१३ प्राथमिक कृषि समितियाँ तथा ६·७२ लाख सदस्य सख्या हो गयी।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे सहकारिता का विकास

तृतीय पचवर्षीय योजना मे सहकारी क्षेत्र मे २४२·९१ लाख रुपये व्यय किये गये जबकि मूल प्रावधान ४०० लाख रुपये का था। इस योजना मे प्रथम तथा द्वितीय योजना मे की गयी प्रगति को अधिक गति प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया तथा उन क्षेत्रो को भी सहकारी क्षेत्र मे लाने का प्रयत्न किया गया जिसमे सहकारिता का प्रसार नही हुआ। ६७ प्रतिशत ग्रामीण परिवारो को सहकारी क्षेत्र मे लाने का मूल लक्ष्य था जो कि बाद मे ५१ प्रतिशत कर दिया गया। तीसरी योजना मे "४५०० नयी सेवा सहकारी समितियो की स्थापना तथा १००० लघु आकार की कृषि ऋण देने वाली समितियो का पुनरावर्तन का लक्ष्य रखा गया। इसके अतिरिक्त २५

प्राथमिक भू-बन्धक बैंक, ५० केन्द्रीय बैंको की शाखायें खोलने, २५० ग्राम्य गोदामो का निर्माण करने, दो कॉटन जीनिंग फैक्टरी, दो तेल मिल, दो दाल मिल, दो मूंगफली छीलने की मिल तथा एक चीनी मिल खोलनेका लक्ष्य रखा गया।' इस आन्दोलन की प्रगति निम्न प्रकार हुई—

तृतीय योजना में सहकारी विकास

मदें	इकाई	१९६१	१९६६
१. सहकारी समितियाँ	सख्या	१८३०९	२२५८०
२ सदस्यता	सख्या	९,६७,९२८	१४,९२,३११
३ हिस्सा पूंजी	लाख रुपये	६२०	११४०
४. कार्यशील पूंजी	लाख रुपये	३२५१	५७००

(स्रोत—राजस्थान मे सहकारी आन्दोलन—रजिस्ट्रार, सहकारी समितियाँ, राजस्थान, जयपुर)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि राज्य मे तृतीय योजना के अन्त मे कुल सहकारी समितियों की सख्या २२५८० हो गई जो कि १९६१ की तुलना मे २३ प्रतिशत अधिक हैं। सदस्य सख्या १९६६ मे १४,८२,३११ हो गयी जो कि १९६१ से ५४ प्रतिशत अधिक है। हिस्सा पूंजी तथा कार्यशील पूंजी मे भी १९६१ से १९६६ मे क्रमश ८४ प्रतिशत एव ७५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस योजना मे सहकारी समितियो की स्थिति निम्न प्रकार थी —

सहकारी समितियाँ

समितियाँ	१९६०-६१		१९६५-६६	
	सख्या	सदस्य	सख्या	सदस्य
१. राज्य सहकारी बैंक	१	१४७	१	११२
२. केन्द्र सहकारी बैंक	२९	१६५२०	२६	१६०५१
३. केन्द्रीय ऋण दात्री समितियाँ	१५९	१८४०८	२६६	४३४७६
४. कृषि ऋण दात्री समितियाँ	१०९१३	६,७२,६९२	१२७०२	१०,१५,५२३
५. कृषि अऋण दात्री समितियाँ	११४२	२३,८२२	१६८०	४१,५३६
६. प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक	४५	९,७८९	५४	२९,०८४
७ अकृषि ऋण दात्री समितियाँ	३१०	३६,४९८	४९९	५८,०७७
८. अकृषि अऋण दात्री समितियाँ	४२९२	१.५२,१६७	५५८९	२,४२,०५४
९ अवसायन मे आई समितियाँ	१४१८	३७,८८७	१७६३	४६,२९८
कुल योग	१८३०९	९,६७,९२८	२२,५८०	१४,७२,३११

स्रोत—(राजस्थान वार्षिक योजना प्रगति प्रतिवेदन १९६६-६७)

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि सभी प्रकार की सहकारी समितियो मे १९६०-६१ की तुलना मे वृद्धि हुई है। राज्य सहकारी बैंक और केन्द्र सहकारी बैंक को सदस्य सख्या को छोडकर सभी समितियो की सदस्य सख्या मे वृद्धि हुई है।

इस योजना मे सेवा सहकारी समितियो के गठन योजना के अन्तर्गत २७३२ समितियो का गठन किया गया। दीर्घ कालीन ऋण देने के लिये १३ भूमि-बन्धक बैंक स्थापित हुये। बीज, खाद वितरण तथा कृषि उपज को एकत्रित करन के लिए इस काल मे १५७ गोदामो की स्थापना की गई। तृतीय योजना मे २४६ समितियाँ पाइलट क्षेत्र मे तथा १२६ समितियाँ नान पाइलट क्षेत्र मे गठित हुई। सहकारी प्रशिक्षण व्यवस्था के लिये तीन प्रशिक्षण केन्द्र भरतपुर, जोधपुर तथा जयपुर मे कार्य कर रहे हैं। अक्तूबर १९६२ मे नया सहकारी अधिनियम लागू किया गया। वर्ष १९६५-६६ तक ८३ प्रतिशत ग्राम तथा ३३ प्रतिशत ग्रामीण परिवार सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत लाया गया। समाज के पिछडे वर्गो के हित की तरफ अधिक ध्यान दिया गया।

राज्य के सहकारिता आन्दोलन को गति प्रदान करने तथा उसके स्वरूप को अधिक उपयोगी बनाने के लिए १९६५ मे नया सहकारी अधिनियम लागू किया गया। नये कानून का मूल उद्देश्य सहकारी सस्थाओ को सामाजिक न्याय प्रदान करने का माध्यम बनाने और समाज को समाजवादी पद्धति पर सगठित करना था।

वार्षिक योजनाओं मे सहकारी आन्दोलन
(वर्ष १९६६-६७, १९६७-६८, १९६८-६९)

सहकारी समितियाँ ऋण के अतिरिक्त सस्ती खाद कृषि औजार, उन्नत बीज, कीट नाशक औषधियाँ खाद्य पदार्थ तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ भी उपलब्ध करा रही हैं। वर्ष १९६६-६७ मे सहकारी भण्डारों की प्रगति विशेष रूप से सामने आयी है। इस वर्ष मे सहकारी समितियों ने चावल मिल, चीनी मिल, माल सवार समितियाँ आदि कार्यो को भी अपने क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिया है। कृषि ऋण दात्री समितियो को अधिक मजबूत बनाने के लिये पुनर्गठन योजना चालू की गई है। पुनर्गठन के अन्तर्गत समितियो का विलीनीकरण किया गया। जबकि वर्ष १९६६-६७ मे सहकारी समितियो की सख्या २२३९२ हो गयी जिससे वर्ष १९६५-६६ मे इनकी सख्या २२५८० थी। इसके विपरीत सदस्यता तथा हिस्सा पूँजी मे वृद्धि हुई है। वर्ष १९६५-६६ मे जहां सदस्य सख्या तथा हिस्सा पूँजी क्रमश १४,९२,३१३ व ११४० लाख रुपये थी वह वर्ष १९६६-६७ मे १६,३८,९१८ व १३०६ ४६ लाख रुपये हो गयी। कार्यशील पूंजी ५७०० लाख ८० से बढकर ६२९८ ६६ लाख रुपये हो गयी।

सभी प्रकार की सहकारी समितियाँ

समितियाँ	इकाई	वर्षान्त	
		१९६६-६७	१९६७-६८
१. सहकारी समितियाँ	सख्या	२२,३९२	२१,६६२
२ सदस्यता	सख्या	१६,३८,९१८	१७,४७,६६९
३. हिस्सा पूंजी	लाख रुपये	१३०६ ५६	१४४८ ७३
४. कार्य शील पूंजी	,,	६२९८·६६	७४७६·९४

(स्रोत—प्रगति विवरण १९६८-६९, सहकारी विभाग, राजस्थान सरकार)

उक्त सारणी के आधार पर हम देखते है कि वर्ष १९६७-६८ मे सहकारी समितियो के विलीनीकरण की योजनाओ के कारण उनकी सख्या २१,६६२ हो गयी परन्तु सदस्यता तथा हिस्सा पूंजी क्रमश १७४७६६९ व १४४८ ७३ लाख रुपये हो गयी। लगभग ८७ २ प्रतिशत ग्राम तथा ३३ प्रतिशत ग्रामीण परिवार अब तक सहकारिता के अन्तर्गत लाये जा चुके हैं।

वर्ष १९६७ ६८ मे ६५९ समितियाँ पुनर्गठित की गयी। वर्ष १९६८-६९ मे १४२६ समितियो को पुनर्गठित करने का लक्ष्य है। वर्ष १९६८-६९ मे विभिन्न कार्यों मे २५० लाख रुपये का दीर्घ कालीन ऋण वितरित करने का लक्ष्य है जिसमे से ३१-१-६९ तक ११५ १३ लाख रुपये का ऋण वितरित किया गया। वर्ष १९६८-६९ मे १२ करोड रुपये के अल्पकालीन एव मध्यकालीन ऋण वितरित किये जाने का लक्ष्य है जिसमे से अल्पकालीन तथा मध्य कालीन ऋण क्रमश १० करोड रुपये व २ करोड रुपये है।

वार्षिक योजनाओ मे राज्य मे सहकारी आन्दोलन को सुदृढ बनाने तथा उसके गुणात्मक विकास के लिये विशेष प्रयत्न किये गये। ३० जून १९६९ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष के अन्त मे राज्य के ३९ प्रतिशत ग्रामीण परिवार और ६० प्रतिशत से अधिक गाँव सहकारिता के अन्तर्गत लाये गये। समितियो के दृढीकरण की तरफ भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ऋण दात्री समितियो के सक्षम बनाने की तरफ कदम उठाये जा रहे है। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष मे राज्य की १२४५७ प्राथमिक कृषि ऋण दात्री समितियो का सर्वेक्षण किया गया। कमजोर एव निष्क्रिय समितियो को सक्षम बनाने का कार्यक्रम वर्ष १९६७-६८ मे प्रारम्भ हो चुका है सक्षम इकाई बनाने के कार्यक्रम मे वर्ष १९६७-६८, वर्ष १९६८-६९ मे क्रमश ६५९ एव ७०० समितियो का पुनर्गठन हो चुका है। इन समितियो के अतिरिक्त अन्य प्रकार की निष्क्रिय एव आर्थिक दृष्टि से कमजोर समितियो जैसे औद्योगिक समितियाँ, फार्मिग समितियाँ, श्रमिक ठेका, उपभोक्ता भण्डार आदि को दृढीकृत किया जायगा। श्रमिक ठेका तथा औद्योगिक सहकारी समितियो का इस दृष्टि के लिए सर्वेक्षण कार्य सितम्बर सन् १९६९ मे चालू किया जा चुका है।

सहकारी वर्ष १९६८-६९ के अन्त तक राजस्थान में सभी प्रकार की कुल सहकारी समितियों की संख्या २०,०३० थी जबकि इसके पहले के वर्ष मे २१,९९२ समितियाँ थी। समितियों की संख्या मे कमी का कारण था सहकारी ऋण समितियों का पुनर्गठन कार्यक्रम। ३० जून १९६९ को सभी प्रकार की सहकारी समितियों की सदस्यता १७,४७,६९१ से बढ़कर १८,३२,९७२ हो गयी और अंश पूंजी १४४८ ७३ लाख रुपये से बढ़कर १७०२ ६५ लाख रुपये हो गयी। कार्यशील पूंजी मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। यह ७४७६ ९४ लाख रुपये से बढ़कर १००९४·०४ लाख रुपये हो गयी है।

राजस्थान मे सहकारी ऋण प्रदान करने वाली विभिन्न स्तरों पर जो सहकारी संस्थायें कार्य कर रही हैं उनके कार्य मे भी अच्छी प्रगति हुई है। सहकारी वर्ष १९६८-६९ के अन्त मे शीर्ष सहकारी बैंक की कुल सदस्य संख्या १२१ थी तथा अंश पूंजी १८२ ४८ लाख रुपये थी जिसमें राज्य सरकार का अंशदान ४० ०० लाख रुपये था। प्राथमिक ऋण समितियों की संख्या ३० जून १९६९ के समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष के अन्त तक पिछले वर्ष ११४६० से घटकर ९९६१ हो गयी। कृषि ऋण दात्री सहकारी समितियों के पिछले दो वर्षो की तुलनात्मक स्थिति निम्न प्रकार है —

कृषि ऋण दात्री समितियों की तुलनात्मक औसत स्थिति

क्रम संख्या	विवरण	१९६७-६८	१९६८-६९
१.	प्रति समिति औसत सदस्यता	९७	१२२
२.	प्रति सदस्य औसत ऋण	८१	१२३
३.	प्रति समिति औसत बकाया	७८८५	१५०१९
४	प्रति सदस्य औसत बकाया	१०४	१५१
५.	प्रति सदस्य औसतन अमानत	९	१०
६	प्रति समिति औसतन अमानत	८९५	१२१५
७	प्रति सदस्य औसतन अंश राशि	३७	४३
८.	प्रति समिति औसतन हिस्सा राशि	३६२९	५२०९
९.	प्रति समिति कार्यशील पूंजी	१५७३३	२५६२९

(स्रोत—प्रगति विवरण १९६९-७०, सहकारी विभाग, राजस्थान सरकार)

३० जून १९६९ को समाप्त होने वाले वर्ष मे क्रय-विक्रय सहकारी समितियों द्वारा ७६३·७७ लाख रुपये के मूल्य की खरीद और १२३६ ६९ लाख रुपये के मूल्य का विक्रय किया। इस समय राज्य मे २२ थोक भण्डार कार्य कर रहे हैं। जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अजमेर आदि स्थानों के थोक भण्डारों द्वारा विभागीय भण्डार भी चलाये जा रहे हैं। राज्य के सभी जिलों में कुल ६४४ प्राथमिक भण्डार भी कार्यशील है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना मे कार्यक्रम

सहकारिता विकास पर चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे ५·४३ करोड रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया है। इस काल मे निम्नलिखित कार्यक्रम करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है —

(१) वर्ष १९७३-७४ के अन्त तक राज्य के शतप्रतिशत ग्रामों तथा ५० प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को सहकारिता के अन्तर्गत लाया जायेगा।

(२) चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सदस्यता मे पर्याप्त वृद्धि की जायेगी। वर्ष १९७३-७४ के अन्त तक कृषि ऋण दात्री समितियों की वर्तमान सदस्यता ११·८० लाख से बढ़ाकर २० लाख करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

(३) चौथी योजना विधि मे ३० करोड रुपये के अल्पकाल तथा मध्यकालीन ऋण प्रदान करने का प्रस्ताव है। इस योजना मे दीर्घकालीन ऋण १७ करोड रुपये के वितरित किये जायेंगे। वर्ष १९६९-७० तथा १९७०-७१ में क्रमश ३ करोड तथा तथा ३½ करोड रुपये वितरित करने का प्रावधान किया गया है।

(४) चतुर्थ पचवर्षीय योजना काल में केन्द्रीय सहकारी बैंकों तथा भूमि विकास बैंकों की क्रमश २५ व २६ शाखायें खोली जायेंगी। वर्ष १९६९-७० मे केन्द्रीय सहकारी बैंकों तथा भूमि विकास बैंकों की क्रमश ६-६ शाखायें तथा वर्ष १९७०-७१ मे क्रमश ५ व ४ शाखायें खोलने का लक्ष्य रखा गया है।

(५) समितियों के दृढ़ीकरण कार्यक्रम मे चतुर्थ योजना मे १० कमजोर केन्द्रीय सहकारी बैंकों को मजबूत बनाने की योजना है जिनके लिए ३० लाख रुपये की राशि निर्धारित की गई है। विपणन सहकारी समितियों के दृढ़ीकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत ४ ५ लाख रुपये की धनराशि अतिरिक्त अश पूंजी अशदान के लिए निश्चित की गयी है। इस योजना मे उनकी विपणन समितियां खोली जायेंगी।

(६) चौथी योजना मे राज्य मे कृषि वित्त निगम की सहायता से ४१५ ग्रामीण गोदाम और ५३ विपणन समितियों के गोदाम तथा एक कोल्ड स्टोरेज बनाया जायेगा।

(७) राज्य मे कार्य कर रहे उपभोक्ता भण्डारों को व्यवस्थापिक व्यय के लिए अनुदान अश-राशि अशदान, कार्यशील पूंजी तथा ऋण आदि के लिए ११·२७ लाख रुपये की राशि चौथी योजना मे रखी गयी है।

उपरोक्त विवरण मे स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना मे राज्य मे सहकारी आन्दोलन को अधिक सुदृढ बनाया जायगा। इसके लिये कमजोर समितियों को सक्षम बनाना पड़ेगा। फलस्वरूप समितियों की संख्या मे कमी हो सकती है किन्तु सदस्यता, अश पूंजी, अमानत तथा कार्यशील पूंजी मे पर्याप्त वृद्धि होने की सम्भावना है। इस

योजना मे आन्दोलन को अधिक व्यापक बनाया जायेगा जिससे लगभग सभी ग्राम सहकारिता के क्षेत्र मे आ सकेंगे।

प्रश्न

१. राजस्थान मे सहकारी आन्दोलन की उत्पत्ति एव विकास के विषय मे आप क्या जानते है? पचवर्षीय योजना मे की गई प्रगति पर प्रकाश डालिये।

२. राजस्थान मे सहकारी आन्दोलन सफल रहा है या असफल। सकारण उत्तर दीजिए।

२

राजस्थान मे पंचवर्षीय योजना मे सहकारी आन्दोलन
(Cooperative Movement in Five Year Plan in Rajasthan)

राजस्थान मे आर्थिक नियोजन के द्वारा आर्थिक दृढता प्राप्त करने के लिये कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य के लिये उचित वातावरण तैयार किया गया। समाजवादी समाज की विचारधारा के आधार पर सहकारिता को उचित प्रोत्साहन प्रदान किया गया है। पचवर्षीय योजनाओ मे मरुस्थल प्रधान राज्य के विकास को नवीन मोड दिया गया है जिसमे सहकारी आधार को पर्याप्त महत्व मिला है। इस काल मे सहकारिता आन्दोलन ने प्रत्येक क्षेत्र मे बहुमुखी प्रगति की है। कुछ समय पूर्व राज्य मे आन्दोलन केवल ऋण सुविधाओ तक ही सीमित था किन्तु अब प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक होता जा रहा है। ऋण के अतिरिक्त सहकारी समितियाँ अपने सदस्यो को सस्ती खाद, उन्नत बीज, कीटाणुनाशक औषधियाँ कृषि उपकरण खाद्य पदार्थ तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ उपलब्ध करा रही है। सहकारिता को प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने के हर प्रयत्न किये जा रहे हैं। समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे समितियाँ स्थान ले रही हैं। राजस्थान मे सहकारी उपभोक्ता भण्डारो ने राज्य मे निरन्तर बढते हुये मूल्यो को रोकने व स्थिरता लाने मे पर्याप्त योग दिया है। विभिन्न प्रयत्नो के फलस्वरूप ३० जून १९६९ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष के अन्त तक राज्य के ९० प्रतिशत से अधिक गाँव एवं ३९ प्रतिशत ग्रामीण परिवार सहकारिता के अन्तर्गत आ चुके हैं।

राजस्थान मे प्रथम पचवर्षीय योजना मे कोई विशेष प्रगति नही हो सकी क्योकि राज्य मूल समस्याओ के समाधान मे लगा हुआ था। राज्य मे वास्तविक प्रगति १९५६ से प्रारम्भ हुई। प्रथम पचवर्षीय योजना मे ११% ग्राम और ५% ग्रामीण परिवार सहकारिता के अन्तर्गत लाये गये। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सहकारिता को जनता का आन्दोलन घोषित किया गया। इस काल मे आन्दोलन को तेज गति से बढाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। फलस्वरूप द्वितीय योजना मे

५५ प्रतिशत गाँव तथा २६ प्रतिशत ग्रामीण परिवार सहकारिता के क्षेत्र मे लाये गये। तृतीय योजना मे सभी ग्राम तथा ६७ प्रतिशत ग्रामीण परिवार सहकारिता मे लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया किन्तु विभिन्न समस्याओ के कारण इस लक्ष्य की पूर्ति नही हो सकी।

योजनाओं को उपलब्धियाँ

पंचवर्षीय योजनाओ मे सहकारी विकास के लिये प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे क्रमश २७·७७ लाख, १९३ ६९ लाख २४२ ९१ लाख रुपये व्यय किये गये। तृतीय योजना के पश्चात् वार्षिक योजनाओ मे भी पर्याप्त मात्रा मे धन व्यय किया गया। वर्ष १९६६-६७, १९६७-६८ मे क्रमश ३१·१९ एव २१·४२ लाख रुपये व्यय किये गये।[1] चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे सहकारिता के विकास पर ५·४३ करोड रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया है।[2]

सहकारी विकास के लिये किये गये विभिन्न प्रयत्नो के फल स्वरूप सहकारी समितियो की संख्या जो वर्ष १९५०-५१ मे ३५९० थी बढ कर वर्ष १९६५-६६ के अन्त मे २२५८० हो गयी। सदस्यता मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। वर्ष १९५०-५१ मे समितियो की सदस्यता १४५२९० थी जो कि वर्ष १९६५-६६ के अन्त मे बढ़कर १४९२३११ हो गयी।

प्रथम तीन योजनाओ में प्रगति

वर्ष	समितियो की	सदस्यता सख्या	अंश पूंजी	कार्यशील पूंजी (लाख रुपये)
१९५१-५२	४९०८	१९८५६७	५१·९	३४५
१९५५-५६	८०७७	२७४७१८	९८	६३५
१९६०-६१	१८३०९	९६७९२८	६२०	३२५१
१९६५-६६	२२५८०	१४९२३११	११४०	५७००

(Sources—Fact Sheets on Rajasthan and Progress Report 1966-67, Govt. of Rajasthan.)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारिता के क्षेत्र मे पर्याप्त विकास हुआ है। समितियों की सख्या, सदस्यता, अश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी मे वृद्धि हुई है। सहकारी वर्ष १९६८-६९ के अन्त तक राज्य मे सब प्रकार की कुल २००३० समितियाँ थी जो कि पिछले वर्ष से कम थी। सदस्यता मे वृद्धि हुई है। ३० जून १९६९ को सब प्रकार की समितियो की

१. वार्षिक योजना प्रगति प्रतिवेदन १९६७-६८, पृष्ठ २२७
२. प्रगति विवरण, १९६९-७०, सहकारी विभाग, राजस्थान सरकार पृष्ठ ८.

कुल सदस्यता १७४७६६९ से बढकर १८३२९७२ हो गयी तथा अश पूंजी १४४८ ७३ लाख रुपये से बढकर १७०२·६५ लाख रुपये हो गयी। कार्यशील पूंजी ७४७६ ९४ लाख रुपये से बढकर १००९४·०४ लाख रुपये हो गयी।

सहकारी साख
(Co-operative Credit)

राजस्थान कृषक सदस्यो की अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये राज्य स्तर पर राजस्थान राज्य सहकारी बैंक कार्यशील है। तृतीय योजना के अन्त मे इस बैंक की सदस्यता १२२ तथा अश पूंजी १४३·०१ लाख रुपये थी। राज्य में जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक काय कर रहे हैं और ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक साख समितियाँ काय कर रही हैं। प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ मे कृषि साख समितियों की पर्याप्त प्रगति हुई है जिसका विवरण नीचे तालिका म दिया जा रहा है।

कृषि साख समितियाँ

मद	इकाई	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६
१ संख्या (समितियाँ)	सख्या	१७०४	४८१२	१०९१३	१२७०२
२. सदस्यता	(०००)	३३	१३२	६७३	१०१५
३ अश पूंजी	लाख रुपये	६	२४	१९४	३४१ ०८
४. कायशील पूंजी	,,	३२	१३२	८८८	१५१८ ९३

(Sources—A Pocket Guide containing important Statistics relating to Co-operative Movement in Rajasthan, March 1966 and Progress Report 1967-68, Co-operative Deptt Govt. of Raj)

प्रथम पचवर्षीय योजनावधि मे अल्प एव मध्यकालीन ऋण ८५ ४६ लाख रुपये के प्रदान किये गये। द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष १९६०-६१ के अन्त मे अल्प एव मध्यकालीन ऋणो की राशि ५६५·२३ लाख रुपये हो गयी। ३० जून, १९६६ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष मे इन समितियो ने ८ करोड रुपये सदस्यों मे ऋण के रूप मे वितरित किये। इस समय अवधिपार ऋण कुल ऋण का ४६·६ प्रतिशत था। ३० जून १९६९ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष के अन्त मे कृषी ऋण दात्री सहकारी समितियो की सख्या घट कर ९६९१ हो गयी जबकि इसके पिछले वर्ष के अन्त मे ११४६० समितियाँ थीं। ३० जून, १९६९ को कृषि ऋणदात्री समितियो की कुल सदस्यता पिछले वर्ष के ११ २१ लाख से बढकर ११·८० लाख तथा अश पूंजी ४१५·९१ लाख रुपये से बढकर ५०४ ८४ लाख रुपये हो गयी। वर्ष १९६८-६९ मे इन समितियो की अमानतें तथा कायशील पूंजी क्रमश ११७ ७९

लाख तथा २४९३'६७ लाख रुपये हो गयी । इन समितियों द्वारा वर्ष १९६८-६९ में ९'०४ करोड रुपये के ऋण वितरित किये जो वर्ष १९६९-७० में बढकर १४ ५६ करोड रुपये हो गये । पिछले वर्ष अवधिपार ऋण ४३ ७ प्रतिशत था जो कि वर्ष १९६८-६९ में घट कर ३१ प्रतिशत रह गया ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष (१९६९ ७०) में अल्पकालीन एव मध्यकालीन ऋण वितरण का लक्ष्य १६ करोड रुपये रखा गया है । वर्ष १९७०-७१ में १८ करोड रुपये के ऋण वितरण का लक्ष्य निर्धारित किया गया है । १९७० ७१ में १८ करोड रुपये के ऋण वितरण का लक्ष्य निर्धारित किया गया है । वर्ष १९७३-७४ वर्ष में ३० करोड रुपये ऋण वितरित किया जायेगा ।

राज्य सहकारी बैंक अल्पकालीन एव मध्यकालीन ऋण केन्द्रीय सहकारी बैंको के माध्यम से प्रदान करता है । वर्ष १९६८-६९ के अन्त में राज्य की दीर्घ बैंक की सदस्यता १२९ थी तथा उसकी अश पूंजी १८२ ४८ लाख रुपये थी । सहकारी वर्ष १९६९ के अन्त में सदस्य बैंको की ओर १५००'५४ लाख रुपये बकाया था जिसमे से ३६ ५० लाख रुपये अवधिपार थे । कुल बकाया ऋण का यह अवधिपार ऋण लगभग २ ४ प्रतिशत होता है । राज्य में जिला स्तर पर कृषि ऋण के लिये २५ जिलों में केन्द्रीय सहकारी बैंक कार्य कर रहे हैं । सहकारी वर्ष १९६९ के अन्त में इन बैंकों की कुल अश राशि ४१४'२८ लाख रुपये थी और सदस्यता १३८६२ थी । इन बैंको ने वर्ष १९६८-६९ (सहकारी वर्ष) में सब प्रकार के १८८९'३० लाख रुपये के ऋण वितरित किये । सदस्य समितियों की तरफ १९१२'१८ लाख रुपये बकाया था जिस में ६३३ ४० लाख रुपये अवधिपार थे जो कि कुल बकाया धन राशि का लगभग ३२ ६ प्रतिशत था ।

दीर्घकालीन ऋण व्यवस्था के लिये भूमि विकास बैंक स्थापित किये गये हैं । केन्द्रीय सहकारी भूमि विकास बैंक के माध्यम से प्राथमिक भूमि विकास बैंको द्वारा किसानों को दीर्घकालीन आवश्यकताओं के लिये ऋण प्रदान किया जाता है । तृतीय योजना के अंतिम वर्ष में प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक ५४ थे और सदस्यता २९०८४ थी । वर्ष १९६६-६७ में समितियों की सख्या घटकर ४४ हो गयी किन्तु सदस्यता बढकर ३७१९६ हो गयी । द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष में दीर्घकालीन ऋणों की राशि ५ ३९ लाख रुपये थी । वर्ष १९६८-६९ में इन ऋणों की राशि बढकर २ ५ करोड रुपये हो गयी । इस ऋण में से ९२'२० लाख रुपये कुओं के निर्माण, १९'५८ लाख रुपये पुराने कुओं की मरम्मत ७०'६६ लाख रुपये पम्पिंग सैट लगाने तथा ५३'६६ लाख रुपये ट्रैक्टर्स खरीदने और शेष राशि मवेशियों के बाड़े बनाने, कृषि यन्त्र खरीदने, भूमि सुधार, फार्म हाउस बनाने तथा पक्की नालियाँ बनाने के लिये दी गयी । राज्य की केन्द्रीय भूमि विकास बैंक की कुल अश पूंजी ६२ ९५ लाख रुपये थी जिसमें से ३४'५० लाख रुपये की राशि सरकार की थी । वर्ष के अन्त में इस बैंक की कार्यशील पूंजी ५९६ ५६ लाख रुपये थी । यह बैंक प्राथमिक भूमि बन्धक बैंको के माध्यम से सदस्यों को ऋण पहुँचाता है ।

राज्य में कृषि पुनर्वित्त निगम (एग्रीकल्चर रिफाइनेन्स कोर्पोरेशन) द्वारा दीर्घकालीन ऋणों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये एक भू-सरक्षण एव चार लघु सिंचाई योजनायें स्वीकार हो चुकी है । जिन पर कार्यारम्भ भी हो चुका है । उक्त चार लघु

सिंचाई योजनायें कोटा जिले मे सागोर, भरतपुर जिले मे नदवई, जयपुर जिले मे गोविन्दगढ तथा अलवर जिले मे कठूमर के लिये है। भू-सरक्षण योजना कोटा से इटावा स्थान के लिये होगी।

सहकारी क्रय विक्रय समितियां

राज्य मे कृषि साख के अतिरिक्त क्रय-विक्रय मे भी सहकारिता का विकास किया गया है। किसानो के सामने साख के अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण समस्या कृषि उपजो के विपणन की है। राज्य मे विपणन व्यवस्था बहुत खराब थी जिससे किसानो को उनकी उपज का उचित भाग नही मिल पाता था। अत कृषको को उचित मूल्य प्रदान करने के उद्देश्य से क्रय-विक्रय समितियों का निर्माण किया गया है।

सहकारी आन्दोलन के आरम्भ मे ऋण समितियो का अधिक विकास हुआ था। अत पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ मे क्रय-विक्रय समितियो की सख्या अधिक नही थी। किन्तु पचवर्षीय योजनाओ मे इन समितियो की सख्या, सदस्यता तथा व्यापार मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। इस क्षेत्र मे आन्दोलन की प्रगति का विवरण निम्न तालिका मे दिया गया है —

प्राथमिक विपणन समितियां

मद	इकाई	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६
१. समितियो	सख्या	१८	४७	१५९	१४६
२· सदस्यता	सख्या	९५५	३४९३	१८४०८	२७९५८
३. अश पूंजी	लाख रुपये	अप्राप्य	३	३३	४५·५६

(Sources (1) A Pocket Guide Containing important Statistics relating to Co-operative Movement in Rajasthan,

(ii) Progress Report 1966-67, Co operative Deptt Rajasthan Govt.)

तृतीय योजना के अतिम वर्ष राज्य मे १४६ प्राथमिक विपणन समितियां तथा एक राज्य सहकारी क्रय-विक्रय सघ कार्य कर रहे थे। विपणन समितियो द्वारा ३० जून १९६६ तक समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष मे ६४८·२६ लाख रुपये के मूल्य का क्रय तथा ८१३ ६८ लाख रुपये का विक्रय किया गया जिसमे से निजी रूप मे ५८५·११ लाख रुपये और आढत पर २२८ ५७ लाख रुपये का विक्रय हुआ है। ३० जून १९६६ को समाप्त होने वाले वर्ष के अन्त तक विपणन समितियो द्वारा ९४·८२ लाख रुपये का रासायनिक खाद, ४·२२ लाख रुपये का उन्नत बीज एव १० ३१ लाख रुपये की अन्य वस्तुओ का वितरण किया गया है। राजस्थान राज्य सहकारी क्रय-विक्रय सघ द्वारा ११६·०४ लाख रुपये का रसायनिक खाद ३·८५ लाख रुपये की अन्य वस्तुओ का वितरण किया। विपणन समितियो द्वारा ३० जून १९६९ को समाप्त होने वाले

सहकारी वर्ष मे ७६३'७७ लाख रुपये के मूल्य का क्रय तथा १२३६'६९ लाख रुपये के मूल्य का विक्रय किया गया है। इन समितियो ने वर्ष १९६८-६९ मे ३७५'६४ लाख रुपये का रसायनिक खाद, २'०० लाख रुपये का उन्नत बीज, ३'९१ लाख रुपये के कृषि यन्त्र, ३ ८६ लाख रुपये के मूल्य की कोटनाशक औषधियाँ एव ३'७९ लाख रुपये के मूल्य की अन्य वस्तुये वितरित की हैं।

माल सँवार (प्रोसेसिंग) समितियाँ तथा अन्य उद्योग

किसानो की उपजो को सँवार कर देचने से अधिक मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। अनेको असुविधाओ के कारण किसान स्वय यह कार्य करने मे असमर्थ होते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्य मे कई प्रकार की माल सँवार समितियाँ गठित की गई हैं। विभिन्न प्रकार की इकाइयों की प्रगति सक्षेप मे निम्न प्रकार है —

(१) सहकारी चीनी मिल :

राजस्थान मे २२ फरवरी १९७० को कृषको का सहकारी चीनी मिल चालू हो गया है जिसकी लागत लगभग २४० लाख रुपये है और १२५० बोरी चीनी दैनिक उत्पादन की क्षमता है। यह राज्य मे सबसे बडी और आधुनिक चीनी मिल है। किसानो को इस मिल से एक तरफ उत्तम गन्ने के बीज, खाद के लिये ऋण तथा प्राविधिक मार्ग-दर्शन आदि सुविधायें प्राप्त होगी और दूसरी तरफ गन्ने का उचित मूल्य प्राप्त हो सकेगा। इस मिल को राजस्थान सरकार ने ३५ लाख रुपया अश पूँजी के रूप मे दिये हैं तथा २ करोड रुपये के ऋण के लिये विभिन्न बैंको व वित्त सस्थाओ ने गारन्टी प्रदान की है।

(२) कताई मिल :

राज्य मे राजस्थान सहकारी स्पिनिग मिल लि० गुलाबपुरा को औद्योगिक लाइसेन्स प्राप्त हो चुका है। मिल के लिये कृषक सदस्यो से अश पूँजी सचित की जा रही है। राज्य सरकार ने ९'५० लाख रुपये अश की राशि प्रदान की है। इस मिल से राजस्थान के कपास उत्पादक तथा बुनकर दोनो को लाभ प्राप्त हो सकेगा।

(३) चावल मिलें :

राजस्थान मे सहकारिता के क्षेत्र मे ६ चावल मिलो की स्थापना की जा रही है। ये मिलें बारा हनुमानगढ उदयपुर, बून्दी, डूंगरपुर तथा बासवाडा स्थानो पर लगेगी। इन मिलो के लिये वर्ष १९६६-६७ मे ३ लाख रुपये की राशि अश पूँजी अनुदान देने के लिये स्वीकार की गयी थी। द्वितीय किश्त ५ २५ लाख रुपये की वर्ष १९६९-७० मे स्वीकार हो चुकी है। ये चावल मिलें राजस्थान राज्य सहकारी क्रय विक्रय सघ की देख-रेख मे स्थानीय क्रय-विक्रय समितियो द्वारा स्थापित की जा रही हैं। इन मिलो की मशीनें आ गयी हैं और वकशाप निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है।

(४) दाल मिलें :

सहकारिता के क्षेत्र के अन्तर्गत अब तक दो दाल मिलें जयपुर तथा केकडी

विपणन समितियों में लगायी जा चुकी हैं। वर्ष १९६८-६९ में इन मिलों ने १०,३२१ क्विन्टल दालें बनाकर बेची।

(५) मूंगफली छीलने का प्लान्ट :

गंगापुरा विपणन सहकारी समिति में एक मूंगफली छीलने का प्लांट लगाया गया है। इस प्लांट ने वर्ष १९६८-६९ में ३३५५ क्विंटल मूंगफली छीलने का कार्य किया है।

(६) कृषि औजार बनाने का कारखाना :

कृषि यन्त्र निर्माण के लिये सुमेरपुर क्रय-विक्रय सहकारी समिति लिमिटेड को वर्ष १९६८-६९ में २३, ५९९·०० रुपये की आर्थिक सहायता मिल चुकी है। यह सहायता प्रथम किश्त, अंश पूंजी, ऋण तथा अनुदान के रूप में प्रदान की गयी है। समिति कारखाना बनाने की कार्यवाही कर रही है।

(७) ग्वारगम तथा कैटलफीड प्लांट :

नागौर में ग्वारगम प्लांट और जयपुर में कैटलफीड प्लांट लगाये जा रहे हैं। ग्वारगम प्लांट के लिये मशीनरी का आडर किया जा चुका है तथा कैटलफीड की मशीनरी लग चुकी है। वर्ष १९६९-७० में राज्य में सहकारिता के आधार पर ये प्लांट स्थापित करने के लिये कुल ११ २५ लाख रुपये की आर्थिक सहायता अंश पूंजी तथा ऋण के रूप में प्रदान की है। यह सहायता राजस्थान राज्य सहकारी क्रय-विक्रय संघ लि० को दी गयी है।

(८) कीटाणु नाशक औषधियों का कारखाना

राजस्थान राज्य सहकारी क्रय-विक्रय संघ लि० जयपुर को पेस्टीसाइड। इन्सेक्टीसाइड प्लांट लगाने के लिये राज्य सरकार ने १९९६००·०० रुपये की आर्थिक सहायता अंश पूंजी ऋण व अनुदान के रूप में दी है। यह सहायता वर्ष १९६७-६८ में दी गयी थी।

(९) शीत गोदामों का निर्माण :

वर्ष १९६६-६७ में अलवर तथा जयपुर में शीत भण्डारों के लिए राजस्थान राज्य सहकारी क्रय-विक्रय संघ लि० जयपुर को ११·६० लाख रुपये की सहायता दी है जो कि ऋण के रूप में है। अलवर के शीत भण्डार का निर्माण कार्य हो रहा है तथा जयपुर के शीत भण्डार के कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। कोटा में एक शीत भण्डार स्थापित करने का कार्यक्रम अभी विचाराधीन है जिसको एग्रीकल्चर रिफाइनेन्स निगम से सहायता प्राप्त होगी।

रिजर्व बैंक ने औद्योगिक समितियों को ऋण प्रदान करने की अपनी नीति में कुछ परिवर्तन किया है। राज्य सरकार की गारन्टी पर अब २२ लघु उद्योगों को ऋण देना स्वीकार किया है। ऋण केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से दिया जावेगा।

सहकारी उपभोक्ता भण्डार

जनता को उचित मूल्य पर विभिन्न वस्तुये प्रदान करने के लिये उपभोक्ता भण्डार स्थापित किये गये हैं। राज्य मे राज्य के सहकारी आन्दोलन तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रतिपादित योजनाओ के अन्तर्गत इन भण्डारो का विकास किया गया है। प्रथम योजना के आरम्भ मे राज्य मे कुल प्राथमिक भण्डार ३७२ थे और इनकी सदस्यता ५२२३८ थी। इनकी सख्या तथा सदस्यता मे तीन योजनाओ मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। तृतीय योजना मे थोक उपभोक्ता भण्डारो का विकास प्रारम्भ हुआ। वर्ष १९६२-६३ मे ८ थोक भण्डार थे जिनकी सदस्यता ९८ थी। प्राथमिक भण्डारो की प्रगति निम्न तालिका से स्पष्ट है—

प्राथमिक भण्डार

(केन्द्रीय प्रतिपादित योजना को सम्मिलित करते हुए)

विवरण	इकाई	१९५०-५१	१९५५ ५६	१९६०-६१	१९६४-६५
१. भण्डारो की सख्या	संख्या	३७२	३९३	४०२	६१०
२ सदस्यता	सख्या	५२२३८	३८०२८	४१२०७	८८२५६
३. अश पूंजी	(०००रु०)	११०२	६११	९४७	१९६८
४ कायशील पूंजी	,,	२०५२	१२८४	१५९५	३९४८
५ क्रय	,,	९३८६	२८८	१२८६९	४५८५२
६ विक्रय	,,	९६८५	२२२	११३३५	४७०३८

(Source—A Pocket guide containing important statistics relating to cooperative movement in Rajasthan)

वर्ष १९६८-६९ के अन्त मे राज्य मे काय कर रहे प्राथमिक भण्डारो की सख्या ६४४ थी। केन्द्रीय सरकार की योजना के अन्तगत गठित १६० प्राथमिक भण्डारों की सदस्य सख्या वष १९६५-६६ के अन्त तक २७९१३ तथा अश पूंजी ६ ७० लाख रुपये थी। इनके द्वारा इस वर्ष ३६३ लाख रुपये का क्रय एव ३६८ लाख रुपये की बिक्री की गयी।

केन्द्रीय सरकार की योजना के अन्तर्गत तृतीय योजना के अन्त तक राज्य के मुख्य मुख्य नगरो मे जिनकी आबादी ५०,००० या अधिक थी उनमे १० थोक भण्डार एव १६० प्राथमिक भण्डारो का गठन किया जा चुका है। इन १० थोक भण्डारो द्वारा वर्ष १९६५-६६ मे ४१३ लाख रुपये के माल की खरीद एव ४१८ लाख रुपये के मान की बिक्री की गयी है। इस योजना के अन्तर्गत वर्ष १९६६ ६७ मे १२ अतिरिक्त थोक भण्डारो का गठन किया गया। इस प्रकार राज्य मे कुल २२ थोक भण्डारों का गठन हो चुका है। तीन थोक सहकारी भण्डारो ने जयपुर, जोधपुर एव

अजमेर मे सहकारी बाजार भी चालू कर रखे हैं। थोक भण्डारो द्वारा जून ३०, १९६७ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष मे ६६५.१९ लाख रुपये का क्रय एव ६६१.०९ लाख रुपये का विक्रय किया गया। इस समय इन थोक भण्डारो की सदस्यता ६८५५८, अश राशि ४२.४५ लाख रुपये तथा कार्यशील पूँजी ९५.१५ लाख रुपये थी। वर्ष १९६७-६८ के लिए उपभोक्ता सहकारी भण्डारो के लिए निम्न लक्ष्य निर्धारित किए गए थे—

१. उपभोक्ता सहकारी भण्डार की शाखाओ का गठन	...	१००
२ राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर मे भण्डार का गठन	.	१
३ कालेजो मे विश्वविद्यालय भण्डार की शाखाओ का गठन	.	४
४ प्रोसेसिंग इकाइयाँ		३

वर्तमान समय मे राजस्थान मे २२ थोक भण्डार विभिन्न स्थानो पर कार्य कर रहे हैं। इनमे से जयपुर, जोधपुर, अजमेर, बीकानेर, उदयपुर आदि के भण्डारो द्वारा विभागीय भण्डार (सुपर बाजार) भी चलाये जा रहे हैं। इन भण्डारो की सेवा व्यापक बनाने के लिए इनकी ११६ शाखायें भी खोली गयी हैं। भण्डारो की शीर्ष स्तर पर एक शीर्ष सस्था राजस्थान राज्य सहकारी उपभोक्ता सघ कार्य कर रही है। वर्ष १९६९-७० मे उपभोक्ता थोक भण्डारो की योजना केन्द्रीय प्रकाशित योजना के स्थान पर राज्य क्षेत्र मे गयी। वर्ष १९६९-७० मे उपभोक्ता भण्डारो को निम्न आर्थिक सहायता दिए जाने का प्रावधान है —

(१) उदयपुर एव बीकानेर थोक भण्डारो को अतिरिक्त अशदान (५० हजार रुपए प्रत्येक)	..	१००,००० रुपये
(२) विभागीय भण्डार बीकानेर को व्यवस्थापन व्यय		३,००० रुपये
(३) ६ शाखाओ/प्राथमिक भण्डारो को अतिरिक्त अशराशि अशदान (४००० रुपये प्रत्येक)	..	२४,००० रुपये
(४) क्रय-विक्रय सहकारी समितियो के माध्यम से दैनिक उपभोग की वस्तुओं के वितरण हेतु		२०,७०० रुपये

अन्य प्रकार की सहकारी समितियाँ

(१) हाथ करघा समितियाँ

राजस्थान मे बुनकरो की एक शीर्ष समिति है। इस समिति की सदस्यता वर्ष १९६०-६१ मे ११८ थी जो कि १९६४-६५ मे १३६ हो गयी। इसकी कार्यशील पूँजी ४३५ हजार रुपये थी जो कि १९६४-६५ मे ६६८ हजार रुपये हो गयी। इस शीर्ष समिति को वर्ष १९६६-६७ मे ४ लाख रुपये का हानि पूर्ति के लिये अनुदान दिया गया है। तृतीय पचवर्षीय योजना मे राज्य मे बुनकरो की केन्द्रीय समितियो की भी प्रगति हुई है। वर्ष १९६०-६१ के केन्द्रीय बुनकर समितियो की संख्या ९ थी जिनकी सख्या वर्ष १९६४ ६५ मे ,११ हो गयी। इनकी सख्या मे वृद्धि की अपेक्षा सदस्यता मे अधिक प्रगति हुई है। वर्ष १९६०-६१ मे सदस्यता जहाँ १५७ थी वर्ष १९६४-६५ मे ३३७ हो गयी। प्राथमिक बुनकर समितियो की प्रगति का विवरण निम्न प्रकार है —

प्राथमिक बुनकर समितियां

विवरण	इकाई	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६४-६५
१. समितियां	सख्या	३०६	५६४	९४१	१०१२
२. सदस्यता	सख्या	१३१३७	१९५४४	२८६३४	३०६४८
३ अश पूंजी	(०००रु०)	१६१	२०४	६२७	८८१
४. कार्यशील पूंजी	,,	३१८	७७८	४६९२	७००३
५. उत्पादन का मूल्य	,,	९३८	५३	४०३८	५७५९
६ विक्रय का मूल्य	,,	९४२	४३	४३१९	९१५२

(Source—A Pocket Guide Containing Important Statistics relating to Co-operative Movement in Rajasthan).

इन समितियो के विकास के लिए हाथ कर्घा वस्त्रो पर बिक्री की छूट प्रदान की गयी है। अखिल भारतीय हाथ कर्घा बोर्ड के साधारण सिद्धान्तो की सहायता योजना २४ के अनुसार हाथ कर्घा समितियो को दो रुपया या इससे ऊपर बिक्री पर ५ पैसे प्रति रुपया के हिसाब से छूट दी जा सकती है।

(२) गृह निर्माण समितियां ·

राजस्थान मे वर्ष १९५०-५१ में १७ गृह निर्माण समितियां थी जिनकी सदस्यता एव अश पूंजी क्रमश १७८० एव १५७ हजार रुपये थी। वर्ष १९६० ६१ मे समितियो की सख्या १२३ हो गयी। इनकी सदस्यता एव अश पूंजी क्रमश ७२९० एव ४६३ रुपये हो गयी। वर्ष १९६४-६५ मे इन समितियो की सख्या २२१ हो गयी और सदस्यता बढकर ११३३४ हो गयी। इस समय अश पूजी एव कार्यशील पूंजी क्रमश ११३३ हजार एव ७५७९ हजार रुपये हो गयी।

(३) श्रम ठेका समितियां

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अतिम वर्ष मे श्रम ठेका समितियां ३७४ थी। उनकी सदस्यता तथा कार्यशील पूंजी क्रमश १२७७१ एव ४८५ हजार रुपये थी। इसके पश्चात् चार वर्षों मे इन समितियो ने अच्छी प्रगति की वर्ष १९६४-६५ मे समितियो की सख्या ९७२ सदस्यता १७५४३ तथा कार्यशील पूंजी १७६३ हजार रुपए हो गयी। जून १९६७ को समाप्त होने वाले वर्ष तक श्रमिक ठेका समितियो की सख्या घटकर ७२८ हो गयी।

(४) वन श्रम समितियां

वन श्रम समितियो की सख्या वर्ष १९६० ६१ मे ६५ थी जो कि वर्ष १९६४-६५ मे बढकर १०६ हो गयी। इनकी सदस्यता ४५१८ से बढकर ७१३६ हो

गयी और कार्यशील पूंजी ३३३ हजार रुपये से ५४२ हजार रुपये हो गयी। इन समितियो के विकास के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित एक समिति ने निम्न सुझाव दिये हैं —

(i) उदयपुर मे चल रहे आदिवासी प्रशिक्षण व शोध केन्द्र मे वन श्रमिक सहकारी समितियो के व्यवस्थापको को प्रशिक्षण दिया जावे।

(ii) राजस्थान वन श्रमिक सघ जो कि वन समितियों की शीर्ष संस्था है, की सिफारिश पर हो वन विभाग द्वारा समितियो को वन खण्ड स्वीकार किये जावें।

(iii) वन श्रमिक समितियो की वन उपज की विक्रय व्यवस्था वन श्रमिक सहकारी सघ द्वारा हो।

(५) यातायात समितियाँ

राजस्थान राज्य मे वर्ष १९६०-६१ मे ११० यातायात समितियाँ सक्रिय थी जिनकी सदस्यता ३१०२ थी और कार्यशील पूंजी ३०६१ हजार रुपये थी। वर्ष १९६४-६५ मे समितियो की सख्या मे ३ की वृद्धि हुई किन्तु सदस्यता मे कमी हुई। अश पूंजी मे भी कमी हुई। कार्यशील पूजी मे न्यूनाधिक वृद्धि हुई। वर्ष १९६६-६७ के अन्त मे इन समितियों की सख्या पुन घटकर ११० हो गयी।

उक्त समितियो के अतिरिक्त राज्य मे जून १९६७ को समाप्त होने वाले सहकारी वर्ष के अन्त मे ३४०७ औद्योगिक समितियाँ २०९ बाल सहकारी समितियाँ थी।

सहकारी शिक्षण एव प्रशिक्षण

राजस्थान मे सहकारिता क्षेत्र के अन्तर्गत शिक्षण तथा प्रशिक्षण व्यवस्था भी की गयी है। वरिष्ठ अधिकारियो, मध्यवर्ती अधिकारिया कनिष्ठ श्रेणी के अधिकारियो को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इनके अतिरिक्त सहकारी कृषि समितियो के व्यवस्थापकों को भी प्रशिक्षण दिया जाता है। वर्ष १९६६ ६७ के अन्त तक कुल ५२ सहायक रजिस्ट्रारो को प्रशिक्षण प्रदान किया गया है जो कुल सहायक रजिस्ट्रारो की सख्या का ७३ प्रतिशत है। वर्ष १९६६-६७ के अन्त तक कुल ४५२ निरीक्षक (कार्यकारी) तथा ३१० निरीक्षको (अक) को प्रशिक्षण दिया जा चुका है जो कि क्रमश कुल सख्या का ६४ तथा ६३ प्रतिशत है। वर्ष १९६७-६८ मे ६ सहायक रजिस्ट्रारो ४३ निरीक्षको (कार्यकारी) तथा १८ निरीक्षको (अकेक्षण) को प्रशिक्षण दिया गया।

कनिष्ठ श्रेणी मे विभागीय सहायक निरक्षको, प्राथमिक समितियो के व्यवस्थापको, केन्द्रीय सहकारी बैंको विपणन समितियों के निम्न श्रेणियो के कर्मचारियो तथा औद्योगिक समितियो के व्यवस्थापको को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है। प्रशिक्षण व्यवस्था के लिये इस श्रेणी के कमचारियो के लिये राज्य मे ३ प्रशिक्षणालय जयपुर, जोधपुर तथा भरतपुर म कार्य कर रहे हैं। इन तीनो प्रशिक्षणालयो की क्षमता क्रमश २४०, १६० तथा ३६० है। वर्ष १९६७-६८ मे

जयपुर प्रशिक्षणालय मे १५१, जोधपुर मे ७१ व भरतपुर मे २५० व्यक्तियो ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

राजस्थान में स्पेशल कोर्स भी चालू किये गये है। ये सहकारी क्रय-विक्रय कोर्स, सहकारी भूमि बन्धक बैंक कोर्स, सहकारी औद्योगिक कोस तथा सहकारी अंकेक्षण कोर्स हैं।

सहकारी अंकेक्षण की नयी योजना

राजस्थान के सहकारी विभाग मे पहले निरीक्षक (अंकेक्षण) व निरीक्षक (कार्यकारी) दोनों ही सहायक रजिस्ट्रार के नियन्त्रण मे काय करते थे किन्तु अब अंकेक्षण शाखा अलग कर दी गयी है। इस नयी योजना के अन्तर्गत आठ विशेष खण्ड बना दिये गये है। ये खण्ड जयपुर, अजमेर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, कोटा, पाली, भरतपुर आदि हैं। वर्ष १९६७-६८ मे शीर्ष सहकारी बैंक तथा केन्द्रीय सहकारी बैंको मे कानकरेन्ट आडिटर की भी नियुक्ति की गयी है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान मे सहकारी विकास के विभिन्न क्षेत्रो मे अनेको प्रयत्न किये गये हैं। इनके फलस्वरूप ३० जून १९६९ को समाप्त होन वाले सहकारी वर्ष के अन्त तक राज्य के ९० प्रतिशत से अधिक गाँव तथा ३९ प्रतिशत ग्रामीण परिवार सहकारिता के अन्तर्गत आ चुके है। इतना होते हुये भी राज्य मे सहकारी आन्दोलन की प्रगति धीमी रही। इसक अनेक कारण है। प्रथम योजना मे तो राजस्थान मे मूल समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न किये गय थे। इस क्षेत्र मे वास्तविक प्रगति द्वितीय योजना से प्रारम्भ हुई। राजस्थान के पश्चिमी भागो मे निरन्तर अकाल की स्थिति रहने के कारण अकाल राहत कार्यक्रमो पर अधिक व्यय करना पडता है अत अन्य क्षेत्रों मे विकास तेज गति से नहीं हो पाता है।

राजस्थान के सहकारी आन्दोलन मे नवीन प्रवृतियाँ

(१) समितियों की संख्या तथा सदस्यता

राज्य के सहकारी आन्दोलन मे सभी प्रकार की समितियो की सख्या तथा सदस्यता मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९५१ ५२ मे सभी प्रकार की सहकारी समितियो की सख्या तथा सदस्यता क्रमश ४९०८ तथा १९८५६७ थी जो कि सहकारी वर्ष १९६८-६९ के अन्त मे क्रमश २००३० तथा १८३२९७२ हो गयी। इस प्रकार समितियो की सख्या तथा सदस्यता मे बहुत वृद्धि हुई।

(२) अश पूँजी एव कार्यशील पूँजी में वृद्धि

सहकारी समितियो की सख्या तथा सदस्यता मे वृद्धि का प्रभाव अश पूँजी पर पडता है और अश पूँजी का प्रभाव कार्यशील पूँजी पर पडता है। सभी प्रकार की सहकारी समितियो की अश पूँजी तथा कार्यशील पूंजी वर्ष १९५१-५२ मे क्रमश ५१ ९ लाख तथा ३४५ लाख रुपये थी जो कि वर्ष १९६५-६६ मे बढ कर ११४० लाख रुपये तथा ५७०० लाख रुपये हो गयी। ३० जून १९६९ को समाप्त होने वाले वर्ष के अन्त तक सभी प्रकार की सहकारी समितियो की अश पूँजी १७०२ ६५ लाख रुपये तथा कार्यशील पूँजी १००९४.०४ लाख रुपये हो गयी।

(३) सहकारी साख के साथ गैर साख के क्षेत्र में प्रगति

नियोजित आर्थिक विकास स पूर्व राज्य म सहकारी आन्दोलन बहुत असतुलित था। पहले केवल साख समितियो की अधिक प्रगति की गयी। राजस्थान में द्वितीय पचवर्षीय योजना से गैर साख के क्षत्र म भी प्रगति के प्रयत्न किये हैं। द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे और आग के वर्षों मे विपणन समितियो गृह निर्माण समितिया, माल सवार तथा औद्योगिक समितिया के विकास में अच्छी प्रगति हुई है। सहकारी भण्डारो का विकास भी तेज गति से हो रहा है।

(४) समितियों का दृढ़ीकरण :

राज्य के सहकारी आन्दोलन मे कमजोर समितियों की सख्या अधिक होने के कारण विकास म कठिनाई उत्पन्न हो गयी। इसकी जाँच करने के प्रयत्न किये गये। वष १९६५ में राज्य की १२४५७ प्राथमिक कृषि ऋण दात्री सहकारी समितिया का सर्वेक्षण किया गया है। इस सर्वेक्षण मे आर्थिक दृष्टि से निष्क्रिय तथा कमजोर समितिया को सुदृढ एव सक्षम इकाई बनान का कायक्रम वर्ष १९६७ ६८ से प्रारम्भ कर दिया गया है। इस कायक्रम के अन्तगत ७१०२ सक्षम समितिया बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। सक्षम बनान के कायक्रम के अन्तगत वष १९६७ ६८ म ६५९ एव वर्ष १९६८-६९ में ७०० समितिया का पुनगठन किया जा चुका है।

(५) सहकारी आन्दोलन में राज्य सरकार की अधिक रुचि ·

पचवर्षीय योजनाओ म विकास काय क्रमों म ग्रामीण आर्थिक विकास का आधार सहकारी सगठन माना गया है। केन्द्रीय सरकार तथा सभी राज्य सरकारो ने इस विचारधारा को मान्यता दी और इसी के आधार पर उन्नति के प्रयत्न किये। राज्य सरकार ने सहकारिता आन्दोलन के विभिन्न क्षत्रो म पर्याप्त सहायता की है। विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियो मे अशपूजी का अशदान किया है। ऋण तथा अनुदान भी दिये गये हैं। आर्थिक दृष्टि से कमजोर अनेक समितिया को विभिन्न सुविधायें प्रदान की हैं। राज्य सरकार ने प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ म सहकारिता के विकास के लिये क्रमश २५ ७७, लाख, १९३ ६९ २४२ ९१ लाख रुपय व्यय किये हैं। चतुथ पचवर्षीय योजना म सहकारिता विकास पर ५·४३ करोड रुपये व्यय किय जाने का प्रावधान किया गया है। चतुर्थ योजना में राज्य सरकार विभिन्न प्रकार की समितियो के दृढीकरण, गोदाम निर्माण आदि मे पर्याप्त सहायता प्रदान करेगी।

(६) सहकारी नीति में उचित परिवर्तन :

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे केन्द्रीय सरकार ने सहकारी नीति मे परिवर्तन किया। सन् १९५८ में राष्ट्रीय विकास परिषद ने प्रस्ताव रखा कि सहकारी समितियो का सगठन ग्रामीण समाज की प्रमुख इकाई के रूप म किया जाये। इस समय यह निणय लिया गया कि ग्राम स्तर पर सामाजिक तथा आर्थिक विकास का दायित्व सहकारी समितियो तथा ग्राम पचायतो पर रखा जाये। राजस्थान सरकार ने भी केन्द्रीय सरकार की इस नीति का अनुकरण किया और सहकारिता के विभिन्न भागो में नवीन नीतियाँ अपनायी। तृतीय योजना के अन्त मे अल्प कालान ऋणो को मध्यकालीन

ऋणो मे परिवर्तन की व्यवस्था की गयी। ऋण को परिवर्तित करने के लिये कृषि स्थिरता कोष की स्थापना की गयी है।

(७) रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया का अधिक योगदान

प्रथम पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से पूर्व हमारे देश मे रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया ने कृषि साख एव सहकारिता के क्षेत्र मे कोई विशेष योगदान नही दिया। किन्तु पचवर्षीय योजनाओ मे इन क्षत्रो मे इस बैंक ने पर्याप्त योगदान दिया है। रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया ने कृषि साख के लिये दो स्थाई कोष (I) राष्ट्रीय कृषि साख दीर्घ कालीन कोष, (II) राष्ट्रीय कृषि साख (स्थिरीकरण) कोष, निर्मित किये है। इन कोषो से राज्यो के सहकारी बैंको एव भूमि विकास बैंको को मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण प्रदान किये जाते है। इस व्यवस्था से राजस्थान मे भी पर्याप्त सहायता मिली है। रिजर्व बैंक ने उन भागो के किसानो को राहत देने के लिये जहाँ सरकार अकाल घोषित कर दे, सन् १९६५-६६ मे एक नयी योजना चालू की। इसके अन्तर्गत अल्प कालीन ऋणो को मध्यकालीन ऋणो मे परिवर्तन करने की व्यवस्था की।

(८) सहकारी शिक्षा तथा प्रशिक्षण व्यवस्था को व्यापक बनाना

सहकारी प्रशिक्षण की व्यवस्था वरिष्ठ अधिकारियो, मध्यवर्ती अधिकारियो, कनिष्ठ श्रेणी से अधिकारियो आदि के लिये चालू की गयी है। राज्य मे सहकारिता के विकास को गति प्रदान करने के लिये स्पेशल कोर्स भी चालू किये गये हैं। राजस्थान मे गैर सरकारी व्यक्तियो को सहकारी शिक्षा प्रदान की जा रही है। पचवर्षीय योजनाओ से पूर्व राज्य मे ऐसी कोई व्यवस्था नही थी। राज्य मे सहकारी कृषि समितियो के व्यवस्थापको को प्रशिक्षण कार्य क्रम भी चालू किया जा चुका है।

(९) औद्योगिक क्षेत्र में सहकारिता

राजस्थान राज्य मे सहकारी चीनी मिल २२ फरवरी १९७० को चालू हो गयी है। राज्य मे कताई मिल को औद्योगिक लाइसेन्स प्राप्त हो चुका है। सहकारिता के क्षेत्र मे ६ चावल मिलें स्थापित की जा रही है। इनके अतिरिक्त दाल मिलें तथा अन्य कई कारखानें इस क्षत्र मे लगाये जा रहे है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान के सहकारी आन्दोलन मे अनेक नवीन प्रवृतियाँ दिखाई दे रही हैं। विभिन्न क्षत्रो मे सहकारिता ने प्रवेश किया है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इसके क्षेत्र को और अधिक व्यापक करने की व्यवस्था की गयी है। इस आन्दोलन के तेज विकास के मार्ग मे अनेक बाधायें है जिनका विवरण अगले अध्याय मे किया गया है आशा है भविष्य मे इन बाधाओ को दूर कर दिया जायेगा और सहकारिता आन्दोलन जो कि जनता का आन्दोलन है उन्ही के लिये हो सकेगा।

प्रश्न

१. राजस्थान मे पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारिता ने क्या प्रगति की है ? क्या यह प्रगति सतोषजनक है।

२ राजस्थान के सहकारिता आन्दोलन की नवीन प्रवृतियो का सक्षिप्त विवरण दीजिये ।

३. राजस्थान मे 'सहकारी साख' विषय पर एक नोट लिखिये । विभिन्न सहकारी साख समितियो की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिये ।

४. राजस्थान मे सहकारी विपणन की क्या स्थिति है । पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारी विपणन समितियो की क्या प्रगति रही है ।

५. राजस्थान मे सहकारी उपभोक्ता आन्दोलन की प्रगति का विवरण देते हुये बताइये कि इस आन्दोलन को कहाँ तक सफलता मिली है ।

६ निम्न लिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —

(i) राजस्थान मे सहकारी साख
(ii) राजस्थान मे सहकारी विपणन समितियाँ
(iii) राजस्थान मे उपभोक्ता सहकारी समितियाँ
(iv) राजस्थान मे सहकारी शिक्षण एव प्रशिक्षण
(v) राजस्थान मे हाथ करघा समितियाँ
(vi) राजस्थान मे माल सवार समितियाँ एव औद्योगिक सहकारी समितियाँ ।

३

राजस्थान मे सहकारी आन्दोलन के विकास मे बाधायें

राजस्थान मे पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारिता के विकास के अनेक प्रयत्न किये है किन्तु अधिक सफलता नही मिली है। यह राज्य अन्य कई राज्यो की तुलना मे अधिक पिछडा हुआ है। कृषि उद्योग तथा वाणिज्य के क्षेत्र मे यह अब भी बहुत पीछे है। यद्यपि यहाँ के लोग बहुत व्यापार कुशल माने जाते है। किन्तु अनेक समस्याओ के कारण इन व्यापारियो ने अन्य राज्यो मे जाकर अपनी व्यापार कुशलता का परिचय दिया। राज्य के आर्थिक विकास मे इनका कोई विशेष योग-दान नही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राज्य अनेक छोटी-छोटी रियासतो मे बँटा हुआ था। इनमे सहकारिता के आधार पर विकास के कोई विशेष प्रयत्न नही किये। पचवर्षीय योजनाओ के विकास पर बल दिया गया किन्तु अनेक बाधाओ के कारण पर्याप्त सफलता नही मिल पायी। इन बाधाओ का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१ शिक्षा की कमी :

शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान बहुत पिछडा हुआ है। अधिकाँश जनता ग्रामीण भागो मे रहती है जहाँ शिक्षा की उचित व्यवस्था नही है यद्यपि आजकल ग्रामो मे स्कूल खुल रहे हैं किन्तु अधिकाश किसान अशिक्षित है। शिक्षा के अभाव मे किसी भी प्रकार का सस्थागत परिवर्तन करना बहुत कठिन है। व्यक्ति सहकारिता के अर्थ तथा सिद्धान्त को अभी तक नही समझ पाते हैं। अधिकतर व्यक्ति इतने रूढीवादी हैं कि वे अपने परम्परागत धन्धो को बदलना नही चाहते है तथा उनमे किसी भी प्रकार का परिवर्तन भी उचित नही समझते हैं। किसान अपने खेतो मे उन्ही विधियो मे कार्य करना अच्छा मानते है जो कि उनकी पीढियो से चली आ रही हैं। राज्य के कई भागो मे किसान अभी तक उसी अवस्था मे है जिस अवस्था में सैकडो वर्ष पूर्व था। राज्य की आम जनता अशिक्षित होने के कारण सहकारी

आन्दोलन के महत्त्व को नहीं समझ सकी है। ग्रामीण क्षेत्रो मे सहकारी आन्दोलन के विकास के लिये जनता का सहयोग आवश्यक है। सहकारी समितियों के कार्य भार को सम्भालने के लिये शिक्षित सचिवो की आवश्यकता पडती है। इन कठिनाइयों के कारण आन्दोलन को प्रोत्साहन नही मिल पाया।

ग्रामीण क्षेत्रो मे सहकारी समितियो के सदस्य भी अशिक्षित हैं। वे सहकारिता के सिद्धान्त तथा नियमो को अच्छी तरह से नही समझ पाते हैं। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सहकारिता को जनता का आन्दोलन घोषित किया गया किन्तु अधिकत्तर लोग इसे अपनाने को तैयार भी नही हैं। ग्रामो मे कुछ ही व्यक्ति थोड़े-बहुत शिक्षित पाये जाते है। कुछ व्यक्ति गन्दी राजनीति मे फँसे होते हैं जो कि अपने स्वार्थो की सिद्धि के लिए आन्दोलन का अनुचित लाभ उठा रहे हैं। समितियो के सदस्य तथा ग्रामीण जनता अशिक्षित होने के कारण सहकारी समितियो के कार्य भार मे भाग नही ले सकी है। जनता आन्दोलन के महत्त्व को न समझने के कारण इसमे विश्वास भी नही कर रही है। शिक्षा के अभाव मे कुछ प्रभावशाली व्यक्ति आम सदस्यो का शोषण करते हैं। अशिक्षित लोग सहकारिता आन्दोलन को सरकार का आन्दोलन समझते हैं।

(२) सहकारी साख को अधिक महत्त्व

सहकारी आन्दोलन का प्रारम्भ साख से हुआ है। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रो मे अधिकतर साख देने पर जोर दिया गया है। यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि केवल साख प्रदान करने से किसानो की आर्थिक स्थिति सुदृढ नही हो सकती है। इस सहायता से न तो किसान ऋण मुक्त हो पाते है और न ही अधिक उत्पादन मे सहयोग मिल पाता है। जब तक किसानो की सभी समस्याये नही सुलझा दी जाती है उनकी उन्नति बहुत कठिन है। किसान जो कुछ भी पैदा करते है उसके विपणन की समस्या बहुत जटिल है। राज्य के सहकारी आन्दोलन मे विपणन समितियो ने इतनी प्रगति नही की है कि अधिकाश ग्रामीण जनता को उनसे लाभ हो पाया हो। फलत किसान महाजनो तथा व्यापारियो को नीचे मूल्य पर अपनी उपजें प्रदान कर देते है जिससे उनको हानि होती है।

कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए आधुनिक विधियो का प्रयोग, सिचाई व्यवस्था, उन्नत बीज, खाद, आधुनिक औजारो को आवश्यकता होती है। इनकी पूर्ति अभी तक सहकारी आन्दोलन नही कर पाया है अत जनता आन्दोलन की तरफ अधिक प्रभावित नही हो सकी है।

राजस्थान मे अधिकाश ऋण चुकाने के लिए ही काम मे लिए जाते रहे हैं। यद्यपि आजकल उत्पादक कार्यो के लिए ही ऋण प्रदान किये जा रहे है किन्तु वास्तव मे ऋणो को जनता उत्पादन कार्यो मे नही लगा पाती है क्योकि जनता ऋणग्रस्त है। ऐसी स्थिति मे समितियो द्वारा प्रदान किया गया ऋण वापिस लौटाने मे बहुत बडी कठिनाई होती है यही कारण है कि सदस्यो पर बकाया राशि का प्रतिशत अभी तक ऊँचा है। किसान यदि उत्पादक कार्यो मे धन लगाते है तो इससे कृषि उत्पादन मे वृद्धि होती है और अपने ऋण की किस्त वापिस कर सकते हैं। किन्तु ऋण को पुराने ऋण चुकाने मे लगा देने से किसानो की आय मे कोई विशेष अन्तर

नही हो पाता है अत यह समस्या जटिल होती जा रही है। ऐसी स्थिति मे समितियो की आर्थिक स्थिति भी खराब होने लगती है।

प्राथमिक सहकारी साख समितियो के व्यवस्थापक अपने सम्बन्धित तथा दल के सदस्यो को ऋण अधिक प्रदान करते हैं। ऋण देते समय वापिस लौटाने की क्षमता की तरफ ध्यान नही देने के कारण बकाया राशि निरन्तर बढती रहती है। राजस्थान मे सहकारी साख को सर्वोच्च स्थान मिलने पर भी किसानो की साख सम्बन्धी आवश्यकतायें अभी तक पूरी नही हो पायी हैं। भूमि बन्धक बैंक किसानो की दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे असफल हैं। किसान आवेदन पत्र देने के पश्चात् एक लम्बी अवधि तक भूमि विकास बैंको से ऋण प्राप्त नही कर पाते हैं। अन्त मे उनको ग्रामीण महाजनो तथा साहूकारो की शरण मे जाना पड़ता है।

(२) वित्तीय कठिनाइयाँ

राज्य के सहकारी आन्दोलन के विकास मे वित्तीय कठिनाई सबसे बडी बाधा है। अधिकाश समितियाँ आर्थिक दृष्टि से इतनी कमजोर हैं कि उनका बन रहना भी कठिन हो गया है। आर्थिक दृष्टि से निष्क्रिय एव निर्बल समितियाँ अपने सदस्यो की आवश्यकताओ को पूर्ति नही कर पाती है। समितियो मे सदस्यता कम हैं जिसके कारण अश पूंजी का अभाव रहता है। यह प्राय निश्चित है कि जिन सस्थाओ मे निजी निधियाँ कम होती हैं उनमे कार्यशील पूंजी का अभाव बना रहता है। समितियो का अनार्थिक आकार होने के कारण लाभ भी नही हो पाता है। निजी निधियो मे वृद्धि करने से जमा राशि तथा ऋणो की राशि अधिक आकर्षित हो सकती हैं। किन्तु राजस्थानमे समितियो की निजी निधियाँ बहुत निम्न है जिससे उनकी उधार लेने की क्षमता बहुत कम है।

सहकारी साख समितियो के पास इतना धन नही है कि वे अपने सदस्यो की साख सम्बन्धित आवश्यकताओ को पूर्ति कर सकें। किसान तथा अन्य निर्धन व्यक्ति महाजनो तथा साहूकारो से ऋण लेकर अपना कार्य चलाते हैं। इस स्थिति मे सहकारी आन्दोलन का उद्देश्य असफल रह जाता है। सहकारी समितियो की आर्थिक स्थिति निरन्तर खराब होने का कारण बकाया राशि (अवधिपार) है। राज्य मे प्रतिवर्ष किसी न किसी भाग मे अकाल की स्थिति रहती है जिससे किसान अपने अल्पकालीन ऋणो को लौटाने मे असफल हो जाते हैं। अवधिपार राशि बढती रहती है।

सहकारी साख समितियो के अतिरिक्त अन्य समितियाँ जैसे विपणन समितियाँ, माल सवार समितियाँ, औद्योगिक समितियाँ गृहनिर्माण समितियाँ, श्रमिक ठेका समितियाँ, सहकारी उपभोक्ता भण्डार आदि भी आर्थिक कठिनाइयो के शिकार हैं। विपणन समितियो के पास इतना धन नही है कि वे भण्डारण की उचित व्यवस्था कर सके। भण्डार गृह बनाने के लिए बडी मात्रा मे धन की आवश्यकता होती है जो कि समितियो के लिये बहुत कठिन कार्य है। माल सवार समितियो तथा औद्योगिक समितियों के लिए भी बडी मात्रा मे धन राशि चाहिए। सहकारी समितियाँ अपने कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये राज्य सरकार तथा अन्य ऋण प्रदान करने वाली सस्थाओ की तरफ देखती रहती हैं। अन्य प्रकार की समितियो के पास भी धनाभाव रहता है।

यद्यपि आजकल रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, राज्य सरकार तथा अन्य संस्थायें राज्य के सहकारी आन्दोलन को आर्थिक सहायता प्रदान कर रही हैं किन्तु फिर भी समस्या का समाधान नही हो पाया है। समितियाँ अपने सदस्यो की समय पर आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर पाती हैं तो उनका समितियो के प्रति विश्वास समाप्त हो जाता है। कुछ समितियां जो आर्थिक दृष्टि से निष्क्रिय एव निर्बल है उनमे पुन विश्वास प्राप्त करना बहुत कठिन है। इस समस्या के समाधान के लिये आजकल समितियो के दृढीकरण की तरफ विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

(४) सहकारी शिक्षण एवं प्रशिक्षण की कम सुविधायें

सहकारिता की सफलता सहकारी सिद्धान्तो को समझने और उनको ईमानदारी से कायरूप मे परिणित करने पर निर्भर है। राज्य के ग्रामीण क्षेत्रो मे सहकारिता की साधारण शिक्षा जनता को नही प्रदान की गयी है। सहकारी सिद्धान्त को अच्छी तरह समझकर प्रयोग मे लाया जाये तो सामूहिक भलाई हो सकती है। राज्य मे अभी तक सहकारिता विषय की शिक्षा को भी अधिक महत्व नही दिया गया है। यद्यपि इस वर्ष वाणिज्य मे यह अनिवार्य विषय बन चुका है। इससे सहकारिता के विषय मे अधिक जानकारी हो सकेगी।

राज्य मे सहकारी प्रशिक्षण की भी पर्याप्त व्यवस्था नही रही है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से सहकारी विभाग के अधिकारियो को प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है। किन्तु सहकारी समितियों के व्यवस्थापकों को उचित प्रशिक्षण अभी तक नही मिल पाया है। प्रशिक्षण के अभाव मे कमचारियों तथा अधिकारियो की कायक्षमता मे वृद्धि नही हुई है। ग्रामीण सहकारी समितियो के प्रबन्धक मण्डल के सदस्यो, समितियों के सचिवों तथा अन्य कमचारियो को प्रशिक्षण नही मिल पाता है। राज्य में अभी तक अनुसन्धान कार्यों का अभाव है।

सहकारी साख समितियो के कमचारियो तथा व्यवस्थापको को सामान्य बैंकिंग नियमो का भी ज्ञान नही है। सहकारी विपणन समितियो के कर्मचारियों तथा अधिकारियो को साधारण विक्रय विधियों की जानकारी का अभाव है। उपभोक्ता भण्डारों मे व्यापारिक गतिविधियों से परिचित व्यक्ति नही है क्योंकि भण्डार पर्याप्त मात्रा मे वेतन नही दे पाते है। अन्य प्रकार की समितियो के पास भी प्रशिक्षित स्टाफ का अभाव है। निम्न कायकुशलता के कारण सहकारी आन्दोलन तेज गति से विकास नही कर पाया है।

(५) अकुशल नेतृत्व

राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रो मे आन्दोलन की प्रगति के लिये अच्छा नेतृत्व नही मिल पाया। अनेक भागो मे साहसी, कर्मठ व्यक्ति, ईमानदार तथा कार्यकुशल नेताओ का अभाव है। समितियो मे अकुशल एव गन्दी राजनीति वाले नेताओं का अधिक प्रभाव पाया जाता है। इससे सहकारिता का उद्देश्य पूर्ण नही हो पाता है। साहसी एव कमठ व्यक्तियों के अभाव मे समितियाँ कुशलता पूर्वक काय नही कर सकती हैं। राज्य मे जनता अशिक्षित है अत उसे उचित मार्ग दर्शन करने के लिये कुशल नेतृत्व की आवश्यकता है।

ग्रामीण नेता जिनका समितियो मे अधिक प्रभाव होता है अपने स्वार्थों को

पूर्ति मे लगे रहते हैं। अपने दल के व्यक्तियो तथा सम्बन्धियो को सुविधाये दिला देते हैं शेष सदस्य लाभान्वित नही हो पाते हैं। अनेकों बार अनुचित व्यक्तियो को जो कि ऋण लेने के लायक नही है, ऋण मिल जाता है। समितियो मे सदस्यता प्रदान करते समय दल को आधार माना जाता है चरित्र का कोई विशेष महत्त्व नही है। अत राज्य मे सहकारिता आन्दोलन असफल रहा है।

राजस्थान मे सहकारी नेताओ मे जनसेवा करने की भावना की कमी है। इस क्षेत्र के नेता न अच्छे शिक्षक हैं और न ही अच्छे प्रवक्ता। ये प्रशिक्षित भी नहीं हैं तथा दूरदर्शिता के गुणों का सर्वथा अभाव पाया जाता है। अच्छे नेताओ के गुणो के अभाव मे सहकारिता विकसित नही हो पायी है। यह समस्या अधिकाश समितियो के सामने है।

(६) कुशल प्रवन्धकों का अभाव

राजस्थान मे सहकारी समितियो के अधिकाश प्रवन्धक अप्रशिक्षित एव अकुशल हैं। आजकल आधुनिक प्रबन्ध अथवा वैज्ञानिक प्रबन्ध का बहुत महत्त्व है। विश्व मे वैज्ञानिक प्रबन्ध एव सहकारिता का जन्म एक साथ ही हुआ है। सहकारी समितियो मे वैज्ञानिक प्रबन्ध अपनाया जाना चाहिये। अधिकाश प्रवन्धक वैज्ञानिक प्रबन्ध के विषय मे जानते तक नही हैं। जिन सस्थाओ मे अच्छे प्रवन्धक होते हैं वे अपने कार्य को अच्छी तरह चला सकती हैं। कुशल प्रवन्धक शीघ्र तथा उचित निर्णय ले लेते हैं। वे दूरदर्शी होते हैं। अत समितियो का उचित प्रबन्ध कर सकते है। कुशल प्रबन्धक तैयार करने के लिये प्रशिक्षण आवश्यक है। सहकारी समितियो के पास कुशल प्रबन्धक न होने के दो प्रमुख कारण है। प्रथम, ये समितियाँ इनको पर्याप्त पारिश्रमिक देने मे असमर्थ है। अच्छे प्रबन्धको को निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्रो मे अच्छा वेतन मिलता है अत सहकारिता के क्षेत्र मे वे आना पसन्द नही करते हैं। दूसरे, सहकारिता मे प्रबन्धको को उचित प्रशिक्षण नही मिल पाता है। इसलिये इनकी कार्य कुशलता निम्न होती है। फलत सहकारी समितियो का प्रबन्ध निबल होता है।

कुशल प्रबन्धको के अभाव मे ऋण समितियाँ ऋण प्रदान करने का उचित निर्णय नहीं ले पाती है। कभी-कभी वे ऐसे सदस्यो को ऋण दे बैठती हैं जो कि ऋण वापिस करने मे सर्वथा असमर्थ हैं। अकुशल प्रबन्धक समितियो की विभिन्न गतिविधियो मे समन्वय स्थापित नही कर पाते है और न ही भावी विकास की अच्छी योजनायें तैयार कर पाते हैं।

अकुशल प्रबन्धकों के कारण विपणन समितियो को हानि हो जाती है। इनको माल के विक्रय के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार की विधियो का ज्ञान नही होता है। विक्रय व्यवस्था मे बाजार अनुसन्धान तथा पूर्वानुमान का बहुत बडा महत्त्व है। अकुशल प्रबन्धकों के पूर्वानुमान कभी सही नही निकलते हैं। बाजार अनुसन्धान के विषय मे भी वे अनभिज्ञ होते है अत कोई अच्छे निर्णय नही ले पाते है। यही स्थिति अन्य प्रकार की समितियो मे है। उपभोक्ता भण्डारो मे तो प्रबन्धकों का व्यापार कुशल होना नितान्त आवश्यक है अन्यथा बहुत बडे नुक्सान की आशंका रहती है। औद्योगिक सहकारियो तथा माल सवार समितियो मे भी कुशल प्रबन्धको के बिना कार्य चलाना बहुत ही कठिन है।

(७) अकालों की समस्या :

राजस्थान मे प्रतिवर्ष राज्य के किसी न किसी भाग मे अकाल की स्थिति बनी रहती है। राज्य के पश्चिमी भागो मे पिछले वर्षो से निरन्तर अकाल पड रहा है। इस स्थिति मे सहकारी ऋण समितियो ने जो अल्पकालीन ऋण प्रदान किये हैं उनकी वापसी नही हो पायी है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने पिछले वर्षो मे उन भागो के किसानो के अल्पकालीन ऋणो को मध्यकालीन ऋणो मे परिवर्तित करने की सहायता दी है जो कि सरकार द्वारा अकाल घोषित क्षेत्र हो। वास्तव मे देखा जाये तो यह कोई स्थायी उपचार तो है नही। राज्य मे जब तक अकाल पडते रहेगे विभिन्न प्रकार की समितियो की स्थिति अच्छी नही हो सकेगी।

राज्य मे अकाल का मुख्य कारण अपर्याप्त वर्षा अथवा अनियमित वर्षा है। कृषि वर्षा पर निर्भर है। सिंचाई के कोई विशेष साधन अनेको भागो मे नही हैं। अत जब तक सिंचाई की उन्नति नही हो सकेगी तब तक ऋण समितियाँ, विपणन समितियाँ, माल सवार समितियाँ तथा अन्य औद्योगिक समितियाँ सफल नही हो सकेगी।

राज्य सरकार प्रतिवर्ष अकाल राहत के लिये बडी मात्रा मे धन व्यय करती है। पिछले तीन-चार वर्षो से निरन्तर अकाल राहत मे खर्चा हो रहा है। इसलिये सहकारिता के क्षेत्र मे तथा अन्य क्षेत्रो में अधिक धन व्यय करना बहुत कठिन है। सरकार को अकाल राहत के लिये युद्ध स्तर पर मुकाबला करना पडता है। अत राज्य की विकास योजनाओ मे धन का अभाव हो जाता है।

(८) दलबन्दी तथा पक्षपात को बढावा

राजस्थान के सहकारी आन्दोलन मे प्राय यह देखा गया है कि कुछ स्वार्थी लोग समितियो मे अपना प्रभाव अनुचित तरीको से बढा लेते है। इसके कारण उनको समिति मे अच्छा पद प्राप्त हो जाता है। इससे दलबन्दी की वृद्धि होती है। ये नेता लोग अपने दल के लोगो को ऋण शीघ्र स्वीकार कर देते है। अन्य व्यक्तियों को समय पर ऋण नही मिल पाता है। इस कारण लोगो का विश्वास समितियो पर से उठ जाता है। धीरे-धीरे इन समितियो की स्थिति खराब होने लगती है। कभी दल बन्दी मे ऐसे अनुचित व्यक्तियो को ऋण मिल जाता है जो कि वापस नही हो पाता है। सहकारी आन्दोलन मे यह एक बहुत ही बडी व्यावहारिक कठिनाई है।

ग्रामो मे राजनीति इतनी गन्दी हो चुकी है कि लोग आपस मे एक दूसरे पर विश्वास नही करते हैं। चारो तरफ दलबन्दी और जातिवाद का बोलबाला है। इन दोनो बुराइयो पर पक्षपात की बुराई आधारित है। सहकारिता का उद्देश्य इन बुराइयो को समाप्त करके सुखी समाज का निर्माण करना था जबकि स्थिति इसके विपरीत हो चुकी है। स्वय सहकारी सस्थाओ मे भ्रष्टाचार पनप रहा है। समितियो मे अल्प मत के सदस्यों के साथ अन्याय तथा उनका शोषण होता है। राज्य के अनेक भागो मे आजकल यही स्थिति उत्पन्न हो गयी हैं। इस बुराई को यथा शीघ्र समाप्त कर देना आवश्यक है।

(९) कठिन प्रतियोगिता :

राज्य के कृषि क्षेत्र मे ग्रामीण महाजनो का आज भी प्रभुत्व है। किसान

इनसे ऋण लेकर अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करते है । ये महाजन कई प्रकार से समितियो के मार्ग मे बाधायें उपस्थित करते है । समितियो के विभिन्न सदस्यो मे ये लोग फूट डाल देते है और अपने स्वार्थो की रक्षा करते है । महाजन लोग कही-कही पर अपने पक्ष के व्यक्तियो को समितियो मे सदस्य बना देते है और समितियो मे अपने हितो के आधार पर कार्य करवा लेते हैं।

कृषि विपणन समितियो को स्थानीय व्यापारियों से कडी प्रतिस्पर्धा करनी पड रही है । समितियाँ अपने सदस्यो का माल स्वय इकट्ठा कर लेती हैं अत स्थानीय व्यापारियो की कडी समाप्त होने लगती है । ये व्यापारी अपने हितो की रक्षा के लिये कई प्रकार की चाल चलते है ओर समितियो मे फूट डालकर दलबन्दी करवा देते है । कभी-कभी ये व्यापारी समितियो के व्यवस्थापको से साँठ-गाँठ कर लेते है तथा अपना काम निकाल लेते है । दूसरी तरफ व्यापारी गण किसानो को फसलो के लिये ऋण भी प्रदान करते है और उनकी फसल स्वय खरीद लेते हैं । सहकारी समितियों की आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी न होने के कारण ये समितियाँ सदस्यो को पर्याप्त फसली ऋण नही देती हैं । अत समितियो को कठिन प्रतिस्पर्धा करनी पडती है । स्थानीय व्यापारी क्रय-विक्रय कार्यों मे इतने दक्ष होते है कि उनको हानि नही हो पाती है किन्तु समितियो के कर्मचारी तथा प्रबन्धक व्यापार कुशल नही होते हैं जिससे समितियो को हानि होने की अधिक सम्भावना रहती है ।

अन्य प्रकार की समितियो, जैसे उपभोक्ता भण्डारो, माल सवार समितियो, औद्योगिक समितियो, बुनकरो की समितियो को भी कठिन प्रतिस्पर्धा का सामना करना पडता है । कई-कई समितियाँ तो इस गला काट प्रतियोगिता मे समाप्त भी हो जाती हैं ।

(१०) उचित समन्वय का अभाव -

राज्य के सहकारी आन्दोलन मे उचित समन्वय (co-ordination) का अभाव है । समन्वय सघीय सस्थाओ द्वारा किया जा सकता है । यद्यपि सहकारी साख मे प्राथमिक स्तर पर प्राथमिक समितियाँ हैं, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक है और राज्य स्तर पर शीर्ष सहकारी बैंक हैं किन्तु फिर भी शीर्ष सस्थाये नीचे की सस्थाओ की गति विधियो मे समन्वय स्थापित नही कर पायी है । अन्य क्षेत्रो मे भी यही स्थिति है ।

एक क्षेत्र के अतिरिक्त सभी क्षेत्रो की समितियों मे भी समन्वय नही है । उचित समन्वय के अभाव मे आन्दोलन का विकास बहुत कठिन है । आन्दोलन की सफलता के लिये सभी भागो का उचित सहयोग आवश्यक है ।

(११) अकेक्षण, निरीक्षण एव पर्यवेक्षण का अभाव :

राज्य के सहकारी आन्दोलन मे अंकेक्षण, निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण का अभाव है । इनके अभाव मे समितियो मे अनियमिततायें तथा गडबडियाँ दिन प्रतिदिन बढती जा रही हैं । राज्य की सभी समितियो का समय पर उचित अकेक्षण नही हो पाता है । प्रतिवर्ष अनेको समितियाँ अकेक्षण तथा निरीक्षण से मुक्त रह जाती हैं । इससे समितियो की निधियों का दुरुपयोग होता है । राज्य मे अनेको समितियाँ हिसाब का उचित लेखा नही करती हैं अकेक्षण न होने के कारण व्यवस्थापक गण डरते नही

है और अपनी मन मानी चलाते है। हाल ही राजस्थान मे सरकारी विभाग से अकेक्षण शाखा को अलग किया है और इसको ८ खण्डो मे विभक्त कर दिया है। राज्य के विभिन्न भागो की समितियो का अकेक्षण इन आठ खण्डो के आधार पर किया जायेगा। आशा है निकट भविष्य मे यह व्यवस्था अच्छी हो जायेगी।

समितियो के सफल सचालन के लिये यह आवश्यक है कि उनके लेखा पुस्तको की सावधानी पूर्वक तथा निरन्तर जाँच की जावे और उनके सामान्य प्रबन्ध का समय समय पर परीक्षण किया जाये। पर्यवेक्षक समिति के दोषो को दर्शाते हैं और उन्हें दुरुस्त भी करने मे मदद करते हैं। किन्तु राज्य मे अभी तक पर्याप्त मात्रा मे इस प्रकार की व्यवस्था नही है।

(१२) साख को विपणन के साथ जोडने में कम प्रगति

आजकल हमारे देश मे साख को विपणन के साथ जोडने पर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। इससे ऋण समितियाँ अपने द्वारा दिये गये ऋण को सुविधा पूर्वक वापिस प्राप्त कर लेती है। राजस्थान मे साख को विपणन के साथ सम्बन्ध करने की तरफ यद्यपि प्रयत्न किये गये हैं किन्तु कोई विशेष सफलता नही मिल सकी।

(१३) अन्य :

समितियाँ सदस्यो को या तो दो सदस्यो की व्यक्तिगत सदस्यो की जमानत पर ऋण देती हैं अथवा अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा पर ऋण दिया जाता है। ये दोनो सुविधाये बडे किसानो को आसानी से मिल जाती हैं किन्तु छोटे एव भूमिहीन किसानो के पास उचित जमानत का अभाव होता है। अत यह आन्दोलन केवल बडे एव समृद्ध किसानो को ही लाभ पहुँचा पाया है। सहकारी ऋण समितियाँ आजकल केवल उत्पादक कार्यो के लिये ही ऋण प्रदान करती हैं। किसानो को अन्य आवश्यकताओ के लिये महाजनो के पास जाना पडता है जिससे सहकारिता का उद्देश्य समाप्त हो जाता है। इसके लिये उत्पादक ऋणो के साथ साथ अनुत्पादक ऋणो की तरफ भी विचार किया जाना चाहिये। राजस्थान के अनेक भागो मे अभी तक यातायात के साधनो का अभाव है। कई ग्रामीण क्षेत्र न तो सडक से और न ही रेलवे लाइन से शहरो अथवा मण्डियो से मिले हुये है। ऐसे भागो मे समितियाँ अधिक सफलतापूर्वक कार्य नही कर सकती है। कृषि विपणन समितियो के सामने सबसे बडी समस्या भण्डारण की है।

उपरोक्त समस्याओ के कारण राज्य मे सहकारी आन्दोलन उन्नति नही कर पाया। जनता का स्वय का आन्दोलन जनता द्वारा सरकारी आन्दोलन बताया जाता है। अनेक समितियाँ निष्क्रिय हो चुकी है। सदस्यो का अपनी समितियो मे विश्वास नही है। अत उक्त समस्याओं के समाधान के लिये आवश्यक प्रयत्न करने चाहियें।

आन्दोलन की सफलता के सुझाव

राजस्थान के ग्रामीण समाज के आर्थिक उत्थान के लिये सहकारी आन्दोलन ही एक मात्र सहारा है। इस आन्दोलन को पूर्णत सफल बनाने के प्रत्येक प्रयत्न किये जाने चाहिये। सहकारिता के क्षेत्र मे जो बुराइयाँ अथवा अनियमिततायें आ गयी हैं उन्हे यथा शीघ्र दूर करने के प्रयत्न किये जाने चाहिये। राज्य सरकार ने

वर्तमान समय मे आन्दोलन को सशक्त करने के लिये समितियो के दृढीकरण की योजना चालू की है। इससे कई समस्याओ का समाधान हो सकेगा। राजस्थान मे सहकारिता आन्दोलन के विकास के लिये निम्ननिखित सुझाव महत्त्वपूर्ण हैं —

(१) सहकारी शिक्षा :

सहकारी शिक्षा से तात्पर्य उन सभी कार्यक्रमो से है जिनमे सहकारी सस्थाओ के पदाधिकारियो सदस्यो आदि के ज्ञान की वृद्धि की जाये। सहकारिता के मुख्य उद्देश्यो तथा कार्य प्रणाली की जानकारी प्रत्येक सदस्य तक पहुँचानी आवश्यक है। "सहकारी समितिया की सफलता अन्य बातो की अपेक्षा बहुत अश तक सस्था के प्रत्येक सदस्य की निष्ठा पर निर्भर करती है। इसमे व्यक्तिगत हितो की अपेक्षा समिति के हित की भावना सर्वोपरि होनी चाहिये। मानसिक दृष्टिकोण मे यह परिवर्तन लाने के लिये यह आवश्यक है कि स्कूल व कॉलिज जाने वाले विद्यार्थियो के दिमाग मे सहकारिता के आदर्शो को बैठाया जाय। एक सबके लिये और सब एक के लिये' सिद्धात को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर पढाना चाहिये। सहकारी शिक्षा निम्न प्रकार से प्रदान की जा सकती है —

- (i) विशेष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम या कक्षा चलाना,
- (ii) प्रचार सामग्री का प्रकाशन करना,
- (iii) रेडियो वार्ता फिल्म प्रदर्शन आदि द्वारा प्रचार करना,
- (iv) समितियो की साधारण सभाओ और सेमीनारो के अवसर का सहकारी शिक्षा देने के काम मे उपयोग करना।

(२) सहकारी प्रशिक्षण

सहकारी प्रशिक्षण से तात्पर्य उस कार्य-क्रम से है जिसके अन्तर्गत सहकारी सस्थाओ व सहकारी विभाग के वेतन प्राप्त करने वाले कर्मचारियो को प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण से कर्मचारियो तथा प्रबन्धको की कार्य कुशलता मे वृद्धि की जाती है। राज्य के सहकारी विभाग के वरिष्ठ अधिकारियो, मध्यवर्ती अधिकारियो तथा कनिष्ठ अधिकारियो को प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है। विभाग के कर्मचारियो को स्पेशल कोर्स के अन्तर्गत भी प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अतिरिक्त गैर सरकारी व्यक्तियो को सहकारी प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है। किन्तु राज्य की विभिन्न समितियो के कर्मचारियो, व्यवस्थापको को अभी तक उचित प्रशिक्षण नही मिल पाया है। वास्तव मे देखा जाये तो आन्दोलन की सफलता तो इनको प्रशिक्षित करने मे हैं। सहकारी प्रशिक्षण की व्यवस्था इतनी व्यापक की जाये कि सभी समितियो के वेतन भोगी कर्मचारी तथा प्रबन्धको को पर्याप्त प्रशिक्षण मिल जाये। सरकार को इस तरफ अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

(३) वित्तीय सहायता

राज्य का सहकारी आन्दोलन वित्त सम्बन्धी समस्या से ग्रस्त है अत सरकार को इस तरफ अधिक ध्यान देना चाहिये। आर्थिक स्थिति मे सुधार एक तो समितियो की निजी निधियो को बढा करके किया जा सकता है और दूसरे, सरकार द्वारा ऋण, अनुदान या अश पूंजी मे अश दान प्राप्त करके। जो समितियाँ आर्थिक

दृष्टि से कमजोर हैं और वे अपने सदस्यो की आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर पाती हैं उन्हे सरकार अश पूंजी, अनुदान अथवा ऋण के रूप मे सहायता प्रदान करे। यद्यपि राज्य सरकार ने इस तरफ प्रयत्न किया है किन्तु आवश्यकता से कम कार्य हुआ है।

राज्य सरकार के अतिरिक्त रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा व्यापारिक बैंक जिनका राष्ट्रीयकरण हो चुका है, सहकारी समितियो को ऋण सहायता प्रदान करें। रिजर्व बैंक जो सहायता प्रदान कर रही है उससे अधिक सहायता प्रदान करें।

राज्य सरकार समितियो के व्यवस्थापकीय व्ययों के लिये अनुदान प्रदान करे। विशेषकर उन समितियो को ऐसी सहायता देनी चाहिये जो कि आर्थिक दृष्टि से अधिक दृढ नही है। उनकी स्थिति ठीक होने पर यह सहायता बन्द भी की जा सकती है। कृषि विपणन समितियो के पास इतना धन नही होता है कि वे अपने निजी गोदाम बना सकें। इसके लिये सरकार गोदाम बनाने के लिये ऋण अथवा अनुदान प्रदान करे।

राज्य सरकार ऋण समितियो, विशेषकर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक मे अधिक सहायता प्रदान करे। इस बैंक से अधिक ऋण-पत्र खरीदकर अथवा सरकार भागीदार बन कर सहायता प्रदान कर सकती है जिससे किसानो की दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके। दीर्घकालीन ऋणो की पूर्ति के लिये राज्य मे कृषि पुनर्वित निगम भी प्रयत्नशील है। यह निगम राज्य मे चार लघु सिचाई योजनाओ मे ९० प्रतिशत तक ऋण प्रदान करने के लिये केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक के ऋण पत्रो मे धन लगायेगा। निगम को और अधिक सहायता प्रदान करने के लिये अधिक ऋण पत्र खरीदने चाहियें।

(४) समितियो का दृढीकरण :

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि राजस्थान मे कमजोर समितियो की सख्या अधिक है। कुछ समितियाँ अपना कार्य भी अच्छी तरह से नही चला पा रही है। इस समस्या के समाधान का एक मात्र उपाय समितियो को सुदृढ बनाना है। राज्य सरकार ने पिछले वर्षो मे समितियों के दृढीकरण की योजना चालू की है। इस योजना के अन्तर्गत ऋण समितियो को सम्मिलित किया गया है। किन्तु अन्य प्रकार की समितियाँ भी सुदृढ नही है। अत भविष्य मे सभी प्रकार की समितियो को सुदृढ बनाया जाये। समितियो के दृढीकरण का काय जितना शीघ्र हो सके पूरा कर देना चाहिये ताकि आन्दोलन को नयी दिशा तथा शक्ति प्रदान हो सके। भविष्य मे नयी समितियाँ केवल उन्ही भागो मे स्थापित की जाये जिन भागो मे समितियाँ नही हैं अन्यथा वर्तमान समितियो के कार्य क्षत्र को व्यापक बनाया जाय।

समितियो के दृढीकरण के अन्तर्गत समितियो की सख्या कम हो सकती हैं किन्तु उनकी कुल सदस्यता, अश पूंजी, कार्यशील पूंजी आदि मे वृद्धि हो जाती है। सदस्यता मे वृद्धि हो जाने से अश पूजी मे वृद्धि हो जाती है। अश पूंजी के साथ साथ रक्षित कोष आदि भी बढते है। इस प्रकार निजी पूंजी अधिक हो जाती है। जिन समितियो की निजी पूंजी अधिक होती है उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ मानी जाती है अत

उनको अधिक ऋण प्राप्त हो जाते हैं और जमा भी अधिक एकत्र हो जाते हैं। फलत कार्यशील पूंजी मे पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

(५) आन्दोलन को व्यापक बनाना :

सम्पूर्ण देश की भाँति राजस्थान मे भी सहकारी साख की तरफ अधिक प्रयत्न किये गये हैं। राज्य के सर्वांगीण विकास के लिये सहकारिता को सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओ मे प्रविष्ट कराना चाहिये। किसानो की ऋणग्रस्तता के अतिरिक्त कई समस्यायें हैं। इनमे से महत्त्वपूर्ण विपणन की है। विपणन समितियो का इतना विकास किया जाना आवश्यक है कि किसान महाजनों एव स्थानीय व्यापारियो के पंजे से मुक्त हो जायें। राज्य मे लघु उद्योगो के विकास मे तथा हाथ करघा उद्योग की उन्नति के लिये सहकारी समितियो का अधिक सहारा लेना चाहिये। वर्तमान समितियो को सशक्त बनाया जाये।

(६) समन्वय स्थापित करना :

सहकारी आन्दोलन के तेज गति से विकास के लिये विभिन्न क्षेत्रो मे समन्वय की आवश्यकता है एक ही क्षेत्र की विभिन्न स्तरो की समितियो मे उपरी सस्थाये समन्वय कार्य की तरफ अधिक ध्यान देवें। उदाहरणत जिला स्तर पर प्राथमिक बैंको मे केन्द्रीय सहकारी बैंक समन्वय स्थापित करें। सभी जिलो की केन्द्रीय बैंको मे शीर्ष बैंक समन्वय स्थापित करे। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रो मे सघीय सस्थायें समन्वय कार्य की तरफ पर्याप्त ध्यान देवें ताकि उन्नति तेज गति से हो सके।

(७) अंकेक्षण, निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण की व्यवस्था

सहकारी अकेक्षण मे इस बात की छानबीन भी सम्मिलित की जानी चाहिये कि सहकारी समिति के कार्य कलाप सहकारी सिद्धान्तो का कहाँ तक पालन कर रहे है तथा समिति के लाभ निर्बल अथवा छोटे सदस्यो को कहाँ तक मिल पाये हैं। "अंकेक्षण व्यवस्था को दृढ बनाना चाहिये तथा भारी कारोबार वाली समस्त बडी-बडी सस्थाओ मे समवर्ती (Concurrent) अकेक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये। अंकेक्षण के लिये लेखे तैयार करने की विधियाँ निर्धारित की जानी चाहिये तथा इसकी अवज्ञा के लिये प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्यो को उत्तरदायी होना चाहिये।"

राज्य मे सघीय सहकारी सस्थाओ को प्राथमिक समितियो की गतिविधियो के पर्यवेक्षण के लिये अधिकाधिक उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिये। पर्यवेक्षण के लिये पर्याप्त कर्मचारियो के वेतन के लिये सरकार को व्यवस्था करनी चाहिये। अकेक्षण एव पर्यवेक्षण की उचित व्यवस्था होने से जो अनियमिततायें रहती हैं तथा पक्षपात होते है उनमे कमी हो सकेगी।

(८) भण्डारण की उचित व्यवस्था :

सहकारी विपणन समितियो तथा माल सँवार समितियो के पास केवल अश पूंजी ही होती है। इसके अतिरिक्त थोडी मात्रा मे जमा और ऋण की राशि होती है। धनाभाव मे ये समितियाँ गोदामो के निर्माण पर बडी मात्रा मे धन व्यय नही सकती

हैं। इसके लिये सरकार को चाहिये कि विभिन्न स्थानों पर भण्डारगृहो का निर्माण करे जिससे इन समितियो को माल सुरक्षित रखने की सुविधा प्राप्त हो सके। राजस्थान राज्य सहकारी क्रय-विक्रय सघ लि० जयपुर को वर्ष १९६६-६७ मे अलवर तथा जयपुर मे शीत भण्डार चलाने के लिये ११ ६० लाख रुपये आर्थिक सहायता ऋण के रूप मे दी गयी थी। जयपुर के शीत भण्डार ने कार्यारम्भ कर दिया है। अलवर के शीत भण्डार का निर्माण कार्य प्रारम्भ हो चुका है इनके अतिरिक्त रासायनिक खाद को सुरक्षित रखने के लिये गोदामो की आवश्यकता है इनका निर्माण शीघ्र होना चाहिये।

(९) कृषि साख को विपणन के साथ सम्बन्ध करना.

कृषि साख के क्षेत्र मे अवधिपार बकाया धन का प्रतिशत अधिक है। किसानो को जो ऋण प्रदान किये जाते हैं वे समय पर वापिस नही हो पाते है। इस समस्या के समाधान के लिये कृषि साख को विपणन के साथ सम्बद्ध किया जाता है। राजस्थान मे इस क्षेत्र मे अधिक प्रगति नही हो पायी है। भविष्य मे इस तरफ अधिक ध्यान देना चाहिये ताकि कृषि ऋण की वसूली विपणन समितियो द्वारा की जा सके।

(१०) कुशल प्रबन्धक

राजस्थान मे कई सहकारी समितियो मे कमकारी एव प्रबन्धक अवैतनिक कार्य करते है। ये व्यक्ति लम्बी अवधि तक निस्वार्थ सेवा करते रहने पर अधिक ध्यान नही दे पाते हैं। अत कुशल प्रबन्धको एव कर्मचारियो को आकर्षित करने के लिये उचित वेतन व्यवस्था करनी चाहिये। भविष्य मे प्रबन्धको की नियुक्ति करते समय अनुभव, प्रशिक्षण आदि अनेक बातों की तरफ ध्यान देना चाहिये।

(११) सहकारी ढाँचे को सुदृढ बनाना

राज्य के सहकारी आन्दोलन मे सहकारिता के सघीय ढाँचे को अधिक सुदृढ बनाया जाये। सघीय समितियाँ प्राथमिक समितियो को मार्ग दर्शन दें, विभिन्न प्रकार की सलाह प्रदान करें तथा आर्थिक सहायता प्रदान करें। सभी प्रकार की समितियो मे उचित सघीय ढाँचा तयार हो जायेगा तो विकास तेज गति से होने लगेगा।

(१२) अन्य

राज्य के सहकारिता आन्दोलन के विकास के लिये निम्नलिखित सुझाव भी महत्त्वपूर्ण है

(i) कृषि विपणन समितियो मे किसानो को ही प्रवेश देना चाहिये। कृषि उपजो के व्यापारियो को सदस्यता मे नही लेना चाहिये क्योंकि ये व्यापारी कृषि विपणन समितियो के उद्देश्य को समाप्त कर देते है।

(ii) श्रमिक समिति मे किसी भी ठेकेदार को सदस्यता नही देनी चाहिये। ठेकेदारो को छोडकर अन्य अश्रमिक व्यक्तियो को सदस्यता मे प्रवेश की कुल सख्या के ५ प्रतिशत तक या अधिकतम ५ तक छूट दी जा सकती है।

(iii) यातायात सहकारियों मे श्रमिकों, चालकों और यान्त्रिकों तक ही सदस्यता को सीमित रखना चाहिये। जो व्यक्ति स्वय यातायात का व्यापार कर रहे हों उन्हे सदस्य नही बनाना चाहिये। यातायात सहकारी समितियों को आर्थिक सहायता सरकार द्वारा पर्याप्त मात्रा मे मिलनी चाहिये।

(iv) उपभोक्ता सहकारी समितियों मे उपभोक्ता वस्तुओ के व्यापारियों को सदस्यता मे नही लेना चाहिये। उपभोक्ता आन्दोलन तथा विपणन आन्दोलन मे कड़ा बन्धन होना चाहिये ताकि उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये संयुक्त प्रयत्न किये जा सकें।

(v) औद्योगिक समितियों की सदस्यता कारीगरों श्रमिकों तथा अन्य इस प्रकार के लोग, जो औद्योगिक समिति की निष्ठापूर्वक सेवा करने के इच्छुक हों, तक ही सीमित रखना चाहिये। स्वय उद्योग चलाने वाले व्यक्तियों को औद्योगिक समितियों मे नही लेना चाहिये।

उपरोक्त सुझावों को ध्यान में रखकर यदि विकास किया जायेगा तो निकट भविष्य मे आन्दोलन जनता की अनेक समस्याओं के निवारण मे महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकेगा। इससे निर्धन जनता अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कर सकेगी। कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य के क्षेत्र मे पर्याप्त उन्नति हो सकेगी। फलत राज्य की आय मे वृद्धि होगी। आशा है राज्य की चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे आन्दोलन को सशक्त बनाया जायेगा।

प्रश्न

१. राजस्थान मे सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति के क्या कारण है? आन्दोलन की सफलता के लिये सुझाव पेश कीजिये।

२. क्या राजस्थान मे सहकारी आन्दोलन सफल रहा है? यदि नही तो इसकी सफलता के लिये आप क्या सुझाव देते हैं?

३ राजस्थान के सहकारिता आन्दोलन की मुख्य-मुख्य समस्याओं का विवेचन कीजिये। इनके निराकरण के उपाय भी बताइये।

४ राजस्थान के सहकारी आन्दोलन मे क्या-क्या कमियाँ है? इन्हे दूर करने के उपाय बताइये।

तृतीय खण्ड

सामुदायिक विकास

१

सामुदायिक विकास का अर्थ
(Definition of Community Development)

सामुदायिक विकास जनता के सर्वांगीण विकास का नया कदम है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में मूलभूत परिवर्तन लाने की नवीन प्रवृति विकसित हुई है। विश्व के अनेक अल्पविकसित राष्ट्रों ने इस कार्यक्रम को अपनाया है। कुछ विद्वानों का विचार है कि सामुदायिक विकास एक पुरानी विचारधारा है किन्तु आवरण नया है। वास्तव में यह बात सत्य भी है। प्रत्येक पुराने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आधुनिकतम विधियाँ अपनानी उपयुक्त रहती हैं। सामुदायिक विकास भी ग्रामीण दशा सुधारने का एक नवीनतम तरीका है। विश्व के विभिन्न देशों, जैसे दक्षिण-पूर्वी एशिया, पश्चिमी एशिया, पश्चिमी अफ्रीका तथा मध्य अमेरिका के विभिन्न देशों ने इस आवरण को अपनाया है। कार्यक्रम का नाम विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है किन्तु वास्तविक अर्थ एक ही है। भारतवर्ष ने इस कार्यक्रम का सूत्रपात २ अक्तूबर, सन् १९५२ को किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के आर्थिक विकास कार्यक्रमों में ग्रामीण पुनर्संगठन (Rural Reconstruction) को उचित स्थान देना आवश्यक समझा गया। ग्राम्य जीवन को सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिये सामुदायिक विकास योजनायें चालू की हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने ग्रामोद्धार के महत्त्व को बहुत पहले ही अनुभव कर लिया था। उनकी विचारधारा को कार्यरूप में परिणित करने के लिये यह कार्यक्रम उनके जन्म दिन से प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण जनता की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दशा में सुधार करने का संकल्प किया गया। भारत के गाँवों की दशा इतनी गिरी हुई थी कि साधारण से प्रयत्नों से कोई विशेष सुधार करना कठिन था। ग्रामों में अनेकों लोग भूमि हीन थे अथवा छोटे आकार के खेतों वाले थे। बेरोजगारी एवं अर्ध बेरोजगारी बहुत बड़ी समस्या थी। अधिकांश लोग निर्धन थे। शिक्षा, स्वास्थ्य, रहन सहन खान पान का स्तर बहुत

निम्न था। ऐसी स्थिति मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण कदम है। यह कार्यक्रम ग्राम सुधार कायक्रमो मे सबसे अधिक प्रभावशाली है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम पर्याप्त आर्थिक साधनो, प्राविधिक ज्ञान, उचित अनुभव तथा ग्रामीण सहयोग की विचारधारा पर आधारित है। ग्रामीण जनता की आत्म-निर्भरता की तरफ यह एक उल्लेखनीय प्रयत्न है। इससे स्वस्थ एव सम्पन्न समाज का निर्माण हो सकेगा। अपने साधनो को सगठित करके ग्रामीण जनता देश के विकास मे अधिक से अधिक भाग ले सकेगी। सरकार आवश्यक सहायता, निर्देशन समय-समय पर देती रहेगी।

सामुदायिक विकास का अर्थ

सामुदायिक विकास ग्रामीण दशा सुधारने की एक नयी विधि है। पिछड़े हुए ग्रामीण समुदाय की सामाजिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक दशा सुधारने का ऐसा कार्यक्रम है जिसके माध्यम से राजकीय एव स्थानीय प्रयत्नो मे उचित समन्वय स्थापित किया जाता है। ग्रामीण जनता इस कायक्रम के द्वारा राष्ट्रीय जीवन से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकती है और देश के विकास मे सहयोग प्रदान कर सकती है। 'सामुदायिक विकास एक ऐसा सयुक्त प्रयास है जिससे स्थानीय जनता तथा सरकार मिलकर विकास कार्यो मे भाग लेते है। स्थानीय प्रयत्नो को इन कायक्रमो मे अधिक स्थान दिया जाता है और सरकार उचित मार्ग दर्शन एव सहायता प्रदान करती है। हमारे देश मे भी अन्य देशो की भाति सामुदायिक विकास का आधार स्वेच्छिक है जिसमे सरकार प्रशिक्षण, परामर्श, ऋण एव आर्थिक सहायता, औजार आदि की उचित व्यवस्था करती है। ग्रामीण जनता अपने स्थानीय साधन जैसे ग्रामो मे उपलब्ध सामान, श्रम भूमि तथा प्रबन्ध की व्यवस्था स्वय करती है। सामुदायिक विकास का अर्थ समझने के लिये विभिन्न परिभाषायो को देखना आवश्यक है। कुछ परिभाषाय निम्न प्रकार है —

इगलैण्ड मे कैम्ब्रिज मे हुए एक सम्मेलन मे सामुदायिक विकास की परिभाषा निम्न प्रकार दी गयी—"सामुदायिक विकास ऐसा आन्दोलन है जिसका उद्देश्य समुदाय की प्रेरणा शक्ति से सम्पूर्ण समाज को उच्चत्तर जीवन यापन की व्यवस्था करना है। यदि यह प्रेरणा शक्ति समुदाय की तरफ से नही आती है तो ऐसी विधियों का प्रयोग करके इसे बढावा देना जिससे यह आन्दोलन को सजग बना सके।"

सयुक्त राष्ट्र सघ के अनुसार, सामुदायिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे मिलकर, समुदायो के आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास के लिए, इनको राष्ट्रो के जीवन में लगाकर तथा उन्हे देश की उन्नति मे सहयोग प्रदान करने के लिये प्रयत्न करते है।

मलाया में हुए सम्मेलन मे सामुदायिक विकास को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया, "सामुदायिक विकास एक ऐसा आन्दोलन है जो समुदाय की प्रेरणा शक्ति और सहयोग से, सम्पूर्ण समुदाय के उच्चत्तर जीवन के प्रवर्तन के लिए चलाया जाता है।"

सामुदायिक विकास का अर्थ

श्री वी० टी० कृष्णमाचारी ने सामुदायिक विकास आन्दोलन को जन आन्दोलन बताया है। उनके अनुसार राष्ट्रीय सेवा आन्दोलन व्यक्तियो मे एक अच्छे जीवन-यापन तथा यह उनमे अपने ही प्रयत्नो द्वारा एवं पडोसियो की सहायता से, जीवन स्तर उन्नत करने की भावना पैदा करेगा।

एक अन्य परिभाषा निम्न प्रकार है—

सामुदायिक विकास सामाजिक कार्यक्रम है जिसमे समुदाय के व्यक्ति, आयोजन एवं कार्य करने, अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओ और समस्याओ को परिभाषित करने, आवश्यकताओ को पूर्ण करने के लिये समूह तथा व्यक्तिगत योजनायें तैयार करने तथा योजनाओ को कार्यरूप देने और यदि आवश्यकता पडे तो समुदाय से बाहर की (सरकारी तथा गैर-सरकारी) सहायता प्राप्त करने के लिये अपने आपको सगठित करते हैं।"

सामुदायिक विकास रूढ़िवादी विचार धाराओ को त्यागने की एक विधि है। यह ग्रामीण समुदाय के कल्याण के लिये कुछ निश्चित योजनाओ को कार्यरूप मे परिणित करने का कार्यक्रम है। इसके अन्तर्गत व्यक्तियो को अपने साधनो से विकास करने के लिए सहायता प्रदान की जाती है। भारतवर्ष मे सन १९५२ मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम चालू किये गये वे सघन-विकास क्षेत्रो के रूप मे थे। इन पूर्व निश्चित कार्यक्रमो को जनता के सहयोग से सरकार एक समूह के रूप मे एक साथ मिलकर चलाती है।

अत. स्पष्ट है कि सामुदायिक विकास ग्रामीण दशा सुधारने की एक नयी प्रक्रिया है। इसमे राजकीय एवं स्थानीय प्रयत्नो से पिछडे ग्रामीण समुदाय को सामाजिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक दशा सुधारने के प्रयत्न किये जाते हैं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की विशेषतायें

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताये हैं :—

(१) सामुदायिक विकास कार्यक्रम एक सयुक्त प्रयास है जो सरकार तथा स्थानीय व्यक्तियो द्वारा मिलकर किया जाता है। यह राजकीय सूत्रो और स्थानीय समुदाय मे समन्वय स्थापित करने की प्रक्रिया है। सामुदायिक विकास मे स्थानीय प्रयत्न साहस एवं साधनो को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। किन्तु आवश्यकता पडने पर ऐच्छिक आधार पर यह प्रयत्न किया जाता है कि सरकार से उचित परामर्श, मार्ग दर्शन एवं सहायता ली जाकर स्वयं समुदाय प्रगति की ओर अग्रसर हो।

(२) सामुदायिक विकास कार्यक्रम बहुत व्यापक है। ग्रामीण जनता के जीवन स्तर सुधारने तथा आय बढाने के लिये स्थानीय साधनो का अधिकतम विदोहन करना जिससे कृषि तथा इससे सम्बन्धित अन्य बाते ग्रामीण उद्योग, शिक्षा, सचार साधन, स्वास्थ्य, गृह व्यवस्था ग्राम कल्याण आदि की उचित प्रगति की जा सके।

(३) इस कार्यक्रम का आधार जनतान्त्रिक है। प्रबन्ध एवं सगठन मे ग्रामीण जनता का सक्रिय सहयोग होता है। विकास कार्य के प्रशासनिक अधिकार निम्न-

स्तर की संस्थाओ को सुपुर्द कर दिये जाते हैं । ये सस्थायें ग्राम स्तर पर पचायत, प्रखण्ड स्तर पर पचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद् हैं । इस जनतान्त्रिक आधार के अन्तर्गत कार्यक्रम के नियोजन तथा सचालन का दायित्व जन प्रतिनिधियो के हाथ मे होता है । सरकार का सम्बन्ध तो केवल परामर्श, देख-रेख तथा उच्च स्तरीय नियोजन तक है ।

(४) सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे पचायत सहकारी समिति, पाठशाला, आदि तीन सस्थाओ का उल्लेखनीय योगदान है । पचायत, ग्राम स्तर पर विकास कार्यो को सचालित करता है । सहकारी समिति आर्थिक मामलो को हाथ मे लेती है और पाठशाला सास्कृतिक कार्यक्रमो का सचालन करती है । तीनो प्रकार की सस्थायें इस कायक्रम का आधार हैं ।

(५) सामुदायिक विकास मे ग्रामीण स्तर पर ग्राम सेवक (V. L. W) होता है और खण्ड स्तर पर खण्ड विकास अधिकारी होता है । ये दोनो सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे बहुत महत्त्वपूर्ण है जिनकी कार्यकुशलता पर पूर्ण योजना आधारित होती हैं ।

(६) सामुदायिक विकास कार्यक्रम पहले तीन सोपान का था—राष्ट्रीय प्रसार सेवा, सघन (सामुदायिक विकास) तथा सघनोत्तर । किन्तु अप्रैल १९५८ के पश्चात् श्री बलवन्तराय मेहता समिति की सिफारिशो के आधार पर अब कार्यक्रम दो चरणो मे पूरा किया जाता है । पहले जब तीन सोपानो के अन्तर्गत कायक्रम चलता था तब पहला सोपान तीन वर्ष का था जिसमे चार लाख रुपये का बजट था । दूसरा भी तीन वर्ष का था जिसका खर्चा ८ लाख रुपये था और तृतीय सोपान मे प्रत्येक वर्ष सिर्फ तीस हजार रुपये ही व्यय किये जा सकते थे । किन्तु बाद मे दो सोपानो मे प्रथम पाच वर्ष का जिसमे बारह लाख रुपये रहते है और दूसरा भी पाँच वर्ष का होता है जिसमे पाँच लाख रुपये व्यय किये जाते हैं ।

(७) सामुदायिक विकास मे समुदाय की पूर्व आवश्यकताओ को ध्यान में रखकर नियोजित कायक्रम के आधार पर विकास किया जाता है ।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की सफलता की आवश्यक दशायें

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के विकास के लिये मुख्य-मुख्य सिद्धान्त निम्न लिखित है :—

(१) ग्रामीण जनता के साधनो से विकास :

सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे ग्रामीण जनता की क्षमता पर विश्वास किया जाना आवश्यक है । अल्प विकसित राष्ट्रो मे इस बात का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रो का विकास इनकी जनता के साधनो द्वारा किया जाना चाहिए । सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस विश्वास पर आधारित है कि ग्रामीण जनता मे उच्चतर जीवन प्राप्त करने की अपार शक्ति है यदि सरकार उचित परामर्श, निर्देशन एव सहयोग प्रदान करती है । ग्रामीण व्यक्ति, समुदाय के जीवन को स्वय बना सकते हैं । खाद्य सकट जैसी विकट समस्या के समाधान का एक मात्र उपाय ग्रामीण जनता की क्षमता पर निर्भर है । इस समुदाय की क्षमता को काम में लाने

के लिए सरकार उचित वातावरण तैयार कर सकता है किन्तु वास्तव मे विश्वास करने की उत्सुकता एव भावना जनता के दिलो दिमाग से आनी चाहिये । ग्रामीण क्षमता के विकास मे कई कठिनाइयाँ है जैसे अशिक्षा निघनता अस्वस्थता आदि । सामुदायिक विकास उन सभी समस्याओ का समाधान करके ग्रामीण क्षमता का उचित उपयोग करने मे सहायक सिद्ध हो सकती हैं । ग्रामीण जनता की काय शक्ति को बढाने के लिए सामुदायिक विकास कायक्रम द्वारा सास्कृतिक परिवर्तन नितान्त आवश्यक है । इससे जनता विकास करने की प्रेरणा ले सकती है । व्यक्ति अपने साधनो से तथा अपने प्रयत्नो से आगे बढने को उत्सुक होते हैं सहकारिता के आधार पर विकास करने की भावना जाग्रत होती है जिससे पूण समुदाय का विकास हो सके। अत ग्रामीण जनता की काय शक्ति मे अधिक विश्वास करके ही सामुदायिक विकास कायक्रम सफलता से चल सकते हैं ।

(२) जन सहयोग (People's Participation)

सामुदायिक विकास कार्यक्रम जनता का आन्दोलन है । ग्रामीण समुदाय के विकास मे जन सहयोग अत्यन्त आवश्यक है । जनता अपनी प्रगति के लिये विकास कायक्रमो मे पर्याप्त भाग लेकर ही आगे बढ सकती है । व्यक्ति अपने सम्मिलित साधनों एव प्रयत्नो से अपनी क्षमता एव आत्म निभरता का विकास कर सकते हैं । सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे केवल सरकारी सहायता की स्वीकृति से काय नहीं चल सकता है । इनकी सफलता समुदाय को लाखो व्यक्तियो के दिलो के सहयोग पर निर्भर है । अपने स्वय के सुधार एव विकास के लिए व्यक्ति कायक्रमो का सचालन स्वय करें तभी विकास सम्भव है । सरकार तो इन कार्यक्रमो मे एक आवेदक के रूप मे है । यह आन्दोलन अच्छे जीवन स्तर को बनाने के लिये आकाँक्षा उत्पन्न कर सकता है ।

योजनाओ के विभिन्न स्तरो पर विशेषत सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे जन सहयोग एक आधार है । इन कार्यक्रमो मे जन सहयोग के अनेक पहलू हो सकते हैं । प्रथम, ग्रामीण सस्थाओं गैर-सरकारी सस्थाओ, विशेषकर ग्राम पचायतो के—द्वारा जन सहयोग का उचित विदोहन हो सकता है । द्वितीय, सामुदायिक विकास कार्यो के लिए सहकारी सहायता स्थानीय साधनो को बढाने के लिये हो सकती है । तृतीय, जनता स्वय अपने श्रम, धन तथा सामग्री से आन्दोलन को सफल बनाये । चतुथ, विकास मे जनता नवीन पद्धतियो को अपनाये । पचम, स्थानीय उपक्रम तथा उचित नेतृत्व का विकास करके आन्दोलन को गति प्रदान की जाये । अन्तिम जनता की रूढिवादी विचारधारा मे परिवतन आये जिससे भविष्य के लिए भी आशाओ का जन्म हो ।

श्री बलवन्त राय मेहता समिति ने भी अपने प्रतिवेदन मे जन सहयोग के अर्थ को व्यापक बतलाया । समिति के अनुसार जन सहयोग का आशय केवल यही नहीं है कि लोग कायक्रम मे व्ययो का कुछ भाग नकदी अदा कर दें अथवा शारीरिक श्रम के रूप मे प्रदान करें बल्कि उन्हें यह जानकारी हो कि आन्दोलन उनका है सरकार तो केवल उनकी सहायता के लिए प्रयत्नशील है । केवल विशेषज्ञो, अधिकारियो आदि की सेवाओ से सफलता प्राप्त करना कठिन है । "जनता का उत्साह

एव दिल से सहयोग सामुदायिक विकास के नाटक मे मूल तत्व है।"[1] ग्रामीण क्षेत्रो मे विकास तभी सम्भव है जबकि वहां की जनता यह अनुभव करे कि देश के प्रबन्ध के लिये वह स्वय उत्तरदायी है। अतः सामुदायिक विकास मे जन सहयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्व है।

(३) लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण :

सामुदायिक विकास मे लोकतन्त्र मे विश्वास करना आवश्यक है। भारतवर्ष मे सामुदायिक विकास कायक्रमो मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को सन् १९५७ के पश्चात् श्री बलवतराय मेहता समिति की सिफारिशो के आधार पर अपनाया गया। इसके अतर्गत विकास कार्यों के प्रशासनिक अधिकार ऐसी सस्थाओ को सौंपा जाता है जिसमें जनता के प्रतिनिधि हो। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र के कार्यक्रम के नियोजन तथा सचालन का उत्तरदायित्व जनता के प्रतिनिधिओ के हाथ मे होता है। ये सस्थायें हैं—ग्राम स्तर पर ग्राम पचायत, खण्ड स्तर पर पचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद। लोकतन्त्रिक विकेन्द्रीकरण मे मनुष्य को अधिक महत्त्व दिया जाता है। उसकी व्यक्तिगत एव चुनाव की स्वतन्त्रता का आदर किया जाता है। हम वर्तमान समय मे एक तरफ लोकतन्त्र के निर्माण मे लगे हैं और उसी समय अल्प विकसित अर्थ व्यवस्था को विकास कर रहे है। ऐसी स्थिति मे बडी सख्या की जन-सख्या को लोकतन्त्र की जानकारी आवश्यक है। इसके अनेको लाभो मे सभी को भाग लेना चाहिये। लोकतन्त्र के निर्माण मे जिस प्रकार की शिक्षा विधियाँ अपनायी जाती हैं उसी प्रकार की विधियां सामुदायिक विकास मे प्रयोग मे लायी जानी चाहिए। सामुदायिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो कि स्थानीय सरकार के सुदृढ बनने के साथ-साथ व्यापक हो सकती है। इसमे जो कार्यक्रम हैं वे सभी स्थानीय प्रशासन के द्वारा सचालित करने से जनता अपने उत्तर-दायित्व को स्वय समझेगी और जो भी विकास काय होगा वह भी उनका अपना होगा। सामुदायिक विकास मे जनता का सहयोग तभी सम्भव है जबकि लोकतन्त्र को आधार माना जाये।

(४) वैज्ञानिक एव प्राविधिक विधियो का उपयोग :

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिये वैज्ञानिक एव प्राविधिक विधियों का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे आधुनिक विधियो एव उपकरणो का प्रयोग करने से तेज गति से विकास सम्भव है। ग्रामीण जनता सामान्यत आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन के लाभ नही उठा पाती है। अशिक्षा के कारण न तो जनता इस परिवर्तन के महत्त्व को समझती है और न ही किसी नयी विचारधारा को अपनाने को तैयार हो पाती है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम नवीन विधियो तथा वैज्ञानिक तरीको को काम मे लाने मे बहुत सहायक सिद्ध हो सकते है। इन कार्यक्रमो मे कृषि, कुटीर उद्योग, व्यापार आदि मे नवीन विधियो का उपयोग होता है जिसके महत्त्व को जनता अच्छी तरह

1. "The real enthusiasm and whole hearted Co-operation of the rural people are essential ingredients in the drama of Community Development" Rural Democracy & Community Participation - By Haripad R Subramonia Iyer

समझने लगती है। जनता के स्वास्थ्य, गृह व्यवस्था, यातायात एव सचार व्यवस्था, सिचाई, भूमि के कटाव को रोकना, पानी एव ईधन की पूर्ति आदि मे तकनीकी विधियो और वैज्ञानिक तरीको की आवश्यकता पडती है। किन्तु ग्रामीण जनता को ये विधियाँ तभी सहायक हो सकती है जबकि चतुराई से इनको अपनाया जाय। ग्रामीण जनता अनेक कारणो से नवीन विधियो एव उपकरणो का प्रयोग बहुत सीमित रूप मे कर पाती है। सामुदायिक विकास ही एक ऐसी प्रक्रिया है जो कि इन क्षत्रो की जनता के लिये विज्ञान और तकनीकी ज्ञान को उपयोगी बना सकती है।

(५) ग्रामीण जन समुदाय के विकास को महत्व

सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण समुदाय के विकास का कार्यक्रम है। भारतवर्ष मे अधिकाश जनता ग्रामो मे रहती है जो कि अशिक्षित है। ग्रामीण क्षेत्रो में आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक परिवर्तन लाना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य सामुदायिक विकास कायक्रमो द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। ग्रामीण जनता की क्षमता को कोई सीमा नही है यदि उसको सरकारी सहायता मिले तो देश का आर्थिक विकास तेज गति से हो सकता है। खाद्य सकट के निराकरण मे ग्रामीण जनता का सहयोग आवश्यक है। किन्तु समस्या के समाधान के लिये अनेको नवीन विधियो का प्रयोग करना पडता है तथा कई प्रकार की कृषि के लिये सुविधायें प्रदान करनी पडती है। सामुदायिक विकास इन कायक्रमो मे विशेष सहयोग दे सकता है। अत भारत के विकास के लिये ग्रामीण उत्थान आवश्यक है।

भारत वर्ष मे अब भी अधिकाश ग्रामीण जनता निर्धन, अशिक्षित, और अस्वस्थ है। इसकी स्थिति मे सुधार किये बिना देश की स्थिति नही सुधर सकती है। अत सामुदायिक विकास कायक्रमो मे ग्रामीण समुदाय के विकास को ही महत्त्व दिया गया है।

(६) नियोजित कार्यक्रम

किसी भी काय को प्रारम्भ करने से पूर्व उसके लिये क्रमबद्ध योजना बनाना उपयुक्त रहता है। ग्रामीण भागो मे सामुदायिक विकास मे जो कायक्रम निर्धारित किये जाते हैं वे क्रमबद्ध योजना पर आधारित होते हैं। योजना मे 'चुनाव' की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। व्यवहारिक रूप सम्पन्न हो सकने वाले सबसे आवश्यक कार्यो को प्राथमिकता दी जाती है। कार्यक्रम निर्धारण से पूर्व अनुभूत आवश्यकताओ पर विचार विमर्श किया जाता है फिर कार्य को नियोजित ढग से सम्पन्न किया जाता है।

(७) सामाजिक न्याय में विश्वास

सामुदायिक विकास कार्यक्रमो का सामाजिक न्याय मे विश्वास होना चाहिये। ग्रामीण जनता के सभी श्रेणियो मे इनसे सहायता मिलनी आवश्यक है। इन कार्यक्रमो के आधार पर कुछ ही व्यक्तियो ने यदि पर्याप्त लाभ उठा लिया तो उससे सामुदायिक विकास का उद्देश्य पूर्ण नही हो सकेगा। इन कार्यो मे कमजोर व्यक्ति के विकास की तरफ अधिक ध्यान देना चाहिये। यदि सामुदायिक विकास कार्यक्रमो से समाज के कुछ ही व्यक्तियो का कल्याण हो पाता है और ग्रामीण निधन जनता लाभ नही उठा पाती है जो सामाजिक न्याय नही हो सकता। अत सामाजिक न्याय भी एक आधारभूत मान्यता होनी चाहिये।

(८) बिभिन्न क्षेत्रों में उचित सामजस्य

सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे कई क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं, जैसे कृषि, पशुपालन, शिक्षा, स्वास्थ्य, समान सेवा, सहकारिता, रोजगार, सचार आदि। इन सभी के विकास के लिये उचित सामजस्य स्थापित करना आवश्यक है। सामजस्य स्थापित होने से विकास की गति तेज हो सकती है अन्यथा कई कठिनाइयो का सामना करना पडता है।

(९) सरकारी परामर्श एवं सहायता :

सामुदायिक विकास कार्यक्रम वैसे तो जनता का आन्दोलन है। समुदाय अपने अपने साधनो को सगठित करके प्रगति के लिये उचित प्रयत्न करते है किन्तु फिर भी सरकारी निर्देशन तथा कई प्रकार की सहायता की आवश्यकता पडती है। ग्रामीण समुदाय की अपार क्षमता को तभी काम मे लिया जा सकता है जबकि उचित आर्थिक एव तकनीकी सहायता अच्छी तरह से मिल सके। यह कार्य सरकार ही कर सकती है।

(१०) सहकारिता :

सामुदायिक विकास मे सहकारिता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सहकारी समितियों को पचायतो के साथ मिलजुलकर कार्य करना चाहिये। सहकारिता के आधार पर कई प्रकार के कार्यक्रमो को सम्पन्न कराया जाता है। गांवो मे कृषि एव कुटीर उद्योगो मे उत्पादन कायक्रम के लिये सहकारी समितियाँ सर्वोत्तम हैं। सहकारी भावना को सामुदायिक विकास मे बहुत महत्त्व दिया जाता है। सहकारी आन्दोलन तथा सामुदायिक विकास आन्दोलन दोनो मे निकट का सम्बन्ध है। दोनो के विकास मे एक दूसरे का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। उदाहरणत भारतवर्ष मे सहकारी आन्दोलन १९०४ मे प्रारम्भ हुआ और सामुदायिक विकास १९५२ मे। किन्तु सहकारिता का तेज गति से विकास सन् १९५२ के पश्चात् ही हुआ है क्योकि सामुदायिक विकास कायक्रमो को अपनाने के कारण सहकारिता का भी पर्याप्त विकास हुआ। अत दोनों का आपस मे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सामुदायिक विकास आन्दोलन की सफलता के लिये उक्त सभी सिद्धान्तो को ध्यान मे रखने की नितान्त आवश्यकता है।

सामुदायिक विकास के उद्देश्य
(Aims of Community Development)

सामुदायिक विकास का सबसे प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण समुदाय का सभी क्षेत्रो मे विकास करना है। समाज के आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक ढाँचे मे उचित परिवर्तन लाना आवश्यक है। भूख, बीमारी, अज्ञानता, निर्धनता आदि को दूर करने के लिये विकास कार्यक्रमो का सहारा लिया जाता है। सामुदायिक विकास कायक्रम का उद्देश्य प्रत्येक गांव की तथा ग्रामीण परिवार की सगठित एव बहुउद्देशीय योजना तैयार करने मे सहायता प्रदान करना है। ये योजनायें कृषि उत्पादन बढाने, वर्तमान ग्रामीण उद्योगों की सुधारने और नये सगठित करने स्वास्थ्य सुविधायें प्रदान करने बच्चो व प्रौढ शिक्षा व्यवस्थायें, मनोरजन सुविधायें और कार्यक्रम, गृह निर्माण,

परिवारो के रहने की दिशायें सुधारने के सम्बन्ध मे होती हैं। सामुदायिक विकास का मुख्य उद्देश्य इन योजनाओ को सफल बनाना है। इस उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(१) सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल उद्देश्य ग्राम जनता के सामान्य दृष्टिकोण को बदलना है। जब तक जनता उच्च जीवन स्तर के लिये आशा नही रखेगी तब तक जनता मे उत्साह नही आ सकेगा। यदि जनता इस कार्यक्रम को अपना मान कर चलेगी तो उचित नेतृत्व भी मिल पायेगा और पर्याप्त विकास भी हो सकेगा। इसलिये जनता के रूढीवादी एव पुराने दृष्टिकोण मे उचित परिवर्तन आवश्यक है।

(२) द्वितीय उद्देश्य है ग्रामीण क्षेत्रो मे उत्तरदायी नेतृत्व का विकास करना। उचित नेतृत्व होने से ग्रामो का उचित विकास हो सकेगा। ग्रामो मे निरन्तर नियोजन और विकास कार्यक्रम ग्राम के सगठनो द्वारा बनाये जाने चाहिये। यदि नेतृत्व अच्छा है तब तो ये नियोजन के लिये निर्धारित कायक्रम विकास मे पर्याप्त सहायता कर सकेंगे अन्यथा नही। ग्रामीण सगठन जैसे पचायत, सहकारी समितियां, युवक मण्डल, स्त्रियो के सगठन, किसानो के सघ, मनोरजन क्लब, ग्राम विकास परिषद् आदि नियोजन एव विकास का कार्यक्रम उत्तरदायित्व से निभाने का प्रयत्न करें तभी विकास हो सकता है।

(३) आन्दोलन का उद्देश्य यह भी है कि ग्रामीण जनता को आत्म निर्भर बनाया जाये। ग्राम्य जनता की उन्नति से उत्तरदायी व्यक्तियो का निर्माण होता है जो कि कुशलता पूर्वक देश के विकास मे भागीदार हो सकते है।

(४) ग्रामीण जनता को अधिक एव अच्छा भोजन, कपडा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवायें, सडकें, कुँए, मनोरजन आदि सामुदायिक विकास का केन्द्रीय उद्देश्य है। ग्रामीण समुदाय की आय बढाने के लिये पर्याप्त प्रयत्न किये जाते हैं। प्रथम प्रयत्न कृषि उत्पादन बढाने के लिये नवीन कृषि विधियां, उन्नत बीज, खाद, आधुनिक उपकरण आदि के उपयोग पर जोर देता है। ग्रामीण उद्योगो के विकास की तरफ पर्याप्त ध्यान देना भी महत्त्वपूण है जिससे ग्राम जनता को अधिक रोजगार की सुविधायें हो सकती हैं।

(५) सामुदायिक विकास का यह भी उद्देश्य है कि ग्रामीण युवको को उचित प्रशिक्षण दिया जाये ताकि वे अपने समुदाय के विकास के अपने उत्तरदायित्व को समझ सकें। इसके लिये यह आवश्यक है कि युवका को शीघ्र एव लगातार विकास कार्यों में सलग्न रखा जाये।

(६) ग्रामीण समुदाय के जीवन स्तर मे पर्याप्त सुधार करना आवश्यक है। जीवन स्तर मे सुधार लाने के लिये शिक्षा की व्यवस्था, सामान्य सुविधाओ की व्यवस्था काल मे वृद्धि आवश्य है। विभिन्न कार्यक्रमो से जो कि सामुदायिक विकास के अन्तर्गत हैं इन सुविधाओ की व्यवस्था की जाती है। अत सामुदायिक विकास का उद्देश्य जीवन स्तर मे सुधार करना भी है।

(७) विकास कार्यक्रमो का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रो की सास्कृतिक विचारधारा मे भी पर्याप्त परिवर्तन करना भी है। शिक्षा के विकास तथा अन्य परिस्थितियो के

कारण शहरी जनता की सस्कृति मे तो परिवर्तन आ जाता है किन्तु ग्राम्य समुदाय की सस्कृति मे परिवर्तन नही आ पाता है। देश के विकास के लिये सास्कृतिक विकास भी आवश्यक है। इसके लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम बहुत सहायक सिद्ध हुये हैं। इन कार्यक्रमो के माध्यम से ग्रामीण पाठशालाओ और अध्यापको का सहयोग लिया जाता है। ग्रामीण अध्यापक इन लोगो मे सामाजिक शिक्षक हो सकता है जो कि ग्राम्य विकास में बहुत सहायक है।

(८) सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण जनता को बीमारी से छुटकारा दिलाते हैं। इनके माध्यम से जनता को बीमारियो के कारण समझाये जाते है। ग्रामो मे सफाई व्यवस्था तथा उचित स्वास्थ्य सुविधाये की जाती है।

(९) देश की खाद्य समस्या का समाधान ग्रामीण क्षेत्रो मे विकास करके ही किया जा सकता है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम कृषि उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि करने में मदद करते है जिससे देश की तेज गति से बढने वाली जनता को भोजन प्रदान किया जा सकता है।

अत स्पष्ट है कि ग्रामीण भारत का निर्माण इन कार्यक्रमो पर आधारित है। ग्राम्य समुदाय का सर्वांगीण विकास इनका मुख्य ध्येय है। सामुदायिक योजना एक आन्दोलन है जो कि सुप्त जनसमूह मे नयी चेतना तथा नवीन आशाओ का सचार कर रहा है। हमारे देश मे सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओ को सुलझाने का एक नया रास्ता सुझाया गया है। ग्रामो मे स्थानीय प्ररणा शक्ति, उत्तरदायित्व, सहकारिता का उदय हुआ है।

सामुदायिक विकास का स्थान
(The Role of Community Development)

सामुदायिक विकास का देश के सर्वांगीण विकास मे उल्लेखनीय स्थान है। देश की सामाजिक, सास्कृतिक एव आर्थिक समस्याओ के सामाधान के लिये यह कार्य क्रम सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसके अन्तगत किये गये कार्यों मे बहुत अच्छे परिणाम निकलते हैं जैसे कृषि उत्पादन मे वृद्धि, लघु सिचाई व्यवस्था, कुओ का निर्माण, सफाई, शिक्षा का प्रसार, ग्रामीण उद्योगो का विकास सहकारी समितियो की प्रगति, शिशु कल्याण योजनायें, पशु विकास, सडक निर्माण, स्वास्थ्य केन्द्रो की स्थापना आदि। सामुदायिक विकास का मुख्य लक्ष्य सहयोग एव सदभावना उत्पन्न करना है।

अल्प विकसित राष्ट्रो मे सामाजिक एव वैज्ञानिक उन्नति नही हो पायी है। विश्व मे वतमान समय मे वैज्ञानिक एव प्रविधिक क्षेत्र मे बहुत उन्नति हो चुकी है। ससार की आधी जनता को इससे बहुत लाभ पहुँचा है। उसके जीवन स्तर उत्पादन तथा आय मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। किन्तु भारत में अन्य विकासशील राष्ट्रों की भाँति तकनीकी युग के पर्याप्त लाभ नही मिल पाये हैं। लगभग आधे विश्व मे जनसख्या की वृद्धि के अनुपात मे खाद्यान्नों का उत्पादन नही बढ रहा है। अत खाद्य समस्या विकट होती जा रही है। भारतवर्ष मे भी अनेक कारणो से खाद्य सकट एक गम्भीर समस्या है। इसके निराकरण के लिये विश्व के अन्य देशो पर निर्भर रहना पडता है। ऐसी स्थिति मे सामुदायिक विकास का महत्व बहुत बढ जाता है। ग्रामीण भारत

का इसके आधार पर विकास करके खाद्य समस्या का समाधान किया जा सकता है। वर्तमान युग में तकनीकी प्रगति से होने वाले लाभों को अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। इससे ग्रामीण जनता के जीवन स्तर में वृद्धि होगी और सम्पन्न समाज का निर्माण हो सकेगा।

भारतवर्ष में सामुदायिक विकास गान्धीजी की विचार धारा पर आधारित है। ग्रामीण जनता की अपार कार्य क्षमता का उचित विकास सामुदायिक विकास के माध्यम से किया जा सकता है। यदि इस क्षमता का पूर्ण उपयोग हो जाता है तो देश का खाद्य संकट दूर हो सकता है और देश पर्याप्त उन्नति कर सकता है। निर्धनता को समाप्त किया जा सकता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो कि पुराने विचारों व विधियों पर आधारित है, नया मोड़ देना आवश्यक है। आर्थिक क्षेत्र में मूल भूत परिवर्तन होने से ग्रामों का सर्वांगीण विकास सम्भव है। यह सब सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के माध्यम से करना सर्वाधिक उपयुक्त है।

ग्रामीण जनता को आत्म निर्भर बनाने में सामुदायिक विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि उद्योग तथा व्यापारिक गतिविधियों का पर्याप्त विकास करके ग्रामीण क्षेत्रों की आय में वृद्धि की जा सकती है। उससे रोजगार में भी पर्याप्त वृद्धि सम्भव हो जाती है। ग्रामीण स्थायी दायित्वों को सम्पत्ति में बदला जा सकता है। आत्म निर्भरता प्राप्त हो जाने से देश सम्पन्न होता है। अतः सामुदायिक विकास एक सम्पन्न समाज बनाने की सर्वोत्तम प्रक्रिया है।

सामुदायिक विकास सांस्कृतिक विकास में बहुत उपयोगी है। ग्रामीण पाठशालाओं के माध्यम से अनेकों सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रारम्भ किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाता है। समाज में आगे बढ़ने की भावना जागृत होती है। मनोरंजन गतिविधियों में भी पर्याप्त वृद्धि सम्भव हो सकती है।

सामुदायिक विकास के आन्दोलन ने ग्रामीण स्तर पर किसानों और तकनीकी सलाह सेवाओं में पर्याप्त सम्पर्क स्थापित करने में सहायता की है। कृषि क्षेत्र में विकास के लिये निरन्तर सहयोग मिलता रहता है। आधुनिक वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग में इस आन्दोलन ने बहुत सहायता की है। कृषि क्षेत्र में आजकल अधिक मात्रा में खाद दी जा रही है। नवीन उपकरण तथा उन्नत बीज काम में लाये जा रहे हैं। सघन कृषि कार्य-क्रम कृषि नीति में बहुत महत्वपूर्ण है जिसकी सफलता सामुदायिक विकास एवं सहकारिता पर आधारित है। ग्रामीण जनता विशेषकर किसानों को सामुदायिक विकास कार्य-क्रमों में नवीन विधियां तथा तकनीकी ज्ञान की जानकारी प्रदान की जाती है और सहायता भी प्रदान की जाती है।

भारतवर्ष में अन्य अविकसित जनसंख्या वाले देशों की भांति मनुष्य शक्ति सबसे बड़ी सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति का उचित उपयोग कई कारणों से नहीं हो पाता है। अशिक्षा एवं धनाभाव में उत्पादन की नवीन विधियों को काम में नहीं लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनेक समस्याएं ऐसी हैं जिनके कारण बेरोजगारी की समस्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है। इस समस्या का समाधान सामुदायिक विकास कार्य-क्रमों का विस्तार करके ही किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में

कृषि तथा छोटे उद्योगो का अधिक विकास करके अधिक व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है। इन क्षेत्रों मे कृषि ग्रामीण उद्योग, व्यापार यातायात आदि क्षत्रो मे पर्याप्त प्रगति करने से उत्पादन मे वृद्धि होती है जिससे अधिक आय होती है। इस आय को जब पुन विनियोजित किया जाता है तो अधिक रोजगार प्राप्त होता है इस प्रकार क चक्र निरन्तर चलने से ग्रामा मे वेरोजगारी की समस्या बिलकुल ही समाप्त हो सकती है। रोजगार मिलन के अतिरिक्त सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के माध्यम से श्रमिका तथा किसाना की उत्पादकता म भी वृद्धि की जा सकती है।

किसी भी देश के विकास के लिये यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रों मे उत्पादकता (Producuvitv) म पर्याप्त वृद्धि हो। यदि ग्रामों म प्राचीन विधियो को काम में लाया जाता है और अपूर्व साधनों से विकास किया जाता है तो उत्पादकता असम्भव है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम सभी क्षेत्रा मे उत्पादकता बढाने मे मदद करता है। उदाहरणत कृषि के क्षेत्र मे उत्पादकता बढाने के लिये विभिन्न कार्यक्रमो म नवीन वैज्ञानिक विधियो का प्रयोग उन्नत बीज खाद आधुनिक उपकरण काम मे लाये जाते हैं जिससे प्रति एकड उपज मे पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार ग्रामीण उद्योगों मे नवीन विधियों को काम मे लाकर उत्पादकता म वृद्धि की जा सकती है। इसमे कम कीमत पर अधिक उत्पादन होता है जिससे किसाना तथा श्रमिको की आय बढती है सम्पनता म वृद्धि होती है।

सामुदायिक विकास भोजन के सम्बन्ध मे उचित सुझाव पेश कर सकता है। सयुक्तराष्ट्र सघ न भी अपन व्यवहारिक खाद्य कार्यक्रम के माध्यम से भोजन के स्तर को सुधारन के प्रयत्न प्रारम्भ किये हैं। सामुदायिक विकास म यह कार्यक्रम अच्छी तरह से चालू किया जा सकता है। सामुदायिक विकास सेवक ग्रामीण जनता को उचित भोजन की शिक्षा प्रदान कर सकता है। अच्छे स्वास्थ्य के लिये किस प्रकार के भोजन की आवश्यकता है इसकी जानकारी देने से किसाना का स्वास्थ्य अच्छा हो सकता है। विकास कार्यक्रमा के माध्यम से अच्छे भोजन बनाने की विधियो की शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

आजकल ग्रामीण क्षेत्रो मे परिवार नियोजन के विस्तार की बडी भारी आवश्यकता है। ग्राम सेवक इसम बहुत मदद कर सकते हैं। ये जनता को परिवार नियोजन के उद्देश्या तथा लाभा को भली प्रकार समझा सकते हैं। जनसख्या समस्या समाधान में परिवार नियोजन बहुत आवश्यक कार्यक्रम हो गया है अत सामुदायिक विकास के द्वारा इसे सफल बनाना आवश्यक है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामुदायिक विकास ग्रामीण जनता के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के प्रत्येक क्षत्र म विकास के लिये उपयुक्त भूमिका अदा कर सकता है। ग्रामीण ढांचे मे मूलभूत परिवर्तन लाना इसका प्रमुख उद्देश्य है। इससे देश की आय मे वृद्धि हो सकेगी और अधिक पूँजी का निर्माण हो सकेगा। फलत अधिक व्यक्तियो को रोजगार की सुविधायें मिलने लगेगी। देश आत्म निर्भर हो सकेगा। निर्धनता समाप्त हो जायेगी और सर्वांगीण विकास होने लगेगा।

सामुदायिक विकास की सीमायें
(Limitations of Community Development)

भारतवर्ष में सामुदायिक विकास की कुछ सीमायें हैं जिसके कारण अधिक उन्नति नही हो पायी। ग्रामीण जनता को शिक्षित बनाना तथा उन्हें नवीन विचारधारा से अवगत करना अत्यन्त कठिन कार्य है। कार्य के नवीन ढग अपनाना और दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाना एक लम्बी अवधि की प्रक्रिया है। अधिकांश जनता किसी भी परिवर्तन को लाने मे विश्वास नही कर पाती है। रूढीवादी विचारधारा तथा सामाजिक रीति रिवाज वही है जो सैकडो वर्ष पूर्व थे। इस स्थिति मे सामुदायिक विकास एक सीमित क्षेत्र तक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे जन सहयोग का अभाव रहा है जिसके कारण निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति नही हो सकी। जनता आन्दोलन के महत्त्व को अभी तक नही समझ पायी है। वह आन्दोलन को अपना आन्दोलन न समझकर सरकारी आन्दोलन समझती है। इस विचारधारा से जो सामुदायिक विकास का प्रमुख उद्देश्य है वह समाप्त हो जाता है। आन्दोलन की सीमित सफलता का कारण जनता अभी तक अपने उत्तरदायित्व को नही समझ पायी है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम देश की सभी समस्याओ का समाधान नही कर सकता है। यह एक विधि मात्र है जिसके माध्यम से सरकारी सहायता प्राप्त करके ग्रामीण क्षेत्रो का विकास किया जा सकता है। अभी तक भारतवर्ष मे सरकारी सहायता भी पर्याप्त मात्रा मे नही मिल पायी है। इन कार्यक्रमो को चलाने के लिये पर्याप्त कर्मचारियों का अभाव रहता है अत सभी क्षेत्रो मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम अच्छी तरह से नही अपनाये जा सके हैं।

ग्रामीण विकास के लिये वित्तीय साधनो की आवश्यकता पडती है। अधिकांश किसान निधन है। सरकार की तरफ से अधिक से अधिक वित्तीय सहायता की आशा की जाती है। वास्तव मे देखा जाये तो आन्दोलन का प्रारम्भ ग्रामीण साधनो को बडी मात्रा मे सगठित करके विकास करने के लक्ष्य पर आधारित था किन्तु यह अनेक कारणो से सरकार पर निर्भर रहने लगा है।

सामुदायिक विकास मे विशेषज्ञो की सेवाओ तथा पूरे कार्यक्रम को प्रशासन के ढांचे मे लाने की बहुत बडी आवश्यकता है। व्यवहार मे यह समस्या बडी कठिन है। कार्यक्रम के विभिन्न क्षेत्रो मे उचित समन्वय भी नही है।

भारतवर्ष मे ग्रामीण क्षेत्रो मे अभी तक प्रगतिशील नेतृत्व नही मिल पाया है। उचित नेतृत्व के अभाव मे ग्रामीण समस्याओ का समाधान नही हो पाता है। ग्रामो मे आपसी फूट, जातिवाद की भावना, निर्धनता, अशिक्षा आदि अनेक बाधायें सामुदायिक विकास के क्षेत्र को सीमित बनाये हुये हैं।

प्रश्न

१. सामुदायिक विकास से आप क्या समझते हैं ? इसके क्या उद्देश्य हैं ?

२. सामुदायिक विकास कार्य-क्रम का अर्थ स्पष्ट करते हुये इसकी विशेषताओं की व्याख्या कीजिये ।

३. सामुदायिक विकास कार्य-क्रमो की सफलता की कौन-कौन सी आवश्यक दशायें है ?

४. सामुदायिक विकास का स्थान निर्धारित करते हुये इसकी सीमाओ की व्याख्या कीजिये ।

२

भारत में सामुदायिक विकास की उत्पत्ति एवं विकास

इंगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व विश्व मे ग्राम, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन की प्रमुख इकाई था। उस समय लोगो की आवश्यकतायें सीमित थी। स्वावलम्बन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार भूत तत्व था। ग्रामीण जीवन अत्यन्त सरल एव अच्छा था। किन्तु मशीनी-युग के आगमन से विश्व के ग्रामीण जीवन मे एक नया मोड आया। ग्राम्य जीवन अस्त व्यस्त होने लगा। जनता का निरन्तर शोषण एक मुख्य विशेषता बन गयी। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का स्वावलम्बन प्राय नष्ट हो गया। आर्थिक सतुलन विगड गया जिससे व्यक्ति निर्धन होने लगे। बेकारी बढने लगी। भारतवर्ष मे ब्रिटिश शासन काल मे ग्रामीण उद्योगो की स्थिति बहुत खराब हो गयी। ग्राम केवल कच्चा माल उत्पन्न करने वाला स्थान बन गया। कृषि की भी अवनति हुई। गाँव का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन छिन्न-भिन्न हो गया। अधिकाश जनता निर्धन हो गयी। अग्रेजो के अत्याचार भी बहुत बढ चुके थे। व्यक्तियो का नैतिक पतन होने लगा।

इस स्थिति मे एक नवीन चेतना आनी स्वाभाविक थी। प्राय यह निश्चित है प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। ब्रिटिश शासन के अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध लहरें उठने लगी। भूखी, नगी और पीडित जनता की पुकार राष्ट्रीय नेताओ ने सुनी। फलत ग्रामीण समस्याओ को सोचने के लिये बाध्य होना पडा। भारत के महान नेता महात्मा गान्धी ने सबसे पहले ग्रामोद्धार का नारा लगाया उन्होंने आवाज बुलन्द की कि तब तक स्वराज निरथक है जब तक भारतीय ग्रामो मे नया जीवन और नयी चेतना जागृत नही हो जाती। गान्धी जी ने ग्रामोत्थान के लिये एक विस्तृत कार्य-क्रम तैयार किया। उन्होने कहा साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोद्योग की उन्नति, खादी प्रचार, शिक्षा प्रसार, सफाई, मातृभाषा के प्रति प्रेम, पिछडी जातियो का उत्थान, आर्थिक समानता, किसान, मजदूर तथा विद्यार्थियो मे सगठन आदि ग्राम-विकास के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम हैं।

गान्धी जी के अतिरिक्त सन् १६२१ मे रविन्द्रनाथ ठाकुर ने भी ग्राम-पुनरुत्थान कायक्रम चालू किया। उन्होंने वीर भूमि जिले मे श्री निकेतन नामक स्थान पर प्रयोग प्रारम्भ किया। इस योजना के अन्तर्गत ग्राम्य जीवन को आत्म निर्भर बनाना, आर्थिक, शारीरिक तथा बौद्धिक विकास के नवीन प्रयत्न करना आदि कार्यक्रम रखे गये थे। महाकवि ने कालीग्राम परगना के आठ ग्रामो मे पुर्ननिर्माण केन्द्र स्थापित करवाये। पुर्ननिर्माण कार्य-क्रम के अन्तर्गत सफाई, शिक्षा, मलेरिया निवारण पीने के पानी का प्रबन्ध, भयकर बीमारियो की रोकथाम, बाल मृत्यु रोकना, बाढ व अकाल से रक्षा, सहकारिकता का विकास आदि बाते सम्मिलित की गयी। इस समय मिल जुल कर कार्य करने की भावना जागृत करने, ग्राम नेतृत्व विकसित करने आदि के प्रयत्न किये गये। सहकारी समितियो का विकास किया गया। स्त्रियो को खाना बनाना, कसीदा काढने, सिलाई आदि सिखाने, उनकी शिक्षा आदि की व्यवस्था की गयी। महाकवि के ये प्रयत्न सीमित क्षेत्र के लिये थे किन्तु अत्यन्त व्यवहारिक थे। इनके कार्य क्रम मे राजकीय सहायता नही मिली अत आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक खोज का अभाव रहा।

इस काल मे देश के अन्य भागो मे सुधारवादी प्रयत्न चालू किये गये। केरल राज्य मे मार्तंडम् मे ग्रामीण सुधार को योजना प्रारम्भ की गयी। ग्रामो मे युवको का सगठन हुआ। डा० स्पेन्सर हैच इस कार्य क्रम मे आग्रगामी थे। उन्होने आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक दृष्टिकोण से समाज को समृद्ध बनाने की योजना दी थी। इनके अलावा श्री एफ० एल० ब्रेन ने गुडगाँव मे ग्राम सुधार का प्रयत्न किया। श्री ब्रेन ने अपनी योजना के अन्तर्गत ग्रामीण भागो मे खाद के गड्ढे बनाना, कृषि के नवीन उपकरणो का उपयोग, उन्नत बीज का उपयोग, सफाई, कुँए बनाना तथा स्त्री शिक्षा पर विशेष जोर दिया। किन्तु जन सहयोग के आभाव मे ये प्रयत्न भी सफल साबित नही हुये।

भारतवर्ष मे ब्रिटिश शासन काल सन् १९३७ मे कुछ प्रदेशा मे काग्रेस मन्त्री मण्डल स्थापित हुये। इनमे ग्राम सुधार के लिये व्यवस्था की गयी। उत्तर प्रदेश एव बिहार मे ग्राम विकास आयुक्त रखे गये। इस समय सामुदायिक सगठन तथा सहकारी प्रयत्नो पर अधिक जोर दिया गया। मद्रास मे भी एक इसी प्रकार का प्रयास किया गया। इसे फिरका विकास योजना कहा जाता है। ग्रामीण जनता को सुखी एव समृद्धिशाली बनाने का इस कार्यक्रम मे प्रमुख उद्देश्य रखा गया। स्थानीय प्रेरणा शक्ति एव साधनो का अधिकतम उपयोग करने के लिये सहकारिता को आधार बनाया गया। इस योजना मे फिरका एक इकाई मानी गयी और प्रत्येक फिरके मे २५ से ३० तक गाँव सम्मिलित किये गये थे। फिरको मे गहन विकास कायक्रम अपनाये जाने लगे। सन् १६४६ मे ३४ फिरको मे सघन विकास के प्रयत्न किये गये तथा सन् १९५० मे ५० अन्य फिरको मे योजना कार्यान्वित की गयी। इस कार्यक्रम के लिये प्रान्तीय स्तर पर विकास फिरका बोर्ड बनाया गया जिसके सदस्य प्रान्त के सभी विकास विभागो के प्रधान थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् १९४८ मे इटावा जिले के महोवा नामक स्थान मे एक अग्र-विकास योजना चालू की गयी। यह योजना एलवर्ट मेयर नामक अमरीकी विद्वान की प्रेरणा से कार्यान्वित की गयी। कार्य क्रम मे तीन अमरीकी तथा

६ भारतीय विशेषज्ञ सम्मिलित किये गये। ये व्यक्ति प्रशासन, सहकारिता, कृषि, ग्राम एवं नगर परियोजना का कार्य भार सम्भालते थे। विकास कार्यों में शिक्षा, सफाई, भूमि सुधार कृषि विकास महत्त्वपूर्ण थे। इटावा अग्र योजना को सफलता मिली। इस समय भी ग्रामीण जनता का पर्याप्त सहयोग नहीं मिल सका और स्थानीय नेतृत्व भी अच्छा नहीं मिला।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात नीलोखेडी योजना सामुदायिक विकास में उल्लेखनीय प्रयत्न है। दिल्ली के निकट नीलोखेडी में कुछ शरणार्थी बसाये गये। यहाँ गाँव के आस-पास दलदली भूमि तथा जगल था। यहाँ एक स्वावलम्बी बस्ती बसायी गयी। नीलोखेडी योजना श्री सुरेन्द्र कुमार दे के नेतृत्व में थी। बस्ती के लोगों ने भूमि सुधार कर कृषि प्रारम्भ की। कुछ लोगों ने श्रमिक सहकारी समितियाँ बनायी। छोटे एवं कुटीर उद्योगों का भी विकास किया गया। दलदली भूमि में से ७५० एकड भूमि साफ करके खेती की व्यवस्था की गयी तथा इसमें सिंचाई के साधन जुटाये गये। खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई। फल तथा सब्जियाँ चारों तरफ होने लगी। शिक्षा का विकास हुआ जिसमें कृषि को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया। स्कूल में सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे। चिकित्सा व्यवस्था के अन्तर्गत एक छोटा अस्पताल भी खुला। सहकारिता का पर्याप्त विकास किया गया। बस्ती में एक औद्योगिक पाठशाला खोली गयी जिसमें लुहार एवं बढई का काम सिखाया जाने लगा। रेडियो, ट्रैक्टर, छपाई, बिजली का काम तथा कला का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था हुई।

उपरोक्त योजनाओं के अतिरिक्त दिल्ली के निकट फरीदाबाद में भी इसी प्रकार की योजना चालू की गयी। यह भी शरणार्थियों के पुनर्वास बस्ती में थी। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की यहाँ व्यवस्था की गयी। खाद्यानों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र में भी विकास प्रारम्भ किया गया।

सामुदायिक विकास के लिये ऊपर के सभी प्रयास महत्त्वपूर्ण अवश्य थे किन्तु सम्पूर्ण देश के विकास के लिये एक आन्दोलन का रूप नहीं था। इस स्थिति में सरकार का इस ध्यान तरफ गया। सन् १९४९ में वित्त आयोग स्थापित हुआ जिसने प्रसार सेवा की आवश्यकता पर बल दिया। इस समय देश में अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था। आन्दोलन के काम की जाँच करने के लिये खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय ने सन् १९५२ में एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने वित्त आयोग को प्रसार कार्य की सिफारिश को आगे बढाया।

'अधिक अन्न उपजाओ' समिति की सिफारिश

इस समिति ने सुझाव दिया कि प्रसार कार्य के लिये तालुका या तहसील सबसे छोटी प्रशासकीय इकाई होनी चाहिये। विकास खण्डों में सौ से एक सौ बीस ग्राम सम्मिलित किये जा सकते हैं जिनमें एक प्रसार अधिकारी होगा। प्रसार अधिकारियों को कृषि पशुपालन तथा सहकारिता के कर्मचारियों से सहायता मिलेगी। समिति ने सिफारिश की कि ग्रामीण जीवन के प्रत्येक पहलू में पर्याप्त सुधार करना राष्ट्रीय प्रसार सेवा का मूलभूत उद्देश्य होना चाहिये। आन्दोलन के मुख्य दो सिद्धान्त हैं—

(१) सुधार के प्रयत्नों में प्रेरणा-शक्ति जनता की तरफ से होनी चाहिये। सरकार तो आवश्यकता पडने पर परामर्श और आर्थिक सहायता प्रदान कर सकती है।

अपार ग्रामीण शक्ति जिसका कोई उपयोग नयी हो पा रहा है, देश के विकास मे काम मे लाना चाहिये।

(२) ग्रामीण जीवन की सभी आर्थिक समस्याओ को सहकारिता के आधार पर सुलझाना चाहिये।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सयुक्त राष्ट्र सघ की सहायता योजना से सहायता मिलने लगी। अल्प विकसित राष्ट्रो के सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिये सन् १९५१ मे दक्षिण एव दक्षिणी पूर्वी एशिया मे सामुदायिक कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये। इसके अतिरिक्त अमरीका ने विकासशील राष्ट्रो को भी सहायता देनी प्रारम्भ की। भारतवर्ष को भी ग्राम्य विकास कार्यक्रमो के लिये सहायता मिली।

भारतवर्ष मे सन् १९५१ से नियोजित आर्थिक विकास आरम्भ हुआ। प्रथम पचवर्षीय योजना के अनुसार सामुदायिक विकास एक विधि है, ग्रामीण प्रसार का एक रास्ता है, जिसमे आर्थिक नियोजन ग्रामीण सामाजिक और आर्थिक जीवन को बदलने का कार्य प्रारम्भ किया जायेगा। प्रथम योजना मे देश के कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने यातायात की सुविधाये, शिक्षा, ग्राम स्वास्थ्य और सफाई पर ध्यान देने का उद्देश्य निर्धारित किया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामो का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन उन्नत करने के लिये सास्कृतिक परिवर्तन कार्यारम्भ करना भी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था। इनकी प्राप्ति के लिये बडे आकार के तथा सुव्यवस्थित कार्यक्रम की तरफ ध्यान गया और सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया।

सामुदायिक विकास का आरम्भ

भारत मे सामुदायिक विकास के सगठित कायक्रम का सूत्रपात २ अक्तूबर सन् १९५२ को चुने हुए ५५ योजना केन्द्रो से प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक केन्द्र मे ५०० वर्गमील क्षेत्र सम्मिलित किया गया तथा प्रत्येक मे ३०० ग्राम और जनसख्या दो लाख थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण विकास के कायक्रमो मे सुधार एव विस्तार के लिय चालू किया गया था। सन् १९५३ मे राष्ट्रीय प्रसार सेवा कार्य प्रारम्भ किया गया। देशो मे सामुदायिक विकास से जनता की प्रतिक्रिया जानने के लिये अग्र योजनायें (Pilot Schemes) शुरू की गयी। इन योजनाओ मे कृषि सुधार, खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि करने पर अधिक बल दिया था। इनके अतिरिक्त सामाजिक शिक्षा, जन स्वास्थ्य तथा सावजनिक निर्माण कार्यो पर भी पयाप्त ध्यान दिया गया।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे जो ५५ योजनायें चालू की गयी उनमे प्रत्येक योजना मे तीन विकास खण्ड थे। प्रत्येक विकास खण्ड मे लगभग १०० ग्राम सम्मिलित किये गय। खण्ड को पुन ५से १० तक के ग्रामो के समूह मे विभाजित किया गया। इन समूहो मे ग्राम सेवक नियुक्त किये गये।

राष्ट्रीय प्रसार सेवा

सामुदायिक विकास प्रारम्भ होने पर राष्ट्रीय प्रसार सेवा की आवश्यकता अनुभव हुई। इससे पूर्व सरकार के विभिन्न विभागो मे अलग-अलग कार्य किये जाते

थे। एक विभाग के कार्यों का सम्बन्ध दूसरे विभाग से नहीं था। अतः अधिक श्रम एवं धन व्यय होता था। राष्ट्रीय प्रसार सेवा में गाँव के सर्वांगीण विकास के प्रयत्न किये जाते हैं। विभिन्न सरकारी विभागों ने आपस में मिलकर विभिन्न कार्यों को एक संगठित रूप प्रदान किया। राष्ट्रीय प्रसार सेवा के संचालन के लिये विभिन्न स्तरों पर कर्मचारियों की आवश्यकता हुई। ग्राम स्तर पर ग्राम सेवक नियुक्त किये गये। खण्ड स्तर पर खण्ड अधिकारी (बी० डी० ओ०) होता है। इसके ऊपरी स्तर पर अनुमण्डलीय अधिकारी, जिलाधीश तथा राज्य स्तर पर विकास आयुक्त होता है। प्रत्येक विकास खण्ड में विभिन्न विभागों में प्रसार कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है। कर्मचारी अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं और अपने-अपने विभाग के विकास के प्रयत्न करते हैं। विकास खण्डों में कृषि, सहकारिता, पशुपालन, ग्राम-पंचायत, समाज शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार तथा छोटे उद्योगों के लिये कर्मचारी होते हैं। कार्यक्रम के विस्तार के साथ साथ इनकी संख्या भी बढ़ती जाती है। ये व्यक्ति ग्रामीण जनता को देश में होने वाले विभिन्न प्रयोगों की जानकारी प्रदान करते हैं। कर्मचारी अपने विषय के विशेषज्ञ एवं प्रशिक्षित होते हैं। हमारे देश में विकास प्रसार सेवा के अन्तर्गत सन् १९५३ में अक्तूबर में सौ विकास खण्ड स्थापित किये गये। राष्ट्रीय प्रसार सेवा में अधिक ध्यान कृषि तथा सिंचाई पर दिया गया। सन् १९५९ के अन्त में हमारे देश में कुल २७०० खण्ड थे।

सामुदायिक विकास में परिवर्तन

प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तीन चरणों (Stages) का था। प्रथम, प्रसार कार्यक्रम जो कि तीन वर्ष का था। इसमें चार लाख रुपये व्यय किये जाने थे। द्वितीय चरण की तीन वर्ष की अवधि थी जिसमें ८ लाख रुपये व्यय करने की व्यवस्था थी। तृतीय चरण, सघनोत्तर चरण था जिसमें प्रतिवर्ष लगभग ३० हजार रुपये व्यय किये जा सकते थे। किन्तु बाद में श्री बलवन्त राय मेहता समिति के सुझाव के आधार पर कार्यक्रम को दो चरणों में विभक्त किया गया। सन् १९५७ में यह समिति नियुक्त हुई थी। इस समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर विशेष जोर दिया। अन्य भी कई महत्वपूर्ण सुझाव पेश किये गये जिन्हें भारत सरकार ने मान लिया।

श्री बलवन्त राय मेहता समिति के अनुसार निम्न बातों पर विशेष बल देना आवश्यक है —

(१) राष्ट्रीय प्रसार सेवा ग्रामीण क्षेत्रों के लिये स्थायी होनी चाहिये।

(२) विकास खण्ड योजना विकास की इकाई मानी जानी चाहिये।

(३) सभी प्रकार के विकास कार्यक्रमों, सरकारी कर्मचारियों तथा जनता के मध्य कार्य एवं विचार में एकता स्थापित करनी चाहिये।

(४) ग्रामीण संस्थाओं के माध्यम से जनता का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टिकोण बदलना चाहिये।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में खण्डों के माध्यम से विभिन्न विभागों द्वारा धन व्यय करने की व्यवस्था की गयी। अब कार्यक्रम दो चरणों में से होकर गुजरता है। प्रत्येक चरण पाँच वर्ष का होता है। आजकल सभी ग्राम खण्डों के अन्तर्गत आते हैं।

वर्ष १९६८–६९ के अन्त मे देश मे ५२६५ विकास खण्ड थे जिनमे से ९९९ प्रथम चरण मे और ४८९ द्वितीय चरण मे थे।[1] शेष खण्डो ने दोनो चरण पूरे कर लिये थे।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सामुदायिक विकास एव राष्ट्रीय विस्तार कार्यक्रमो पर ९० करोड रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया था किन्तु ४६·१८ करोड रुपये ही व्यय हो पाये। प्रथम पचवर्षीय योजना काल मे सम्पूर्ण देश में ९९८ विकास केन्द्र स्थापित किये गये जिसमे १४० हजार ग्राम सम्मिलित थे। सामुदायिक विकास के लिये द्वितीय पचवर्षीय योजना मे २०० करोड रुपये की धन राशि का प्रावधान किया गया किन्तु १८८·८९ करोड रुपये ही वास्तव म व्यय हो सके। इस योजना मे देश के सभी ग्रामो को सामुदायिक विकास मे सम्मिलित करने का लक्ष्य रखा गया था। किन्तु सन् १९५८ मे अवधि बढा दी गयी। द्वितीय योजना के अन्त मे देश मे ३१०० विकास केन्द्र प्रारम्भ हो चुके थे और देश की लगभग आधी जनसख्या कार्यक्रम से लाभ प्राप्त कर रही थी तृतीय पचवर्षीय योजना काल मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम पर ३२१ ९ करोड रुपये निर्धारित किये गये थे। इस धन राशि म से २८७ ७ करोड रुपये सामुदायिक विकास २८ २ करोड रुपये पचायत तथा ६ करोड रुपये केन्द्रीय योजनाओ के लिये थे। तृतीय योजना अवधि मे सामुदायिक विकास पर वास्तविक व्यय २७६ ८ करोड रुपये, पचायतो पर ११ ७ करोड रुपये हुआ।

तृतीय पचवर्षीय योजना के पश्चात् १९६६ से १९६९ तक एक वर्षीय योजनाओ मे कुल सामुदायिक विकास तथा पचायतो पर ९९ ४ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे (१९६९–७४) मे ११५ ८ करोड रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया है। चतुर्थ योजना मे तृतीय पचवर्षीय योजना की तुलना मे बहुत कम धन व्यय करने की व्यवस्था की गयी है।

---

1. Fourth Five Year Plan 1969-74 Draft, Page 168.

३

कार्यक्रम
(The Programme)

ग्रामीण जीवन के चहुँमुखी विकास के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम अनिवार्य है। कार्यक्रम के माध्यम से परिश्रम व आपसी सहयोग को बढावा दिया जाता है। सामुदायिक विकास आत्म निर्भरता के लिये सर्वोत्तम कार्यक्रम है। इसके प्रमुख उद्देश्य, प्रत्येक गाँव की सहायता करना, ग्राम विकास की योजना बनाना और उसे पूर्ण करना जिससे कृषि उपज मे वृद्धि हो तथा ग्रामीण उद्योगो, स्वास्थ्य, शिक्षा एव रहन-सहन की दशा मे पर्याप्त सुधार हो। कार्यक्रम की सफलता के लिये भारतीय ग्राम वासियो के दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाना आवश्यक है। इसके लिये व्यक्तियों के दिलो में उत्तम जीवन यापन की इच्छा उत्पन्न करनी होगी। जनता मे परस्पर सहयोग की भावना का विकास करना बहुत महत्वपूर्ण है। इससे जनता अपने कार्यों का प्रबन्ध एव सचालन स्वय कर सकेगी। ग्रामीण व्यक्तियों की प्राथमिक आवश्यकतायें जैसे भोजन, वस्त्र तथा आवास को उचित व्यवस्था मे कार्यक्रम का स्थान उल्लेखनीय है।

सामुदायिक विकास गतिविधियो के कार्यक्रम के माध्यम से अपनाया जा सकता है। किसानो को उत्तम खेती विधियाँ सिखाने के लिये सुधार कार्यक्रम का सहारा लेना पडता है। जनता मे उत्तम स्वास्थ्य तथा सफाई रखने की भावना इन क्षेत्रो मे कार्यक्रमों के माध्यम से विकसित की जा सकती है। इसी प्रकार सामुदायिक विकास के प्रत्येक अग मे कार्यक्रम के आधार पर चलना पडता है। कार्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो कि उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। इसमें ग्रामीण जीवन के सर्वांगीण विकास के प्रयत्न किये जाने चाहिये। क्योकि सुधार उस समय तक सम्भव नही हो सकेगा जब तक ग्राम्य जीवन के समस्त अंगो के विकास के लिये सुसगठित प्रयास नहीं किया जाता। इसी कारण भारत वर्ष मे सामुदायिक विकास आन्दोलन मे उन सभी समस्याओं को सम्मिलित किया गया है जो कि ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित हैं। कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्न लिखित गतिविधियाँ सम्मिलित की गयी हैं :—

(१) कृषि विकास
(२) ग्रामीण उद्योगो का विकास
(३) शिक्षा
(४) स्वास्थ्य एव सफाई
(५) निर्माण कार्य—गृह-निर्माण
(६) यातायात व्यवस्था मे सुधार
(७) स्त्रियो तथा बच्चो के कल्याण कार्यक्रम
(८) सहकारिता

उपरोक्त गतिविधियाँ एक व्यापक कार्यक्रम के अन्तर्गत है। इनमे कृषि विकास को अधिक महत्व दिया गया है क्योकि यह ग्राम्य जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करता है। कार्यक्रम का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है।

(I) कृषि और सम्बन्धित क्षेत्र

भारत कृषि प्रधान देश है जिसमे अधिकाश जनता का मुख्य व्यवसाय खेती है। विकास कार्यक्रमो मे कृषि विकास को प्राथमिकता देना अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय किसान निर्धन है। कृषि क्षेत्र मे उत्पादकता (Producivity) भी निम्न है। अनेक देशो की तुलना मे भारत मे प्रति हेक्टेयर उपज बहुत कम है। उत्पादकता बढाने के लिये कृषि कार्यो मे नवीन विधियो तथा आधुनिक औजारो का उपयोग नितान्त आवश्यक है। ग्रामीण जनता अशिक्षित होने के कारण इनका उपयोग करने से वचित रह जाती है। व्यक्तियो का दृष्टि कोण रूढीवादी है। किसी भी प्रकार के परिवर्तन मे उनका विश्वास नही है। दूसरी तरफ भारतवर्ष मे जनसख्या बहुत तेज गति से बढती जा रही है। किन्तु इस गति से खाद्यान्न का उत्पादन नही बढ रहा है। अत देश मे खाद्य सकट उत्पन्न हो गया है। खाद्य समस्या के समाधान के लिये दो उपाय हो सकते हैं। प्रथम विदेशो से खाद्यान्न का आयात और द्वितीय, देश मे इनका अधिक उत्पादन। देश के आर्थिक विकास के लिये प्रथम उपाय उपयुक्त नही है इसलिये देश मे उत्पादन बढाना आवश्यक है। सामुदायिक विकास कायक्रम के माध्यम से कृषि उत्पादन बढाया जा सकता है।

कृषि विकास के लिये उन्नत बीज, खाद तथा पर्याप्त मात्रा मे आधुनिक उपकरणो की आवश्यकता पडती है। किसानो को नवीन विधियो को उपयोग मे लाने का प्रशिक्षण भी आवश्यक है। इनके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित क्षेत्रो मे विकास को महत्व देना चाहिये। विकास कायक्रमो मे पशु विकास, सिचाई आदि की भी व्यवस्था करनी पडती है। ये कायक्रम सामुदायिक विकास के अन्तर्गत आते हैं।

उन्नत बीज

सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे विकास खण्डो मे उन्नत बीजो के उपयोग करने की योजना चालू की गयी है। देश भर के उन्नत बीज उपलब्ध कराने के लिये बडी मात्रा मे बीजो की आवश्यकता पडती है। इसके लिये बीजो की आवश्यकता का उचित अनुमान लगाया जाता है और फिर उनका उत्पादन किया जाता है पर्याप्त मात्रा मे बीज उपलब्ध कराने के लिये प्रत्येक खण्ड मे एक बीज उत्पादन फार्म की स्थापना प्रस्तावित की गयी है। इन बीजो को भण्डारो मे सुरक्षित रखने के लिये

सहकारी समितियों में भण्डारण व्यवस्था पर बल दिया जा रहा है। बीजों को वैज्ञानिक विधि से रखने के लिये पर्याप्त एवं सुरक्षित गोदाम बहुत आवश्यक हैं। इनके अभाव में बीज नष्ट हो जाते हैं अथवा खराब हो जाते हैं जिससे उगते नहीं हैं। उत्तम बीजों के उपयोग से प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि हो सकती है। भारतवर्ष में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत उन्नत बीज उपलब्ध कराये जाते है। पंचवर्षीय योजनाओं में उन्नत बीज पैदा करने पर विशेष ध्यान दिया गया। तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त में देश मे उन्नत बीज लगभग १२०० लाख एकड भूमि मे बोये गये। वर्ष १९७०-७१ में २७४० लाख एकड भूमि मे उन्नत बीज उत्पादित किये जायेंगे।

वर्तमान समय में बीजों की वृद्धि के परीक्षण, प्रमाणीकरण, भण्डारण, ऋण तथा वितरण के तकनीकी एवं प्रशासनिक प्रबन्धों को मजबूत बनाना चाहिये। सरकार अप्रमाणित बीज वितरण पर रोक लगा देगी जो कि सहकारी समितियों अथवा अन्य सस्थाओं द्वारा वितरित किये जाते हैं।

भारतवर्ष में सितम्बर १९६७ के अन्त मे ४४.७७ लाख क्विंटल उन्नत बीजों का वितरण किया गया जो कि सितम्बर १९६८ मे बढकर ४६·५६ लाख क्विंटल हो गया।[1] राष्ट्रीय बीज निगम, जो कि सन् १९६३ में स्थापित किया गया था, उन्नत बीजों के उत्पादन मे वृद्धि के प्रयत्न कर रहा है। निगम अधिक पैदावार करने वाली किस्म के बीजों को सुखाने की मशीनें साफ करने और वर्ग बनाने के कारखाने स्थापित करेगा। चतुर्थ पचवर्षीय योजना में नये बनाये गये बीज विधान के प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणित करने के लिये उचित प्रशासनिक मशीनरी का विकास किया जायेगा। इस नये विधान की दो मुख्य विशेषतायें है—प्रथम बीजों का प्रमाणीकरण और दूसरी, बीजों के नमूने निकाल कर उनकी किस्म की जाँच करना।[2] उन्नत बीजों के अधिक उपयोग में प्रति एकड उपज में पर्याप्त वृद्धि होगी। फलत देश का कुल कृषि उत्पादन बढ जायेगा।

रासायनिक उर्वरक

कृषि विकास के लिये रासायनिक खाद की खपत बढती जा रही है। रासायनिक खाद भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियों में भिन्न-भिन्न अनुपात में काम में लाया जाता है। वर्ष १९६५-६६ के अन्त में एक अनुमान के अनुसार प्रति हेक्टेयर उर्वरक खपत विश्व के औसत का सातवां हिस्सा है। तृतीय योजना के अन्त में उर्वरकों की खपत ६ लाख मीट्रिक टन नाइट्रोजन, १ ५ लाख मीट्रिक टन पी$_2$ ओ$_5$ और ०·९ लाख टन के० ओ०^2 थी।

सितम्बर १९६७ के अन्त मे समाप्त होने वाले वर्ष मे २८४ ७० लाख क्विंटल रासायनिक खाद का वितरण किया गया जबकि सितम्बर १९६८ के अन्त तक यह बढकर ३८७ ९१ लाख क्विंटल हो गया। रासायनिक खाद की मांग निरन्तर बढती जा रही है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक मांग ३.७० मिलियन टन नाइट्रोजन, १·८० मिलियन टन P_2O_5 और १.१० मिलियन टन K_2O हो जायेगी।

1 India 1969, P 263
2. Fourth Five Year Plan 1969-74 Draft p. 121.

रासायनिक खाद के सम्बन्ध मे सबसे बडी समस्या उसके कुशल एवं उचित उपयोग की है। खाद को मितव्ययिता के आधार पर काम मे लाना चाहिये। इसके लिये चतुर्थ पचवर्षीय योजना में उर्वरक मिश्रण तैयार किये जा रहे हैं और मिट्टी की जाँच की जा रही है। इस काल मे चलती-फिरती प्रयोगशालायें भी चालू की जायेंगी।

कार्बनिक तथा हरी खाद

तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक हरी खाद के उपयोग का क्षेत्र लगभग २·५ लाख एकड था हरी खाद की पूर्ति के लिये समुचित फसल पद्धतियो को अपनाया जा रहा है वर्ष १९७० ७१ तक हरी खाद के उपयोग का क्षेत्र लगभग ६४० लाख एकड हो जायेगा। गोबर, मल-मूत्र तथा फार्म का कूडा भी स्थानीय खाद के रूप मे अत्यन्त उपयोगी है। कृषको के लिये गोबर गैस सयन्त्र उपलब्ध किया गया है। भविष्य मे इनको अधिक लोक प्रिय बनाने को योजना है। वर्ष १९७०-७१ के अन्त तक शहरी कम्पोस्ट का लक्ष्य ५४ लाख मी० टन निश्चित किया गया है। विशेष विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक गन्दे नाले एव विष्ठा के उपयोग के लिये योजना लागू की गयी है। सामुदायिक विकास के कार्यक्रम के द्वारा इन खादो को अधिक लोकप्रिय बनाया जा रहा है।

उन्नत कृषि औजार

सामुदायिक विकास कार्यो मे उन्नत कृषि औजारो का वितरण भी महत्वपूर्ण है। प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ मे उन्नत कृषि के औजारो का कार्यक्रम बहुत पिछडा हुआ रहा है। इसके अनेक कारण हैं जैसे लोहा एवं इस्पात का अभाव, औजारो की अच्छी डिजायनो की कमी, निर्माण व्यय अधिक, किसानो के सामने वित्त समस्या, मरम्मत का अभाव, कल-पुर्जो की प्राप्ति की कठिनाई तथा प्रदर्शन की भी कमी आदि। कृषि औजारो के निर्माण तथा अधिक उपयोग मे लाने के लिये कृषि मशीन एव औजार बोर्ड स्थापित किया गया है। ग्रामो मे ग्राम सेवको के सहयोग से विकास खण्डो मे कृषि औजारो की मरम्मत आदि के लिये उचित मार्ग निर्देशन किया जायेगा। सितम्बर १९६७ को समाप्त होने वाले वर्ष मे कार्यक्रम के अधीन लगभग ७ ०४ लाख उन्नत औजार वितरित किये गये।

उन्नत कृषि पद्धतियाँ

कृषि क्षेत्र मे उत्पादकता बढाने के लिये उन्नत कृषि पद्धतियो को काम मे लाना आवश्यक है। इसमें धान की खेती के लिये जापानी पद्धति उपयुक्त मानी जाती है। इन पद्धतियो मे उन्नत बीज का चुनाव, उन्नत छोटे पौधे लगाने के उपाय, पौधो के बीच जगह रखना, उचित मात्रा मे खाद देना, वैज्ञानिक फसलो का क्रम आदि सम्मिलित किये जाते हैं। गन्ने तथा गेहूँ के लिये उन्नत विधियाँ प्रचलित की जा रही है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तगत खण्ड के कृषि—विशेषज्ञ विभिन्न प्रकार की पद्धतियो के उपयोग के विषय मे मार्ग दर्शन करते हैं।

भूमि संरक्षण

भूमि निरन्तर उपयोग, बाढ तथा तेज वायु के कारण कटती रहती है। मिट्टी के कटाव के कारण इसकी उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती है। भू-क्षरण को रोकने

के लिये अनेक प्रयत्न किये जा सकते हैं जैसे पानी के बहाव को रोकना अथवा कम करना, बाड़ लगाना, सीढ़ीनुमा खेत बनाना, वृक्षारोपण करना आदि। कृषि-विभाग के अधिकारी ग्राम सेवक तथा पंचायतों के माध्यम से इन कार्यों को अपनाया जाता है। वर्ष १९६७-६८ मे कृषि भूमि का सरक्षण ३·५ मिलियन एकड क्षेत्र मे किया गया। किन्तु वर्ष १९६८-६९ मे ३·४ मिलियन एकड भूमि मे सरक्षण प्रदान किया गया।

सिंचाई

भारतवर्ष मे वर्षा अनिश्चित एवं अनियमित है। देश के अनेक भागो मे अपर्याप्त वर्षा भी होती है। अत सिंचाई द्वारा पानी की पूर्ति करनी आवश्यक है। सिंचाई बडी तथा छोटी दोनों प्रकार की विधियों द्वारा की जा सकती है। विशेषज्ञ उपयुक्त सिचाई के साधनो के विषय मे परामर्श देते है। विकास कार्यक्रमो मे छोटी सिंचाई योजनाओ को प्राथमिकता दी जाती है। लघु सिंचाई कार्यक्रमो से खण्डो में वर्ष १९६७-६८ मे १३ लाख हेक्टयर अतिरिक्त भूमि मे सिंचाई सुविधायें प्रदान की गयी। वर्तमान समय मे लघु सिंचाई योजनाएँ अधिकाधिक स्तर तक चालू की जा रही हैं। और इनको ग्रामीण विजलीकरण योजनाओ से सम्बद्ध किया जा रहा है। लघु सिंचाई कार्यक्रम के अन्य महत्वपूण पहलू, सर्वेक्षण और अनुसन्धान के वर्तमान सगठनो को दृढ बनाया जा रहा है और जल उपयोग एव प्रबन्ध का विस्तार किया जा रहा है।

पशु पालन

ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषको की आय बढाने के लिये पशु पालन का विकास बहुत महत्वपूण है। पशु विकास कार्यक्रमो को फसलो के सघन कृषि कार्यक्रम की परम्परा मे आयोजित करना आवश्यक है। पशु विकास के लिये उनकी नस्ल सुधारनी चाहिये। देश मे दूध तथा दूध उत्पादनो की मॉग बढ रही है। इसकी पूर्ति के लिय सघन पशु विकास कार्यक्रम अपनाये जा रहे है। पशु विकास मे दूसरी महत्वपूर्ण आवश्यकता उचित मात्रा मे चारे की व्यवस्था करना है। इसके लिये आधुनिक ढग से चारे और घास के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अनुसन्धान के द्वारा घास और चारे की अनेक अच्छी किस्मों का पता लगाया गया है। देश के विभिन्न भागो मे सघन पशु विकास और प्रमुख गॉव खण्डो मे सघन सूखा घास विकास कार्यक्रम अपनाने का प्रस्ताव है।

भारतवर्ष मे भेड तथा उन विकास कार्यक्रम भी अपनाये गये हैं। उन्नत भेड प्रजनन के लिये पश्चिमी हिमाचल क्षेत्र और दक्षिण पठारी भाग के चुने क्षेत्रों मे स्थानीय नस्लो को अच्छी ऊन वाले विदेशी भेडो से गर्भित कराया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी भागो मे वर्तमान किस्म के चुने हुये प्रजनन पर जोर दिया जाता है। राजस्थान मे एक केन्द्रीय भेड एव ऊन अनुसन्धान सस्थान स्थापित किया गया है। इस राज्य मे भेड के ऊन काटने, वर्गीकरण करने और बाजार के लिये ऊन तैयार करने के लिये विशेष योजना तैयार की गयी है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के अन्तर्गत मुर्गी पालन को भी सम्मिलित किया जाता है मुर्गी पालन अनेक व्यक्तियो को रोजगार दिलाने का महत्वपूर्ण धन्धा है। मुर्गियो से अण्डे प्राप्त किये जाते हैं जो कि भोजन मे बहुत महत्वपूर्ण हैं।

आधुनिक ढग से मुर्गी पालन के विकास के लिये इनके परिवहन, वितरण तथा अण्डे और मुर्गो के मांस को तैयार करने के लिये प्रभावशाली प्रबन्ध की आवश्यकता है।

देश मे सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के अन्तर्गत उन्नत पशुओ का वितरण किया जा रहा है। सितम्बर १९६७ को समाप्त होने वाले वर्ष में ३९१५० पशुओ का वितरण किया गया जबकि सितम्बर १९६८ के समाप्त होने वाले वर्ष मे ३१७०६ पशुओं का वितरण ही हो सका।

(II) स्वास्थ्य और सफाई

विकास खण्डो मे चिकित्सा विशेषज्ञ स्वास्थ्य एवं सफाई की व्यवस्था करने मे मदद करते हैं। चिकित्सा सुविधाओ मे एक स्थायी औषधालय, चलता फिरता स्वास्थ्य केन्द्र, मातृत्व और शिशु कल्याण केन्द्र स्थापित किये जा सकते है। अच्छे स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाये। ग्रामीण क्षेत्रो मे सफाई, कूड़ा डालने की उचित व्यवस्था, गन्दे गड्ढो का निर्माण आदि कार्यक्रम अपनाने आवश्यक है। ग्राम सेवक सफाई के लिये ग्रामो मे उचित परामर्श देते है। सितम्बर १९६७ को समाप्त होने वाले वर्ष मे ५९१५४ शौचालय (Latrines) बनाये गये और इससे अगले वर्ष मे ४७२८६ शौचालयों का निर्माण किया गया। इन्ही वर्षो मे क्रमश १९ ६२ लाख मीटर तथा ११ ४१ लाख मीटर पक्की नालियो का निर्माण किया गया। गन्दे पानी के गड्ढो का निर्माण उपरोक्त वर्षों मे क्रमश १ ६० लाख तथा १ १९ लाख था।

ग्रामीण क्षेत्रो मे पीने के पानी की उचित व्यवस्था का अभाव पाया जाता है। पीने का पानी स्वच्छ होना चाहिये। इसके लिये अच्छे कुँओ का निर्माण आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कुँओं के पानी को जो कि आस पास जमा हो जाता है इकट्ठा नही होने देना चाहिये। सितम्बर १९६७ तथा १९६८ को समाप्त होने वाले वर्षो मे देश के विभिन्न भागो मे क्रमश ३०६०९ तथा २४५४९ पीने के पानी के कुँओ का निर्माण किया गया। विकास कार्यक्रमो मे पीने के पानी के कुओं मे सुधार भी किया गया है।

विभिन्न प्रकार के व्यापक रोगो से बचने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हे फैलने से रोका जाये। चेचक तथा हैजे से बचने के लिये टीके लगवाने आवश्यक हैं। मलेरिया पर भी वैज्ञानिक विधियो से नियन्त्रण किया जा सकता है। इन रोगो के नियन्त्रण के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक खण्ड का डाक्टर पाठशालाओ मे जाकर बच्चो के स्वास्थ्य की जाँच करे और सुधार के उपाय प्रस्तुत करे। देश के विभिन्न भागो मे पचायत अथवा खण्ड समिति द्वारा मातृ तथा शिशु कल्याण, परिवार नियोजन, सफाई आदि के महत्व से अवगत कराया जाये।

(III) सामाजिक शिक्षा

लोकतान्त्रिक समाज की स्थापना के लिये समाजिक शिक्षा अत्यन्त उल्लेखनीय है। शिक्षा मे ग्रामीण जनता मे नये विचार पनपते हैं और विकास का अच्छा वातावरण तैयार होता है। अशिक्षा के कारण रूढीवादी दृष्टिकोण मे परिवर्तन करना बहुत कठिन है। किसान के दृष्टि कोण मे परिवर्तन लाना बहुत कठिन कार्य है। शिक्षा के माध्यम से समाज का प्रत्येक व्यक्ति यह जानने लगता है कि व्यक्तिगत

रूप में उसका समाज में क्या स्थान है। शिक्षा बचपन से लेकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में चलती रहती है। शिक्षा के विस्तार से व्यक्तियों का सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन विकसित होता है। आज भारतवर्ष में अधिकांश जनता निरक्षर है। सामाजिक, सांस्कृतिक, तथा आर्थिक जीवन में कोई भी परिवर्तन इसलिये सम्भव नहीं हो पा रहा है क्योंकि अधिकांश व्यक्ति परिवर्तन में विश्वास नहीं करते हैं और न ही परिवर्तन के महत्व को समझते हैं। कृषि विकास में नवीन विधियों का प्रयोग करने, उन्नत बीजों तथा खाद का प्रयोग करने के लिये शिक्षा बहुत आवश्यक है। इसी प्रकार अन्य आर्थिक गतिविधियों में भी शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के विस्तार की तरफ पर्याप्त ध्यान दिया गया है। शिक्षा के माध्यम से संगीत, चित्रकारी नाटक तथा अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों का विकास किया जा सकता है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रयत्नों का ब्योरा निम्न तालिका में दिया गया है —

सामुदायिक विकास कार्यक्रम—विकास

(सामाजिक शिक्षा)

विवरण	वर्षान्त	
	सितम्बर १९६७	सितम्बर १९६८
१, प्रौढ शिक्षण केन्द्र चालू किये गये (संख्या)	४१६२०	४३७०४
२. प्रौढ शिक्षित किये गये (संख्या)	९,६८,३९७	१४,८०,११५
३ कार्य करने वाले ग्राम सेवकों के संगठित कैम्प (संख्या)	१७७,२६	८८९१
४. प्रशिक्षित नेता (संख्या)	४,६१,५०९	३,०५,९२४

(Source . India 1969, p. 263)

विकास योजनाओं में नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण, वयस्कों को साक्षर बनाना, पुस्तकालय खोलना, नाटक, मेले एवं प्रदर्शनियों का आयोजन, खेल-कूद आदि व्यवस्थाओं का होना नितान्त आवश्यक है। ग्रामीण नेताओं को प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए जिससे इन क्षेत्रों को उचित नेतृत्व मिल सके। प्रतिवर्ष सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत नेताओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। प्रौढ शिक्षा भी दिन प्रति दिन बढती जा रही है। सामाजिक शिक्षा से रचनात्मक शक्ति का विकास होता है। समुदाय के व्यक्तियों में मिलजुल कर सहकारिता के आधार पर कार्य करने की भावना बढती है।

(VI) परिवहन एवं संचार व्यवस्था

ग्रामीण भारत के विकास के लिए ग्रामीण सडकों एवं संचार व्यवस्था का अत्यधिक महत्व है। देश के अनेक गांव ऐसे हैं जो कि रेलवे स्टेशन तथा पक्की सड़क

से बहुत दूर हैं। ग्रामीण क्षेत्रो के लिये आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। इसी प्रकार इन भागो की कृषि उपज के विपणन के लिये मण्डी तक पहुँचने में भी बहुत कठिनाई आती है। ग्रामीण सडकें बहुउद्देश्यीय सडकें नहीं हैं। वर्षाकाल में पानी से ये सडकें नष्ट हो जाती हैं और इनमें गड्ढे पड जाते हैं। अत इन भागो मे सडकों के निर्माण कार्य को प्राथमिकता देनी आवश्यक है।

अच्छी सडको के निर्माण से ग्रामो का सम्पर्क शहरो से हो जाता है। किसान अपनी उपजो को उचित मूल्यो पर मण्डियों मे बेच कर अधिक आय प्राप्त करते हैं। सडकों के निर्माण से ग्रामो मे कुटीर उद्योगों का भी आधुनिक तरीकों से विकास किया जा सकता है। आवश्यक सामान को आसानी से दूसरी जगहों से लाया जा सकता है और तैयार माल बेचा जा सकता है। आर्थिक एव सामाजिक विकास में भी सडको का महत्वपूर्ण योगदान है। ग्रामीण सडकों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों को रेलवे के साथ जोडा जा सकता है। इससे ग्रामो के चहुँमुखी विकास मे पर्याप्त मदद मिल सकेगी।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सामुदायिक विकास योजनाओ के अन्तर्गत १६,००० से १७,००० मील लम्बी कच्ची सडकों के निर्माण की व्यवस्था करने का लक्ष्य रखा गया था। इनका उद्देश्य महत्वपूर्ण ग्रामो को मण्डियों तथा जिला मुख्य कार्यालयो मे जोडना था। सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत किये गये प्रयत्नों से निम्न प्रगति हुई है —

सामुदायिक विकास में संचार विकास

विवरण	वर्षान्त	
	सितम्बर १९६७	सितम्बर १९६८
१ नयी कच्ची सडकों का निर्माण (किलोमीटर)	३०,५५४	२७९५७
२. वर्तमान कच्ची सडकों में सुधार (किलोमीटर)	४९१३९	४०८८९
३. सडक से पानी पार करने के नालो का निर्माण (सख्या)	१९१३२	१६,२६०

(Source India 1969 p 264)

वर्तमान समय मे प्रत्येक गाँव को एक दूसरे के साथ जोडना अत्यन्त आवश्यक है। बाद मे इन्हीं सडकों को शहरी सडको से जोडना पडेगा। इन कार्यक्रमो मे ग्रामीण जनता के श्रम सहयोग की आवश्यकता भी पडेगी। भविष्य में विकास कार्यक्रमो मे ग्रामीण क्षेत्रो मे सचार व्यवस्था पर अधिक ध्यान देना होगा। इसके अभाव मे ग्रामो का विकास असम्भव है। सामुदायिक विकास योजनाओं के विभिन्न कार्यक्रमो को चालू करने तथा उनकी सफलता मे भी सचार व्यवस्था से पर्याप्त सहायता मिल सकेगी। सडको के अभाव मे अनेक कार्यक्रमो को चलाने मे बहुत कठिनाई आती है।

(V) ग्रामीण गृह निर्माण

भारतवर्ष मे ग्रामीण क्षेत्रो मे घरो की व्यवस्था सतोष जनक नही है। अच्छा घर स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक है। गावो मे भोपडियाँ तथा घास-फूस के घर बनायें जाते हैं। रहने के पर्याप्त मकान भौतिक एव सामाजिक आवश्यकतायें है। गाँवो मे बिना उचित योजना के घरो का निर्माण किया जाता है। मकानो में न उचित खिडकियाँ हैं और न पर्याप्त रोशनदान हैं। अनेको मकान वर्षा काल मे ढह जाते हैं। घरों मे न शौचालय व्यवस्था होती है और न ही गन्दे पानी के निकास के लिय व्यवस्था होती है। धुँआ भी चारो तरफ फैला रहता है।

सामान्यत अनेक घर ऐसे हैं जिनमे पशु तथा व्यक्ति साथ-साथ कमरो मे रहते हैं। घरो मे बहुत गन्दगी रहती है। ग्रामो मे गृह निर्माण के अच्छे तरीके प्रचलित नहीं होते है। ग्रामीण जनता सफाई तथा अच्छे घरो के महत्त्व को समझ भी नही पाती हे। घरो मे पशु और व्यक्ति साथ-साथ रहने से व्यक्तियो मे सफाई के प्रति अच्छी आदतें विकसित नही हो पाती हैं। पशुओ के मल मूत्र गन्दगी आदि से बीमारियाँ फैलती हैं। ग्रामो मे गृह निर्माण निधारित योजना के अनुसार होना चाहिये। प्रत्येक घर मे कम से कम दो कमरे पर्याप्त जगह के साथ होने चाहियें। कमरो मे पर्याप्त खिडकियाँ तथा रोशनदान होने चाहियें ताकि प्रकाश एवं शुद्ध हवा आती रहे। घरो में रसोई की उचित व्यवस्था भी होनी चाहिये। घरो मे जो चूल्हा काम मे लाया जाता है उसका धुआँ कमरो मे नही जाये इसके लिये धुँये-रहित चूल्हे बनाने चाहिये।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सामुदायिक विकास बजट के अन्तर्गत १·१० लाख रुपये गृह निर्माण के लिये रखे गये थे किन्तु प्रथम योजना मे कुल वास्तविक व्यय ३६ लाख रुपय किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे सामुदायिक विकास कार्य क्रमो के अन्तगत गृह निर्माण के लिय १६ करोड रुपये का प्रावधान रखा गया। तृतीय पचवर्षीय योजना तथा चतुथ योजना में भी ग्रामीण क्षत्रो मे गृह निर्माण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया।

(VI) ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार "लघु उद्योग राष्ट्र के आर्थिक विकास मे बहुत सहायता प्रदान करते है। आज देश के सामने बेरोजगारी की विकट समस्या है और इसे हल करने मे ग्रामीण उद्योगो का महत्वपूण यागदान हो सकता है।" भारतवर्ष मे कृषि भूमि पर भार निरन्तर बढता जा रहा है। ग्रामो मे खेती के अतिरिक्त रोजगार के अन्य साधन ग्रामीण उद्योग हैं किन्तु इनकी स्थिति भी अच्छी नही हैं। देश के अनेक भागो मे किसानो को वर्ष के कुछ महिनों मे बेकार रहना पडता है। यदि ग्रामीण उद्योगो का विकास किया जाये तो अतिरिक्त समय मे निर्धन कृषक कार्य कर सकते हैं और अपनी आय बढा सकते हैं। प्रथम तथा द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे इन उद्योगों ने उत्पादन बढाने तथा रोजगार को अधिक सुविधायें प्रदान करने मे पर्याप्त सहायता की है। समाजवादी समाज की स्थापना के लिये आय का उचित वितरण आवश्यक है। छोटे उद्योगो ने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सहायता प्रदान की। प्रथम योजना मे दस्तकारो को विकास कार्यक्रमों के

अन्तर्गत सहायता प्रदान की गयी। इनको प्रशिक्षण, प्राविधिक परामर्श, उन्नत औजार तथा बिक्री व्यवस्था की सुविधायें प्रदान की गयीं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इन पर अधिक ध्यान दिया गया। प्रथम योजना में इन कार्यों पर ८३ करोड़ तथा दूसरी योजना में लगभग १८० करोड़ रुपये व्यय किये गये। वर्ष १९५०-५१ में हाथ करघे का वस्त्र उत्पादन ७४२ करोड़ गज था जो कि वर्ष १९६०-६१ में बढ़ कर लगभग १९० करोड़ गज हो गया। लगभग ३० लाख बुनकरों को अतिरिक्त रोजगार की सुविधायें प्राप्त हुई। खादी के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। वर्ष १९५०-५१ में इसका उत्पादन ७० लाख गज था जो कि बढ़कर वर्ष १९६०-६१ में ४'८ करोड़ गज हो गया। वर्ष १९६०-६१ में अम्बर खादी का उत्पादन २६० लाख गज हो गया उपरोक्त कार्यक्रमों में १३ लाख से भी अधिक व्यक्तियों को अर्द्ध रोजगार प्राप्त हुआ और लगभग २ लाख व्यक्तियों को पूर्ण रोजगार मिला। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ग्रामोद्योग कार्यों में लगभग ५ लाख दस्तकारों तथा ग्रामीण स्त्रियों को रोजगार उपलब्ध कराया गया। कच्चे रेशम के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में ग्रामोद्योग कार्यक्रमों का विकास अधिक तेज गति से करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण ग्रामीण उद्योगों के विकास पर अधिक बल देना आवश्यक समझा गया। तीसरी योजना में लघु तथा ग्रामीण उद्योगों के कार्यक्रमों पर २४०'३६ करोड़ रुपए व्यय होने का अनुमान है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (१९६९-७४) काल में इस क्षेत्र में २९४'७१ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। तृतीय पंचवर्षीय योजना में प्रशिक्षण की सुविधाओं का विस्तार किया गया है। विभिन्न ग्रामीण उद्योगों में लगे हुये कारीगरों तथा दस्तकारों को उन्नत औजार तथा मशीनें प्रदान की गयी तथा उचित परामर्श भी दिये गये। इस काल में ऋण सुविधाओं का भी अधिक विस्तार किया गया है। तीसरी पंचवर्षीय योजना में योजना आयोग न ४७ सघन ग्रामीण उद्योग परियोजनायें चालू करवायी जिनमे विकास खण्डों ने पर्याप्त मदद दी।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत ग्रामीण तथा लघु उद्योगों के विकास के लिये उन्नत औजारों एवं मशीनों के लिये सुविधायें प्रदान की जा रही हैं। सितम्बर १९६७ को समाप्त होने वाले वर्ष को लोहारगीरी तथा बढ़ई के लिये क्रमशः ६'०६ लाख तथा ६'०५ लाख रुपये के उन्नत औजार तथा मशीनें वितरित की गयीं। विकास कार्यक्रमों में प्रशिक्षण तथा विपणन व्यवस्था भी की जाती है।

(VII) महिला और शिशु कल्याण

स्त्रियों और बच्चों की वर्तमान आवश्यकताओं को पर्याप्त रूप से तथा निरन्तर और व्यवस्थित ध्यान देने की आवश्यकता है। ग्राम समुदाय के कमजोर और निर्धन वर्गों के बच्चे बहुत पिछड़ी अवस्था में होते हैं। पिछले १५ वर्षों में कल्याण विस्तार परियोजनाओं के माध्यम से यद्यपि इन क्षेत्रों में पर्याप्त कार्य किया गया है किन्तु भावी आयोजन में कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रथम बात तो यह है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सहयोग से प्रारम्भ की गयी अधिकांश कल्याण विस्तार परियोजनाओं की पहली अवस्था पूर्ण हो चुकी है और दूसरी अवस्था को पूर्ण करने के लिये ये अलग अलग अवधि तक चलेंगी। इन परियोजनाओं

को चालू रखने के लिये ठोस आधार की व्यवस्था नितान्त आवश्यक है। द्वितीय बात यह है कि कुछ इच्छुक सगठनो और महिला मण्डलो को कुछ वर्ष पूर्व कल्याण विस्तार केन्द्र सौंपे गये थे, उनमें से अधिकाश सुनिश्चित अपेक्षित साधनो के बिना स्थापित सेवाओ को बनाये रखने या उनका विस्तार करने मे कठिनाई अनुभव कर रहे है। अंतिम, पूर्व स्थापित केन्द्रो को सुदृढ करने के साथ साथ स्त्रियो और बच्चों के भावी कार्य क्रमो को इस प्रकार से सगठित किया जाये कि सभी ग्रामीण भागो मे निरन्तर सेवायें उपलब्ध होती रहे। भविष्य मे परिवार तथा बाल कल्याण कार्य-क्रम मे निम्नलिखित कार्य सम्मिलित किये जाने की आवश्यकता है

(१) ग्रामीण बच्चो, विशेषत पाठशाला के बच्चो के लिये समुचित समाज सेवाओ की व्यवस्था,

(२) महिलाओ और युवतियो को गृह विज्ञान, माता शिक्षा, पोषाहार स्वास्थ्य शिक्षा और बच्चों की देख भाल की शिक्षा की व्यवस्था,

(३) स्त्रियो के लिये अनिवार्य स्वास्थ्य और प्रसूति सेवाओ की व्यवस्था,

(४) महिलाओ और बच्चो के लिये मनोरजन, शैक्षिक और सास्कृतिक कार्य क्रमो को प्रोत्साहन,

(५) ग्रामीण स्त्रिया को अतिरिक्त आय प्राप्त करने मे सहायता करना।

ग्रामीण स्त्रिया के लिय आय व्यवस्था करने के लिय उन्हे लघु उद्योगो तथा निर्माण कार्यो मे लगाने का प्रयत्न किया जाय।

आजकल परिवार और शिशु कल्याण कार्य क्रम दो पारस्परिक सम्बन्धित भागो मे विकसित हो रहे है। भविष्य मे उपलब्ध साधनो के भीतर इस कार्य क्रम के अन्तर्गत उत्तरोत्तर सामुदायिक विकास खण्डो की सख्या बढ गी। दूसरे, जिन भागो मे स्था नीय समुदाय आवश्यक प्रयत्न करने के लिए तैयार है वहाँ सहायता के आवश्यक साधन उपलब्ध कराये जायेगे। परिवार और शिशु कल्याण कार्य-क्रम के अन्तर्गत विकास सेवाओ को व्यवस्था करने मे लगी हुई पचायत राज सस्थाओ और अन्य एजेन्सियो से पूर्ण सहयोग लिया जाये। इसके लिये निम्न लिखित बातो का होना आवश्यक है—

(i) पचायती राज सस्थाओ तथा अन्य सस्थानो से अधिक सहयोग प्राप्त करने के लिये उनका भाग लेना आवश्यक है। विकास सेवाओ मे पाठशाला और प्राथमिक सेवायें भी शामिल हैं।

(ii) विकास खण्ड के भीतर तथा बाहर के स्वैच्छिक कार्य कर्त्ताओ का भाग लेना,

(iii) पचायत, सहकारी समुदाय और स्वैच्छिक सस्थाओ के स्थानीय नेताओ का सहयोग प्राप्त करना।

विकास खण्डो मे परिवार और शिशु कल्याण परियोजनायें प्रारम्भ की जाती हैं वहाँ विकास खण्ड के स्तर पर परिवार और शिशु कल्याण केन्द्र स्थापित किया जाना चाहिए। केन्द्र मे पर्याप्त कर्मचारी एव भवन व्यवस्था होनी आवश्यक है। इस मुख्य केन्द्र मे स्त्रियो के प्रशिक्षण की सुविधाओ की व्यवस्था भी होनी चाहिये। विकास खण्डो मे मुख्य केन्द्र के अतिरिक्त पाँच उपकेन्द्र भी स्थापित किये जाय जिनमे पूरे समय तक काम करने वाले कर्मचारी (बाल सेविकायें) उपलब्ध हो। इन उपकेन्द्रो के

अतिरिक्त चौथी योजना में दस सहायता प्राप्त केन्द्र भी स्थापित किये जायेंगे। परिवार और बाल कल्याण कार्यक्रम पंचायती राज संस्थाओं, स्वैच्छिक संगठनों और ग्रामीण कार्य कर्त्ताओं के सहयोग से चलाया जायेगा। यह विचार किया गया है कि पंचायत समिति परिवार और शिशु कल्याण केन्द्रों की स्थापना और ग्रामीण विकास एवं कल्याण के अन्तर्गत दिये गये सम्पूर्ण कार्य के लिये उत्तरदायी है।

परिवार और बाल कल्याण कार्य-क्रम बड़े राष्ट्रीय कार्य-क्रम के रूप में चलाया जाना चाहिये। महिलाओं के कल्याण के लिये जो योजनायें चालू हैं, भविष्य में उन्हें जारी रखा जायेगा। इन योजनाओं में महिलाओं के लिये संक्षिप्त पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था उनके प्रशिक्षण एवं रोजगार के लिये सामाजिक एवं आर्थिक यूनिटों की स्थापना, श्रमजीवी महिलाओं के लिये छात्रावास और विभिन्न कार्यों को चलाने के लिये महिला मण्डलों की सहायता आदि कार्य सम्मिलित हैं। बच्चों के कल्याण के लिये भी इसी प्रकार के अनेक कार्य-क्रम हैं इनमें बच्चों के गृह सम्मिलित हैं जो या तो अनाथ हैं या जिन्हें देखने के लिये कोई भी नहीं है। इनमें पोषण, देखभाल, छुट्टी मनाने के गृह एवं शिविर तथा बच्चों के कल्याण के लिये राष्ट्रीय केन्द्र सम्मिलित हैं। तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियों यूनेस्को और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सहायता से पूर्व व्यवसायिक प्रशिक्षण के लिये ६५ केन्द्र स्थापित किये गये। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में इस तरफ अधिक ध्यान दिया जायेगा।

(VIII) पिछड़ी जातियों तथा वर्गों का कार्यक्रम

पिछड़ी जातियों तथा वर्गों के कल्याण के विशेष कार्यक्रमों पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३० करोड़ रुपये, द्वितीय योजना में ७९ करोड़ रुपये और तीसरी पंचवर्षीय योजना में १०२ करोड़ रुपये व्यय हुये। इन २११ करोड़ रुपये में से ११५ करोड़ रुपये अनुसूचित आदिम जातियां ७२ करोड़ रुपये अनुसूचित जातियों, २२ करोड़ रुपये अन्य पिछड़े वर्गों पर व्यय किये गये। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आदिम जातीय क्षेत्रों में स्थित विकास खण्डों में ४३ विकास खण्ड बहु-उद्देशीय विकास के लिये चुने गये और आदिम जातियों के कल्याण के लिये जो व्यवस्था की गयी, उससे सामुदायिक विकास कार्य-क्रमों के लिये उपलब्ध साधनों में वृद्धि की गयी। सन् १९६० में इन खण्डों के विकास का विश्लेषण किया गया। इस विश्लेषण के आधार पर यह निर्णय लिया गया कि तीसरी योजना में समस्त देश में आदिम जातीय विकास खण्ड कार्य-क्रम अपनाये जायें। तृतीय पंचवर्षीय योजना से अन्त तक ४१५ आदिम जातीय विकास खण्ड प्रारम्भ किये गये।

सन् १९६१ की जनगणना के आधार पर देश की कुल जनसंख्या का लगभग १५ प्रतिशत भाग अनुसूचितों का है। लगभग ९० प्रतिशत अनुसूचित लोग ग्रामों में निवास करते हैं। अधिकांश व्यक्ति कृषि अथवा छोट-मोटे कामों में लगे रहते हैं। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में अनुसूचित जातियों के लिये विशेष कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग ७२ करोड़ रुपये व्यय किये गये। इस धन राशि में से ३४ करोड़ रुपये शिक्षा योजनाओं, ११ करोड़ रुपये आर्थिक दशा सुधारने तथा २७ करोड़ रुपये स्वास्थ्य, आवास तथा अन्य योजनाओं पर व्यय किये गये।

भारतवर्ष में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या ४० लाख से अधिक है। तृतीय योजना में अनुसूचित जातियों के कल्याण कार्यों पर ३ करोड़ रुपये व्यय

किये गये। इन जातियो के कल्याण के लिये रुचि रखने वाले सामाजिक कार्य कर्त्ताओं का अभाव है अत कल्याण कार्यों मे कठिनाई आती है।

(IX) सहकारिता और पंचायत कार्यक्रम

ग्रामीण भागो मे सहकारी समितियो का विकास सामुदायिक विकास का महत्त्व पूर्ण कार्य है। सहकारी समितियां ग्रामीण विकास मे बहुत सहायक हैं। ग्रामीण ऋण समितियां ऋण प्रदान करती हैं। विपणन समितियां किसानो के उत्पादनो का क्रय-विक्रय करती हैं उन्हें सहायता भी प्रदान करती है। छोटे तथा ग्रामीण उद्योगो के विकास के लिये भी सहकारिता महत्त्वपूर्ण हैं। ग्रामीण आर्थिक जीवन का विकास सहकारी समितियो द्वारा सम्भव हो सकता है। अत सहकारिता सामुदायिक विकास का महत्त्वपूर्ण अग है। पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारिता के क्षेत्र को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियो का विकास किया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रो मे विकास कार्यों को चलाने का कार्य भार ग्राम पचायत पर होता है। पचायतें विभिन्न समितियो के माध्यम से विकास कार्य सम्पन्न कराती हैं। सामुदायिक विकास कार्य-क्रमो मे श्री बलवन्त राय मेहता समिति के सुझावो के अनुसार जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया जाता है। पचायतें इसकी महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ हैं।

प्रश्न

१ सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे किन-किन गति विधियों को सम्मिलित किया गया है ? पचवर्षीय योजनाओ मे इन कार्यो मे क्या प्रगति हुई है ?

२ कृषि क्षेत्र मे सामुदायिक विकास का क्या महत्त्व है ? कृषि के कौन-कौन से कार्यक्रम सामुदायिक विकास मे सम्मिलित किये गये हैं ?

३. 'ग्रामोद्योग और सामुदायिक विकास' विषय पर निबन्ध लिखिये।

४

सामुदायिक विकास प्रशासनिक ढांचा

सामुदायिक विकास योजनाओ को कार्यरूप मे परिणित करने के लिये प्रशासनिक ढांचा आवश्यक है। यद्यपि एक जनता का कार्य-क्रम है किन्तु सरकार प्रशासन की उचित व्यवस्था करती है। कार्य-क्रम मे गतिविधियाँ बहुत व्यापक होती हैं अत उनके समन्वय के लिये प्रशासन अत्यन्त आवश्यक है। भारतवर्ष मे प्रारम्भ में सामुदायिक विकास चालू करने के लिये सबसे ऊपर केन्द्रीय समिति गठित की गयी। इस समिति का कार्य व्यापक नीतियां निर्धारित करना तथा सामान्य देख-रेख का कार्य करना है। समिति को सलाह मण्डल (Advisory Board) सहायता प्रदान करता है। केन्द्रीय समिति के अन्तर्गत प्रारम्भ मे सामुदायिक योजना प्रशासन (Community Projects Administration) सगठित किया गया। इस समय सामुदायिक योजना प्रशासन (CPI) छोटे से कार्यालय के रूप मे था किन्तु बाद मे एक बडा सगठन हो गया। सन् १९५६ मे सामुदायिक विकास के लिये अलग मन्त्रालय स्थापित किया गया किन्तु सामुदायिक योजना प्रशासन (CPI) को समाप्त नही किया गया। प्रशासन स्थापित करने का प्रमुख्य उद्देश्य व्यापक आन्दोलन को एकात्मक मार्ग प्रदान करना था। प्रशासन की सहायता के लिये आयोजन, अर्थ, जन-प्रशिक्षण के लिये विशेषज्ञो की नियुक्ति की गयी। इनके अतिरिक्त कृषि, सिंचाई, शिक्षा, स्वास्थ्य आवास आदि के लिये परामर्श देने के लिये विशेषज्ञ भी नियुक्त हुये।

सामुदायिक विकास मन्त्रालय सामुदायिक विकास कार्यक्रम के लिये उत्तरदायी है। यह मन्त्रालय राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रम तैयार करने, योग्य बनाने, बजट निर्धारित करने, निर्देशन देने तथा देश व्यापी कार्य क्रम के समन्वय का कार्य करता है। प्रारम्भ मे यह मन्त्रालय केवल सदेश वाहक रूप मे था। इसका मुख्य कार्य विभिन्न मन्त्रालयो तथा राज्य विकास आयुक्तो के मध्य सामजस्य स्थापित करना था। केन्द्र मे विभिन्न मन्त्रालय तथा राज्य सरकारें अपने अपने क्षेत्रो मे विकास खण्डो के

माध्यम से सम्पूर्ण विकास कार्यक्रम को चलाते थे और सामुदायिक विकास मन्त्रालय उनके कार्यो में समन्वय स्थापित करता था। कुछ समय पश्चात् यह अनुभव किया गया कि सहकारिता तथा ग्राम्य स्वराज विषय भी सामुदायिक विकास मन्त्रालय के साथ मिला देने आवश्यक है। श्री बलवत राय समिति ने इसके पक्ष में सिफारिश की। फलत भारत सरकार ने पचायत तथा सहकारिता को इस मन्त्रालय मे मिला दिया। हमारे देश मे सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के सगठन में समय समय पर परिवर्तन किये गये हैं किन्तु सगठन का वर्तमान ढांचा निम्न प्रकार है —

केन्द्र

सामुदायिक विकास कार्य-क्रम के लिये केन्द्र मे सामुदायिक विकास एव सहकारी मन्त्रालय है। केन्द्रीय समिति- मे मूल नीति निर्धारित की जाती है। वर्तमान समय मे इसके सदस्य खाद्य, कृषि तथा सामुदायिक विकास एव सहकारिता मन्त्री और आयोजन आयोग के सदस्य हैं। प्रधानमन्त्री अध्यक्ष होता है।

राज्य स्तर

सामुदायिक विकास कार्य-क्रमो को कार्य रूप मे परिवर्तित करने का दायित्व राज्य सरकारो का है। राज्य स्तर पर राज्य विकास समिति अथवा इसके समकक्ष अन्य समिति होती हैं। समितियो के अध्यक्ष मुख्य मन्त्री होते हैं। सदस्यो मे विकास विभागो के मन्त्री तथा विकास से आयुक्त सचिव होते हैं। विकास आयुक्त राज्यो मे सामुदायिक विकास खण्डो का मार्ग दर्शन करते हैं। यह राज्य के विकास विभागो के मुख्य अधिकारियो का प्रमुख होता है। इसका काय विभिन्न विभागो के विकास कार्यों को समन्वित करना है। विकास आयुक्त के कार्यों को निम्न तीन भागो मे बाँटा जाता है —

(i) विकास आयुक्त केन्द्र से निर्देशन प्राप्त करता है और केन्द्र को राज्य मे *विकास का प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। वह कायक्रम के सम्बन्ध* मे केन्द्र को अपने सुझाव भी भेजता रहता है।

(ii) केन्द्र मे जिस प्रकार सामुदायिक विकास मन्त्रालय कार्य करता है उसी प्रकार राज्यो मे विकास आयुक्त कार्य करता है। आयुक्त राज्य मे विकास कार्य-क्रमो का समन्वय करता है। समय-समय पर उचित एवं आवश्यक निर्देशन भी सम्बन्धित अधिकारियो को देता रहता है।

(iii) विकास आयुक्त जिलाधीश के साथ प्रशासनिक सम्बन्ध बनाये रखता है।

इस प्रकार विकास आयुक्त केन्द्र तथा राज्य के वास्तविक कार्य क्षेत्र अधिकारियो के मध्य एक महत्वपूर्ण कडी है। यह अधिकारी राज्य स्तर पर प्रत्येक प्राविधिक मन्त्रालय एव विभाग से निकट का सम्बन्ध स्थापित रखता है। प्रत्येक खण्ड को आवश्यक कर्मचारियो की सहायता की योजना भी यही तैयार करता है।

जिला स्तर

जिला स्तर पर कार्यक्रम चलाने के लिये जिला परिषदो की स्थापना की गयी है। इनम पचायत समितियो के प्रधान, संसद सदस्यों और विधान सभा के

सदस्यो सहित जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। जिला स्तर पर प्रशासन अधिकारी जिलाधीश होता है।

खण्ड स्तर

प्रत्येक जिले मे विकास खण्ड होते है। खण्ड स्तर पर पचायत समितियो की स्थापना की गयी है। पंचायत समितियो मे ग्राम पचायतो के सरपच, निर्वाचित स्त्रियां और पिछडी एव अनुसूचित जातियो के प्रतिनिधि सम्मिलित होते है। समिति के निर्देश मे खण्ड विकास अधिकारी (Block Development Officer) और कृषि सहकारिता पशुपालन आदि से सम्बन्धित आठ विस्तार अधिकारी कार्य करते है।

ग्राम स्तर

ग्राम पचायत, ग्राम स्तर पर कार्यक्रम का नियन्त्रण करती है। ग्राम स्तर पर प्रशासन का कर्मचारी ग्राम सेवक होता है। यह बहुधन्धी विस्तार कार्य-कर्ता होता है। विकास खण्ड के विभिन्न तकनीकी विशेषज्ञों का निर्देशन तथा सहायता ग्राम सेवक को मिलती रहती है। इस प्रकार सामुदायिक विकास काय क्रम के प्रशासनिक ढांचे मे अतिम कडी पर ग्राम सेवक होता है।

विकास खण्ड के कर्मचारी

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है विकास खण्ड मे खण्ड विकास अधिकारी महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है। ग्रामीण विकास के कायक्रमो को सफलता पूर्वक चलाने के लिये ही खण्ड अधिकारी का पद निर्धारित किया गया। खण्ड बनने से पूर्व तकनीकी विभाग कार्यक्रम चलाया करते थे किन्तु अनेक समस्याओ के कारण खण्ड विकास अधिकारी का पद आवश्यक समझा गया। इस पद के लिये राज्य सरकार की प्रशासकीय सेवा, कृषि विभाग, राजस्व विभाग तथा अन्य विभागों से अधिकारी लिये गये। इन व्यक्तियो को सामुदायिक विकास के सम्बन्ध मे छ सप्ताह का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसके पश्चात् छ सप्ताह का दूसरा प्रशिक्षण भी दिया जाता है जो कि खण्ड अधिकारी की मदद की जिम्मेदारियो के सम्बन्ध में होता है। वास्तव मे देखा जाये तो ग्रामीण विकास की सफलता खण्ड विकास अधिकारी की योजना पर बहुत अश तक निर्भर है। वह खण्ड स्तर पर विकास कार्यक्रम के कर्मचारियो का कैप्टिन है। खण्ड विकास अधिकारी विभिन्न प्रसार अधिकारियो के कार्यो मे समन्वय स्थापित करता है।

खण्ड विकास अधिकारी के कार्य

खण्ड विकास अधिकारी खण्ड दल (Block Team) का प्रशासकीय अधिकारी होता है। इसके मुख्य कार्य निम्न लिखित है —

(१) खण्ड विकास अधिकारी खण्ड में कृषि कार्य क्रमो के लिये अपने नीचे के अधिकारियो की सहायता से योजना तैयार करता है। आने वाले वर्ष के लिये कृषि उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। इनके लिये वर्तमान फसलो के नमूनों उत्पादन स्तर प्राय आन्तरिक एव बाहरी साधनो आदि के सम्बन्ध मे सर्वेक्षण करवाना पडता है। इन साधनो तथा वतमान परिस्थितियो के आधार पर भविष्य के लिये

योजना तैयार की जाती है। उत्पादन के सम्बन्ध मे विभिन्न लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं।

(२) खण्ड विकास अधिकारी का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है कृषि योजनाओं की सफलता के लिये आन्तरिक तथा बाहरी साधनो का अच्छी तरह सगठन करना। इस कार्य के अन्तर्गत उचित समय पर बीज, खाद, उर्वरक, सिंचाई का सामान, उन्नत उपकरण आदि का वितरण करना। इस कार्य को पूर्ण करने के लिये विकास अधिकारी को अपने खण्ड के कृषि कार्यों के लिये एक चार्ट तैयार करना चाहिए। उसे यह भी ज्ञात होना चाहिये कि उपरोक्त आवश्यक वस्तुयें कहाँ उपलब्ध हो सकती हैं ताकि समय पर इनको उपलब्ध कराया जाये।

(३) खण्ड विकास अधिकारी खण्ड स्तर पर ग्रामीण विकास गतिविधियो का समन्वय भी करता है। अपने से नीचे के अधिकारियो का सहयोग प्राप्त करने के लिये समन्वय अत्यन्त आवश्यक है। समन्वय अधिकारी होने के नाते विकास अधिकारी को अपने नीचे के कर्मचारियो की समय-समय पर बैठकें बुलानी चाहिये।

(४) खण्ड विकास अधिकारी अपने खण्ड मे कार्य करने वाले प्रशासकीय अधिकारियो का प्रशासकीय अध्यक्ष होता है अत उनके कार्यों की देख-रेख करना उसका प्रमुख उत्तरदायित्व है। खण्ड अधिकारी प्रसार अधिकारियो के घूमने के कार्यों (Tour programmes) का आयोजन एव समन्वय करता है। वह ग्राम सेवको के मुख्य कार्यालयो की देख-रेख के लिये जाते हैं और उनके रजिस्टर तथा रिकार्ड की जाँच करते हैं। ग्राम सेवको ने दिये गये निर्देशनो के आधार पर कार्य किया है या नही और रिकार्ड उचित प्रकार से रखे हैं या नही आदि के सम्बन्ध मे जाँच भी की जाती है।

(५) खण्ड विकास अधिकारी अपने खण्ड मे प्रगति एव लक्ष्यो की प्राप्ति के सम्बन्ध मे मूल्यांकन करते हैं। लक्ष्य एव प्राप्तियो को ध्यान मे रख कर यह मालूम करते हैं कि विकास कार्यक्रमो से कहाँ तक सफलता मिली है।

(६) *खण्ड विकास अधिकारी पचायत समिति के गैर सरकारी अधिकारी के* अन्तर्गत सचिव का भी कार्य करता है।

(७) खण्ड विकास अधिकारी समय-समय पर ग्रामीण जनता को सामुदायिक विकास के महत्त्व की जानकारी प्रदान करने के लिये और ग्रामीण आवश्यकताओं की जानकारी के लिये अनेक प्रकार के आयोजन करता है। वह ग्रामीण नेताओ से विचार विमर्श करता है।

खण्ड विकास अधिकारी खण्ड स्तर पर अनेक विकास कार्यों के लिये खण्ड कार्यक्रम तैयार करता है। खण्ड कार्यक्रम निम्नलिखित कार्यों से सम्बन्धित है— (१) कृषि (२) सिंचाई (३) बजर भूमि का सुधार (४) पशुपालन (५) सहकारिता (६) ग्रामीण एव लघु उद्योग (७) यातायात व्यवस्था (८) शिक्षा एव सामाजिक शिक्षा (९) स्वास्थ्य, सफाई एव गृह-निर्माण (१०) स्त्रियाँ एव शिशु कल्याण आदि। कुछ अन्य कार्य भी ग्रामीण आवश्यकताओ के आधार पर इनमें सम्मिलित किये जा सकते हैं।

खण्ड के प्रसार अधिकारी

सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे खण्ड स्तर पर विभिन्न कार्यों के लिये कुछ विशेषज्ञ नियुक्त किये जाते हैं जो अपने-अपने क्षेत्र मे प्रचार की विधियो की जानकारी प्रदान करते हैं। ये अधिकारी ग्राम सेवको को मार्ग प्रदर्शन करते हैं। प्रत्येक खण्ड मे ८ विस्तार अधिकारी होते है—जो निम्न प्रकार है (१) कृषि विस्तार अधिकारी (२) पशु सुधार अधिकारी (३) पचायत अधिकारी (४) सहकारिता अधिकारी (५) ग्रामीण एव लघु उद्योग अधिकारी (६) निर्माण अधिकारी (७) शिक्षा तथा समाज शिक्षा अधिकारी (८) स्त्रियाँ एव शिशु कल्याण अधिकारी। प्रसार अधिकारी खण्ड स्तर पर अपने-अपने क्षेत्रो मे परामर्श देते हैं। प्रसार अधिकारियो को एक तरफ ग्राम सेवको तथा खण्ड विकास अधिकारी के मध्य कडी का काम करना पडता है और दूसरी तरफ जन सहयोग प्राप्त करना पडता है।

(१) कृषि प्रसार अधिकारी

कृषि विकास कार्यक्रम ग्रामीण विकास मे बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारतवर्ष मे कृषि उत्पादकता बहुत निम्न है। उत्पादकता मे वृद्धि करने के लिये कृषि मे वैज्ञानिक विधियो को अपनाना नितान्त आवश्यक है। हमारे देश मे अधिकाँश किसान अशिक्षित हैं अत आधुनिक विधियाँ एव उपकरण काम मे लाने मे बडी कठिनाई उत्पन्न होती है। कृषको को इन विधिया से परिचित करवाना पडता है। कृषि प्रसार अधिकारी आधुनिक अनुसधान एव प्रयोगो से परिचित होता है। किसानो को जानकारी देने के लिये कृषि प्रसार अधिकारी प्रदर्शनो का प्रबन्ध करता है जिनमे उन्नत बीज, रासायनिक खाद का उपयोग, उन्नत औजार एव वैज्ञानिक विधियो का उपयोग बतलाया जाता है। किसानो को वह समय-समय पर उचित परामर्श देता है। कृषि प्रसार अधिकारी फसल को नष्ट करने वाले कीडे मारने के नवीन तरीके और पौधो की बीमारियो का निदान करने की विधियाँ बतलाता है। हमारे देश मे अधिकाँश क्षेत्रो मे अनाज रखने की अच्छी व्यवस्था नही है। इसके कारण बहुत अनाज नष्ट हो जाता है। आजकल सहकारिता के क्षेत्र मे भण्डार की व्यवस्था की जा रही है। प्रसार अधिकारी किसानो को इन गोदामो का लाभ उठाने को प्रेरित कर सकता है। इसके अतिरिक्त मेड बाँधना, वृक्षारोपण, भू सरक्षण आदि कार्य भी यही अधिकारी देखता है।

कृषि प्रसार अधिकारी किसानो को तकावी ऋण प्राप्त करने मे उचित सहायता प्रदान करता है। कृषको को कम्पोस्ट खाद बनाने मे भी सहायता देता है। यह किसानो को हरी खाद के लिये खेतो मे मू ग, सनई गुवार आदि लगाने की सलाह देता है।

(२) पशु सुधार अधिकारी

भारतवर्ष मे पशु विकास समस्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पशु विकास के मार्ग मे अनेको कठिनाइयाँ है। भारतीय पशुओ की स्थिति बहुत खराब है। उनको पर्याप्त मात्रा मे चारा नही मिल पाता है और न ही शुद्ध पानी मिल पाता है। उनके रहने के लिये अच्छे प्रबन्ध का अभाव पाया जाता है। अनेक कारणो से भारतीय पशुओ से विश्व के अन्य पशुओं की तुलना मे बहुत कम दूध प्राप्त होता है। हमारे देश

मे मवेशियो की संख्या विश्व के अन्य देशो की तुलना मे सर्वाधिक है किन्तु अधिकांश निम्न कोटि के हैं। पशुओ से दूध के अतिरिक्त, मास, चमडा, सींग, दात, हड्डियाँ आदि प्राप्त होते है। पशुओ के गोबर से अच्छी किस्म की खाद तैयार की जाती है। अत इनको उन्नत बनाने के लिये खण्ड विकास मुख्यालय मे आदर्श ग्राम परियोजना प्रारम्भ की गयी है। इस परियोजना के अन्तर्गत आधुनिक विधियो से मवेशियो की देखभाल, निवास की उचित व्यवस्था, भेड बकरियो के विकास के प्रयत्न, मछली पालन, आदर्श कुक्कुट केन्द्र आदि काय-क्रम सम्मिलित किये गये है। खण्डो मे मवेशियो की नस्ल सुधारने के लिये उन्नत नस्ल के सांड की व्यवस्था की जाती है। जिन भागो मे साँड नही रखे जाते हैं वहाँ पर कृत्रिम गर्भाधान की सुविधाओ दी जाती है। पशुओ की नस्ल सुधारने के लिये अच्छे एव पर्याप्त चारे की व्यवस्था भी आवश्यक है। पशु सुधार अधिकारी इन कायक्रमो को चालू करने तथा काय रूप मे परिणित करने मे पर्याप्त सहायता प्रदान करता है। अनेको पशुओ की रोगो के कारण मृत्यु हो जाती है। ये अधिकारी रोगो का निदान करते है। पशुओ को बीमारियों से बचाने के लिये टीका लगाने का प्रबन्ध भी करते हैं।

भारतवर्ष मे भेड पालन व्यवसाय भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ भेडो की संख्या पर्याप्त है किन्तु उनकी स्थिति अच्छी नही है। अधिकाश भेडो की नस्ल अच्छी नही है। उनसे ऊन कम तथा अच्छी किस्म की नही मिल पाती है। अत इनकी नस्ल सुधारने मे प्रसार अधिकारी बहुत सहायता करते हैं। मुर्गीपालन भी ग्रामीण क्षत्रो मे आय का मुख्य साधन है। इनके लिये अच्छी किस्म के पक्षियो का वितरण किया जा रहा है। सरकार आदर्श मुर्गी खाने बनाने के लिय आर्थिक सहायता भी प्रदान कर रही है प्रसार अधिकारी इन कायक्रमो मे पर्याप्त मदद करता है। जिन भागो मे मछली पालन सुविधायें हैं वहाँ इसे भी उन्नत किया जा रहा है। अत पशु प्रसार सुधार अधिकारी पशु विकास के लिये बहुत आवश्यक है।

(३) पंचायत प्रसार अधिकारी

पचायत प्रसार अधिकारी पचायतो के विकास के प्रयत्न करता है। पहले पचायत तथा सहकारिता के लिये प्रत्येक खण्ड मे एक ही अधिकारी होता था किन्तु बाद मे अलग-अलग अधिकारी नियुक्त किये गये। पचायत प्रसार अधिकारी ग्रामीण जनता को आत्म-निर्भरता के महत्त्व की जानकारी देता है। पचायतो के माध्यम से अधिकाधिक काम करवाने मे यह अधिकारी पर्याप्त सहायता प्रदान करता है। पचायत प्रसार अधिकारी को पचायत सचालन के विषय मे विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। यह अधिकारी शिक्षा तथा प्रचार के माध्यम से पचायतो की स्थिति सुधारने मे मदद करता है। ग्रामीण जनता को पचायत का कल्याणकारी राज्य मे महत्त्व बतलाना का सर्वोत्तम स्रोत यही अधिकारी हो सकता है। वह पचायतो का आकार विस्तृत करने के प्रयत्न करता है। ग्रामीण कार्य-क्रम बहु-धन्धी होते हैं अत पचायत के लिये सभी कार्य साथ करने मे कठिनाई होती है। पचायत प्रसार अधिकारी उप-समितियाँ बनाने की सलाह देता है। पचायत अधिकारी खण्ड विकास अधिकारी के सहयोग से जनता को पचायत के नियमो की जानकारी देन के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। यह अधिकारी पचायतो को बजट बनाने मे सहायता प्रदान करता है। कार्यक्रम म प्राथमिकता निर्धारित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसमे अधिकारी मदद करता है। कार्य-क्रम के लिये लक्ष्य निर्धारित करने मे उसकी सहायता अपेक्षित

है। पंचायत समिति तथा ग्राम पंचायतों में निकट के सम्बन्ध की आवश्यकता पड़ती है। प्रसार अधिकारी इन दोनों संस्थाओं का आवश्यक एवं उचित मार्ग दर्शन भी करता रहता है। इनके अतिरिक्त वह ग्रामीण आवश्यकताओं के आधार पर नियोजन, स्वीकृत कार्यक्रमों को कार्यरूप देना। ग्रामों में मानव एवं साधन शक्ति का संगठन और प्रगति का मूल्यांकन करता है।

(४) सहकारिता अधिकारी

भारतवर्ष के ग्रामीण विकास में सहकारिता को उल्लेखनीय स्थान प्रदान किया गया है। कृषि, ग्रामीण उद्योग, वाणिज्य, रोजगार आदि ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में इसकी बड़ी आवश्यकता है। ग्रामों में कृषि साख समितियां, विपणन समितियाँ, यातायात समितियाँ, सहकारी खेती, बुनकर समितियाँ, आवास समितियां आदि स्थापित की गयी हैं। सहकारिता प्रसार अधिकारी इन समितियों के विकास में पर्याप्त सहायता प्रदान करता है। भारतीय कृषक एवं अधिकांश ग्रामीण जनता अशिक्षित है अतः सहकारिता के महत्व को अभी तक समझ ही नहीं पायी है। यह अधिकारी जनता को सहकारिता के सिद्धान्तों से अवगत कराता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता के विकास के सम्बन्ध में अनेक बाधायें हैं। इनके निराकरण के उचित उपाय ढूँढना इस अधिकारी का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। खण्ड में सहकारी समितियों की देख रेख करना, नवीन समितियों का संगठन करना तथा कमजोर समितियों को सुदृढ़ बनाने में सहायता देना आदि कार्य भी प्रसार अधिकारी करता है। वह अधिकांश ग्रामीण जनता को सहकारी क्षेत्र में लाने के प्रयत्न करता है। सहकारी विपणन व्यवस्था, सहकारी खेती, उचित भण्डारण, सेवा सहकारियों के द्वारा यह अधिकारी ग्रामीण जनता को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। कृषि साख के क्षेत्र में किसानों को अल्प एवं दीर्घ कालीन ऋण दिलाने का प्रयत्न करता है।

(५) ग्रामीण एवं लघु उद्योग अधिकारी

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विकास में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का विशेष महत्त्व है। कृषक वर्ष के कुछ दिनों में बेरोजगार रहते हैं। कृषि भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में ग्रामोद्योग का विकास अत्यन्त आवश्यक है। खण्ड स्तर पर इसके विकास के लिए एक प्रसार अधिकारी होता है यह अधिकारी प्राचीन उद्योगों को प्रोत्साहित करता है तथा स्थानीय साधनों के आधार पर नवीन उद्योगों के विकसित करने के प्रयत्न करता है। वह खण्ड में अतिरिक्त कच्चे माल, मानव शक्ति, बाजार, कार्यक्षमता आदि का अध्ययन करके उद्योगों के विकास की सम्भावना की जानकारी करता है। जिन उद्योगों की अधिक सम्भावना है उनके संगठन के निरन्तर सुझाव देता है। जिन व्यक्तियों के पास वर्ष से पूरे दिनों के लिये रोजगार नहीं है, उन्हें रोजगार बतलाता है। जनता को उद्योगों के विकास के लिए प्राविधिक तथा वित्त सहायता जो मिल सकती है उसे दिलवाने का प्रयत्न करता है। कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों के सामने तैयार माल के विपणन की बड़ी भयंकर समस्या है। प्रसार अधिकारी बिक्री में पर्याप्त मदद करता है। उद्योगों को चलाने के विषय में इससे जानकारी प्राप्त की जा सकती है। विभिन्न उद्योगों के सम्बन्ध में निरन्तर अनुसन्धान कार्य चलते रहते हैं। इन अनुसन्धानों के नतीजे इस अधिकारी द्वारा जनता तक पहुँचाये जाते हैं। ग्राम विकास के लिये यह अधिकारी अनेक प्रयत्न करता है।

(६) निर्माण अधिकारी

प्रत्येक विकास खण्ड मे एक निर्माण अधिकारी अथवा ओवरसियर होता है। ग्रामीण क्षेत्रो मे स्वास्थ्य, सफाई, आवास आवागमन, खेती तथा लघु सिंचाई कार्यों के लिए कई प्रकार के निर्माण कार्य होते हैं। इन कार्यों मे तकनीकी सहायता की आवश्यकता पडती है। निर्माण अधिकारी इन क्षेत्रो मे पर्याप्त सहायता प्रदान करता है। जिन भागो मे पानी उपलब्ध है वहां सर्वेक्षण कार्य इस अधिकारी द्वारा किये जाते हैं। कुंए, तालाब आदि निर्माण मे सहायता देता है। गृह निर्माण कार्यों मे वह आदर्श घर बनाने मे सहायक होता है। ग्रामो मे यातायात की व्यवस्था के लिये सडको का निर्माण करवाने मे मदद देता है। ग्रामो मे अनेक स्थानो पर कच्ची सडको का निर्माण किया जाता है उनमे भी ओवरसियर से आवश्यक सहायता ली जा सकती है। ग्रामो मे पाठशालाये, औषधालय, पंचायत भवन आदि के नक्शे बनाना है। इनके अतिरिक्त यह ग्रामो मे गलियो को पक्का बनवाने, पीने के पानी के कुंए बनाने तथा अन्य निर्माण कार्यों मे देख-रेख करता है।

(७) शिक्षा तथा समाज शिक्षा अधिकारी

भारतवर्ष मे साक्षरता अभियान सामुदायिक विकास कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग है। सामुदायिक विकास की सफलता के लिए जन सहयोग नितान्त आवश्यक है किन्तु यह तभी मिल सकता है जबकि जनता शिक्षित हो। इसके लिए खण्ड स्तर पर समाज शिक्षा अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। इस अधिकारी के कार्य सम्पूर्ण विकास कार्यक्रम को जनता के सामने रखना, उसका महत्त्व समझाना विकास कार्यक्रमो के प्रति रुचि पैदा करना आदि मुख्य हैं। ये सामुदायिक भावना जागृत करते हैं। गोष्ठियों तथा सामूहिक विचार विमर्श के माध्यम से लोगो मे मिल जुल कर समस्याओ को दूर करने की आदत विकसित करते हैं। वे शिक्षा के माध्यम के विकास का उचित माध्यम उपस्थित करते हैं। इसके अतिरिक्त युवक मण्डल, महिला समूह, किसान मण्डल, विभिन्न रुचि के समूह आदि का निर्माण करना भी मुख्य कार्य है। समाज शिक्षा अधिकारी साक्षरता आन्दोलन, साक्षरता के लिए शिक्षा का आयोजन, स्वास्थ्य शिक्षा, नागरिकता के लिये शिक्षा, ग्राम पुस्तकालय तथा वाचनालय की स्थापना आदि कार्यक्रमो का आयोजन करता है। मनोरंजन तथा सास्कृतिक गतिविधियो मे भी यह प्रसार अधिकारी सहायता प्रदान करता है। ये गतिविधियां लोकनृत्य, नाटक, भजन, कीर्तन, कथायें, मेले, प्रदर्शनियाँ, खेल, तमाशे आदि हैं।

(८) महिला एव शिशु कल्याण अधिकारी

महिलाओं तथा शिशु कल्याण के लिये खण्ड स्तर पर एक अधिकारी होता है। यह कार्य महिलाएँ ही अच्छी तरह से कर सकती हैं। विकास कार्यक्रमो मे महिलाओ के लिये साक्षरता केन्द्र स्थापित किया जाता है। स्त्रियो के लिये सीना पिरोना, कपडे बुनना, खिलौना बनाना, अम्बर चरखा, तथा अन्य दस्तकारियाँ बहुत लाभदायक हो सकती हैं। यह अधिकारी इन कार्यों मे पर्याप्त सहायता प्रदान करता है। बालको के कल्याण कार्यों मे भी ये बहुत सहायक होते हैं।

ग्राम सेवक

ग्राम सेवक सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रशासनिक ढाँचे मे सबसे अन्तिम कडी है। ग्रामीण विकास मे उसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। वह एक बहुप्रयोजन कर्मचारी होता है। ग्राम सेवक के मुख्य कार्य लोगो को उनकी समस्याओ से अवगत कराना, साधनो का उचित उपयोग बताना, अच्छे जीवन बिताने की भावना जाग्रत करना, कृषि विकास मे उन्नत बीज तथा आधुनिक उपकरणों का महत्त्व समझाना, सरकारी तथा अन्य स्रोतो से सहायता दिलवाना आदि हैं। कृषको की हालत सुधारने के लियें नवीन विधियों का उपयोग बतलाना भी उसी का कार्य है। कृषि के अतिरिक्त सभी प्रकार के विकास कार्यक्रमो मे वह किसानो का मार्ग दर्शक, मित्र एव सहायक है।

ग्राम सेविका

सामुदायिक विकास आन्दोलन प्रारम्भ होने के कुछ समय पश्चात् यह आवश्यक समझा गया कि महिलाओ के कार्यक्रम की सफलता के लिए ग्राम सेविकाओ की नियुक्ति की जाये। प्रत्येक खण्ड मे दो ग्राम सेविकाओ की व्यवस्था की गयी। ये सेविकाएँ महिलाओ के कार्यक्रम को सफल बनाने मे सहायता प्रदान करती है। भारतवर्ष मे ग्रामीण परिस्थितियो से परिचित ग्राम सेविकाओ का अभाव है अत उनका कार्य कोई सन्तोषजनक नहीं रहा है। कुछ भागो मे जहाँ स्त्रियाँ कुशल नेता हैं और उनको समर्थन मिला है वहाँ ग्राम सेविकाओ ने अच्छा कार्य किया किया है।

अन्य

उपरोक्त कर्मचारियो के अतिरिक्त प्रगति सहायक, चिकित्सक, स्टोक मैन, कम्पाउन्डर, लेडी हेल्थ विजिटर, सैनिटरी इन्स्पेक्टर आदि भी हैं। प्रगति सहायक खण्ड अधिकारी की सहायता से सांख्यिकी का कार्य सम्भालता है। चिकित्सक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की देखरेख करता है। वह रोग को फैलने से रोकता है। कम्पाउण्डर इस प्रकार के औषधालयो मे मलहम तथा दवा आदि तैयार करता है। वह चिकित्सक की सहायता करता है। चिकित्सक को, सफाई इन्स्पेक्टर, खण्ड के स्वास्थ्य सर्वेक्षण मे पर्याप्त सहायता करता है। लेडी हेल्थ विजिटर गर्भवती स्त्रियो तथा शिशुओ के स्वास्थ्य की देख-रेख करती है।

५

पचवर्षीय योजनाओ मे सामुदायिक विकास

पचवर्षीय योजनाओं मे ग्रामीण सर्वांगीण विकास के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपनाया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण विकास का व्यापक दृष्टिकोण है। यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ से पूर्व ग्रामोन्नति के अनेक प्रयत्न किये गये थे किन्तु पर्याप्त सफलता नही मिल सकी थी। इनके मुख्य कारण थे जन सहयोग की उपेक्षा करना तथा देहातो के बहुमुखी विकास के कार्यक्रमो का अभाव। वर्तमान सामुदायिक विकास योजनाओ मे विकास करने वाली सरकारी सस्थाएँ पूर्व आयोजित और समन्वित कार्यक्रमो मे एक साथ मिलकर कार्य करती हैं। इनके माध्यम से राष्ट्रीय योजना देहाती जीवन की आवश्यकताओं की तरफ अग्रसर होती है। पचवर्षीय योजनाओ मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्राम सुधार के अब तक किये गये समस्त प्रयत्नो मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योकि पर्याप्त आर्थिक साधनो, तकनीकी ज्ञान, अनुभव, ग्राम्य सहयोग के आधार पर इसे केन्द्र तथा राज्य सरकारो द्वारा प्रारम्भ किया गया है। योजना बद्ध आर्थिक विकास मे ग्रामीण समुदायो की सामाजिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं किन्तु उनमे सामुदायिक विकास सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास

भारतवर्ष मे सामुदायिक विकास का सूत्रपात २ अक्तूबर १९५२ को चुने हुये ५५ परियोजना केन्द्रो मे हुआ। प्रत्येक योजना का क्षेत्र लगभग ५०० वर्गमील रखा गया जिसमे ३०० गाँव सम्मिलित किये गये। एक परियोजन मे तीन विकास खण्ड रखे गये जिनमे प्रत्येक मे १०० ग्राम तथा लगभग ६०-७० हजार जनसख्या सम्मिलित की गयी। प्रथम योजना काल मे राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास योजना कार्य के क्षेत्र मे ९० करोड रुपये व्यय किये गये जो कि कुल व्यय का ३·८ प्रतिशत था। प्रथम योजना के अन्त मे कुल मिलाकर १२०० विकास खण्ड बनाये गये। इनमे से ३०० विकास खण्ड सामुदायिक विकास तथा ९०० विकास खण्ड राष्ट्रीय विस्तार सेवा योजना के आधीन हैं। कुछ अवधि के पश्चात् राष्ट्रीय विस्तार

सेवा के ४०० विकास खण्डो मे बहुत तेज गति से विकास कार्य किये गये। सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार एक ही कार्यक्रम के परस्पर सम्बद्ध पक्ष थे। प्रथम योजना मे १२२९५७ ग्राम इस योजना के अन्तर्गत लाये गये जिसमे से सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार मे क्रमश ३२९५७ तथा ९०,००० थे। देश मे कुल ७९८ लाख जनसख्या सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार कार्यक्रमो के अन्तर्गत थी। इसमे से २०४ लाख व्यक्ति सामुदायिक तथा ५९४ लाख व्यक्ति राष्ट्रीय विस्तार के अन्तर्गत थे। प्रथम योजना मे विकास की स्थिति नीचे दी गयी तालिका से स्पष्ट हो सकती है।

प्रथम योजना में चालू विकास खण्ड

	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५४-५५	१९५५-५६	योग
विकास खण्ड					
सामुदायिक विकास	२४७	५३	—	—	३००
राष्ट्रीय विस्तार	—	२५१	२५३	३९६	९००
योग	२४७	३०४	२५३	३९६	१२००
ग्राम सख्या					
सामुदायिक विकास	२५,२६४	७६९३	—	—	३२९५७
राष्ट्रीय विस्तार	—	२५१००	२५३००	३९६००	९००००
योग	२५२६४	३२७९३	२५३००	३९६००	१२२९५७
आबादी (लाखो मे)					
सामुदायिक विकास	१६४	४०	—	—	२०४
राष्ट्रीय विस्तार	—	१६६	१६७	२६१	५९४
योग	१६४	२०६	१६७	२६१	७९८

[स्रोत—द्वितीय पचवर्षीय योजना, पृष्ठ ८९]

प्रथम पचवर्षीय योजना मे सामुदायिक विकास का प्रारम्भ था अत अनेक कठिनाइयाँ सामने आयी। इस काल मे मूल्याकन की तीसरी रिपोर्ट मे कार्यक्रमो के कुछ व्यावहारिक अगो की तरफ ध्यान दिया गया।

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कार्यक्रम

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कार्यक्रम को और अधिक व्यापक रूप देने का कार्यक्रम तैयार किया गया। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इस बात पर बल

दिया कि दूसरी योजना के अन्त तक देश के सभी भागों मे राष्ट्रीय विस्तार खण्डो को सामुदायिक विकास खण्डो मे परिवर्तित कर देना चाहिये। इस काल मे ३८०० अतिरिक्त विकास खण्ड चलाने के लक्ष्य निर्धारित किये गये। इस समय यह भी व्यवस्था की गयी कि ११२० विकास खण्डों को सामुदायिक विकास खण्डो में बदल दिया जायेगा। द्वितीय योजना मे कार्यक्रम चलाने के लिये यह आवश्यक समझा गया कि ग्रामीण जनता में इन कार्यक्रमों मे भाग लेने की भावना जागृत की जाये। जन सहयोग इस आन्दोलन की आधारभूत मान्यता है। जनता स्वयं यह महसूस करे कि यह आन्दोलन उनका तथा उनके लिये ही है। अतः दूसरी योजना मे जन सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल देने के लक्ष्य रखे गए।

द्वितीय योजना के सामुदायिक योजना प्रशासन का अस्थायी कार्यक्रम
(खण्ड के लक्ष्य)

वर्ष	राष्ट्रीय विस्तार सेवा	सामुदायिक विकास खण्डो मे उनका परिवर्तन
१९५६-५७	५००	—
१९५७-५८	६५०	२००
१९५८-५९	७५०	२६०
१९५९-६०	९००	३००
१९६०-६१	१०००	३६०
योग	३८००	११२०

[स्रोत—द्वितीय पचवर्षीय योजना पृष्ठ ७०]

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे इस कार्यक्रम पर २०० करोड रुपए व्यय करने का प्रावधान किया गया। राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के माध्यम से कृषि उत्पादन के अतिरिक्त निम्नलिखित क्षेत्रों मे भी उल्लेखनीय प्रगति होगी।

(१) सहकारी कार्यक्रमो की प्रगति जिसमे सहकारी कृषि भी सम्मिलित है।

(२) ग्रामीण विकास की सक्रिय संस्थाओं के रूप मे पंचायतों का विकास।

(३) चकबन्दी।

(४) ग्रामीण तथा लघु उद्योगों की प्रगति।

(५) ग्रामो मे निर्बल व्यक्तियों की सहायता के लिए कार्यक्रम संगठित करना विशेषकर छोटे किसान, भूमिहीन किसान, श्रमिक तथा दस्तकारों के लिए।

(६) युवकों और महिलाओं के लिये विभिन्न कार्यक्रमों को तेज गति प्रदान करना।

(७) आदिवासी क्षेत्र में पर्याप्त कार्य करना।

ग्रामीण आवश्यकतायें जैसे ग्रामीण सड़कों का निर्माण, सफाई, पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्था शिक्षा आदि का कार्य आरम्भिक अवस्था में ही प्रारम्भ करना होगा। सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रमों की जाँच करने के लिए सन् १९५७ में एक दल नियुक्त किया गया था जिसके अध्यक्ष श्री बलवंत राय मेहता थे। इस दल के सुझाव बहुत महत्वपूर्ण हैं अत. उनके सम्बन्ध में जानना आवश्यक है।

मेहता समिति के सुझाव

मेहता समिति ने कार्यक्रमों की जाँच की और अपने प्रतिवेदन में इनको सफल बनाने के लिए अनेक सुझाव दिये जो निम्न प्रकार हैं -

(१) ग्रामीण विकास का काम जनता द्वारा चुनी गयी स्थानीय संस्थाओं को सौंप देना चाहिये। इस समिति ने लोकतन्त्रात्मक विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया। इसके लिए पचायत समिति तथा जिला-परिषद स्थापित करने का सुझाव रखा। ग्राम-पचायतें पचायत समितियों का चुनाव करेंगी। जिला स्तर पर जिला-परिषद होनी चाहिये जिसमे ग्राम पचायतों के अध्यक्ष उस क्षेत्र के ससद और राज्य विधानसभा के सदस्य तथा जिले के अधिकारी होंगे। जिलाधीश इन परिषदों के अध्यक्ष होंगे।

(२) समिति ने इस बात पर भी बल दिया कि योजनाओं के कार्यक्रम तथा उनके लक्ष्य स्थानीय प्रतिनिधियों के सहयोग से निर्धारित किये जाने चाहिये।

(३) समिति ने कार्यक्रम की तीन अवस्थाओं को समाप्त करने की भी सिफारिश की। ये तीन अवस्थायें (i) राष्ट्रीय विस्तार, (ii) सघन विकास (iii) सघन विकास के बाद की अवस्था आदि हैं।

(४) समिति का यह सुझाव भी महत्वपूर्ण था कि केन्द्र के विभिन्न मन्त्रालय जो ग्राम विकास के कार्यक्रम चला रहे हैं उनमें सामुदायिक विकास मन्त्रालय समन्वय स्थापित करे।

(५) समिति ने सुझाव दिया कि ग्राम सेवक के अन्तर्गत जो क्षेत्र रखा जाये वह अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए। जहाँ तक परिवारों तथा व्यक्तियों की सख्या का प्रश्न है समिति ने कहा कि एक ग्राम सेवक के अन्तर्गत ८०० परिवार अथवा ४००० जनसख्या से अधिक नहीं होना चाहिये।

(६) समिति ने कृषि और ग्रामोद्योग के विकास के सम्बन्ध में भी सुझाव पेश किया।

आन्दोलन का नवीन रूप

श्री बलवंत राय मेहता समिति के सुझावों के आधार पर सरकार के आन्दोलन को नवीन रूप प्रदान करने के लिये कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। उन परिवर्तनों का उल्लेख निम्न है :—

(१) सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पहले तीन अवस्थायें थी—राष्ट्रीय प्रसार सेवा, सघन तथा सघनोत्तर अवस्था। प्रथम अवस्था तीन वर्ष की थी जिसमे एक सीमित कार्यक्रम ही कार्यान्वित किया जाता था। इसमे चार लाख रुपये की लागत थी। द्वितीय चरण भी तीन वर्ष की अवधि का था। इसका ८ लाख रुपये का बजट रखा जाता था। तृतीय सोपान मे प्रत्येक वर्ष मे केवल तीस हजार रुपये ही व्यय किये जा सकते थे। श्री बलवन्त राय मेहता समिति ने इन अवस्थाओ के भेद को समाप्त करने की सिफारिश की। भारत सरकार ने सामुदायिक विकास के पाँच-पाँच वर्ष के दो सोपान बना दिये। प्रथम अवस्था मे १२ लाख रुपये और दूसरी मे ५ लाख रुपये रखे गये। इस परिवर्तन के फलस्वरूप सामुदायिक विकास को समस्त ग्रामीण क्षेत्रो मे व्यापक करने की अवधि अक्तूबर १९६० से बढाकर अक्तूबर १९६३ तक करदी।

(२) मेहता समिति ने लोकतन्त्रात्मक विकेन्द्रीकरण पर विशेष जोर दिया था। सन् १९५८ मे राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इस पर विचार किया और इसे आवश्यक घोषित किया। लोकतन्त्रात्मक विकेन्द्रीकरण के लिये ग्राम पचायते तथा ग्रामीण सहकारियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी गयी। जिला स्तर पर भी प्रजातान्त्रिक सस्थाओ की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। इस नीति के परिणामस्वरूप विकास योजनायें बनाने और लागू करने के अधिकार तथा साधन जनता की प्रतिनिधि सस्थाओं को सौप दिया गया। २७ अक्तूबर १९५९ मे सर्वप्रथम राजस्थान मे ऐसा प्रयत्न किया गया। इसके पश्चात् १ नवम्बर १९५९ मे आन्ध्रप्रदेश मे ये कदम उठाये गए। राजस्थान मे ग्रामीण स्तर पर ग्राम पचायते, विकास खण्ड स्तर पर पचायत समितियाँ तथा जिला स्तर पर जिला परिषदों की स्थापना की गयी। ग्रामीण जनता ग्राम पचायतों का चुनाव करती है। पचायत समितियो मे ग्राम पचायतो मे चुने गए सरपच, महिलायें, पिछडी जातियो तथा अनुसूचित जातियो के कुछ प्रतिनिधि भी होते है। जिला परिषदो मे जिले की पचायत समितियो के प्रधान उस जिले के ससद तथा राज्य विधान सभा के सदस्य तथा कुछ अन्य अधिकारी सदस्य होते हैं।

(३) नवीन परिवर्तनो मे खण्ड को योजना व विकास की इकाई बनाने पर जोर दिया गया। खण्ड मे योजना मे निम्न बातें सम्मिलित की जायेंगी —

(i) विकास खण्ड के कार्यक्रम तथा बजट की मदे।

(ii) विभिन्न विभागो के बजटो की मदें।

(iii) स्थानीय जनता के द्वारा किये गये कार्य।

(iv) अकुशल तथा अर्ध-कुशल मजदूरो के कार्य।

(v) अन्य कार्य।

उपरोक्त महत्वपूर्ण परिवर्तनो के आधार पर तृतीय योजना मे कार्य किया गया। द्वितीय योजना मे सामुदायिक विकास पर १८८ ८९ करोड रुपये व्यय किये गये जबकि प्रथम योजना मे ४६ १८ करोड रुपये ही व्यय किये गये थे। प्रथम एव दूसरी योजना मे व्यय निम्न प्रकार किया गया—

प्रथम तथा दूसरी योजना में व्यय

विवरण	प्रथम योजना (करोड रुपए)	द्वितीय योजना (करोड रुपए)
१ विकास खण्ड के प्रधान कार्यालय (यातायात, कार्यालय भवन तथा अन्य सामान सहित)	१०·४१	५४·७६
२. कृषि तथा पशु पालन	३·५५	११ ००
३ सिंचाई तथा अन्य	१० ८३	४८ ५९
४. ग्रामीण उद्योग	२·८१	७·०१
५. स्वास्थ्य तथा ग्रामीण सफाई	३ ७९	१६ ८७
६ शिक्षा	३·४४	१२·०६
७ सामाजिक शिक्षा	२ ००	१०·१९
८ संचार	५ १६	१२ ६१
९ गृह निर्माण	१ ७३	१०·९०
१०. अवर्गीकृत	२ ७६	३ १३
योग	४५·६८	१८७·१२

(Source India 1969 p 258)

उपरोक्त तालिका मे केन्द्रीय योजनाओं की राशि नहीं सम्मिलित की गयी है। इस मद मे प्रथम तथा द्वितीय योजनाओं मे क्रमश २० लाख रुपये तथा २ २७ करोड रुपए व्यय किये गये।

मुख्य संशोधित लक्ष्य तथा उपलब्धियाँ

मदें	लक्ष्य १९६०-६१	उपलब्धियाँ	
		१९५६-५७	१९६०-६१
१ विकास खण्ड संख्या	३११७	१२६४	३१००
२ अन्तर्गत आये गाँव हजार	३७०	२०९००	३७०
३ अन्तर्गत आयी जनसंख्या लाख	२०३१	११२७	२१००

[Sources —(i) दूसरी पंचवर्षीय योजना १९५९-६० की प्रगति रिपोर्ट
(ii) तृतीय पंचवर्षीय योजना।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के मूल्य लक्ष्यों मे परिवर्तन करके जो नवीन लक्ष्य निर्धारित किये गये थे उनमे ३११७ विकास खण्डों का लक्ष्य रखा गया था। योजना के अन्त मे ३१०० विकास खण्ड आरम्भ किये जा चुके थे। इनमें लगभग ३·७ लाख

ग्राम तथा २१ करोड व्यक्ति सम्मिलित हो चुके थे। विकास खण्डो मे एक तिहाई खण्ड इस प्रकार के थे जिनमे पाँच वर्ष की अवधि का प्रथम चरण पूर्ण हो चुका था।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास

तृतीय पचवर्षीय योजना मे द्वितीय योजना के अन्तिम वर्षों मे किये गये नवीन प्रयत्नो के आधार पर कार्यक्रम चलाने की व्यवस्था पर जोर दिया गया। योजना प्रारूप के अनुसार सामुदायिक विकास को नयी दिशा मे अग्रसर होना होगा तथा पुराने कार्यक्रमो मे नयी उपलब्धियाँ प्राप्त की जाएँगी। तृतीय योजना काल मे द्वितीय अवस्था मे लगभग दो हजार प्रखण्ड हो जाएँगे तथा एक हजार से भी अधिक विकास कार्यक्रम के दस वर्ष पूर्ण कर चुकेंगे। इस योजना के प्रारम्भिक रूपरेखा मे निम्नलिखित क्षेत्र निश्चित किये गए जिनमे कार्यक्रमो का आधार विकास खण्ड तथा जिला हों :—

(१) कृषि तथा इससे सम्बन्धित क्षेत्र जैसे लघु सिंचाई, भू-सरक्षण, पशु पालन ग्रामीण वन आदि।

(२) सहकारिता विकास।

(३) ग्रामीण तथा लघु उद्योग।

(४) प्राथमिक शिक्षा।

(५) ग्रामीण क्षेत्रों मे जल पूर्ति तथा अन्य आवश्यक सुविधायें।

(६) ग्रामीण मानव शक्ति के उत्तम उपयोग के लिए निर्माण कार्यक्रम।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे विकास खण्डो की सफलता स्वाघ्याय तथा आत्म निर्भरता के लक्ष्यो की प्राप्ति के आधार पर आँकी जायेगी। तीसरी योजना के प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित निर्धारित किये गये —

(१) राष्ट्रीय आय मे पाँच प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना। पूँजी का विनियोजन इस प्रकार करना कि वृद्धि का यह क्रम आगे भी चलता रहे।

(२) खाद्यान्न उत्पादन इतना बढाया जायेगा कि देश को बाहर से अनाज मँगवाने की आवश्यकता न पडे।

(३) आय तथा सम्पत्ति की विषमता को कम किया जायेगा।

(४) देश की मानव शक्ति के उचित उपयोग के प्रयत्न किये जायेंगे तथा अधिक व्यक्तियों को रोजगार की सुविधा प्रदान की जायेगी।

इन लक्ष्यो मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है। देश को स्वावलम्बी बनाने मे ग्रामीण उत्थान बहुत महत्वपूर्ण है। खाद्यान्नो का उत्पादन बढाने के लिये कृषि क्षेत्र मे पर्याप्त प्रयत्न करने होंगे। सामुदायिक विकास कार्यक्रम कृषि विकास के लिये सर्वोत्तम माने गये। रोजगार की सुविधायें ग्रामीण क्षेत्रो मे सामुदायिक विकास के माध्यम से उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी।

तृतीय योजना मे कार्यक्रम के लिये ३२१ ९ करोड रुपये की व्यवस्था की गयी थी। इस धन राशि मे से २८७ ७ करोड रुपये सामुदायिक विकास, २८ २ करोड रुपये पचायतो तथा ६ करोड रुपये केन्द्रीय योजनाओ के अन्तगत रखे गये थे। वष १९६१-६२ मे ५३ ५३ करोड रुपये तथा वष १९६२-६३ में ५५ ५३ करोड रुपये व्यय करने के प्रावधान रखे गये थे। किन्तु तीसरी योजनावधि मे कुल व्यय २६९ १ करोड रुपये हुआ। इसमे से २६७ ३२ करोड रुपये विभिन्न क्षत्रो मे निम्न प्रकार व्यय किये गय (शष केन्द्र योजनाओ मे व्यय किये गये) —

तीसरी योजना में व्यय

	विवरण	तीसरी योजना (करोड रुपये)
१	विकास खण्ड प्रधान कार्यालय (यातायात कार्यालय भवन तथा अन्य सामान को सम्मिलित करते हुये)	८० ९९
२	कृषि एव पशु पालन	३० ३१
३	सिचाइ तथा भूमि सरक्षण	५८ ६७
४	ग्रामीण उद्योग	१३ ५३
५	स्वास्थ्य एव सिचाई	२३ १८
६	शिक्षा	१४ ०६
७	सामाजिक शिक्षा	१३ ७९
८	सचार	१८ ४८
९	गृह निर्माण	११ ६७
१०	विविध	२ ८४

(Source India 1969 p 258)

तृतीय पचवर्षीय योजना मे विशेष कायक्रमो के अन्तर्गत ग्रामीण मनुष्य शक्ति के उपयोग का कायक्रम कुओं के निर्माण का कायक्रम आदि थे। ग्रामीण मनुष्य शक्ति को रोजगार सुविधायें प्रदान के प्रयत्न किये गये। तीसरी योजना मे १९ ३३ करोड रुपये इस कार्यक्रम पर व्यय किए गए जिससे ८ २५ लाख मनुष्य दिन (Mondays) का रोजगार दिया गया। रोजगार सुविधाये निर्माण कायक्रमो जैसे लघु सिचाई सुविधाओ, मिट्टी के कटाव को रोकने वृक्षारोपण, बाढ नियन्त्रण, सडको के निर्माण आदि मे प्रदान की गयी। तीसरी योजना मे १६१५०६ कुओं का निर्माण किया गया।

तीसरी योजना में प्राप्तिया

मदें	कुल प्राप्तियाँ वर्षान्त १९६५-६६
(i) कृषि:	
(१) उन्नत बीज वितरित किये गये (क्विंटल)	५७७००००
(२) रासायनिक उर्वरक वितरित किये गये (क्विंटल)	२९१३७०००
(३) रासायनिक पेस्टी साइडस वितरित किये गये (क्विंटल)	२९३२०४
(४) उन्नत उपकरण वितरित किये गये (संख्या)	७९२२९७
(५) कम्पोस्ट गड्ढे खोदे गये (सख्या)	५४५४०००
(ii) भूमि सुधार :	
(१) शुद्ध सिंचित क्षेत्र (अतिरिक्त) हेक्टेयर	११५५५०६
(२) भूमि सरक्षण (हेक्टेयर)	४९३६६६
(iii) पशुपालन ·	
(१) उन्नत पशुओं की पूर्ति (संख्या)	३९३४०
(२) उन्नत पक्षियो की पूर्ति (सख्या)	१५३०९९१
(iv) स्वास्थ्य और सफाई :	
(१) ग्रामीण शौचालयों का निर्माण (सख्या)	८१३३०
(२) पक्के नालो का निर्माण (सख्या)	१९४४०००
(३) ग्रामीण तग गलियो को पक्का किया गया (वग मीटर)	१२६५०००
(४) गन्दे पानी के गड्ढो का निर्माण (संख्या)	२०८१८०
(५) पीने के पानी के कुओ का निर्माण (सख्या)	४१०६४
(६) पीने के पानी के कुओ को सुधारा गया (सख्या)	५०६३१
(v) सामाजिक शिक्षा :	
(१) प्रौढ शिक्षा केन्द्र चालू किये गये (संख्या)	५६७१८
(२) प्रौढ शिक्षित किये गये (सख्या)	१०३२००२
(३) नेता प्रशिक्षित किये गये (सख्या)	४६४१८६
(vi) सचार :	
(१) नयी कच्ची सडको का निर्माण (किलोमीटर)	३०८३९
(२) वर्तमान कच्ची सडको का सुधार (किलोमीटर)	४९८४६
(३) सडक से पानी पार करने वाले कच्चे नालो का निर्माण (सख्या)	२४७८५
(vii) ग्रामीण एवं लघु उद्योग :	
(१) उन्नत उपकरणो का मूल्य जो वितरित किये गये :—	
(a) लुहार गिरी (रुपये)	६४९३९९
(b) सातो गिरी (रुपये)	९०२२१२

(Source India 1968 p 260)

वार्षिक योजनाओ (१९६६ ६९) मे सामुदायिक विकास

तृतीय पचवर्षीय योजना के पश्चात् एक वर्षीय योजनाओ (१९६६ ६९) में विकास कायक्रम निरन्तर चलते रहे । इन तीन वर्षों मे सामुदायिक विकास काय क्रमो मे कृषि के उन्नत तरीको का शीघ्र एव प्रभावकारी प्रसार किया गया। सन् १९६६ के आरम्भ मे सामुदायिक विकास को खाद्य कृषि सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्रालय के अन्तगत लाया गया । इस परिवतन के साथ आत्म निभर आर्थिक विकास तथा खाद्यान्न मे आत्म निभरता पर विशेष बल दिया गया ।

जनवरी १९६७ के आरम्भ मे सम्पूण ग्रामीण भारत सामुदायिक विकास कायक्रम के अन्तगत आ चुका था । इस समय प्रथम चरण मे १८५३ विकास खण्ड थे २२२०¾ खण्ड द्वितीय चरण तथा ११९०¾ विकास खण्ड द्वितीय चरण के बाद की अवस्था मे थे।[1] जनवरी १ १९६९ को देश मे कुल ५२६५½ सामुदायिक विकास खण्ड थे। इनमे से ६९३ विकास खण्ड प्रथम चरण २४९६¾ विकास खण्ड द्वितीय चरण और २०७१½ विकास खण्ड द्वितीय चरण के बाद की अवस्था मे थे। अभी तक चार विकास खण्ड विस्तार के पूव की अवस्था में ही थे ।

वष १९६६ ६७ तथा १९६७ ६८ मे क्रमश ४० ३९ तथा ३० ०६ करोड रुपया सामुदायिक विकास पर व्यय किया गया जिसमे केन्द्र की योजना का अश सम्मिलित नही है । इन व्ययो का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है —

आर्थिक योजनाओ में व्यय

	मदें	१९६६ ६७ (करोड रुपये)	१९६७ ६८ (करोड रुपये)
१	विकास खण्ड प्रधान कार्यालय (यातायात कार्यालय भवन अन्य साधनो को जोडते हुये)	१३ ८०	१० ६१
२	कृषि और पशु पालन	६ ५९	४ २५
३	सिचाई एव भू सरक्षण	६ ०८	४ ०३
४	ग्रामीण उद्योग धन्धे	१ ८६	१ ५८
५	स्वास्थ्य एव सफाई	२ ६७	२ ७०
६	शिक्षा	१ ३१	१ ११
७	सामाजिक शिक्षा	१ ०७	१ १७
८	सचार	४ ३१	२ ८७
९	गृह निर्माण	१ ००	० ९३
१०	विविध	१ ७०	० ८१
	योग	४० ३९	३० ०६

(Source India 1968 p 258)

1 India 1967 p 236
2 India 1969 p 256

वर्ष १९६८-६९ मे सामुदायिक विकास पर २२ ३४ करोड रुपये का प्रावधान किया गया था तथा पचायतो के क्षेत्र मे १'३९ करोड रुपये रखे गये थे।

इस वर्ष केन्द्र का भाग ०'८२ करोड रुपये, राज्यो का २० ४५ तथा केन्द्र शासित प्रदेशों का १ ०७ करोड रुपये का प्रावधान था।

वार्षिक योजनाओ मे सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के माध्यम से जो प्रगति हुई है उसका विवरण निम्न प्रकार है —

सामुदायिक विकास कार्यक्रम-प्रगति

मदें	वर्षान्त कुल प्राप्तियाँ	
	सितबर १९६७	सितबर १९६८
I कृषि·		
(१) उन्नत बीज वितरित किए गए (क्विटल)	४४७६५००	४६५५७००
(२) रासायनिक खादे वितरित की गई (क्विटल)	२८४७०१००	३८७९५६००
(३) रासायनिक पेस्टीसाइडस वितरित (क्विटल)	३२४३९९	३७७६३१
(४) उन्नत उपकरण बाँटे गए (संख्या)	७०४३३३	४६१०८३
(५) कृषि डेमोन्स्ट्रेशन (सख्या)	७४८२००	१०९७९००
(६) कम्पोस्ट के गड्ढे खोदे गए (सख्या)	३४०७३००	२२५३४००
II भूमि सुधार ·		
(१) शुद्ध अतिरिक्त संचित क्षेत्र (हेक्टयर)	१३५४९७६	१२५५४११
(२) भूमि सरक्षण (हेक्टेयर)	३९६५११	४७०२७३
III पशु पालन ·		
(१) उन्नत पशुओ की पूर्ति (सख्या)	३९१५०	३१७०६
(२) उन्नत पक्षियो की पूर्ति (सख्या)	१५७३७५७	१४९८२४९
IV स्वास्थ्य एवं सफाई ·		
(१) निर्मित देहाती शौचगृह (सख्या)	५९१५४	४७२८६
(२) पक्के निर्मित नाले (मीटर)	१९६२०२५	११४१५८३
(३) ग्रामीण तग गलियां पक्की की गयी (वर्ग मीटर)······	१४३९२०७	११३३६२४
(४) गन्दे पानी के गड्ढो का निर्माण (सख्या) ······	१६०४४८	११९६७१
(५) पीने के पानी के कुओ का निर्माण (संख्या) ······	३०६०९	२४५४९
(६) पीने के पानी के कुओ मे सुधार (सख्या) ········	४२३९७	२५४१०

V सामाजिक शिक्षा :		
(१) प्रौढ शिक्षण केन्द्र चालू किए गए (संख्या)	४१६२०	४३७०१
(२) प्रौढ शिक्षित किए गए (संख्या)	९६८३९७	१४८०११५
(३) कार्य करके वाले ग्राम सहायको के कैम्प संगठित किए गए (संख्या)	१७७२६	८८९१
(४) प्रशिक्षित नेता (संख्या)	४६१५०९	३०५९२४
VI संचार :		
(१) नयी कच्ची सडको का निर्माण (किलोमीटर)	३०५५४	२७९५७
(२) वर्तमान कच्ची सडको मे सुधार (किलोमीटर)	४९१३९	४०८८९
(२) सडक से पानी पार करने वाले कच्चे नालो का निर्माण (संख्या)	१९१३२	१६१६०
VII ग्रामीण एवं लघु उद्योग		
(१) लोहार गिरी के लिए बाँटे गए उप-उपकरण (रुपये)	६०६९०४	२६५७१२
(२) खाती गिरी के लिए बाँटे गए उपकरण (रुपये)	६०५०२०	३७१३७८

[Source—India 1969 P. 264]

विशेष कार्यक्रमो मे ग्रामीण मानव शक्ति उपयोग कार्यक्रम, कुओ का निर्माण तथा व्यावहारिक खाद्य कार्यक्रम आदि हैं । वर्ष १९६७-६८ मे ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार सुविधायें निर्माण कार्यों के माध्यम से प्रदान किया गया जिनमे ५'५१ करोड रुपये व्यय किए गए और १ ९९ करोड मनुष्य दिन रोजगार की सुविधायें प्रदान की गयी । खाद्य कायक्रम के अन्तर्गत तृतीय योजना के अब तक २२१ विकास खण्ड लाए गए । वर्ष १९६६-६७, वर्ष १९६७-६८ तथा वर्ष १९६८-६९ मे क्रमश १३४, १७७ तथा २०३ अतिरिक्त विकास खण्ड इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लाए गए ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना एवं सामुदायिक विकास :

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास तथा पंचायतो पर ११५'८ करोड रुपये व्यय किए जाने का प्रावधान किया गया है । सामुदायिक विकास विभाग के माध्यम से ४५० नए विकास खण्डो मे व्यावहारिक न्यूट्रीशन कार्यक्रम चालू किए जायेंगे । इस योजना मे लगभग १२०० विकास खण्डो मे महिलाओ और छोटे बच्चो के लिए मिश्रित कायक्रम व्यापक किया जाएगा । इन विशेष कार्यक्रमो के अतिरिक्त कार्यक्रमो मे पर्याप्त विकास किया जाएगा ।

सारांश

भारतवर्ष मे समय-समय पर इस बात पर सन्देह रहा—कि सामुदायिक विकास योजनायें सफल रही। कुछ विद्वानो ने तो इस आन्दोलन को अनावश्यक भी बतलाया किन्तु यह बात अवश्य है कि जितना धन व्यय हुआ है उतनी सफलता नही मिली है। अधिकांश ग्रामीण जनता आज भी सामुदायिक विकास को सरकारी कार्यक्रम समझती है। आन्दोलन को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक समझा गया है कि प्रसार की गति धीमी होनी चाहिए। ऐसे कार्यक्रमो मे छलाग लगाने की आवश्यकता नही है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों मे सबसे बडी समस्या ग्रामीण सहयोग का अभाव रहा है। जन-सहयोग एक आधार-भूत मान्यता होते हुए भी इसका अभाव पाया जाता है। सामुदायिक विकास आन्दोलन मे कुछ दोष प्रशासनिक अधिकारियो तथा कर्मचारियो के भी रहे है। अत अधिकारियो तथा कर्मचारियो के दृष्टिकोण को बदलना आवश्यक है। इससे ग्रामीण जनता की समस्याओं को भली भाँति समझ सकेंगे।

प्रश्न

१. "पंचवर्षीय योजनाओ मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम" पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

६

सामुदायिक विकास आन्दोलन की प्रगति की समीक्षा

सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण जनता की आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक दशा सुधारने की एक विधि है। वास्तव मे यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है अत प्रारम्भ मे कार्यक्रम की सफलता के लिये हमे सतर्क रहने की अत्यन्त आवश्यकता है। कार्यक्रम की समीक्षा करने के लिये हमे तीन बातो पर विचार करना पडेगा। प्रथम, आन्दोलन से हमे भौतिक लाभ हुये है या नही। द्वितीय, कार्यक्रम की समाज तथा जीवन पर क्या प्रतिक्रिया रही है और तृतीय सम्पूर्ण विकास कार्यक्रम का देश की जनता पर क्या प्रभाव पडा है। इन सभी पहलुओ पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

आन्दोलन की उपलब्धियाँ

प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाओ मे सामुदायिक विकास कार्यक्रमो पर क्रमश ४६·१८ करोड रुपये, १८८·८९ करोड रुपये तथा २६९·१ करोड रुपये की धन राशि व्यय की गयी। वार्षिक योजनाओ (१९६६-६९) मे ९९ ४ करोड रुपये की धन राशि व्यय होने का अनुमान लगाया गया है। इन व्ययो के फलस्वरूप अनेक क्षेत्रो मे कुछ उपलब्धियाँ भी हुई है। प्रथम पचवर्षीय योजनाओ मे देश मे ९९८ विकास केन्द्र आरम्भ किये गये जिनमे लगभग १,४०,००० ग्राम सम्मिलित किये गये थे और इनमे जनसख्या लगभग ७·७ करोड थी। द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक ३१०० विकास केन्द्र प्रारम्भ किये जा चुके थे जिनमे लगभग ९ ७ लाख ग्राम तथा लगभग २१ करोड जनसख्या थी। जनवरी १, १९६७ को देश मे विकास खण्डो की सख्या ५२६८ थी जिनमे से ४ विकास खन्ड विस्तार से पूर्व की अवस्था मे ही थे। इस समय १८५३ विकास खण्ड अवस्था, २२२०½ दूसरी अवस्था और ११९०½ विकास खण्ड द्वितीय अवस्था के बाद की स्थिति मे थे। विभिन्न विकास खण्डो के अन्तर्गत ४० ४६ करोड व्यक्ति एव ५६६९०० ग्राम आ गये थे। जनवरी १, १९६९ को ५२६५½ सामुदायिक विकास खण्डो के अन्तर्गत सम्पूर्ण ग्रामीण भारत था। इस समय ६९३ विकास खण्ड प्रथम चरण मे थे। द्वितीय

चरण मे २४६६½ विकास खण्ड तथा इस अवस्था के बाद की स्थिति मे २०७१½ विकास खण्ड थे ।

(१) कृषि—

सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे कृषि पर अधिक जोर दिया गया है । इस क्षेत्र मे उन्नत बीजो, रासायनिक उर्वरको, उन्नत उपकरणो आदि के वितरण मे सामुदायिक विकास ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष मे ५७·७० लाख क्विटल उन्नत बीजो का वितरण किया गया । इस वर्ष २६६ ३७ लाख क्विटल रासायनिक उवरक तथा २ ९३ लाख क्विटल रासायनिक पेस्टीसाइडस वितरित किये गये । लगभग ७ ९२ लाख उन्नत उपकरण इसी वर्ष वितरित किये गये । इस प्रकार कृषि क्षेत्र मे विकास के पर्याप्त प्रयत्न किये गये । वर्ष १९६६-६७ मे ५९·१२ लाख क्विटल उन्नत बीजो का वितरण किया गया जो कि पिछले वर्ष से अधिक था ।

(१) भूमि सुधार—

सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे भूमि सुधार कार्यक्रमो की तरफ भी ध्यान दिया गया । भूमि सुधार मे सिंचाई व्यवस्था तथा भूमि सरक्षण कार्यक्रम सम्पन्न किये गये हैं । वर्ष १९६५-६६ मे ११ ५६ लाख हेक्टेयर भूमि मे अतिरिक्त सिंचाई की सुविधायें प्रदान की गयी जबकि वर्ष १९६६-६७ मे १३ ३७ लाख हेक्टेयर भूमि मे अतिरिक्त सिंचाई व्यवस्था की गयी । वर्ष १९६६-६७ मे सरक्षण कार्यक्रमो के अन्तर्गत ४ ९४ लाख हेक्टेयर भूमि लायी गयी । वर्ष १९६६-६७ मे यह बढ कर ५·५३ लाख हेक्टेयर हो गयी । इस प्रकार इस क्षेत्र मे भी प्रगति हुई ।

(३) पशुपालन कार्यक्रम—

पशु सुधार कार्यक्रमो मे पशुओ की नस्ल सुधारने का कार्य अत्यन्त उल्लेखनीय है । नस्ल सुधारने के लिये हमारे देश के विभिन्न भागो में उन्नत पशुओ का अभाव है । सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के माध्यम से इस प्रकार की उत्तम किस्म के पशु वितरित किये जाते है । तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष (१९६५-६६) मे ३९३४० पशुओ की पूर्ति की गयी जबकि वर्ष १९६६-६७ मे केवल ३०९७२ पशुओ का वितरण हुआ । वर्ष १९६५-६६ मे १५·३१ लाख पक्षियो का वितरण किया गया और यह सख्या १९६६-६७ मे बढ कर १६ १२ लाख हो गयी ।

(४) स्वास्थ्य एव सफाई

ग्रामीण क्षेत्रो मे स्वास्थ्य तथा सफाई दोनो ही महत्वपूर्ण पहलू हैं । जनता की रहन सहन की दशाओ, सफाई आदि का उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव पडता है । सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रो मे शौचालय, पक्की नालियां, ग्रामो मे तग गलियो को पक्का करना, गन्दे पानी के गड्ढो का निर्माण, पीने के स्वच्छ पानी के लिये कुँओ का निर्माण आदि कार्य सम्पन्न कराये जाते हैं । ग्रामीण क्षेत्रो मे अनेक स्थानो पर पीने के पानी के अच्छे कुओ का अभाव पाया जाता है । गन्दे पानी की नालियां भी नही होती है । इन सबका ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य पर प्रभाव पडता है । स्वास्थ्य का प्रभाव उनकी कार्यक्षमता पर पडता है । तृतीय पच-

वर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष मे देश के विभिन्न भागो मे ८१३३० शौचालय बनाये गये। इस वर्ष १६·४४ पक्ने नालो का निर्माण १२·६५ लाख वर्ग मीटर ग्रामीण तग गलियो को पक्का करने का कार्य, २ ०८ लाख गन्दे गड्ढो का निर्माण, ४१०६४ पीने के पानी के कुँओ का निर्माण तथा ५०६३१ कुँओ के सुधारने के कार्य किये गये।

(५) सामाजिक शिक्षा —

लोकतन्त्र मे समाज के प्रत्येक नागरिक के लिये समाज शिक्षा आवश्यक समझी जानी है। समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति को यह जानकारी होनी चाहिये कि विभिन्न सामाजिक समूहो मे उसका क्या स्थान है। सामाजिक शिक्षा के माध्यम से जनता को जानकारी करायी जाती है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे प्रौढ शिक्षा के कार्य चालू किये गये। तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष मे ५६७१८ प्रौढ शिक्षा केन्द्र चालू किये गये। इस अवधि मे कुल १०·३२ लाख प्रौढ व्यक्तियो को साक्षर किया गया। इस अवधि मे ४ ६४ लाख से भी अधिक नेताओ को प्रशिक्षित किया गया।

(६) संचार —

ग्रामीण क्षेत्रो मे सचार व्यवस्था का अभाव पाया जाता है। इन भागो मे अनेक ग्राम इस प्रकार के है वे न तो रेलवे लाइन से मिले हुये हैं और नही किसी मण्डी या शहर से सडक यातायात मे जुडे हुये हैं। विकास मे सचार का बहुत महत्त्व है अत सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के माध्यम से सचार की सुविधायें प्रदान की गयी हैं। इन कार्यक्रमो मे कच्ची सडको का निर्माण उल्लेखनीय है। तृतीय योजना के अन्तिम वर्ष ३०८३९ किलोमीटर नयी कच्ची सडको का निर्माण किया गया। इस अवधि मे ४९८४६ वर्तमान कच्ची सडको का सुधार किया गया तथा लगभग २४ हजार से भी अधिक सडक से पानी पार करने के नाले बनाये गये हैं।

(७) ग्रामीण तथा लघु उद्योग.—

ग्रामीण उद्योगो मे चर्म उद्योग, मधुमक्खी पालन, तेल पेरना, साबुन बनाना, रस्सी बनाना, टोकरी बनाना, दरजी का काम आदि हैं। खण्ड स्तर पर इनके प्रसार के लिये एक अधिकारी होता है जो कि खण्ड के लोगो को अन्य उद्योगो की भी जानकारी देता है तथा प्रारम्भ मे आर्थिक सहायता भी दिलवाता है। ग्रामीण तथा लघु उद्योग क्षेत्र के अन्तर्गत लुहारगिरी तथा बढईगिरी के लिये उन्नत उपकरण वितरित किये जाते हैं। लुहारगिरी के लिये सितम्बर १९६७ को समाप्त होने वाले वर्ष मे २६५७१२ रुपये के उपकरण वितरित किये गये जबकि इससे पिछले वर्ष ६०६९०४ रुपये के उपकरण बाँटे गये।

उपरोक्त कार्यक्रमो मे किये गये कार्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामुदायिक विकास मे कार्य आवश्य हुआ है किन्तु जो लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं उनकी पूर्ति नही हो पाती है उपर के विवरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम कृषि क्षेत्र मे अधिक कार्य कर रहे हैं किन्तु अब क्षेत्रो मे उसकी अपेक्षा कम कार्य हुआ है।

विशेष कार्यक्रम

सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे विशेष कार्यक्रमो के अन्तर्गत ग्रामीण मानव शक्ति कार्यक्रम, कुओं के निर्माण का कार्य तथा व्यवहारिक न्यूट्रीशन कार्यक्रम, मुख्य हैं। इसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :—

ग्रामीण मनुष्य शक्ति के उपयोग के कार्यक्रम

इन कार्यक्रमो मे ग्रामीण क्षेत्रो के श्रमिको को अतिरिक्त रोजगार की सुविधा प्रदान की जाती है। वर्तमान समय मे ये कार्यक्रम ९९८ विकास खण्डो मे व्यक्त है। तृतीय योजना मे १९·३३ करोड रुपये इस कार्यक्रम पर व्यय किये गये जिसके फलस्वरूप ८ २५ करोड मनुष्य दिनो का रोजगार प्रदान किया गया। वर्ष १९६७-६८ मे व्यय की राशि ५·५१ करोड रुपये और १·९९ करोड मनुष्य दिन की रोजगार सुविधायें प्रदान की गयी। विभिन्न राज्यो के प्रगति प्रतिवेदनो मे इस बात पर बल दिया जाता है कि वास्तव मे ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगार व्यक्तियो को रोजगार की सुविधायें मिली है और ग्रामीण श्रमिको की आय मे भी वृद्धि हुई है।

कुआ निर्माण कार्यक्रम

जिन ग्रामो मे पीने के पानी के कुओं का अभाव पाया जाता है वहाँ पीने के पानी के सरल साधनो की व्यवस्था की जाती है। यह कार्यक्रम केन्द्र द्वारा चालू किया गया है और राज्य की योजनाओ का भाग है। इस कार्यक्रम को 'स्थानीय विकास वर्क्स कार्यक्रम" कहा जाता है। तृतीय योजना मे ११६५०६ कुओं। हाथ पम्पों का निर्माण किया गया जिनमे केन्द्रीय सहायता २०·७५ करोड रुपये थी और सार्वजनिक देन १२·७६ करोड रुपये थी।

व्यवहारिक न्यूट्रीशन कार्यक्रम

यह कार्यक्रम UNICEF, FAO और WHO की सहायता से चालू किया गया है। तृतीय योजना के अन्त तक इस कार्यक्रम के अन्तर्गत २२१ विकास खण्ड आ चुके थे। वर्ष १९६६-६७, वर्ष १९६७-६८ तथा वर्ष १९६८-६९ मे क्रमश १३४ विकास खण्ड, १७७ विकास खण्ड तथा २०३ विकास खण्ड अतिरिक्त कार्यक्रम के अन्तर्गत लाये गये।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की अनेक भौतिक उपलब्धियाँ हैं। इनके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रो मे विकास के प्रयत्न किये गये हैं। कृषि के उत्पादन मे वृद्धि मे सहयोग मिला है। सिंचाई सुविधाओ, उन्नत बीज उर्वरक तथा उपकरणो के वितरण के कारण कृषि उत्पादकता मे भी वृद्धि हुई है। ग्रामीण उद्योगों को भी सहायता मिली है। इन भागो मे कच्ची सड़कों का निर्माण किया गया है। इन सभी कार्यक्रमों मे स्थानीय पहल आत्मविश्वास तथा अच्छे नेतृत्व का अभाव है। जनता की धारणा अधिकाश विकास खण्डो मे सामुदायिक विकास के प्रति अच्छी नही है। ग्रामीण जनता सामुदायिक विकास आन्दोलन को अपना न समझकर सरकार का आन्दोलन समझती है। जनता अभी तक आन्दोलन को पर्याप्त सहयोग नही दे पायी है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का लक्ष्य था कि 'स्वयं

सहायता करो' की भावना उत्पन्न की जाये किन्तु यह पूर्ण नही हो सका । कार्यक्रम सरकारी साधनो पर पूर्ण रूप से आधारित हो गया है जबकि सरकारी साधन तो केवल प्रारम्भ मे सहायता मात्र के लिये थे । सामुदायिक कार्यक्रम मे अनेक कमियाँ हैं । इनके कारण यह अधिक उपयोगी नही हो सका ।

विकास खण्डो की प्रगति मे कमियाँ

(१) विकास खण्डो में पर्याप्त कर्मचारियो का अभाव —

विकास खण्डो मे विभिन्न प्रसार कार्यों के लिये अनेक अधिकारियो तथा कर्मचारियों की आवश्यकता पडती है । ये अधिकारी तथा कर्मचारी कार्यक्रम को कायरुप मे परिणित करने के लिए अनेक प्रयत्न करते है । ग्राम सेवक इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है जो कि ग्राम स्तर का कर्मचारी होता है । अनेक विकास खण्डो मे पर्याप्त मात्रा मे इन कर्मचारियों की कमी पायी जाती है । ग्राम सेवको का क्षेत्र अधिक विस्तृत है इसे छोटा बनाने की आवश्यकता है। इस कार्य से अधिक ग्राम सेवको की आवश्यकता पडेगी । कर्मचारियों के अभाव मे वतमान व्यक्तियो पर अधिक कार्यभार लादा जाता है जिससे उनकी कार्यक्षमता मे कमी हो जाती है कर्मचारियों के अभाव के साथ-साथ अनेक व्यक्ति साहसी, कर्मठ, ईमानदार तथा सच्चे सेवक भी नही है । कई कर्मचारी तथा अधिकारी तो जनता के सामने अपने आप को अफसर मानते है जबकि उनको चाहिये कि वे अपने आपको सेवक समझें । जो कर्मचारी तकनीकी कार्यक्रमो मे सहायता देने वाले होते हैं वे पूर्ण प्रशिक्षित होने चाहिये ।

(२) 'श्रमदान को बेगार समझा जाता है —

सामुदायिक व्यक्तियो मे श्रमदान का महत्व बहुत अधिक है । किन्तु हमारे देश मे अनेक कारणों से इसे बेगार माना गया है । ग्रामो में आर्थिक एव सामाजिक असमानता पायी जाती है । श्रमदान कार्यों मे धनी एव सम्पन्न व्यक्ति भाग लेना अनुचित समझते हैं । निर्धन व्यक्ति इन कार्यों मे भाग लेते है किन्तु उनमे असन्तोष व्याप्त होने लगता है । श्रमदान के महत्व को अभी तक जनता नही समझ पायी है ।

(३) ग्रामीण जनता से सम्पर्क का अभाव —

विकास खण्ड स्तर पर अनेक प्रसार अधिकारी होते हैं । विस्तार अधिकारियो के मुख्य कार्य ग्रामीण जनता से प्रभावशाली सम्पर्क स्थापित करना है विभिन्न बातो की उनको जानकारी प्रदान करना तथा प्रसार कार्य सम्पन्न कराना आदि सामान्यत विस्तार अधिकारी लोगो से उचित सम्पर्क स्थापित करने मे असफल रहते हैं । ग्रामीण जनता को वे अपनी तरफ आकर्षित नही पाते है क्योंकि वे अपने आप को अफसर समझते है । किसानो को वे रूढिवादी तथा अशिक्षित बताते हैं । उनका व्यवहार भी किसानो के साथ बहुत अच्छा होना चाहिये किन्तु अनेकों प्रसार अधिकारी सामान्य जनता से मिलना भी उपयुक्त नही समझते है । विकास अधिकारियो के अतिरिक्त ग्राम सेवक भी ग्रामो मे जनता से अच्छे सम्पर्क स्थापित करने मे असमर्थ रहते हैं ।

(४) आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों को लाभ —

ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों को सामुदायिक विकास कार्यक्रमों से अधिक लाभ नही हुआ है। देश के विभिन्न भागो मे ग्रामीण नेतृत्व धनी तथा सम्पन्न व्यक्तियो के हाथ में है। निर्बल व्यक्तियो को किसी भी कार्यक्रम मे सहायता नही मिल पाती है। आर्थिक सहायता तथा ऋण उन्ही व्यक्तियों को मिल पाते हैं जो पहले से ही सम्पन्न है अथवा प्रभावशाली दल के अन्तर्गत है। सामान्यत ऋण तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिये भूमि अथवा पर्याप्त सम्पत्ति की जमानत की आवश्यक्ता होती है किन्तु जिन निर्धन व्यक्तियो के पास भूमि नही है और सम्पत्ति भी नही है उनको इस आन्दोलन का लाभ नही मिल पाता है। ये व्यक्ति पहले भी श्रमिक थे और आज भी उसी अवस्था के श्रमिक हैं। सामुदायिक विकास का उद्देश्य कमजोर व्यक्तियो को अधिक सहायता देना था किन्तु व्यवहार मे यही वर्ग लाभ नही उठा पाया है। जो व्यक्ति सम्पन्न है तथा जिनके पास पर्याप्त भूमि है उन्हे उन्नत बीज, उपकरण तथा उवरक बहुत लाभ पहुँचाते है। निश्चय ही उनकी आय मे वृद्धि होती है और वे अधिक सम्पन्न होते है किन्तु निबल व्यक्तियों को किसी भी प्रकार से ये कार्यक्रम लाभ नही पहुँचा पाते है।

(५) जन सहयोग का अभाव —

सामुदायिक विकास आन्दोलन मे जन सहयोग नितान्त आवश्यक है। इस आन्दोलन को प्रारम्भ किए लम्बी अवधि व्यतीत हो चुकी है किन्तु अभी तक जन सहयोग का अभाव पाया जाता है। जनता इसे अपना आन्दोलन न समझकर सरकार का आन्दोलन ही समझती है। अधिकांश ग्रामीण व्यक्ति अशिक्षित हैं अत आन्दोलन के महत्व को वे समझ भी नही पाते हैं। इसके अभाव मे जनता मे सरकार जब तक सहायता देती है कार्य चलता है विकास रुक जाता है।

(६) उचित नेतृत्व का अभाव —

ग्रामीण क्षेत्रों मे अभी तक उचित नेतृत्व का अभाव पाया जाता है। अधिकांश नेता अशिक्षित तथा अप्रशिक्षित होते है। ये ग्रामीण क्षेत्रों की गन्दी राजनीति मे फँसे रहते है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों मे भी इनका आधार दलबन्दी रहता है। नेतागण यही प्रयत्न करते रहते है कि उनके दल के लोगो को अधिक लाभ पहुँच सके ताकि उनकी राजनैतिक स्थिति बनी रहे। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों मे नेताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है किन्तु इससे कोई विशेष लाभ नही पहुँच सका है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतवर्ष में यह आन्दोलन अधिक लोकप्रिय नही हो सका है। जनता अपने स्वय के आन्दोलन को अपना स्वीकार नही करती है आन्दोलन जन सहयोग पाने मे असमर्थ रहा है। जनता की भावना आन्दोलन के प्रति अच्छी नही है इस स्थिति मे ऐसे प्रयत्न करने चाहियें कि आन्दोलन सफल हो सके।

७

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण

सामुदायिक विकास जनता का आन्दोलन है। यह एक प्रकार की शिक्षा एव सगठन की विधि है। ग्रामीण जनता पुरानी विचार धारा की होती है। रूढीवादी विचार उनके सामाजिक और आर्थिक विकास मे बाधक होते है। शिक्षा के रूप मे सामुदायिक विकास उनको परिवर्तन के लिये तैयार करती हैं। यह सगठन की एक विधि है। इसके माध्यम से जनता आपसी सहयोग से कार्य करती है और नयी सस्थाओ की स्थापना करके सरकारी सहायता का पूर्ण लाभ उठाती है। इन विकास कायक्रमो मे जन सहयोग नितान्त आवश्यक है। यह तभी हो सकता है जब उचित स्थानीय नेतृत्व का निर्माण हो सके। जन सहयोग का आशय केवल जन श्रमदान तथा वस्तुयें प्राप्त करना ही नही है बल्कि ग्रामीण जनता सम्पूर्ण कायक्रम को अपना समझे और सर्वांगीण विकास के लिये स्वय योजना बना कर कार्य करे।

विकेन्द्रीकरण एक ऐसी विधि है जिसमे सरकार अपने कुछ कर्त्तव्यो तथा उत्तरदायित्वो को दूसरी सत्ता को सौपती है। प्रश्न उठता है इसकी सत्ता कैसी हो ? वास्तव मे लोकतन्त्र मे जनता के चुने प्रतिनिधियो द्वारा ये कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व पूरे किये जाने चाहिये। स्पष्ट है कि लोकतन्त्र के आधार पर सत्ता का विकेन्द्रीकरण ही लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण है। भारतवर्ष मे पहले सत्ता का विकेन्द्रीकरण केवल राज्य स्तर तक ही हुआ था। किन्तु इसके आगे भी विकेन्द्रीकरण आवश्यक समझा गया। श्री बलवत राय मेहता समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर विशेष जोर दिया व समिति ने सुझाव दिया विकास-कार्य के प्रशासनिक अधिकार भिन्न स्तर पर सस्थाओ को सौंप दिए जाएँ, जिससे प्रत्येक क्षेत्र मे कार्यक्रम की योजना तथा उसके सचालन का दायित्व वहाँ के प्रतिनिधि सभाल सकें। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इस सुझाव को मान लिया कि जिला स्तर पर विकास-कार्य का उत्तरदायित्व जिले के लोकप्रिय प्रतिनिधियो को दिया जाये।

लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण का दूसरा नाम पचायती राज रखा गया है। यह त्रिसूत्रीय ढाँचा है। ग्राम स्तर पर ग्राम सभा होती है जिसकी कार्यकारिणी

ग्राम पंचायत होती है। खण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद होते हैं। इन तीनों का चुनाव लोकतान्त्रिक आधार पर किया जाता है। इस प्रकार उत्तरदायित्व और अधिकार जनता को सौंपे गये है। भारतवर्ष में वर्तमान समय मे २१२४६५ ग्राम पचायतें कार्यशील हैं। जिनके अन्तर्गत ग्रामीण जनता का लगभग ९८ प्रतिशत भाग है।

ग्रामसभा

ग्राम पंचायत के सभी प्रौढ मिलकर ग्राम सभा बनाते हैं। ग्राम सभा की कार्यकारिणी ग्राम पचायत होती है। इसका क्षेत्र एक गाँव अथवा अधिक गांव होते हैं। देश के सभी राज्यो मे इसे कानूनी रूप प्रदान किया जा चुका है। ग्राम सभा ग्राम पचायत का चुनाव करती है। ग्राम सभा के मुख्य कार्य निम्नलिखित है—

(१) जैसा कि कहा जा चुका है ग्राम सभा का सबसे प्रमुख कार्य ग्राम पंचायत की नियुक्ति करना है।

(२) ग्राम पचायत वार्षिक बजट और कार्यक्रम तैयार करती है। ग्राम सभा उस पर विचार करके सुझाव देती है।

(३) ग्राम सभा पंचायत के प्रशासन की वार्षिक समीक्षा पर विचार विमर्श करती है और टिप्पणियां देती है।

(४) सामुदायिक सेवाओ के लिए लोगों को प्रेरित करना।

(५) ग्राम पचायत की वार्षिक जांच रिपोर्ट पर विचार करना।

ग्रामीण भागो के उत्पादन योजना कार्यक्रमो को तैयार करना तथा उनको लागू करना ग्राम सभा का उत्तरदायित्व है। कार्यक्रमो को लागू करने के लिए जनता का समर्थन प्राप्त करके आवश्यक स्थानीय साधनो की व्यवस्था करना ग्राम सभा का कार्य समझा जाना चाहिए। ग्राम सभा को ग्राम पचायत के कार्य कलाओ पर पूर्ण नजर रखनी चाहिए। इसके अभाव मे वह शक्तिशाली नही बन सकती है। ग्राम सभायें पंचायती राज का मूल आधार हैं। किन्तु व्यवहार में ग्राम सभायें शक्तिशाली नजर नही आती हैं। सर्वोच्च जनता इस बात से अनभिज्ञ है कि ग्राम की सर्वोपरि सत्ता उन्ही मे निहित है। वे ग्राम पचायत को अधिक शक्तिशाली मानते हैं और स्वयं उस पर भार रखने मे असमर्थ रहते हैं। लोकतन्त्र के उद्देश्य की यही पर पूर्ति नही हो पाती है।

ग्राम पंचायत

ग्राम पंचायत ग्राम सभा की कार्य कारिणी होती है ग्राम पंचायत का चुनाव इसी के द्वारा किया जाता है। ग्राम पचायत, ग्राम स्तर की सबमे महत्वपूर्ण संस्था है। ग्राम के आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास का दायित्व इसी पर है। ग्राम सभा अपने नीति सम्बन्धी निर्णयो को ग्राम पंचायत को कार्यरूप देने के लिए प्रदान कर देती है। ग्राम पचायतें कृषि उत्पादन ग्रामीण उद्योग, सामान्य चरागाहो का प्रबन्ध, चिकित्सा सुविधायें, ग्रामीण सडको, गलियो, तालावो तथा कुंओ को बनाये रखना आदि कार्यों के लिए जिम्मेवार होती हैं। कुछ स्थानो पर पचायतो को

प्राथमिक शिक्षा के देखभाल का कार्य भी सौंपा जाता है। इस समय देश मे ११२४६५ ग्राम पचायतें है जिसके अन्तर्गत लगभग ९८% ग्रामीण जन-सख्या आती है।

ग्राम पचायत के कार्य

ग्राम पंचायतें ग्रामीण स्तर पर सभी प्रकार के विकास कार्यों के लिये उत्तर-दायी होती है। ये नागरिक सुविधायें, स्वास्थ्य, जन्म मरण का ब्योरा रखना, ग्रामोद्योग का विकास, सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास आदि कार्य करती है किन्तु आजकल कृषि, पशुपालन, लघु सिंचाई, ग्रामोद्योग, बुनियादी शिक्षा, सहकारिता, स्वास्थ्य, सफाई, यातायात आदि पर विशेष जोर दिया जाता है। स्थानीय जनशक्ति का उचित विकास करना इनका महत्वपूर्ण कार्य है। ये सस्थायें स्थानीय साधनो का सगठन करके विकास कार्यों मे जुटाती हैं। इन कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य निम्न-लिखित हो सकते हैं —

(१) ग्रामीण क्षेत्रो के चरागाहो, बगीचो, तालाबो, बेकार भूमि, ग्रामीण वन आदि की देख-रेख रखना।

(२) ग्रामीण स्तर पर स्थानीय साधनो का सर्वोत्तम उपयोग तथा उनको विकास कार्यों के लिये समुचित रूप से सगठित करना।

(३) ग्रामीण क्षेत्रो मे विभिन्न प्रकार की सुविधाये प्रदान करना।

(४) बेरोजगार तथा अल्प रोजगार वाले व्यक्तियो को उत्पादन कार्यों मे लगाने की व्यवस्था करना।

उक्त कार्यो को सम्पन्न करने के लिये ग्राम पचायतो को धन की आवश्यकता होती है। ग्राम पचायतो के सामने वर्तमान समय मे वित्तीय साधनों की समस्या है। पचायतो का सबसे मुख्य साधन स्थानीय कर हो सकते है। ये मकान, जायदाद पशुधन, गाडियो, व्यवसाय आदि पर कर लगा कर धन प्राप्त कर सकती हैं। इसके अलावा ग्राम पचायते सावजनिक भूमि को किराये पर देकर, मकानो पर कर लगा-कर, बिजली, पानी आदि पर कर लगा कर अपनी आय बढा सकती है। कुछ राज्यो मे पचायतें लगान वसूल करती है। ग्राम पचायतो को पचायत समितियो से भी सहायता मिलती है।

पचायत समिति

पचायत समिति खण्ड स्तर पर होती है। पचायती राज मे यह जिला परिषद् तथा ग्राम पचायत के मध्य की कडी के रूप मे होती है। मेहता समिति ने इस सस्था की स्थापना पर विशेष जोर दिया। देश के कुछ राज्यों को छोड कर अन्य सभी राज्यो ने पचायत समितियो की स्थापना की है और उनको पर्याप्त अधिकार प्रदान किये है। पचायत समितियो मे प्राय ग्राम पचायत के सरपच सदस्य होते हैं और उनके अतिरिक्त महिलाओ तथा अनुसूचित जातियों के लोगो को भी प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है। पचायत समितियो के अध्यक्ष प्रधान होते है। पचायत समिति खण्ड स्तर के आर्थिक सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास के लिए उत्तरदायी होती है। खण्ड विकास अधिकारी तथा विभिन्न प्रसार अधिकारी समिति के निर्देशन पर कार्य करते हैं।

पंचायत समिति के कार्य

पचायत समितियाँ सामुदायिक विकास कार्यक्रमो को कार्यरूप मे परिणित करने के लिये महत्वपूर्ण सस्थायें है। इनके मुख्य-मुख्य कार्य निम्नलिखित है :

(१) कृषि उत्पादन को बढाने के लिए यथा सम्भव प्रयत्न करना। पचायत समितियो के अन्तगत कृषि प्रसार अधिकारी होता है जोकि इन कार्यो मे पर्याप्त सहायता प्रदान करता है।

(२) ग्रामीण व लघु-उद्योगो को विकास के लिये बढावा देना।

(३) स्थानीय साधनो, विशेषकर मानव शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग की व्यवस्था करना।

(४) सहकारी समितियो के विकास मे योगदान देना।

(५) ग्राम पचायतो को पर्याप्त साधनो की व्यवस्था करना।

(६) स्वेच्छिक सगठनो के योग पर बल देना।

(७) खण्ड स्तर पर पशु सुधार कार्यक्रमो को बढावा देना।

(८) पचायत प्रसार अधिकारी के सहयोग से पचायतो के विकास का कार्यक्रम चलाना।

(९) खण्ड स्तर पर महिला व बाल कल्याण कार्यक्रमो का विकास करना।

(१०) कर्मचारियो के कार्यों का निरीक्षण व नियन्त्रण करना।

उक्त विवरण से स्पष्ट है पचायत समितियाँ खण्ड स्तर की महत्वपूर्ण सस्थाये होती हैं। खण्ड विकास योजनाओ का निर्माण तथा उनको कार्यरूप मे परिणित करना इनका मुख्य कार्य है। पचायत समितियो के विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे धन की आवश्यकता होती है। अत यह आवश्यक है कि इन सस्थाओं को पर्याप्त अनुदान उचित समय पर मिल जाये।

जिला परिषद्

पचायती राज मे जिला स्तर पर जिला परिषद हैं। ये इस राज मे सबसे ऊपरी कडी होती है। जिला परिषद के सदस्य पचायत समितियो के प्रधान, कमजोर वर्गों के प्रतिनिधि, ससद सदस्य, विधान सभा के सदस्य तथा कुछ अन्य व्यक्ति होते हैं। कुछ राज्यो को छोड कर देश के सभी राज्यो मे इनकी स्थापना हो चुकी है। कुछ राज्यो में सहकारी समितियो को भी इनमे प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है। जिला परिषदों का कार्य विभिन्न राज्यो मे अलग-अलग है। मद्रास तथा मैसूर राज्यो मे ये सामजस्य का कार्य करते हैं। ये सस्थायें पचायत समितियो के कार्यों की देख-भाल करती हैं तथा उनको उचित परामर्श भी देती हैं। महाराष्ट्र मे इनको विकास व प्रशासन के क्षेत्रो मे कार्य संचालन का अधिकार दिया गया है। आन्ध्रप्रदेश मे जिला परिषद माध्यमिक शिक्षा, बहुउद्देश्यीय पाठशालाओ, औद्योगिक शिक्षा आदि का कार्य देखती है। उत्तर प्रदेश तथा गुजरात मे इनको प्रशासनिक अधिकार प्रदान

किए गये हैं। अन्य राज्यों मे परिषदो को कार्य संचालन का अधिकार नही है। ये केवल पर्यवेक्षण तथा समन्वय स्थापित करने का कार्य करती हैं। बिहार, मध्य प्रदेश, उडीसा, पजाब, आसाम, आन्ध्रप्रदेश, मैसूर आदि राज्यो मे जिला परिषद पंचायत समितियों को अनुदानो की स्वीकृति प्रदान करती है। राजस्थान, पंजाब, मैसूर, मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश, आसाम तथा आन्ध्रप्रदेश मे ये पचायत समितियों के कार्यों की देखभाल करती है तथा आवश्यक सलाह भी प्रदान करती हैं। कुछ राज्यो मे परिषद ग्राम पचायतो के कार्यों की देखरेख भी करती है।

उपरोक्त तीनो सस्थायें ग्राम स्तर पर ग्राम पचायतें, खण्ड स्तर पर पचायत समितियाँ और जिला स्तर पर जिला परिषद पचायती राज की विभिन्न कड़िया हैं। सरकार अपने अधिकारो तथा जिम्मेवारियो को विकेन्द्रीकृत करके उन्हे सौंप देती है। सस्थायें लोकतन्त्र के उद्देश्य को समक्ष रख कर अधिकारो तथा कर्तव्यो को निभाती है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमो मे तीनों सस्थाओ का ढाचा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन सस्थाओ द्वारा जनता का विकास जनता के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। सरकार तो केवल उनको सहायता मात्र देती है।

क्या पचायतें आर्थिक एवं सामाजिक विकास के साधन बन सकती हैं ?

साधारणतया यह प्रश्न सुना जाता है कि क्या पचायतें आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन मे महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है ? कुछ विद्वानो का कहना है कि धनवान व्यक्ति तथा प्रभावशाली व्यक्ति पचायतो मे अपना प्रभाव जमा लेते हैं और अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। यह बात अनेको स्थानो पर सत्य भी है। धनवान व्यक्ति निर्धनों पर अपना कई प्रकार से प्रभाव रखते है और पंचायतो मे उनके मतो के आधार पर महत्वपूर्ण पदो पर आ जाते है। वे अपने निजी स्वार्थों के आधार पर कार्य करते हैं। ग्रामीण जनता इतनी शिक्षित है नहीं कि ये पचायती राज के महत्व को समझ सके। अत यह भय निश्चित ही देश की ग्रामीण जनता के आर्थिक विकास तथा सामाजिक परिवर्तन मे बाधक होगा। किन्तु इस दोष को हल करना आवश्यक है। यह कभी कोई स्थायी नही है। इसे दूर करने के कई उपाय हो सकते हैं।

हमने समाजवादी नमूने का समाज बनाने का दृढ सकल्प लिया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण बहुत आवश्यक है। और लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पचायती राज से ही सम्भव हो सकता है। समाजवादी समाज को स्थापना की हमारी नीति सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर निर्भर है। आर्थिक क्षेत्र मे पचायतो का योगदान आवश्यक है। पचायतो के नेता अपने अधिकारो तथा कर्तव्यों को निभायें तो वास्तव मे पर्याप्त ग्रामीण उन्नति हो सकती है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम इन नेताओ मे कर्तव्य तथा दायित्वों के निभाने की भावना पैदा करता है।

ग्राम पंचायतें सामुदायिक विकास का समर्थन प्राप्त करके ग्रामीण साधनो का विदोहन अन्य किसी भी सस्था से अधिक अच्छी तरह मे कर सकती हैं। ग्रामीण क्षेत्रो के सुस्त व्यक्तियों, भूमि तथा पानी के साधनों, समुदाय के नेताओ के गुणो का उपयोग ये सस्थायें सबसे महत्वपूर्ण ढग से करने मे समर्थ हैं। आपसी सहयोग सहकारी व्यवहार आदि के माध्यम से पंचायतें सामान्य लक्ष्यो की प्राप्ति का सर्वोत्तम

साधन हैं। पंचायतें युवक तथा महिला मण्डली को उत्साह प्रदान करा सकती हैं। श्रमदान के लिए जनता को संगठित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। ग्राम पंचायत ही इस कार्य को कर सकती है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के माध्यम से कृषि-उत्पादकता को बढ़ाने के प्रयत्न किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों में मिट्टी का कटाव रोकना, सिंचाई व्यवस्था, उन्नत बीज, खाद तथा उपकरणों की व्यवस्था महत्त्वपूर्ण हैं। ग्राम पंचायतें ग्राम स्तर पर इन कार्यक्रमों को चलाने में अत्यन्त आवश्यक हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण धन्धा है। इसका विकास करके ग्रामीण जनता की आय बढ़ायी जा सकती है। ग्राम पंचायतें ग्रामीण जनता की सम्पन्नता के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी होती है। अतः सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को अपनाने में सबसे अधिक सहायता इन्हीं की हो सकती है। ग्राम पंचायतें कृषि विकास की योजना तैयार करती हैं तथा सरकारी सहायता से सम्पन्न करती हैं। पंचायतें ग्रामीण जनता की राय को उचित दिशा प्रदान कर सकती हैं। भूमि सुधार कार्यक्रमों के अधिक प्रचार के लिए पंचायतें उपयुक्त वातावरण तैयार कर सकती हैं।

ग्राम पंचायतों की शक्ति को काम में लाने की कुछ बुराइयां भी हैं। इन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने आवश्यक हैं। कुछ बुराइयाँ इस प्रकार की हैं जो कि इतनी महत्त्वपूर्ण संस्था की साख को समाप्त कर देती हैं। अतः उनसे बचना चाहिये। अब प्रश्न उठता है कि इन बुराइयों से बचने के लिए पंचायतों को गलतियाँ नहीं करने देना चाहिये। कुशल प्रशासन में सत्ता गलतियाँ कर सकती हैं किन्तु जो गलतियाँ दूर की जा सकती हैं उन्हें दूर अवश्य कर देना चाहिये। जान-बूझ कर जो गलतियाँ की जाती हैं उन्हें नहीं होने देना चाहिये। ग्राम सभा ही इनको दूर करने में महत्त्वपूर्ण साधन हो सकती है।

पंचायती राज की समस्यायें

पंचायती राज की सफलता के मार्ग में कुछ समस्यायें आ सकती हैं। ये समस्यायें कुछ तो आन्तरिक हैं और कुछ बाहरी। सबसे पहली समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में धनी व्यक्तियों के हाथ में नेतृत्व चला जाना। पंचायती राज की आरम्भ की अवस्था में विभिन्न स्तरों पर केवल धनी एवं सम्पन्न व्यक्ति ही प्रभाव शाली पदों के लिए चुने जायेंगे। वास्तव में ऐसा ही हुआ है। देश के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पन्न व्यक्ति ही इन संस्थाओं में चुने जाते हैं। निर्धन जनता को ये नेता अनेक कारणों से दबा लेते है। इस प्रकार का नेतृत्व अपनी शक्तियों को ग्रामीण जनता की भलाई में न लगाकर अपने हितों की रक्षा में लगा रहता है। किन्तु यह समस्या धीरे-धीरे जनता के ज्यों ज्यों समझ आयेगी अपने आप मिट जाएगी।

द्वितीय महत्त्वपूर्ण समस्या है राजनैतिक दल बन्दी। इन क्षेत्रों में राजनैतिक दल बन्दी से बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण समुदाय दलों में विभक्त हो जाता है। जिससे संगठित प्रयास बहुत कठिन है। भारतवर्ष में आज यह समस्या विकट हो गयी है। ग्राम पंचायतें राजनीति का अखाड़ा बन चुकी हैं। अतः जनता का इनके प्रति विश्वास भी समाप्त होता जा रहा है।

तृतीय समस्या स्थानीय प्रबन्ध के अधिकारियों में कार्य कुशलता का अभाव है। नेताओं को अनुभव का अभाव है। अनेक नेता अप्रशिक्षित भी होते हैं। इस

समस्या का समाधान प्रशिक्षण सुविधाये हो सकती है । सामुदायिक विकास कायक्रमा को कायरूप देने के लिए उचित नेतृत्व आवश्यक है ।

पचायती राज की सफलता म आजकल इसम व्याप्त भ्रष्टाचार भी बाधक है । स्थानीय सत्ता मे लोग इतने भ्रष्ट हो गए हैं कि वे अपने और दल के हितो की रक्षा के लिए अन्याय बेईमानी तथा अन्य अनेक बुराइयो का सहारा लेते है । अत पचायती राज का जो उद्देश्य है वह पूर्ण नही हो सकता है ।

उक्त समस्याओ का समाधान किया जा सकता है । ग्रामीण साधना के विकास का उचित आयोजन करके सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय का कल्याण पचायती राज से ही सम्भव है । किन्तु इसमे विभिन्न सस्थाओ मे उचित समन्वय होना आवश्यक है। जनता के हितो को सर्वोपरि रख कर पचायती राज का विकास किया गया तो निश्चय ही इसके उद्देश्यो की पूर्ति हो सकेगी और देश म ग्रामीण समुदाय समृद्ध हो सकेगा ।

राजस्थान मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण

राजस्थान म अक्टूबर २ १९५९ मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण अपनाया गया । इस समस्या से ही पचायतो का बहुत बडा महत्त्व रहा है। जिला परिषद् तथा पंचायत समितियो के साथ पचायतें आधार है । इन तीनो सस्थाओ का सामुदायिक विकास म उल्लेखनीय स्थान है ।

पचायतें

पचायत के सदस्या का चुनाव वार्ड के आधार पर होता है । ग्राम के सभी प्रौढ सरपच का चुनाव करते है । सरपच के नीचे उप-सरपच होता है जिसका चुनाव पच अपने में से करते हैं । सरपच पचायत का सर्वोच्च अधिकारी होता है ।

ग्राम स्तर पर पचायत-लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की सबसे नीचे की कडी होती है । ग्रामीण क्षेत्र मे विकास कार्यो की जिम्मेदारी इन्ही की होती है । पचायत अपने-अपने क्षेत्रो मे पीने के शुद्ध पानी की व्यवस्था करती हैं। वे छोटे सिंचाई कार्यो मे सहायता देती हैं । राजस्थान मे ग्राम पचायतें वे सभी काय करती हैं *जो कि इस अध्याय मे दिए जा चुके हैं। इस समय राज्य में कुल ७३८८* पचायत है ।

पचायत समितियाँ

सम्पूर्ण राजस्थान राज्य २३२ पचायत समितियो मे विभक्त है। पचायत समितियो की औसत जन सख्या ५० ००० से ८० ००० तक है । पचायत समितियाँ जिला परिषद तथा पचायतो के मध्य की कडियाँ हैं । सादिक अली समिति के सुझावो के आधार पर पचायत समितियों के सविधान तथा चुनाव मे अनेक परिवतन किए है । अब पचायत समिति में समिति क्षेत्र के राज्य विधान सभा सदस्य ग्रामदानी *गावो के सदस्य दो महिला सदस्य दो अनुसूचित जाति सदस्य दो अनुसूचित वश* (यदि उनकी जन सख्या समिति के क्षेत्र की जनसख्या के ५% से अधिक है) के प्रतिनिधि, आदि सदस्य होते हैं ।

पचायत समिति के प्रधान का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्य, सरपंच, पच, पचायत समिति के द्वारा निर्वाचित सदस्य तथा पचायत समिति क्षेत्र की ग्राम सभाओं के अध्यक्ष (Chairman) द्वारा किया जाता है।

राज्य मे पचायत समितियाँ वर्तमान समितियो (Standing Committees) के माध्यम से कार्य करती हैं। प्रत्येक पचायत समिति मे तीन स्टेन्डिंग कमेटियाँ होती हैं जो निम्न प्रकार हैं —

(१) उत्पादन कार्यक्रमो के लिए
(२) सामाजिक सेवा के लिए
(३) वित्त, कर निर्माण और प्रशासन के लिए।

पंचायत समितियो के महत्त्वपूर्ण कार्य

(१) कृषि —

पचायत समितियाँ कृषि उत्पादन बढाने के लिए योजनायें बनाती है। और इनको कार्यरूप मे परिणित करवाती है। यह कार्य कृषि प्रसार अधिकारी की सहायता से करती हैं।

(२) पशु पालन —

खण्ड स्तर पर पशुपालन कार्य पचायत समितियो के हाथ मे है। पशु विकास मे नस्ल सुधारने के प्रयत्न किए जाते हैं। पचायत समितियाँ उन्नत नस्ल के साँडो तथा पक्षियो का वितरण करती हैं। पशुओ को रोगो से बचाने के लिए चिकित्सा व्यवस्था की जाती है। भेड विकास के लिए भी प्रयत्न किए जाते हैं।

(३) स्वास्थ्य एवं सफाई—

राज्य के ग्रामीण क्षेत्रो के स्वास्थ्य तथा सफाई की व्यवस्था का दायित्व पचायत समितियो पर है। स्वास्थ्य के लिए सफाई नितान्त आवश्यक है। पचायत समितियाँ चिकित्सा व्यवस्था, पीने के लिए शुद्ध पानी की व्यवस्था, शौचालय आदि के लिए सहायता प्रदान करती हैं। स्वास्थ्य सेवाओ मे चेचक उन्मूलन का कार्य भी महत्त्वपूर्ण है।

(४) शिक्षा —

राज्य मे ग्रामीण प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था पंचायत समितियों के हाथ मे है। अनुसूचित जातियो तथा वर्गो के लिए जो पाठशालायें चालू की गयी हैं उनको भी पचायत समितियो के अन्तर्गत रखा जाता है।

(५) संचार —

पचायत समितियाँ, पचायतो को मिलाने के लिए सडको का निर्माण तथा उनकी मरम्मत करवाती हैं। इन सडको के किनारे पेड पौधे लगाने का कार्य भी करवाती हैं।

(६) सहकारिता —

पचायत समितियाँ सहकारिता के प्रवंतन मे सहायता प्रदान करती हैं। ये सेवा समितियां, औद्योगिक, सिचाई, कृषि तथा अन्य समितियो के निर्माण तथा उनको सुदृढ बनाने मे सहायक होती है।

(७) ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग—

ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए पचायत समितियाँ ग्रामीण, कुटीर तथा लघु उद्योगो का विकास करती हैं ।

(८) पिछडे वर्गों के मध्य कार्य —

पचायत समितिया सरकारी सहायता से अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित वश तथा पिछडे वर्ग के लाभ के लिए होस्टल निर्मित करना । ये स्वेच्छिक सामाजिक कल्याण सगठनो को शक्ति प्रदान करती हैं ।

(९) अन्य —

अल्प-बचत, बीमा आदि के माध्यम मे मितव्ययिता को प्रोत्साहन देती हैं ।

जिला परिषद्

जिला परिषद् त्रिस्तरीय ढांचे मे सबसे ऊपर की कडी होती है । राजस्थान मे इस समय २६ जिला परिषद हैं जो कि प्रत्येक जिले मे एक हैं । परिषद् जिले की पचायत समितियों के प्रधानो, सासद सदस्यो, राज्य विधान सभा के सदस्यो तथा जिलाधीश (बिना मताधिकार) का बना होता है । इनके अतिरिक्त दो महिलायें, एक अनुसूचित जाति, एक अनुसूचित वश (यदि इसकी जनसख्या राज्य की जनसख्या के ५% से अधिक है) आदि प्रतिनिधि सदस्य होते है ।

जिला परिषद् कोई प्रशासनीय कार्य नही करता है यह पचायत समितियों के विकास कार्यो मे समन्वय स्थापित करता है साधारणतया जिला परिषद् समितियों के कार्यों की देखरेख भी करते हैं । ये पचायत समितियो तथा पचायतों से सम्बन्धित गतिविधियो के सम्बन्ध मे राज्य सरकार को सलाह देती हैं ।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण बहुत अच्छी तरह अपनाया गया है तथा सामुदायिक विकास योजनाओ के विकास मे पर्याप्त सहायता प्रदान कर रहा है ।